॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

२७

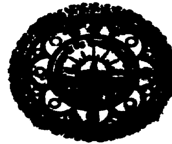
काव्यादर्शः

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतः

व्याख्याकारः

आचार्य श्रीरामचन्द्रमिश्रः

(प्राध्यापक : धर्मसमाज संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर)



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),
पो० बा० नं० १०६९
वाराणसी २२१००१
दूरभाष : ३२०४०४

द्वितीय संस्करण १९९६
प्रथम परिच्छेद २५-००
१–२ ५०-००
सम्पूर्ण ७५-००

अन्य प्राप्तिस्थान—
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पोस्ट बाक्स नं० ११२९
वाराणसी २२१००१
दूरभाष : ३३३४३१

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड
दिल्ली ११०००७
दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक
फूल प्रिण्टर्स
वाराणसी

THE

VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

37



KĀVYĀDARŚA

OF

MAHĀKAVI DANDĪ

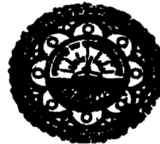
Edited with

'Prakasha' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Acharya Ramchandra Mishra

Ex. Professor, Dharma Samaj Sanskrit College, Muzaffarpur.



CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI

© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Publishers & Booksellers*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road
DELHI 110007

विंशशताव्यामपि महाकाव्यखण्डकाव्यचम्पूविविधटीका-
निर्माणयशःशालिनां सफलाध्यापनप्रथितकीर्तीनां
मैथिलश्रोत्रियविद्वद्वरकविशेखरपण्डितश्रीयुत,

बदरीनाथझाशर्मणां

करकमलयोः

सादरं समर्पयति निजां कृतिं काव्यादर्शव्याख्यामिमां
तस्य साहित्यविद्याद्रोणाचार्यस्यैकलव्यः

शिष्यः

रामचन्द्रः

अवतारणा

अथायमुपक्रम्यते प्रकाशयितुं महाकविदण्डिविरचितः सव्याख्यश्च काव्यादर्शः, अलङ्कारशास्त्रे प्रविविक्षतां कृते ग्रन्थोऽयमतीवोपकारकः सरसमधुरया शैल्याऽलङ्कार-शास्त्रीयतत्त्वनिग्रहप्रकाशश्चेति न तिरोहितं सुधियाम्। इदमीयगुणगणगौरवमेवास्य चिरप्रणीतत्वेऽपि समधिकसुधीसमुदयाकर्षणकारणत्वं कलयति।

यद्यप्यस्य बहवो व्याख्याः प्रथन्ते, यथा—१. तरुणवाचस्पतिकृता टीका, २. एस्. के. बेलबलकरेण कृता टीका, एन्. बी. रेडीशास्त्रिकृता, ३. प्रेमचन्द्रकृता, ४. जीवानन्दकृता, ५. विश्वेश्वरसुतहरिनाथकृता, ६. नरसिंहकृता, ७. भगीरथकृता, ८. विजयानन्दकृता, ९. त्रिभुवनाचार्यकृता १०. कृष्णकिङ्करकृता, ११. जगन्नाथतनय-मल्लिनाथकृता, १२. रङ्गाचार्यकृता च। एतदतिरिक्ता अपि अज्ञातकर्तृकास्तिस्त्रष्टीकाः कृष्णमाचार्येण स्वीये संस्कृतसाहित्येतिहासनामके ग्रन्थे स्मर्यन्ते।

आधुनिकसमयेऽप्यत्र ग्रन्थे ब्रजरत्नदासमहोदयेन हिन्दीव्याख्या तथा वी. नारायणऐयरमहाशयेनाङ्ग्लानुवादः क्रियतेस्म।

तदेवं भूयांसि व्याख्यानानि ग्रन्थस्यास्य गौरवं सडिण्डिमनादं ख्यापयन्ति। तासु टीकासु कतीनामनुपलम्भात् कतिपयानां च संक्षिप्ततमत्वादन्यासां चासम्बद्धाधिकार्था-भिधायित्वादेका वर्त्तमानसमयोपयुक्ता टीकाऽपेक्ष्यते स्म। तन्निमित्त एव ममाय-मुपक्रमः।

मया टीकाकरणकाले पञ्चषा व्याख्या निपुणमालोचितास्तत्र रङ्गाचार्यकृता टीका मुख्या, अन्याश्च जीवानन्द-प्रेमचन्द्र-ब्रजरत्नदास-वी. नारायणऐयरप्रभृतिसम्पादिताः।

सर्वास्ताष्टीका यथामति समालोच्य मयाऽयं ग्रन्थष्टीकितो यत्र संस्कृतव्याख्यया सह हिन्दीव्याख्यापि समावेशिता विद्यते। संस्कृतव्याख्यापेक्षया हिन्दीव्याख्याया-मधिका अर्थाः समावेशयितुमिष्टा मया, तथा साधारणाध्येतृजनानामधिकं सौविध्यमा-धीयेत।

आशासे मदीयेन प्रयासेनास्य ग्रन्थस्याध्येतारश्छात्रास्तदध्यापकाश्चाक्लेशमिमं हृदयावर्जकं ग्रन्थं तत्त्वतो विज्ञाय मदीयं श्रमं सर्वात्मना सफलयिष्यन्तीति शम्।

विनयावनतः

श्रीरामचन्द्रमिश्रः

प्रस्तावना

अलङ्कारशास्त्र

काव्यशास्त्र समाज का चित्र माना जाता है, कवि अपनी प्रतिभाके द्वारा समाजका सर्वाङ्गीण चित्र अपने काव्यों में उपस्थित करते हैं, उसके नियमोंका, स्वरूपका, दोष-गुणका और उसमें अपेक्षित रीति आदिका विवेचन भी काव्यके करने तथा यथार्थरूपमें समझनेके लिये आवश्यक हो जाता है। इसी तरहकी विवेचनाके लिये प्रस्तुत ग्रन्थोंकी गणना साहित्यशास्त्रके विभागमें की जाती है।

साहित्यशास्त्र का ही परिमार्जित रूप या संक्षिप्त रूप अलङ्कारशास्त्र माना जाता है। आलोचक विद्वान् अपनी प्रतिभाके आधारपर काव्यके दोषों, गुणों तथा अन्यान्य उपयोगी अङ्गोंकी विवेचना करके काव्यको समझनेकी सुविधा उत्पन्न कर देते हैं।

इस तरह अलङ्कारशास्त्र काव्याङ्ग होता है, अत एव साहित्यदर्पणकारने अपने ग्रन्थमें लिखा है:—

'अस्य ग्रन्थस्य काव्याङ्गतया काव्यफलैरेव फलवत्त्वम्'

काव्यका फल भी उन्होंने इस प्रकार कहा है :—

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि। काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥

इसका प्रतिपदविवेचन साहित्यदर्पणमें देखें।

अलङ्कार-शब्दार्थ

अलङ्कार शब्दका अर्थ भूषण माना जाता है। जिससे अङ्गकी तथा उसके द्वारा अङ्गीकी शोभावृद्धि होती है उसे अलङ्कार कहते हैं। अलङ्कारका लौकिक प्रयोग-विषय जितना प्रसिद्ध है, शास्त्रीय प्रयोग-विषय भी उतना ही प्रसिद्ध है। जिस प्रकारसे शरीर-शोभा-वर्धन द्वारा शरीरीकी शोभा बढ़ानेवाले हारादि अलङ्कार कहे जाते हैं उसी तरह शब्दार्थस्वरूप शरीरशोभा-वर्धन द्वारा रसरूप शरीरीकी शोभा बढ़ानेवाले उपमादि अलङ्कार कहे जाते हैं। आचार्योंने स्वीकार किया है :—

'हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।' 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते॥'

अलङ्कारों का आविर्भाव

अलङ्कारोंका आविर्भाव कब हुआ? इस प्रसङ्गमें विचार करनेसे प्रतीत होता है कि मानव-समाजकी आदि भाषामें भी इसका प्रयोग अवश्य होता रहा होगा। मानव-समाजकी आदिम भाषा कौन थी, इसका निर्णय अवश्य कठिन है, परन्तु उसमें अलङ्कारोंका प्रयोग अवश्य होता रहा होगा, क्योंकि हम देखते हैं कि संसारकी कोई भी ऐसी भाषा नहीं है, जिसमें आलङ्कारिक प्रयोग नहीं होते हों।

जहाँ तक उपलभ्यमान भाषाओंका संबन्ध है, लोगोंकी मान्यता यही है ऋग्वेदका प्राचीनत्व सिद्ध है। ऋग्वेदमें अलङ्कारोंके प्रयोग प्रचुर रूपमें पाये जाते हैं :—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्ष सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥ (ऋग्० ४।५८।३)
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः, पिशा इव सुपिशः विश्ववेदसः॥ (ऋग्० १।६४।८)
तद्विष्णोः परमं पदं दिवीव चक्षुराततं, सदा पश्यन्ति सूरयः॥ (ऋग्० १।२२।२०)

इन मन्त्रांशोंमें रूपक एवं उपमाके प्रयोग स्पष्ट हैं।

उसके बादके ग्रन्थोंमें तो अलङ्कारोंके प्रयोग होते ही थे। इस प्रसङ्गमें उदाहरण-प्रदर्शन अनावश्यक है।

अलङ्कारशास्त्र

जब किसी वस्तुका प्रयोग होने लगता है, उसकी ओर वक्ता-श्रोताकी रुचि बढ़ने लगती है, तब उसकी परिभाषा आदि शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किये जाने लगते हैं जिसे हम तत्तत् शास्त्रके नाम से पुकारते हैं।

अलङ्कारशास्त्रके विषयमें यही बात लागू हुई होगी। हमारी प्राचीन परम्पराके अनुसार शास्त्र होनेके लिये सूत्र, वृत्ति और भाष्यका होना अपेक्षित है। तदनुसार अलङ्कारशास्त्रमें इन वस्तुओंका होना अपेक्षित है।

अलङ्कारशास्त्रके सूत्र, वृत्ति तथा भाष्यग्रन्थ कौन-कौनसे हैं, इस सम्बन्धमें विचार करनेपर पता चलता है कि इसका सूत्रग्रन्थ शौद्धोदनिका सूत्र है, केशवमिश्रने अपने अलङ्कारशेखरमें लिखा है :—

'अलङ्कारविद्यासूत्रकारो भगवान् शौद्धोदनिः काव्यस्य स्वरूपमाह'

गौड़देशके आचार्यगण काव्यप्रकाशकारिकाको भरतमुनिकृत काव्यालङ्कारसूत्ररूपमें स्वीकार करते हैं—साहित्यकौमुदी नामक स्वलिखित ग्रन्थमें बलदेव विद्याभूषण ने लिखा है :—

'काव्यप्रकाशस्य द्वावंशौ; कारिका, वृत्तिश्च, भरतमुनिप्रणीता या कारिका सा अलङ्कार-सूत्रनाम्ना व्यवह्रियते, मम्मटप्रणीता या वृत्तिः सैव काव्यप्रकाशनामभाक्।'

अन्यान्य आचार्यगण भी काव्यप्रकाशस्थ कारिकाओंको सूत्र नामसे व्यवहृत करते हैं, देखिये :—

महेश्वर—उदाहरणेषु हृद्यत्वात् सूत्रानुक्तमपि प्रमेयद्वयमाह।

भीमसेन—सूत्रे प्रश्नोत्तरपदं पूर्वापरवाक्योपलक्षकम्।

विद्यानाथ—सूत्राक्षरानुसाराद्योपेक्षम।

गोविन्दठक्कुर—'सूत्रे विभाग उपलक्षणपरः।

नागेशभट्ट—सूत्रं चोपलक्षणपरतया योऽयम्।

यद्यपि केशव मिश्रने अलङ्कारशेखरमें शौद्धोदनिके सूत्रको सूत्र माना है, परन्तु काव्य-प्रकाशकी कारिकाको ही बहुमतसे सूत्र मानना उचित प्रतीत होता है। अन्यान्य वामनादि-प्रणीत सूत्रोंको अव्यापक होनेसे सूत्रग्रन्थ कहलानेका गौरव नहीं प्राप्त हो सका।

कुछ अज्ञातकर्तृक या यशस्करकृत अलङ्कारसूत्रों पर बारहवीं शताब्दीमें उत्पन्न होनेवाले शोभाकरने व्याख्या लिखी है, परन्तु इन सूत्रोंको भी वह ख्याति नहीं मिल सकी जो काव्य-प्रकाशादृत सूत्रोंको मिली है। इस प्रकारसे सूत्रोंके विषयमें विचारकर लेनेपर वृत्तिके विषयमें यही कहना होगा कि उन्हीं सूत्रोंपर लिखी गई व्याख्यायें वृत्तियाँ मानी जा सकती हैं।

अलङ्कारशास्त्र का क्रम-विकास

अलङ्कारोंके क्रम-विकासपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि इसके प्रयोगात्मक स्वरूपमें विकास होनेमें जितना अधिक समय लगा होगा, लक्षणोदाहरणनिरूपणरूप विवेचनात्मक क्रमविकासमें उतना समय नहीं लगा होगा। जितना समय वस्तुके बननेमें लगता है उतना समय उसके नाम-करणमें भी लगे, यह उचित नहीं है।

भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्रमें केवल चार ही अलङ्कारोंका उल्लेख हो पाया है, इसके बाद अग्निपुराणमें १६ अलङ्कारोंके नाम आये हैं। अग्निपुराणके समयके सम्बन्धमें बड़ा सन्देह

है, कुछ लोग पुराण-शब्द-प्रथाके आधारपर उसे प्राचीनतम और कुछ लोग अन्तरङ्ग-परीक्षाके आधारपर अनतिप्राचीन मानते हैं, अतः उसमें लिखे गये अलङ्कारोंका कौन क्रम होगा, यह भी सन्दिग्ध है।

वास्तवमें अग्निपुराण तकका अलङ्कारविभाग प्रामाणिक रूपमें नहीं है। अग्निपुराणके बाद अलङ्कारग्रन्थ भामहका अलङ्कारसूत्र माना जाता है। उसमें निम्नलिखित अलङ्कार निरूपित हुए हैं :-

१. अतिशयोक्ति, २. अनन्वय, ३. अनुप्रास, ४. अपह्नुति, ५. अप्रस्तुतप्रशंसा, ६. अर्थान्तर-न्यास, ७. आक्षेप, ८. आशीः, ९. उत्प्रेक्षा, १०. उत्प्रेक्षावयव, ११. उदात्त, १२. उपमा, १३. उपमा-रूपक, १४. उपमेयोपमा, १५. ऊर्जस्वी, १६. तुल्ययोगिता, १७. दीपक, १८. निदर्शना, १९. पर्यायोक्त, २०. परिवृत्ति, २१. प्रेयः, २२. भाविक, २३ यथासंख्य, २४. यमक, २५. रसवत्, २६. रूपक, २७. विभावना, २८. विरोध, २९. विशेषोक्ति, ३०. व्यतिरेक, ३१. व्याजस्तुति, ३२. श्लेष, ३३. सन्देह, ३४. समासोक्ति, ३५. समाहित, ३६. संसृष्टि, ३७. सहोक्ति, ३८. स्वभावोक्ति।

इस प्रकार भामहने ३८ अलङ्कारोंका निरूपण किया है।

दण्डीने इनमें कुछ घटा-बढ़ाकर ३७ अलङ्कार स्वीकार किये हैं :—

स्वभावाख्यानमुपमा रूपकं दीपिकावृती। आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना॥
समासातिशयोत्प्रेक्षा हेतुः सूक्ष्मो लवः क्रमः। प्रेयो रसवदूर्जस्वि पर्यायोक्तं समाहितम्॥
उदात्तापह्नुतिश्लेषविशेषास्तुल्ययोगिता। विरोधाप्रस्तुतस्तोत्रे व्याजस्तुतिनिदर्शने॥
सहोक्तिः परिवृत्त्याशीः, सङ्कीर्णमथ भाविकम्। इति वाचामलङ्कारा दर्शिताः पूर्वसूरिभिः॥
काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलंक्रियाः। (काव्यादर्श २।३–७)

वामनने केवल ३१ अलङ्कार ही निरूपित किये हैं, जिनके नाम ये हैं :—

१. अतिशयोक्ति, २. अनन्वय, ३. अनुप्रास, ४. अपह्नुति, ५. अप्रस्तुतप्रशंसा, ६. अर्थान्तर-न्यास, ७. आक्षेप, ८. उत्प्रेक्षा, ९. उपमा, १०. उपमेयोपमा, ११. तुल्ययोगिता, १२. दीपक, १३. निदर्शना, १४. परिवृत्ति, १५. प्रतिवस्तूपमा, १६. यथासंख्य, १७. यमक, १८. रूपक, १९. वक्रोक्ति, २०. विभावना, २१. विरोध, २२. विशेषोक्ति, २३. व्यतिरेक, २४. व्याजस्तुति, २५. व्याजोक्ति, २६. श्लेष, २७. सन्देह, २८. समासोक्ति, २९. समाहित, ३०. संसृष्टि, ३१. सहोक्ति।

इसी प्रकार रुद्रटने २६ अलङ्कार तथा उद्भटने ४१ अलङ्कार स्वीकार किये हैं।

इस प्रसङ्गमें उन सभी आचार्यों द्वारा स्वीकृत अलङ्कारोंकी सूची प्रस्तुत करना अनावश्यक है, इससे इतना ही पता लगाना है कि क्रमशः अलङ्कारोंके सम्बन्धमें उपयुक्त विचार करके आचार्योंने अलङ्कारोंकी संख्या घटाई या बढ़ाई।

सर्वाधिक प्रभावशाली, प्रामाणिक तथा वाग्देवतावतार प्रकाशकारने अपने काव्यप्रकाशमें ६९ अलङ्कार स्वीकार किये हैं :—

उपमानन्वयस्तावदुपमेयोपमा ततः। उत्प्रेक्षा च ससंदेहो रूपकापह्नुती तथा॥
अप्रस्तुतप्रशंसातिशयोक्ती परिकीर्तिते। श्लेषस्तथा समासोक्तिः प्रोक्ता चव निदर्शना॥
प्रतिवस्तूपमा तद्वद् दृष्टान्तो दीपकं तथा। तुल्ययोगितया चव व्यतिरेकः प्रकीर्तितः॥
आक्षेपो विभावना च विशेषोक्तिस्तथैव च। यथासंख्यमर्थान्तरन्यासः स्यातां विरोधवत्॥
स्वभावोक्तिस्तथा व्याजस्तुतिः प्रोक्ता सहोक्तिवत्। विनोक्तिपरिवृत्ती च भाविकं काव्यलिङ्गवत्॥
पर्यायोक्तमुदात्तं च समुच्चय उदीरितः। पर्यायश्चानुमानं च प्रोक्तः परिकरस्तथा॥
व्याजोक्तिपरिसंख्ये च विज्ञेये हेतुमालया। अन्योऽन्यमुत्तरं सूक्ष्मसारौ तद्वदसङ्गतिः॥
समाधिस्तु समेन स्याद्विषमस्त्वधिकेन च। प्रत्यनीकं मीलितं च स्यातामेकावली स्मृती॥

भ्रान्तिमांस्तु प्रतीपेन सामान्यं च विशेषवत्। तद्गुणातद्गुणौ चैव व्याघातः परिकीर्तितः ॥
संसृष्टिसंकरौ चैवमेकषष्टिरुदीरिताः।

इस प्रदीपोक्ति के अनुसार ६१ अर्थालङ्कार और ८ शब्दालङ्कार (योग ६९) हुए।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टिकोणसे विचार करनेपर यह भी ज्ञात होता है कि लगभग ईसा की बारहवीं शताब्दी तक अलङ्कारोंके विषयमें एक प्रकारकी निश्चिन्तता आ गई थी। इस विषयमें इयत्तावधारण करना तो संभव नहीं है; क्योंकि वाग्भङ्गीके भेदसे नये-नये अलङ्कार उत्पन्न होते रहते हैं और वाग्भङ्गीका नियन्त्रण करना संभव भी नहीं है, वक्ताकी बुद्धिके भेदसे वाग्भङ्गी सदा बदलती रह सकती है, इसीलिये कहा है :—

काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते, कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ॥ (काव्यादर्श २-१)

'सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाशिताः, प्रकाश्यन्ते च।' (ध्वन्या० १)

आगे चलकर अलङ्कारोंकी संख्या बहुत अधिक वेगसे बढ़ने लगी, १२वीं शताब्दी ईस्वीके बाद और १८वीं ईस्वीं शताब्दीके बीचमें बने हुए ग्रन्थोंमें अपनाये गये अलङ्कारोंका विवरण इस प्रकार है।

जयदेवने चन्द्रालोकमें ८ शब्दालङ्कार और ८१ अर्थालङ्कार कुल मिलाकर ८९ अलङ्कार निरूपित किये हैं। मम्मट द्वारा स्वीकृत अलङ्कारोंमें संकर, संसृष्टि, सूक्ष्म नामक तीन अलङ्कारोंको छोड़कर शेष ६६ अलङ्कार जयदेवने मान लिये हैं और शेष स्वीकृत अलङ्कार खुद उद्भावित किये हैं।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने १२ शब्दालङ्कार, ७० अर्थालङ्कार और ७ रसवदादि अलङ्कार कुल ८९ अलङ्कारोंका निरूपण किया है। उनके द्वारा निरूपित अलङ्कारोंमें ८४ अलङ्कार ऐसे हैं, जिनका निरूपण उनके पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा किया जा चुका था, ५ अलङ्कारोंकी उद्भावना उन्होंने स्वयं की है।

द्वितीय वाग्भटने अपने काव्यानुशासनमें अन्य और अपर नामक दो अलङ्कार उद्भावित किये हैं।

अप्पय्यदीक्षितने सब मिलाकर ११८ अलङ्कार माने हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ का रसगङ्गाधर अपूर्ण है, अतः उनके द्वारा स्वीकृत अलङ्कारोंकी संख्या नहीं निर्णीत की जा सकती है।

इस सम्बन्धमें एक बात और जाननी चाहिये कि सभी आचार्योंने सूचित अलङ्कारोंकी सूचीको वर्गोंमें विभक्त कर दिया है, जैसे शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार। एक दूसरे प्रकारका वर्गीकरण भी पाया जाता है, जैसे सादृश्यमूलक, कार्यकारणभावमूलक आदि।

नवीनतम आलोचकोंने निम्नलिखित रूपसे अलङ्कारों का वर्गीकरण किया है।

१. **उपमामूलक**—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरणादि।

२. **आरोपमूलक**—रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान् आदि।

३. **अध्यवसायमूलक**—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि।

४. **गम्यमान सादृश्यमूलक**—तुल्ययोगिता, दीपकादि।

५. **भेदमूलक**—व्यतिरेक, विनोक्ति आदि।

६. **विशेषणविवैचित्र्यमूलक**—समासोक्ति, परिकरादि।

७. **विरोधमूलक**—विरोध, विभावना, व्याघात आदि।

८. तर्कमूलक—अनुमान, काव्यलिङ्गादि ।

९. काव्यन्यायमूलक—यथासंख्य, पर्याय आदि ।

१०. लोकवृत्तोपन्यासमूलक—मीलित, सामान्य, तद्गुणादि ।

११. गूढार्थाभिव्यक्तिमूलक—सूक्ष्म, व्याजोक्ति ।

१२. रसादिसम्बन्धमूलक—रसवत्, प्रेयः आदि ।

काव्यादर्श-परिचय

काव्यादर्श एक रीतिसम्प्रदायका साहित्यशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ है । उपलब्ध होने वाले प्राचीन लक्षणग्रन्थों में भामहके बाद दण्डीका काव्यादर्श ही मिलता है । काव्यादर्शमें तीन परिच्छेद हैं ।

प्रथम परिच्छेदमें काव्यपरिभाषा, काव्यभेद, महाकाव्यादिके लक्षण, गद्यके प्रभेद, कथा, आख्यायिका, मिश्रकाव्य, भाषाप्रभेद और वैदर्भमार्ग एवं अन्यान्य मार्ग तथा अनुप्रास, गुण काव्यकारण आदिका विवेचन किया गया है ।

द्वितीय परिच्छेदमें ३५ अर्थालङ्कारोंके भेदप्रभेदके साथ लक्षणोदाहरणादि निरूपित किये गये हैं ।

तृतीय परिच्छेदमें यमकप्रपञ्च, गोमूत्रिकादि चित्रबन्ध, प्रहेलिका तथा दोषोंका निरूपण विस्तारके साथ किया गया है ।

काव्यादर्श ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें पूर्ववर्त्ती सभी अलङ्कार-ग्रन्थोंसे अधिक अलङ्कारोंके उपभेदों एवं रीति तथा गुणादिका विस्तृत विमर्श किया गया है ।

अन्यान्य अलङ्कारशास्त्री

(१) भामह—भामहने काव्यालङ्कार नामक ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें ३८ अलङ्कारों का निरूपण किया गया है । उद्भट, आनन्दवर्धन और मम्मट जैसे प्रतिष्ठित आचार्यों ने भामह-का नाम तथा मत गौरवके साथ लिया है । भामहका न्यायदोषप्रकरण अत्यन्त विवेचनापूर्ण है ।

(२) धर्मकीर्त्ति—धर्मकीर्त्तिने भी अलङ्कारशास्त्रपर कुछ लिखा था, उनका लिखा हुआ ग्रन्थ यद्यपि नहीं मिलता है, तथापि—'अलङ्कारो नाम धर्मकीर्तिकृतो ग्रन्थविशेषः' इस प्रकारके शिवरामलिखित अवतरणसे पता चलता है कि धर्मकीर्तिने अलङ्कारशास्त्रपर भी कुछ लिखा था । उनका बौद्धशास्त्रीय प्रबन्ध तो प्रथित ही है ।

वामन—वामनने अपने काव्यालङ्कारसूत्रमें ३३ अलङ्कार निरूपित किये हैं । वामनके काव्यालङ्कारसूत्रमें रीतिसम्प्रदायका समर्थन किया गया है, जिसकी आलोचना मम्मटने की है ।

(४) उद्भट—उद्भटका 'काव्यालङ्कारसारसंग्रह' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें ४१ अलङ्कारों का निरूपण किया गया है । उद्भट काश्मीरनरेश जयपालके सभास्तार थे, जिसके सम्बन्धमें कल्हणने राजतरङ्गिणीमें लिखा है :—

'विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ॥'

जयपालका समय ७७९ से ८१३ ई० माना जाता है, उद्भटका भी वही समय है ।

(५) लोल्लट—लोल्लटने नाट्यशास्त्रपर टीका लिखी थी, जिसका अब पता नहीं लगता है, केवल अभिनवगुप्त द्वारा किये गये खण्डनके प्रसङ्गमें लोल्लटके मतका प्रसङ्ग आया है । राजशेखरने भी लोल्लटके मतकी आलोचना की है, जिसमें राजशेखरने लोल्लटको 'अपराजित' का पुत्र कहा है । अपराजितका समय राजशेखरके समयसे मिलता-जुलता है ।

(६) **शंकुक**—शंकुकके रससम्बन्धी विचारकी आलोचना अभिनवगुप्तने की है, शंकुक काश्मीरी राजा अजितापीड़के समयमें वर्त्तमान थे, अजितापीड़का काल ८१४- ८५१ ई० माना जाता है। शंकुकने भावनाम्युदय नामक काव्य भी लिखा है।

(७) **घण्टक**—घण्टक नामक आचार्यके मतकी आलोचना अभिनवगुप्तके लोचनमें आई है, घण्टकका नाम नाटकसंबन्धी ग्रन्थकर्त्ताके रूपमें लिया है।

(८) **आनन्दवर्धन**—आनन्दवर्धनका नाम ध्वन्यालोककारके रूपमें प्रसिद्ध है। आनन्दवर्धन अवन्तिवर्मा नामक राजाके समयमें थे, जिनका समय ८५५ से ८८४ ई० माना जाता है।

(९) **भट्टनायक**—भट्टनायकका मत भी अभिनवगुप्त द्वारा आलोचित हुआ है। भट्टनायक भी अवन्तिवर्माके दरबारी कवि माने जाते हैं, अतः उनका समय भी ८५५-८८४ माना जा सकता है।

(१०) **मुकुल**—मुकुलका 'अभिधावृत्तिमातृका' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है, उनका समय भी ८५५-८८४ ही है।

(११) **राजशेखर**—राजशेखरका साहित्यिक आलोचनासम्बन्धी 'काव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ अतिप्रसिद्ध है। राजशेखर आलोचक होनेके साथ ही उत्तम कवि भी थे। राजशेखरका रचनाकाल ८८४ से ९२५ ई० तक प्रमाणित है।

(१२) **रुद्रट**—रुद्रट काश्मीरी थे, उनके लिखे दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, काव्यालङ्कार तथा शृङ्गारतिलक। रुद्रटका समय नवम शताब्दीका उत्तर भाग माना जाता है। रुद्रटका काव्यालङ्कार आर्याछन्दमें लिखित तथा सोलह अध्यायोंमें विभक्त है। अलङ्कारोंको रुद्रटने वास्तव, औपम्य, ऐतिह्य, और श्लेष नामक नामविभागोंमें विभक्त किया है।

(१३) **नमिसाधु**—नमिसाधु नामक श्वेताम्बर जैनने रुद्रटके काव्यालङ्कार पर टीका लिखी है। वह टीका ११२५-११५६ के बीच लिखी गई है।

(१४) **धनञ्जय**—धनञ्जयका लिखा हुआ दशरूपक नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। धनञ्जय प्रतिहारेन्दुराज द्वितीयके समयमें थे, अतः उनका काल ९७४ से ९९५ तक माना जाता है।

(१५) **अभिनवगुप्त**—अभिनवगुप्त एक प्रतिष्ठित आचार्य थे। उनके लिखे हुए 'अभिनवभारती' तथा 'लोचन' नामक ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्रके लिये प्रमाणभूत माने जाते हैं। अभिनवगुप्ताचार्यका समय ९७०-१०५० माना जाता है।

(१६) **उत्पलदेव**—उत्पलदेव अभिनवगुप्तके गुरुओंमेंसे थे। उनका लिखा हुआ प्रत्यभिज्ञा दर्शनविषयक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उनका समय १०म शतकका आदि भाग है।

(१७) **भट्टतौत**—भट्टतौतविरचित काव्यकौतुक नामक ग्रंथ अब अप्राप्य हो गया है, परन्तु उसका उद्धरण माणिक्यचन्द्रने अपने ग्रन्थमें किया है, जिससे पता चलता है कि वह ग्रन्थ साहित्यशास्त्रका था। उनका समय भी दशम शतकका प्रारम्भ माना जा सकता है, क्योंकि उनके मतका उल्लेख लोचनमें भी आया है।

(१८) **भट्टेन्दुराज**—भट्टेन्दुराजका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ अब नहीं पाया जाता है, परन्तु उनका उल्लेख क्षेमेन्द्रविरचित औचित्यविचारचर्चामें आया है। भट्टेन्दुराजका समय ९म शतक हो सकता है।

(१९) **क्षीरस्वामी**—क्षीरस्वामी भट्टेन्दुराजके शिष्य थे, उनके द्वारा विरचित 'अभिनवराघव' नामक ग्रन्थ का अवतरण रामचन्द्रने दिया है। उनका समय ९म शतक हो सकता है।

(२०) **भोज**—धाराधीश महाराज भोजका सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृङ्गारप्रकाश नामक ग्रन्थयुगल साहित्यशास्त्रमें विख्यात है। भोजका समय एकादश शतकका आदि भाग निश्चित है।

(२१) **अजितसेन**—अजितसेनने अलङ्कारचूडामणि नामक ग्रन्थ अलङ्कारपर तथा शृङ्गार-मञ्जरी नामक ग्रंथ रसशास्त्र पर लिखा था। उनके ग्रंथ पद्यबद्ध थे। वह १०म शतकमें विद्यमान थे।

(२२) **क्षेमेन्द्र**—क्षेमेन्द्रविरचित औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ औचित्यसम्प्रदाय-प्रवर्त्तकतया स्वनामख्यात है। क्षेमेन्द्रका समय लगभग १०५० ई० है।

(२३) **कुन्तक**—कुन्तकविरचित 'वक्रोक्तिजीवित' वक्रोक्तिसम्प्रदायका प्रधान ग्रन्थ माना जाता रहा है। कुन्तकने ध्वनिको वक्रोक्तिस्वरूप माना है। कुन्तकका समय १०म शतक और ११ शतकका मध्य भाग है।

(२४) **महिमभट्ट**—महिमभट्टने अपने समयके प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्वन्यालोकका खण्डन अपने 'व्यक्तिविवेक' नामक ग्रन्थमें बड़े जोरदार शब्दोंमें किया है, उनका भी एक अपना खास व्यक्तित्व है। काव्यालोचकों में महिमभट्ट की महिमा विख्यात है। उनका समय ११ शतक का आदि भाग है।

(२५) **मम्मट**—मम्मटका नाम वाग्देवतावतार के रूपमें प्रसिद्ध है। इनका काव्यप्रकाश स्वनामख्यात है। उनका समय एकादश शतक निश्चित है।

(२६) **माणिक्यचन्द्र**—माणिक्यचन्द्र काव्यप्रकाशके सर्वप्रथम टीकाकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनकी सङ्केत नामक टीका ११६० ई० में लिखी गई थी, अतः उनका समय वही माना जाता है।

काव्यप्रकाशकी टीकाओंमें सङ्केतके अतिरिक्त सरस्वतीतीर्थकृत टीका (समय १२४२ ई०), जयन्तभट्टकृत जयन्ती टीका (समय १२६४ ई०), श्रीवत्सलाञ्छनकृत टीका (समय १६वीं शताब्दी), सोमेश्वरकृत टीका (समय १४ शतक), साहित्यदर्पणकर्त्ता विश्वनाथकृत टीका (समय १४ शतक), चण्डीदासकृत टीका, चक्रवर्त्तीकृत टीका (समय १५ शतक), महेश्वर न्याया-लङ्कारकृत टीका (समय १६ शतक), आनन्दराजानककृत शिवपक्षीय टीका (समय १७६५ ई०), कमलाकरकृत टीका (समय १६१२ ई०), नृसिंहठाकुरकृत टीका (समय १७ शतकका पूर्वार्द्ध), विद्यानाथकृत टीका (समय १७ शतकका परार्ध), भीमसेनकृत टीका (समय १७२३ ई०), रत्नकण्ठरचित सारसमुच्चय टीका (समय १७ श शतकका उत्तरार्ध) गोविन्द ठाकुर-कृत काव्यप्रदीप (समय १६ वीं शताब्दी) अपने प्रामाणिकत्वके लिये प्रसिद्ध है, अतः इन टीका-कारोंकी गणना अलङ्कारशास्त्रियोंमें की जाती है। काव्यप्रकाशकी अन्य टीकायें व्याख्यामात्र है, अतः उनके विषयमें विवरण नहीं दिया जा रहा है, उनकी संख्या बहुत बड़ी है।

(२७) **हेमचन्द्र**—हेमचन्द्रका काव्यानुशासन प्रसिद्ध अलङ्कारग्रन्थ है। उसकी रचना १०८८-११७४ के बीचमें हुई है। इन्हींके समसामयिक जयमङ्गलने कविशिक्षानामक ग्रन्थ तथा नागवर्माने काव्यालोचन नामक ग्रन्थ लिखा है।

(२८) **वाग्भट**—वाग्भटने वाग्भटालङ्कार नामक ग्रन्थ १०९४-११४३ के बीचमें लिखा है।

(२९) **देवेश्वर**—देवेश्वरने कविकल्पलता नामक ग्रन्थ लिखा है, उनका समय १३०० ई० के लगभग माना गया है।

(३०) **वाग्भट (द्वितीय)**—वाग्भट (द्वितीय) ने काव्यनुशासन नामक ग्रन्थ लिखा है, उनका समय त्रयोदश शतकका अन्त समझा जाता है।

(३१) **रुय्यक**—रुय्यककृत अलङ्कार-सर्वस्व एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका पाण्डित्य-गौरव प्रख्यात है। इस ग्रन्थके दो भाग हैं, सूत्र और वृत्ति। इतिहासज्ञोंका मत है कि रुय्यने सूत्रमात्र बनाये हैं, वृत्तिभाग मङ्खकी कृति है। इस वृत्तिग्रन्थ पर जयरथकृत टीका प्रसिद्ध है।

(३२) **मलयज पण्डित**—मलयज पण्डितकी रचना साहित्यसार है, जो लगभग ११६८ ई० में लिखा गया है।

(३३) **राजराज**—राजराज नामक विद्वान्ने 'राजराजीयम्' नामक अलङ्कारग्रन्थ लिखा है। उसका निर्माण १२ वाँ शतक है।

(३४) **आशाधर**—आशाधरका समय १२४० ई० माना गया है, उनकी बहुत-सी कृतियों-में त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र प्रसिद्ध है।

(३५) **धर्मदास**—धर्मदास एक बौद्ध विद्वान् हुए हैं। उनकी कृति विदग्धमुखमण्डन प्रसिद्ध है। उनका जीवनकाल १२९३ से १३०९ तक प्रमाणसिद्ध है।

(३६) **शारदातनय**—शारदातनयका 'भावप्रकाशनम्' नामक ग्रन्थ प्रख्यात है। उनका समय १२-१३ वें शतक का मध्य माना जा सकता है।

(३७) **शोभाकर**—शोभाकरविरचित अलङ्काररत्नाकर यशकरविरचित मूल ग्रन्थकी व्याख्याके रूपमें है। ये १३ वें शतकमें विद्यमान थे।

(३८) **सिंगभूपाल**—सिंगभूपाल १४ वीं शताब्दीमें दक्षिण-भारतमें विद्यमान थे। उनके दो ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें एक रस पर तथा दूसरा नाटक पर है।

(३९) **विश्वनाथ**—साहित्यदर्पण-निर्माता विश्वनाथ अतिप्रसिद्ध हो गये हैं, उनका समय १४ वाँ शतक अभ्रान्तरूप में निर्धारित हो गया है।

(४०) **विश्वनाथ (द्वितीय)**—धारासुरनिवासी विश्वनाथ प्रसिद्ध विश्वनाथसे भिन्न आचार्य थे। उनका लिखा 'साहित्यसुधासिन्धु' नामक ग्रन्थ मिलता है। उनका समय अनिश्चित है, परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ में काव्यप्रकाशके व्याख्याकार चण्डीदासको याद किया है, जिससे उन्हें चण्डीदासके बादका ही मानना होगा।

(४१) **भानुदत्त**—भानुदत्त मिश्र मिथिलानिवासी तथा रसमंजरीके निर्माताके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

(४२) **जयदेव**—जयदेवका चन्द्रालोक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनका समय क्या है? इस सम्बन्धमें मतभेद पाया जाता है। यदि चन्द्रालोककारको ही प्रसन्नराघवका निर्माता मान लिया जाय तो इनका समय १२ वीं और १३ वीं शताब्दीके मध्यमें हो सकता है, और यदि मैथिल सम्प्रदायके मन्तव्योंके अनुसार प्रसन्नराघवके प्रणेता और चन्द्रालोकके प्रणेतामें भेद माना जाय तो उनका अर्वाचीन होना ही युक्तिसङ्गत माना जायगा।

(४३) **सुखलाल**—सुखलाल मिश्रने चन्द्रालोककी कारिकाओंको आधार बनाकर अलङ्कार-मंजरी नामक ग्रन्थ लिखा है। उनका समय १८ वीं शताब्दीका मध्य माना जा सकता है।

(४४) **वेमभूपाल**—वेमभूपालका लिखा साहित्यचिन्तामणि नामक अलङ्कारग्रन्थ उपलब्ध होता है। उनका समय १५ वीं शताब्दीका प्रारम्भ माना गया है, क्योंकि १४२० में उनका देहावसान बताया जाता है।

(४५) **अनुरथमण्डन**—अनुरथमण्डन नामके एक जैन विद्वान् हो गये हैं उनके द्वारा लिखे गये दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—जल्पकल्पलता और मुग्धमेधाकर। उनका समय १८ वीं शताब्दीका मध्यभाग निश्चित है।

(४६) **पुञ्जराज**—पुञ्जराज एक राजा थे जो मालवामें शासक थे। उनके द्वारा अपने भाई मुञ्जके लिये राज्यत्यागकी बात प्रसिद्ध हैं। पुञ्जराजकी रचनाओंमें ध्वनि-प्रदीप और शिशु-प्रबोधालङ्कार नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उनका समय १५ वीं शताब्दीका अवसान भाग माना जाता है।

(४७) **अप्पयदीक्षित**—अप्पयदीक्षितका कुवलयानन्द तथा चित्रमीमांसा नामक ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्रमें अतिप्रसिद्ध है। अप्पयदीक्षितका समय १५५४–१६१३ ई० है।

(४८) **कृष्णसुधी**—कृष्णसुधीका 'काव्यकलानिधि' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उनका समय १८ वीं शताब्दीका प्रारम्भ माना जाता है।

(४९) **कृष्णशर्मा**—कृष्णशर्माका मन्दारमण्डनचम्पू नामक ग्रन्थ अलङ्कारका अच्छा-ग्रन्थ है। यद्यपि नाममें चम्पू शब्द जुड़ा हुआ है, परन्तु उसे अलङ्कार तथा रसके लिये विश्वकोष समझा जाता है। उनका समय १७ वीं शताब्दी है।

(५०) **प्रभाकर**—प्रभाकरका रसप्रदीप १५८३ ई० में लिखा गया, जिसमें तीन अध्याय हैं। इनमें क्रमशः, काव्य, रस, ध्वनिकी विवेचना है।

(५१) **बलदेव**—बलदेव विद्याभूषण चैतन्यमहाप्रभुके अनुयायी थे। उनके लिखे हुए साहित्यकौमुदी तथा काव्यकौस्तुभ नामक ग्रन्थ विख्यात हैं। वे जयसिंहके समय में १८ वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

(५२) **विश्वेश्वर**—विश्वेश्वर पर्वतीय अल्मोड़ाके रहनेवाले तथा अतिप्रतिभाशाली थे। वे ३४ वर्षकी अवस्थामें ही स्वर्गीय हो गये। उनके लिखे ग्रन्थोंमें—अलङ्कारकौस्तुभ, अलङ्काराभरण, आर्यासप्तशती, अलङ्कारप्रदीप, अलङ्कारमुक्तावली आदि प्रसिद्ध हैं। उनकी दशमी पीढ़ीके लोग आज भी विद्यमान हैं, इसीसे उनके समयका अन्दाज लगाया जा सकता है।

(५३) **राजशेखर**—१९ वीं शताब्दीमें दक्षिण देशमें उत्पन्न राजशेखर नामक एक विद्वान्‌ने ८१ स्तवकोंमें विभक्त साहित्यकल्पद्रुम नामक अलङ्कारग्रन्थ लिखा है।

(५४) **रत्नभूषण**—रत्नभूषण नामक एक वङ्गीय विद्वान्‌ने १८५९ ई० में काव्यकौमुदी नामक एक ग्रन्थ लिखा हैं, जिसके अगले अध्यायोंमें आलङ्कारिक विवेचन है।

(५५) **श्रीशैल नरसिंहाचार्य**—श्रीशैल नरसिंहाचार्यका अलङ्कारेन्दुशेखर लक्षणमालिका नामक ग्रन्थकी व्याख्या होकर भी अलङ्कारके निरूपणमें अपना स्थान रखता है। नरसिंहाचार्य-का समय १७ वीं शताब्दी हो सकता है।

(५६) **रामसुब्रह्मण्यम्**—रामसुब्रह्मण्य शास्त्रीने अलङ्कारशास्त्रविलास नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उनका देहान्त १९२२ ई० में हुआ।

(५७) **मुडुम्बई नरसिंहाचार्य**—ये विजयानगर महाराजके सभापण्डित हो गये हैं। इन्होंने अलङ्कारपर काव्यसूत्रवृत्ति, काव्योपोद्घात, काव्यप्रयोगविधि एवं अलङ्कारमाला नामक ग्रन्थ लिखे हैं। ये १९ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

(५८) **विद्यानाथ**—विद्यानाथका प्रतापरुद्रयशोभूषण एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उनका समय १२६८–१३२८ ई० माना गया है।

(५९) **विद्याधर**—विद्याधरने एकावली नामक ग्रन्थ लिखा है। उनका समय १३ वीं शताब्दीका आदि भाग माना जाता है।

(६०) **धर्मसुधी**—धर्मसुधी नामक एक तैलङ्ग विद्वान्ने साहित्यरत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा है। उनका समय १८ वीं शताब्दीका आदि भाग माना गया है।

(६१) **शठकोपाचार्य**—शठकोपाचार्य नामक प्रसिद्ध वैष्णव सन्तके नामसे संबद्ध शठकोपालङ्कारपरिचय नामक अलङ्कारग्रन्थ मिलता है, जिसके निर्माताका नाम अविदित है।

(६२) **सुधीन्द्रयोगी**—सुधीन्द्रयोगी नामक एक विद्वान्ने अलङ्कारविकाश नामक एक अर्थालङ्कारनिरूपणपरक ग्रन्थ प्रसिद्ध किया है। वे सत्रहवीं शताब्दीमें विद्यमान थे।

(६३) **वीरनारायण**—साहित्यचूडामणि नामक जो ग्रन्थ १५ वीं शताब्दीमें लिखा गया, उसीके रचयिता वीरनारायण हैं।

(६४) **श्रीकृष्ण**—श्रीकृष्णापरनामक परकाल स्वामी आचार्यने अलङ्कारमणिहार नामक ग्रन्थ लिखा है। उनका समय १७ वीं शताब्दी है।

(६५) **कर्णपूर**—गोस्वामी कर्णपूरने अलङ्कारकौस्तुभ नामक ग्रन्थ लिखा है। कर्णपूर का समय सोलहवीं शताब्दीका उत्तर भाग है।

(६६) **रूपगोस्वामी**—रूपगोस्वामीका उज्ज्वलनीलमणि नामक रसविषयक ग्रन्थ है। उसका रचनाकाल १५ वीं शताब्दी है।

(६७) **आचार्य केशव**—किसी बौद्धाचार्यने शौद्धोदनि नामसे अलङ्कारपर कारिकायें लिखी थीं जिन्हें आधार बनाकर केशव मिश्रने अलङ्कारशेखर नामक वृत्तिग्रन्थ बनाया है। केशव मिश्रका समय १६ वाँ शतक है। उनके द्वारा व्याख्यात कारिकाओंका समय १२ वाँ शतक माना जाता है।

(६८) **पण्डितराज**—पण्डितराज जगन्नाथका रसगङ्गाधर अपनी पाण्डित्यपूर्ण विवेचनापद्धतिके लिये प्रसिद्ध है। उनका समय १७ वीं शताब्दीके आदिसे तृतीयचरण तक माना जाता है।

(६९) **मुरारिदान तथा सुब्रह्मण्यम्**—मेवाड़नरेश यशवन्तसिंहके नामको अमर बनानेके लिये कविराजा मुरारिदान तथा सुब्रह्मण्यशास्त्रीने यशवन्तयशोभूषण नामक ग्रन्थकी रचना की। उनका समय १९ वीं शताब्दीका परार्ध माना गया है।

इनके अतिरिक्त अलङ्कारशास्त्रके कुछ और भी ग्रन्थों तथा उनके रचयिताओंके नाम दिये जा रहे हैं। उनका कालनिर्देश सन्दिग्ध होनेसे नहीं किया जा रहा है।

ग्रन्थनाम	**निर्मातृनाम**
(१) काव्यालङ्कारसूत्र	यास्कमुनि, अखिलानन्दाश्रमकृत टीका
(२) अलङ्कारविचार	} जीवनाथ
(३) अलङ्कारप्रकाशिका	} जीवनाथ
(४) अलङ्कारशेखर	} जीवनाथ
(५) अलङ्कारशिरोभूषण	कुण्डलाचार्य
(६) अलङ्कारकरमाला	दामोदरभट्ट
(७) अलङ्कारकौमुदी	वल्लभभट्ट
(८) अलङ्कारसार	नृसिंह
(९) अलङ्कारकौस्तुभ	वेङ्कटाचार्य
(१०) अलङ्कारसूत्र	चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार
(११) अलङ्कारचन्द्रिका	
(१२) अलङ्कारकारिका	

(१३) अलङ्कारकौमुदी
(१४) अलङ्कारमयूख
(१५) अलङ्कारानुक्रमणिका
(१६) अलङ्कारप्रकरण
(१७) अलङ्कारप्रकाशिका — बालकृष्ण
(१८) शतालङ्कारानुक्रमणिका
(१९) अलङ्कारसारसंग्रह
(२०) अलङ्कारग्रन्थ
(२१ अलङ्कारवादार्थ
(२२) अलङ्कारसार
(२३) अलङ्कारमञ्जरी — त्रिमल्लभट्ट
(२४) अलङ्कारमञ्जूषा — देवशङ्कर
(२५) अलङ्कारसमुद्गक — शिवराम
(२६) काव्योल्लास — नीलकण्ठ
(२७) काव्यसारसंग्रहत्रय — श्रीनिवास
(२८) काव्यचन्द्रिका — रामचन्द्र न्यायवागीश
(२९) काव्यवृत्तरत्नावली — नारायण
(३०) काव्यकण्टकोद्धार — नरसिंह शास्त्री

यत्र-तत्र पुस्तकालयोंकी पुस्तक-सूचियोंमें कुछ अज्ञातकर्तृक तथा अनुपलभ्यमान अन्यान्य अलङ्कारग्रन्थोंके भी नाम उपलब्ध होते हैं जिनका नाम मैंने नहीं लिखा है।

दण्डीका काल तथा अन्य वृत्तान्त

दण्डीके समयपर विचार करते समय निम्नलिखित बातोंपर ध्यान दिया जाता है :—

(१) दशम शताब्दीमें उत्पन्न अभिनवगुप्ताचार्यने लोचनमें लिखा है :—

'यथा दण्डी—गद्यपद्यमयी चम्पूः' (तृतीय उद्योत, ७ म कारिकाकी वृत्ति)

(२) दशमशतक पूर्वार्द्धमें उत्पन्न प्रतिहारेन्दुराजने उद्भटरचित काव्यालङ्कारसारसंग्रहकी लघुवृत्तिमें लिखा है :—

—अत एव दण्डिना—'लिम्पतीव' इत्यादि।

(३) कन्नड भाषामें 'कविराजमार्ग' नामक ग्रन्थ है, वह राष्ट्रकूटके राजकुमार अमोघवर्षका लिखा है। उसे स्पष्टतः काव्यादर्शपर आधारित माना जा सकता है। उसका निर्माणकाल ८१५ से ८७५ ई० तक माना गया है।

(४) सिंहली भाषामें प्रथम राजासेनने 'सियाकसलकार' (स्वभाषालङ्कार) नामक ग्रन्थ लिखा है। महावंशके अनुसार उसकी रचनाका काल ८४६–८६६ ईस्वी है। उस ग्रन्थपर काव्यादर्शका प्रभाव ही नहीं, काव्यादर्शका नाम भी उल्लिखित है।

(५) वामनने अपने काव्यालङ्कारसूत्र में जिस रीतिको काव्यकी आत्मा बताकर विस्तृत विवेचन दिया है, वह मार्ग शब्दसे दण्डीके ग्रन्थमें वर्णित है। दण्डीके समयमें रीति शब्दका पता नहीं था। दण्डीने दो ही मार्ग माने थे। वामनने उसकी जगहपर तीन रीतियाँ स्वीकार की हैं। इससे स्पष्ट है कि दण्डी वामनके पूर्ववर्त्ती थे। वामनका समय जयापीड़ का राज्यकाल ७७९ से ८१३ ई० माना जाता है।

इन बातोंसे दण्डीके समयकी उत्तरी सीमा अष्टम शतक निश्चित है। इसी प्रकार पूर्वी सीमापर विचार करते समय निम्नलिखित बातोंपर ध्यान दिया जाता है :—

(१) शार्ङ्गधरपद्धतिमें महारानी विज्जिकाके नामसे एक श्लोक है :—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता। वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

यह आक्षेप काव्यादर्शके मङ्गलश्लोकमें 'सर्वशुक्ला सरस्वती' यह कथन देखकर ही किया गया था। विज्जिका चन्द्रादित्यकी रानी थी। चन्द्रादित्य द्वितीय पुलकेशीका पुत्र था, जिसका समय ६६० ई० नियत है। इससे प्रमाणित होता है कि दण्डी उससे पहले विद्यमान रह चुके थे।

(२) 'वासवदत्ता' नामक प्रसिद्ध गद्यग्रन्थके रचयिता सुबन्धु नामक कविवर छठी शताब्दीमें हुए थे। उन्होंने—दण्डी द्वारा निर्मित या आहृत—'**छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चः प्रदर्शितः** द्वारा स्मृत 'छन्दोविचिति' नामक ग्रन्थका उल्लेख बार-बार किया है :—

छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्रा। छन्दोविचितिरिव मालिनी सनाथा ॥

इस तरह दण्डीके समयकी पूर्वसीमा छठी शताब्दी मानी जा सकती है।

इन्हीं सब बातोंपर विचार करके मि० मैक्समूलर, वेबर, मैकडोनल, कर्नल जेकब प्रभृति पाश्चात्य विद्वान् दण्डीका समय छठी शताब्दी ही मानते हैं।

काव्यादर्श में एक श्लोक आया है :—

रत्नभित्तिषु संक्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैर्वृतः।
ज्ञातो लङ्केश्वरः कृच्छ्रादाञ्जनेयेन तत्त्वतः ॥ (काव्यादर्श २-३०२)

इसकी समता माघके निम्नलिखित श्लोकसे है :—

रत्नस्तम्भेषु सङ्क्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥ (माघ २-४)

काव्यादर्शका श्लोक :—

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः ॥

बाणभट्टकृत कादम्बरीगत शुकनासोपदेशमें वर्तमान :—

अभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं हि तमो यौवनप्रभवम्।

इन्हीं तुलनाओंके आधारपर कुछ आलोचकोंने दण्डीका समय माघ तथा बाणके बाद मान लिया है, परन्तु मेरे विचारमें इस समानतामात्रके आधारपर कुछ दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता।

एक और भी तर्क उपस्थित किया जाता है—अवन्तिसुन्दरीकथामें लिखा है कि दण्डी भारविके वंशधर थे। भारविके पिता नारायण स्वामी पहले गुजरातमें रहते थे। वहाँसे वे दक्षिणके अचलपुरमें आ बसे। इसी अचलपुरको अब एलिचपुर कहते हैं। नारायणस्वामीके पुत्र भारवि (दामोदर) के पुत्रोंमें अन्यतम मनोरथके पुत्र वीरदत्तसे गौरी नामक जननीसे दण्डीका जन्म हुआ।

भारविका समय ६३४ से पूर्वका माना जाता है। प्रत्येक पीढ़ीके लिए यदि २० वर्षका समय भी मानें तो इस तरह दण्डीका समय ७ वीं शताब्दीका अन्तिम भाग सिद्ध होता है।

काव्यादर्शमें कुछ बातें ऐसी भी आई हैं जिनसे दण्डीके समयपर प्रकाश पड़ता है।

द्वितीय परिच्छेदमें '**इति साक्षात्कृते देवे राज्ञो यद्रातवर्मणः**' ऐसा उल्लेख है। इसमें रातवर्मा के स्थानपर राजवर्मा यह पाठभेद पाया जाता है। यह रातवर्मा या राजवर्मा पल्लवनरेश द्वितीय नृसिंहवर्माका नामान्तर था। काञ्चीके राजदरबारमें दण्डी रहते भी थे। उसी परिच्छेदमें अवन्तीकी राजकन्याका भी उल्लेख है—

सैवावन्ती मया लब्धा कथमत्रैव जन्मनि।

तृतीय परिच्छेदगत—'**वराहेणोद्धृता यासौ वराहेरुपरि स्थिता**' में 'वराह' पदका श्लेष चालुक्यवंशीय राजाओंके राजचिह्नका द्योतक है। इसी प्रकार यमकप्रपञ्चमें आनेवाले—'कालकाल' शब्दसे काञ्चीके नरसिंहवर्माकी उपाधि व्यञ्जित की गई है। तृतीय परिच्छेदमें प्रहेलिका-प्रकरणमें काञ्ची तथा पल्लवनृपतिका नामोल्लेख आया है।

इन सारी बातोंपर ध्यान देनेसे दण्डी का समय निश्चित रूपसे नहीं तो विशेष सम्भावित रूपमें ७ म शतकका अन्त भाग माना जा सकता है।

दण्डीका देश

जैसा कि पहले बताया गया है, दण्डीके पूर्वज गुजरात प्रान्तके आनन्दपुरसे आकर दक्षिण देशके अचलपुरमें बस गये। वहाँ आनेवाले उनके वृद्ध प्रपितामह थे। उनके दाक्षिणात्य होनेमें—काञ्ची, कावेरी, चोल, कलिङ्ग, मलयानिल आदि दक्षिण में प्रसिद्ध स्थानोंके उल्लेखको ही साक्षी बनाया जाता है।

उनके दाक्षिणात्य होनेके विषयमें यह भी प्रमाण उपस्थित किया जाता है कि काश्मीरी आलङ्कारिकोंने उनका उद्धरण प्रायः नहींके बराबर दिया है। खण्डन-मण्डनके रूपमें उनका उल्लेख बिलकुल नहीं किया है जिससे स्थानकृत पक्षपात तथा आपसी प्रतिद्वन्द्विताभाव व्यक्त होता है, और दण्डीको सुदूरदक्षिणनिवासी प्रतीत कराता है।

दण्डीका जीवनवृत्त

'*अवन्तिसुन्दरी कथा*' और '*अवन्तिसुन्दरीकथासार*' नामक उपलभ्यमान ग्रन्थोंके आधारपर बताया जा सकता हैं कि नारायणस्वामी नामक विद्वान्‌के पुत्र भारवि (किरातार्जुनीयकार) के तीन पुत्र हुए, जिनमें मध्यम पुत्रका नाम मनोरथ था। मनोरथके चार पुत्रोंमें सबसे छोटे पुत्रका नाम वीरदत्त था। वीरदत्तकी स्त्रीका नाम गौरी था। वही वीरदत्त तथा गौरी दण्डीके पिता-माता माने जाते हैं।

दण्डी कौशिक गोत्रके ब्राह्मण थे। ये अपने प्रपितामह भारविके आश्रयदाता नृपवंशके आश्रयमें काञ्चीमें रहा करते थे। काञ्चीमें जब पर राजाका आक्रमण हुआ तब ये जङ्गलमें जा छिपे। यह विप्लव ६५५ ई० में हुआ था। उस समय दण्डीकी अवस्था बहुत कम थी।

इससे यही सिद्ध होता है कि दण्डीका समय सप्तम शताब्दीका उत्तरार्ध तथा अष्टम शताब्दीका आदिभाग है।

दण्डीका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चलता। दशकुमारचरितके मङ्गलाचरणके—'**ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः**' इस श्लोकमें बराबर दण्ड शब्दके प्रयोगसे प्रसन्न होकर किसीने इन्हें दण्डी कहकर सम्बोधित किया होगा, और यही नाम प्रचलित हो गया होगा, जैसा कि भवभूति-माघ आदि कवियोंके विषयमें प्रसिद्ध है।

दण्डीका पाण्डित्य और उनके ग्रन्थ

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥
उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

इन प्राचीन श्लोकोंसे दण्डीके उद्दाम कवित्वका परिचय प्राप्त होता है। दण्डीके प्रखर पाण्डित्यका पता इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि जब अलङ्कारशास्त्रपर कुछ खास ग्रन्थ नहीं बन सके थे, उस समय भी उन्होंने अपने ग्रन्थमें अलङ्कारशास्त्रकी नीव दृढ़ करनेवाले ग्रंथका प्रणयन किया और अपनी कृतिको अत्यन्त सरल एवं सरस बनाकर विद्वानोंको मुग्ध कर दिया।

यदि काव्यादर्शकी अन्तरङ्ग समीक्षा की जाय तो दण्डीका उत्कट पाण्डित्य प्रमाणित किया जा सकता है। दण्डीने कर्मके निर्वर्त्य, विकार्य, प्राप्य आदि भेदोंका वर्णन करने तथा 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' इस प्रकरणके शास्त्रार्थमें महाभाष्यका साक्ष्य प्रस्तुत करके अपने वैयाकरणत्वका परिचय प्रदान किया है, साथ ही हेतुविद्याविरुद्धता आदि दोषोंके स्वरूप बतानेके प्रसङ्गमें अपने न्यायपाण्डित्यकी सूचना दी है। अन्यान्य शास्त्रोंके विषयमें भी जहाँ-तहाँ अपना विचार व्यक्त करके दण्डीने अपने पाण्डित्यका चतुरस्रत्व अभिव्यक्त किया है। अलङ्कारशास्त्रमें दण्डी-के समान प्रौढ पाण्डित्यसमन्वित सुन्दर कवित्वका पात्र कोई दूसरा हुआ है, यह सन्दिग्ध ही है।

यद्यपि उद्भट, राजशेखर तथा मम्मट जैसे प्रतिष्ठित साहित्याचार्योंने भामहके मतका उल्लेख जितने गौरवके साथ किया है, उतना गौरव दण्डीके प्रति नहीं प्रकट किया, परन्तु इसका कारण यह नहीं माना जा सकता दण्डीके ग्रन्थका महत्त्व भामहके ग्रन्थसे कम है। तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय तो यदि भामहका न्यायदोषप्रकरण दण्डीसे अधिक विशद है तो दण्डीकी अलङ्कार, गुण, रीतिकी विवेचना भामहसे कहीं अधिक परिष्कृत है। उद्भट, राजशेखर, मम्मट आदि द्वारा सादर समुल्लेख नहीं किये जानेका तो कारण उनका काश्मीरक पक्षपात ही माना जाना चाहिये। भामह काश्मीरक होनेके कारण उनके अधिक आदरपात्र थे और सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी दण्डी दाक्षिणात्य होनेसे उनके लिये उपेक्षाके पात्र थे। आत्मीयताका लाभ तो मिलना ही चाहिये।

त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः। त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

यह श्लोक 'पीटर्सन्'ने राजशेखरके नामसे उद्धृत किया है। इसके अनुसार दण्डीके तीन ग्रन्थ प्रमाणित होते हैं—१. काव्यादर्श, २. अवन्तिसुन्दरीकथा, ३. दशकुमारचरित। जैसे काव्यादर्शका दण्डिरचित होना सदासे प्रसिद्ध है, उसी तरह दशकुमारचरितका भी। अवन्ति-सुन्दरीकथा भी इधर दक्षिणभारतग्रन्थावलीमें मुद्रित होकर प्रसिद्ध हो गया है।

'छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चः प्रदर्शितः' इस प्रकारका उल्लेख पाकर कुछ लोगोंने 'छन्दोविचिति' नामक चतुर्थ ग्रन्थ भी दण्डीका माना है, परन्तु यह स्वतन्त्र ग्रन्थ बना था या नहीं, यह किसी तरह सिद्ध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त छन्दोविचिति शब्द पिङ्गलका छन्दः-सूत्रपरक भी हो सकता है। 'तस्याः कलापरिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति' इस उल्लेखके आधार पर कलापरिच्छेद'नामक ग्रन्थकी कल्पना भी इसी तरह है।

कुछ लोगोंने-आगशे आदिने—इस आधारपर दशकुमारचरितके दण्डिकृत होनेमें सन्देह प्रकट किया है कि दण्डीने जिन दोषोंको परिहेय बताया है, ये दोष दशकुमारचरितमें पाये जाते हैं, अतः दशकुमारचरित दण्डीकी रचना नहीं हो सकती।

इस शंकाका समाधान दो प्रकारोंसे किया जाता है—

१. यह कि यह कोई नियम नहीं है कि दोषनिर्णय करनेवालेके ग्रन्थमें वह दोष हो ही नहीं। हम देखते हैं कि औचित्यविचारचर्चा में क्षेमेन्द्रने दोषोंके उदाहरण अपने ग्रन्थोंसे नामोल्लेखपूर्वक दिये हैं। इस स्थितिमें दशकुमारमें उपलब्ध दोष उसके दण्डिकृतत्वका खण्डन करनेमें पर्याप्त नहीं माने जा सकते।

२. यह कि दण्डीने साहित्यसेवा-जीवनके प्रारम्भमें दशकुमारकी रचना की होगी। उस समय ज्ञाताज्ञातरूपमें वे दोष आ गये होंगे बादमें परिष्कृतबुद्धि होकर उन्होंने दोषोंका निरूपण किया होगा।

इस प्रकार सब तरहसे देखनेपर दण्डीके तीन ग्रन्थ माने जा सकते हैं जिनके नाम ऊपर बता दिये गये हैं।

दण्डी और भामह

दण्डी और भामहमें कौन पूर्ववर्त्ती है इस विषयमें बड़ा मतभेद है। साहित्यशास्त्रमें यह एक समस्या है कि इन दोनोंमें किसका अवतार पहले हुआ।

इन दोनों आचार्योंकी उक्तियोंमें समानता ही इस संशयकी जननी है।

समताका संक्षिप्त निदर्शन

भामह—	दण्डी—
१. 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' १।१९	'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' १।१४
२. 'मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्' १।२०	'मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि' १।१७
३. 'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विताः' १।२७	'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयादयः' १।२९
४. 'अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते। कालेनैषा भवेत् प्रीतिस्तवैवागमनात् पुनः॥' ३।५	'अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते।' कालेनैषा भवेत् प्रीतिस्तवैवागमनात्पुनः' २।२७६
५. 'भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम्' ३।५३	'तद्भाविकमिति प्राहुः प्रबन्धविषये गुणम्' २ २६४
६. 'अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम्। शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धि च॥' ४।१	'अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम्। शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तंविसन्धिकम्॥' ३।१२५
७. 'समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थकमिष्यते' ४।८	'समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थमितीष्यते' ३।१२८
८. 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' २।८७	गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' २।२४४
'आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना' २।६६	'आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना' २।४

इन समताओंके आधार पर इस सन्देहकी पुष्टि होती है कि इन दोनोंमें कौन पूर्वकालमें था तथा किसने किसकी उक्ति अपने ग्रन्थमें संयोजित कर ली है। इस स्थितिमें भिन्न-भिन्न आलोचना-शास्त्रियोंने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। श्रीनृसिंहाचार्य आयंगर दण्डीको भामहसे प्राचीन मानते हैं। श्री पी० वी० काणे भी सन्दिग्ध रूपमें दण्डीको भामहसे पूर्ववर्त्ती माननेके पक्षमें मत देते हैं, परन्तु प्रो० पाठक, एस्० के० दे, जेकोबी तथा त्रिवेदी आदि भामहको ही दण्डीसे प्राचीन सिद्ध करते हैं।

दण्डी से भामहको प्राचीन माननेवाले निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं—

१—काव्यादर्शके टीकाकार तरुणवाचस्पति (बारहवीं शताब्दी) लिखते हैं कि दण्डी भामहके मतकी आलोचना कर रहे हैं।

२—भामह कथा और आख्यायिकामें भेद मानते हैं, दण्डीने दोनोंमें कोई भेद नहीं माना है, यह भामहके मतकी आलोचना है।

३—उद्भट ग्रन्थके टीकाकार नमिसाधुने भामहका नाम पहले लिखा है, दण्डीका बादमें। संभव है उन्होंने समयक्रमसे ही नाम लिखा हो।

४—भामहने उपमाके तीन ही भेद किये हैं और दण्डीने बहुतसे भेद किये हैं, जिससे दण्डीकी नवीनता प्रमाणित होती है।

भामहको दण्डीसे नवीन माननेवाले आलोचक इन तर्कोंका विरोधमात्र कर सकते है; केवल इतने तर्कसे किसीके पौर्वापर्यका निश्चय करना प्रामाणिक नहीं हो सकता।

मेरी नम्र सम्मतिमें दण्डी भामहके बाद ही उत्पन्न हुए थे, क्योंकि उनके द्वारा यत्र-तत्र आलोचित मत भामहके ही मालूम पड़ते हैं। किसी अन्य आचार्यके ग्रन्थकी आलोचना दण्डी-द्वारा की गई है भामहके मतकी नहीं, यह बात तबतक किस प्रकार मान ली जाय जबतक वह ग्रन्थ प्रसिद्ध न हो जाय। दण्डीके समय तक का कोई दूसरा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जिसे हम दण्डीका आलोच्य बता सकें। ऐसी स्थितिमें भामहको दण्डीसे पूर्ववर्ती मान लेना ही चातुर्य है।

दण्डीका कवित्व

पण्डितराज जगन्नाथने **'निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्'** कहकर जिस अभिमानको व्यञ्जित किया है, दण्डीने भी मूकभावसे आचरणद्वारा उसी अभिमानको व्यञ्जित किया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि पण्डितराजके कुछ अंशोंमें दण्डी पथ-प्रदर्शक बने थे। जहाँ तक मेरा अनुमान है—पण्डितराजने काव्यलक्षणनिर्वचनमें भी **'इष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली'** को ही परिष्कृत करके **'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः'** का रूप प्रदान किया है। इसी प्रकार दण्डीद्वारा अवलम्बित स्वकृतोदाहरणप्रदर्शनपद्धतिसे प्रभावित होकर ही पण्डितराजने **'निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपम्'** कहा है।

जहाँतक कवित्वका सम्बन्ध है, दण्डीने अनुष्टुप् छन्दमें भी बड़ा उत्तम कवित्व प्रदर्शित किया है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

शब्दप्रयोगकी उपयोगिताके संबन्धमें दण्डीने कहा है :—

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाभिधं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

कैसी सुन्दर सरस उक्ति है।

दृष्टान्तका यह प्रयोग कितना चमत्कारक है :—

गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते नरः। किमन्धस्याधिकारोस्ति रूपभेदोपलब्धिषु॥

अनुप्रासकृत चारुत्वसे काव्यकी शोभा बढ़ानेमें दण्डीकी चतुरता स्तुत्य है :—

अस्तमस्तकपर्यस्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा। पीनस्तनस्थितातात्रकम्रवस्त्रेव वारुणी॥

अलङ्कारोंके उदाहरणमें कविने बड़ा सुन्दर काव्य-निर्माण किया है। यहाँ बहुतसे उदाहरण न देकर कुछ ही छन्द प्रदर्शित किये जाते हैं—

स्वभावोक्ति— **तुण्डैराताम्रकुटिलैः पक्षैर्हरितकोमलैः।**
त्रिवर्णराजिभिः कण्ठैरेते मञ्जुगिरः शुकाः॥

संशयोपमा— **किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्ते लोलेक्षणं मुखम्।**
मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा॥

ललितरूपकम्— **हरिपादः शिरोलग्नजह्नुकन्याजलांशुकः।**
जयत्यसुरनिःशङ्कसुरानन्दोत्सवध्वजः॥

इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि दण्डी केवल आलोचक विद्वान् ही नहीं, उत्कृष्ट कोटिके सहृदय कवि भी थे, इसीलिये तो उन्होंने उदाहरणके लिये भी दूसरोंके पद्य नहीं अपनाये हैं। इससे भी बड़ी बात उनके ग्रन्थमें यह है कि परमतखण्डन तथा स्वमतसमर्थन आदि शास्त्रीय शास्त्रार्थको भी उन्होंने कवित्वपूर्ण भाषामें इस आसानीके साथ समझाया है कि वह प्रसङ्ग भी कवित्वमय मालूम पड़ता है।

जन्माष्टमी, २०१५ } रामचन्द्र मिश्र

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

काव्यादर्शः

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

प्रथमः परिच्छेदः

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम ।
मानसे रमतां नित्यं[1] सर्वशुक्ला[2] सरस्वती ॥ १ ॥

भूतेशे नियमाय मौनिनि गते दूरं क्वचिन्नन्दिनी
म्लाने बालविधौ तथाऽमृतभुजां सिन्धौ भजन्त्यां क्रुधम् ।
यस्मिन् हैमवती बबन्ध विविधां भावानुबन्धोद्धुरां
चेतोवृत्तिमसौ कृषीष्ट कुशलं देवो द्विपेन्द्राननः ॥

श्रद्धानतेन शिरसा पितरं 'मधुसूदनम्' ।
प्रसूं 'जयमणिं' चाहं प्रणमामि पुनः पुनः ॥
आचार्यदण्डिरचनाभावानवबोधबद्धवैमुख्यान् ।
मन्ये कतिचन बालान् प्रोत्साहयिता प्रकाशोऽयम् ॥

अथ सकलशास्त्रपारदृश्वाऽऽचार्यदण्डी काव्यलक्षणपरिचायकं काव्यादर्शनामकमिमं ग्रन्थमारभमाणः 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्च मङ्गलयुक्ता यथा स्युः' इत्यनुशिष्टविधेयताकमाचार-परम्पराप्राप्तं च मङ्गलं चिकीर्षुः सरस्वतीं स्तौति—**चतुर्मुखेति** । चत्वारि मुखानि यस्यासौ चतुर्मुखो ब्रह्मा तस्य मुखान्येवाम्भोजानि कमलानि तेषां वनं समूहस्तत्र हंसवधूः हंसीव सर्वशुक्ला सर्वतः श्वेता शुक्लावर्णा सरस्वती विद्याधिष्ठातृदेवता नित्यं सर्वदा मम मानसे हृदये रमतां प्रीतिमाधाय वसतु । हंसी हि कमलवनवासरसिका, अतः सरस्वत्या हंसीत्वेन रूपणे ब्रह्ममुखानां कमलत्वेन रूपणमावश्यकम् । यथा हंसी कमलवने विहरति तथा ब्रह्मणो मुखेषु स्वच्छन्दविहारिणीयं वाणीति रूपकार्थः । ब्रह्ममुखविहारिण्या वाण्या वेदरूपतया निरस्तसमस्तपुंदोषतया सर्वशुक्ला नितान्तनिर्दोषेत्युक्तम् । काव्यलक्षणप्रपञ्च-

१. पाठान्तरम्—दीर्घं । २. सर्वशुभ्रा ।

केऽत्र ग्रन्थे सरस्वत्याः स्तुतिरतिसमुचिता । अत्र सरस्वत्यां हंसवधूत्वारोपं प्रति ब्रह्ममुखेऽम्भोजवनत्वारोपो हेतुरिति परम्परितरूपकमलङ्कारः, मुखमुखेति छेकानुप्रासश्च ॥ १ ॥

हिन्दी—काव्यलक्षणात्मक अपने 'काव्यादर्श' नामक ग्रन्थकी समाप्ति एवं प्रचारकी कामनासे आचार्य दण्डीने ग्रन्थारम्भमें सरस्वतीकी वन्दना की है। सरस्वती ब्रह्माके मुखकमलसमूहमें सतत वास करने के कारण निर्दोष है, वेदरूपा वाणी ब्रह्ममुखवासके कारण निरस्तसमस्तपुंदूषणतया निर्मल है, वह वाणी हमारे हृदयमें रमण-सप्रेम निवास-करे। काव्यलक्षण प्रपञ्चात्मक ग्रन्थ बनानेके लिये तत्पर आचार्यके लिये सबसे आवश्यक वस्तु यही है कि उसके हृदयमें निर्दोष वाणीका निवास हो, इसीलिये वाणीसे ऐसी प्रार्थना की गई है। 'चतुर्मुख' को अम्भोजवन कहकर हंसीस्वरूपा सरस्वतीके विहारकी योग्यता ध्वनित की गई है। एक बात और ध्यान देनेके योग्य है कि हंसी शुक्लवर्णा होती है, अतः हंसीत्वेनाध्यवसिता सरस्वती भी शुक्लवर्णा हो, इसीलिये सर्वशुक्ला विशेषण दिया गया है। सरस्वतीकी शुक्लवर्णताके विषयमें लिखा है :—

आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी॥
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। (ब्रह्मवैवर्त्त)

किसी-किसी टीकाकारने 'मम सरस्वती शिष्याणां मानसे रमताम्' ऐसा अध्याहार करके यह अर्थ किया है कि हमारी वाणी विद्यार्थियोंके हृदयमें विहार करे, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है, क्योंकि ग्रन्थ बनानेवाले आचार्यकी पहली कामना यही हो सकती है कि वाणीका प्रकाश हमारे हृदयमें हो जिससे ग्रन्थ अच्छी तरह लिखा जाय। विद्यार्थियों के हृदयमें अपनी वाणीके निवासकी कामना तो ग्रन्थके बननेके बाद की जा सकती है। दूसरी बात जो सबसे अधिक खटकनेवाली है वह यह है कि इस अर्थमें 'मानसे' का एकवचन बाधक है, 'विद्यार्थियों' बहुवचन है, उनका एक मन कैसे होगा ?

इस श्लोकमें ब्रह्माके मुखको कमलवनसे रूपक दिया है, वह तभी सङ्गत होगा जब वाणीको हंसीका रूपक दिया जाय, अतः परम्परितरूपक नामक अर्थालङ्कार तथा 'मुखमुख' शब्दसाम्यसे छेकानुप्रास शब्दालङ्कार है।

इसी श्लोकमें 'सर्वशुक्ला' विशेषण देखकर—'विज्जिका' नामक विद्यागर्विता महारानीने कहा था—

'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती॥'

'सर्वशुक्ला' विशेषणसे सरस्वतीका निर्दोषत्व ही प्राधान्येन अभिप्रेत है। प्रेमचन्द्र तर्कवागीश नामक व्याख्याकारने इसे वर्णपरक मानकर करचरणनयनादिभिन्न अङ्गोंमें श्वैत्यको स्वीकार किया है। परन्तु मेरी रायमें कोई भी अङ्ग उजला नहीं अच्छा होगा, कवियोंने सुन्दरी स्त्रीके रूपमें किसी भी शरीरावयवको श्वेत नहीं वर्णित किया है, अतः उनका यह कहना कि—'सति बाधे सङ्कोचस्यादरणीयत्वेन सर्वपदस्य करचरणतलाधरनयनादिभिन्नाङ्गपरत्वादुपपन्नम्' ठीक नहीं मालूम पड़ता है॥ १॥

पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगानुपलक्ष्य[१] च।
यथासामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्यलक्षणम्॥ २॥

पूर्वेषां प्राचां शिलालिभरतप्रभृत्याचार्याणां शास्त्राणि तैर्विरचितानि नाट्यसूत्रप्रभृतीनि

१. उपलभ्य।

संहृत्य समुच्चित्य संक्षिप्य तान्यर्थतः संगृह्येत्यर्थः, प्रयोगान् व्यासवाल्मीकिकालिदासप्रभृतिमहाकविग्रन्थेषु स्थितानि तत्प्रयुक्तानि लक्ष्याणि च उपलक्ष्य सूक्ष्मेक्षिकया विभाव्य निपुणमालोच्य यथासामर्थ्यम् स्वबुद्धिवैभवानुकूलम् अस्माभिः दण्डिना काव्यलक्षणम् इतरव्यवच्छेदकं काव्यपर्यायवृत्तिधर्मविशेषरूपं लक्षणं काव्यपरिचायकं वस्तुवर्णनम् क्रियते विधीयते। अयमाशयः—यथासामर्थ्यमित्यनेन नम्रता प्रदर्शिता, काव्यलक्षणं क्रियते इत्यनेन काव्यपरिचायकं वस्तु निरुच्यते इति विवक्षा। लक्ष्यते ज्ञायते स्वरूपमनेनेति लक्षणम्, तच्च द्विविधं स्वरूपलक्षणं तटस्थलक्षणं च, यथा ब्रह्म किमिति जिज्ञासायां-यतो जगतो जन्मादि तत्तदिति तटस्थलक्षणं, सच्चिदानन्दं ब्रह्मेति तत्स्वरूपलक्षणम्। एवमिहापि काव्यस्य स्वरूपलक्षणं वक्ष्यत इति बोध्यम्। अनेनास्य ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यं प्रदर्शितम्। तथा च काव्यस्वरूपं प्रतिपाद्यम्, तज्जिज्ञासुरधिकारी, व्युत्पत्तिः प्रयोजनम्, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावश्च सम्बन्ध इति चतुष्टयमनुबन्धस्य सूचितम्॥ २॥

हिन्दी—पूर्वाचार्य शिलालिभरतप्रभृति द्वारा निर्मित नाट्य-सूत्रादिका संग्रह करके उनके द्वारा किये गये विवेचनोंका संक्षेपरूपमें संग्रह करके और व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृति महाकवियोंकी कवितामें उनके उदाहरणोंको सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करके, मैं (दण्डी) अपनी बुद्धिके अनुसार काव्यलक्षणका निर्वचन करूंगा। इसमें अपनी बुद्धिके अनुसार कहनेसे नम्रता प्रकट की गई है। 'पूर्वशास्त्राणि संगृह्य' कहकर आचार्य दण्डीने स्वोक्त अर्थका कपोलकल्पितत्व निरास करके उपादेयत्व सूचित किया है। 'पूर्वशास्त्राणि संगृह्य' 'प्रयोगानुपलक्ष्य च' इन दोनों विशेषणोंसे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थमें कहे गये पदार्थ केवल लक्षणानुमोदित ही नहीं, लक्ष्यानुसारी भी हैं। लक्षण शब्दका अर्थ 'इतरव्यवच्छेदक' होता है, वह वस्तु लक्षण है जिसके कहे जानेपर जिसका लक्षण किया जाय उससे अतिरिक्त पदार्थोंका व्यवच्छेद-पृथक्करण-हो जाय। जैसे घटका लक्षण किया—'कम्बुग्रीवादिमत्त्व' इस लक्षणके द्वारा पटादि पदार्थका व्यवच्छेद हो गया। लक्षण दो तरहके होते हैं, १-स्वरूपलक्षण, २-तटस्थलक्षण। जैसे ब्रह्मका स्वरूपलक्षण—'सच्चिदानन्दं ब्रह्म'। तटस्थलक्षण—'जन्माद्यस्य यतः' है। प्रकृतमें आचार्यने काव्यका स्वरूपलक्षण ही किया है जो आगे कहा जायगा। इस श्लोकसे अनुबन्धचतुष्टय भी प्रदर्शित हो जाता है काव्यस्वरूप प्रतिपाद्य विषय, जिज्ञासु जन अधिकारी, काव्यस्वरूपज्ञान प्रयोजन एवं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव ही सम्बन्ध है॥ २॥

इह शिष्टानुशिष्टानां शिष्टानामपि सर्वथा।
वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते॥ ३॥

इह अनादिविविधविचित्ररचनाप्रपञ्चचारुतरेऽत्र संसारे शिष्टैः शब्दशास्त्रप्ररूढमतिभिः पाणिनिवररुचिप्रभृतिभिः अनुशिष्टानां प्रकृतिप्रत्ययविभागादिभिर्व्युत्पादितानाम् साध्वसाध्वनुशासनविधया वा शासितानां संस्कृतप्राकृतानाम्, शिष्टानाम् केनापि प्रकारेण अनुशासनं न प्राप्तानां संस्कृतप्राकृतभिन्नानां देशभाषाणाम्, वाचाम् एतत्त्रितयरूपाणां गिरामेव प्रसादेन अनुग्रहेण लोकानां देवानारभ्य पामरपर्यन्तानां प्राणिनां यात्रा व्यवहारः प्रवर्तते सिद्ध्यति। इह संसारे त्रिविधा वाच उपलभ्यन्ते—संस्कृताः, प्राकृताः, देश्यश्च। तत्राद्या पाणिन्यादिभिरनुशिष्टा, द्वितीया वररुचिना कृतानुशासना, शिष्टा च देशी वाक्। एता एव वाच आधारीकृत्य देवादिपामरान्तमिदं विश्वमुच्चावचव्यवहारमातनोति, वाचामभावे कः कथं स्वाभिप्रायं स्वेतरजनवेद्यं विधातुमीशीत। इदमेव मनसिकृत्योक्तं भर्तृहरिणा-

'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥'

सर्वेषां ज्ञानानां शब्दानुविद्धत्वकथनेन व्यवहाराणां शब्दनैरपेक्ष्येणासम्भवतोक्ता। तत्रोत्तमानां संस्कृतभाषया मध्यमानां प्राकृतयाऽधमानां च देशभाषया व्यवहारः सिद्ध्यतीति यथायथमवगन्तव्यम्॥ ३॥

हिन्दी—शिष्टजन-अनुशासनके जाननेवाले पाणिनि, वररुचि आदि-से अनुशिष्ट-प्रकृतिप्रत्यय-विभागज्ञापनद्वारा साधित संस्कृत और प्राकृत, तथा इनके अतिरिक्त शिष्ट-अशासित-देशी वचनोंके प्रसादसे ही यह लोकयात्रा-देवादिपामरान्त जनसमूहका समस्त व्यवहारकलाप-चला करता है। संसारमें वाणियोंको दो वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है—शिष्टानुशिष्ट तथा तद्भिन्न। शिष्टानुशिष्ट कहनेसे संस्कृत-प्राकृत वाणियाँ ली जा सकती हैं क्योंकि उनका अनुशासन है। शिष्टानुशिष्टभिन्न देशी भाषा मानी जाती है, इन्हीं तीनों प्रकारकी वाणियोंसे इस देवादिपामरान्त जनसमूहका व्यवहार प्रवृत्त होता है। उत्तम लोक संस्कृतसे, मध्यम लोक प्राकृतसे तथा अधम लोक देशी वाणीसे अपना व्यवहार चलाते हैं। इसी बातको भर्तृहरिने वाक्यपदीयमें कहा है:—

'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते'॥ ३॥

**इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥ ४॥**

इदं कृत्स्नं समस्तं भुवनत्रयम् लोकत्रितयम् अन्धंतमः गाढान्धकारव्याप्तं जायेत यदि शब्दाह्वयं शब्दाभिधानम् ज्योतिः प्रकाशकरम् किमपि तत्त्वम् आसंसारम् सृष्टिकालात् आरभ्य न दीप्यते न प्रकाशेत। शब्दाभिधानस्य ज्योतिष एवायं महिमा यदयं लोको व्यवहारेषु न मुह्यति, यदि शब्दा न स्युस्तदा लोकोऽयं व्यवहारं कर्तुं न पारयेत्तदधीनत्वात्सर्वव्यवहाराणाम्। यथाहि सूर्यादिज्योतिरभावे सर्वे पदार्थास्तमसा व्याप्ता लुप्ता इव भवन्ति तथैव शब्दाभिधज्योतिरभावे तन्मात्रसम्पाद्यानां व्यवहाराणामनभ्युपायनया लोकोऽयमन्ते तमसीव मग्नो विलुप्तसकलव्यवहारश्च जायेतेत्याशयः पूर्वश्लोकेन शब्दानां व्यवहारसाधनत्वमन्वयमुखेनोक्तं तदेवात्र व्यतिरेकमुखेनोक्तम्॥ ४॥

हिन्दी—यह भुवनत्रय गाढ अन्धकार से व्याप्त हो जाय। जैसे अन्धकार में व्यवहारकी असाध्यता उत्पन्न हो जाती है उसी तरह सभी तरह के व्यवहार लुप्त हो जाँय, यदि शब्दरूप ज्योति सृष्टिकालसे ही अपना प्रकाश न फैलाती रहे। यह शब्दरूप ज्योतिका ही महत्त्व है कि यह संसार व्यवहार-लोपको प्राप्त करके अन्धकारनिमग्न-सा नहीं हो जाता है, 'आसंसारं न दीप्यते' इसमें 'आसंसारम्' पदका आङ् अभिव्यापक अर्थमें है, 'संसारकी उत्पत्तिसे लेकर अन्ततक' यह उसका तात्पर्य है, जो यह द्योतित करता है कि सृष्टि करनेवाला 'नामरूपे व्याकरवाणि' ऐसी इच्छा करके रूपसे पहले नामकी ही सृष्टि करता है जिससे नामरूप शब्दज्योतिकी सहायतासे समस्त व्यवहार निर्बाध चला करते हैं। किसी वस्तुका कथन दो प्रकारसे होता है—अन्वयमुखसे तथा व्यतिरेकमुखसे। जैसे किसी लड़केको अध्ययनाभिमुख करनेके लिये कहा जाता है कि 'पढ़ोगे तो आरामसे रहोगे' यह अन्वयमुखसे कथन है, इसी अर्थको यदि कहें कि 'नहीं पढ़ोगे तो कष्टमें पड़ोगे', यह व्यतिरेकमुखसे कथन हुआ। इसी तरह पूर्वश्लोक द्वारा शब्दका व्यवहारोपयोगित्व अन्वयमुखेन कहा गया था, इस श्लोक द्वारा वही वस्तु व्यतिरेकमुखसे कही गई

है। अतः पौनरुक्त्य नहीं है। इस श्लोकमें आचार्यने शब्दको ज्योति कहा है, 'ज्योतिर्द्योतनात्' प्रकाशक तत्त्व ज्योति कहा जाता है, अतः शब्द भी सकलव्यवहारप्रकाशकतया ज्योति कहा जा सकता है, बृहदारण्यकोपनिषद्में आया है :—'वाचैवायं ज्योतिषा आस्ते'। इसी व्यवहारप्रवर्त्तकत्वको दृष्टिमें रखकर कवियोंने वाणीको बड़े आदरसे स्मरण किया है, सुबन्धुने कहा है :—

'करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी'॥

इन दो श्लोकों द्वारा आचार्य दण्डीने अन्वयमुख एवं व्यतिरेकमुखसे वाणीके महत्त्वका प्रतिपादन किया है, इसमें वाणीसामान्य का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है, काव्य वाणीविशेष है, उसका महत्त्व आगे बता रहे हैं॥ ४॥

आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति॥ ५॥

आदिकालीनाः प्राचीनसमयजाताः ये राजानः इक्ष्वाकुमान्धातृदिलीपप्रभृतयस्तेषां यशोरूपं बिम्बं प्रतिरूपं छायात्मकम्, वाङ्मयम् कविकृतकाव्यप्रबन्धरूपमादर्शम् दर्पणं प्राप्य इदानीम् तेषां राज्ञाम् असन्निधाने समवधानाभावेऽपि न नश्यति न विलीयते, इति स्वयम् आत्मनैव पश्य विभावय। इदमत्र बोध्यम्—किमपि बिम्बान्तरमादर्शप्रतिबिम्बितं सत् तावदेव प्रकाशते यावत्तत्र तिष्ठति, बिम्बापगमे प्रतिबिम्बापगमनैयत्यात्, इह तु काव्यात्मकं दर्पणं प्राप्तं प्राचां राज्ञां यशोबिम्बं सदैव प्रतिबिम्बसृष्टिं करोति, बिम्बस्थानीये यशसि गतेऽपि काव्यदर्पणे तत्प्रतिबिम्बं भासमानमेव तिष्ठति। एतेनातीतानां राज्ञां यशःख्यापनं काव्यप्रयोजनमुक्तम्, इदमुपलक्षणम्, काव्यकर्तुस्तद्बोद्धुश्चापि यशःप्रभृतीनि काव्यप्रयोजनानि बोध्यानि। तथा चोक्तं काव्यप्रकाशे—

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

भामहस्तु सर्वानपि पुरुषार्थान् काव्यनिबन्धनफलत्वेनोपगतवान्, तदुक्तं तेन—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्त्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

अत्र श्लोके उपमानभूतलौकिकादर्शापेक्षयोपमेयभूतवाङ्मयादर्शस्याधिक्यवर्णनात् व्यतिरेकोऽलङ्कारः, तच्चाधिक्यमत्र बिम्बापगमेऽपि प्रतिबिम्बप्रकाशनात् प्रत्येयम्॥ ५॥

हिन्दी—जो राजागण कालक्रमानुसार व्यतीत हो चुके हैं, इहलोकलीला समाप्त कर कालधर्मको प्राप्त हो गये हैं, उनका यशरूप बिम्ब इस शब्दरूप दर्पणमें अब भी प्रतिबिम्बरूपमें भासमान हुआ करता है, नष्ट नहीं होने पाता है, इस बातको आप स्वयं देख लें। लोकमें बिम्बप्रतिबिम्बभावका साधारण क्रम यही है—यावत्कालपर्यन्त बिम्ब सम्मुखावस्थित रहता है। तावत्कालपर्यन्त ही प्रतिबिम्ब दर्पणादिप्रतिबिम्बग्रहणसमर्थद्रव्यमें प्रतिबिम्बित हुआ करता है, बिम्बापाय हो जानेपर प्रतिबिम्बका भी अपाय अवश्य हो जाया करता है, परन्तु इस शब्दरूप दर्पणमें प्राक्तन नृपतियोंके यशरूप बिम्बका प्रतिबिम्ब बिम्बापाय हो जानेपर भी प्रतिबिम्बात्मना भासमान ही रहता है, नष्ट नहीं होता है, इस बातको आप स्वयं देख लें। इसमें अन्यप्रतिबिम्बापेक्षया यह विशेषता है कि यह बिम्बापाय हो जानेपर भी प्रतिबिम्बरूपमें सदा शब्दरूप दर्पणमें प्रति-

विम्बित हुआ करता है। 'स्वयं पश्य' कहकर आचार्यने अपने कथनमें प्रमाण दे दिया है, इसमें बोध्यजनका प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, अतः यह बात असन्दिग्धरूपमें मान्य है।

इससे अतीत नृपतियोंका यशःस्थापन काव्यका प्रयोजन है यह बात कही गई। यह उपलक्षण है, काव्यनिर्माण करनेवाले तथा उसके ज्ञाताके यशः प्रभृतिको भी काव्यप्रकाशकार आदि परवर्ती आचार्योंने काव्यप्रयोजन माना है।

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे'॥

इस कारिकामें आचार्य मम्मटने काव्यके छः प्रयोजन प्रतिपादित किये हैं, १—यश, २—अर्थ, ३—आचारज्ञान, ४—अमङ्गलनिवारण, ५—रसानुभवजन्यानन्द और ६—उपदेश।

आचार्य भामहने अपने काव्यालङ्कारमें लिखा है:—

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्त्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्'॥

इनके मतानुसार काव्यके तीन प्रयोजन हैं, १–तत्तच्छास्त्रज्ञानप्राप्ति, २–कीर्त्ति और ३–रसानुभव।

इन आचार्योंने समय-प्रवाहमें काव्यप्रयोजनतया प्रतीत होनेवाले यथासम्भव अधिकतम विषयोंको समाविष्ट करनेका प्रयास किया है।

आचार्य रुद्रटने भी अपने 'काव्यालङ्कार' में काव्यप्रयोजनका प्रतिपादन बड़े विशद शब्दोंमें किया है—

'ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन् महाकविः काव्यम्।
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि॥
अर्थमनर्थोपशमं शममसममथवा मतं यदेवास्य।
विरचितरुचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः॥
तदिति पुरुषार्थसिद्धिं साधुविधास्यद्भिरविकलां कुशलैः।
अधिगतसकलज्ञेयैः कर्त्तव्यं काव्यममलमलम्'॥

इन उद्धरणोंसे काव्यका प्रयोजन विशदरूपमें अवगत हो जाता है।

पाश्चात्य आलोचकोंने काव्यका प्रयोजन इस प्रकार लिखा है:—

'Delight is the Chief, if not the only end of the poetry. Instruction can be admitted in the Second place, for poetry only instructs as it delights'.

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्रायः सभी आचार्योंने कीर्त्तिको काव्यप्रयोजन माना है। हाँ, उसके साथ अन्यान्य प्रयोजन भी यथावत् वर्णित हुए हैं॥ ५॥

**गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥ ६॥**

इतः पूर्वं वाचः सप्रयोजनकत्वमुक्त्वा सम्प्रति तस्या निर्दोषतायां यतनीयमित्यभिधास्यति, तत्र प्रथमं सुप्रयोगकुप्रयोगयोर्वैलक्षण्यमाह—**गौर्गौरिति**। सम्यक् दूषणराहित्येन गुणालङ्कारादिपूर्णतया च प्रयुक्ता व्यवहृता गौः वाक् बुधैः पण्डितैः कामदुघा सर्वकामप्रदात्री स्मर्यते आख्यायते, तदुक्तं महाभाष्ये—'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' इति, तदेवं सुप्रयोगस्य सर्वफलवत्त्वमुक्तम्, दुष्प्रयोगे दोषमाह—सैव गौः दुष्प्रयुक्ता स्वरवर्णमात्रादिवैगुण्येन सन्दर्भसङ्केताद्यविचारणया चोच्चारिता सती प्रयोक्तुः दुष्टप्रयोगकर्तुः कवेः वक्तुश्च गोत्वं

बलीवर्दत्वं मूर्खभावम् शंसति प्रथयति, एतदप्युक्तम्—'वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः' इति। अनेन सुप्रयोगस्य सकलफलप्रदत्वेन कामदुघात्वस्य कुप्रयोगस्य च मूर्खताप्रथकत्वस्याभिधानेन दोषाणां परिहेयत्वम्, गुणानां च संग्रहणीयभाव उच्यते ॥ ६ ॥

हिन्दी—अभीतक वाणीके और तद्विशेषरूप काव्यके प्रयोजन बतलाये गये थे, अब उनकी निर्दोषताके विषयमें सावधान करनेके लिये सुप्रयोग तथा दुष्प्रयोगमें भेद कहने आ रहे हैं। **गौर्गौरिति**। सम्यक्–भलीभाँति, दोषोंसे बचाकर और गुणालङ्कारादिसे युक्त करके प्रयोग की गई वाणी विद्वानों द्वारा कामदुघा–कामधेनु–सकलाभिमतार्थदात्री कही गई है, और वही वाणी यदि दुष्प्रयुक्ता–स्वरवर्णमात्रादि वैगुण्यसे सन्दर्भसङ्केतादि दोषसे अथवा अन्य किसी प्रकारके दोषसे युक्त प्रयुक्त होती है तब प्रयोग करनेवाले की मूर्खता प्रकट करती है। यदि आपने शब्दों का सुप्रयोग किया तब तो वह आपके लिये सकलाभिमतार्थदात्री कामधेनु सिद्ध होगा, यदि आपने वैसा नहीं किया, उसमें स्वरमात्रासन्दर्भसङ्केतादिका दोष उत्पन्न करके प्रयोग किया, तब वह आपको मूर्ख प्रख्यापित करेगा, इस बातको महाभाष्यकारने प्रमाणित किया है :— 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' और 'वाग्योगविद्दुष्यति चापशब्दैः'। यह कथन मुझे कबीरके एक दोहेका स्मरण दिलाता है :—

'साधु कहावन कठिन है लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेमरस गिरे तो चकनाचूर'॥

इन अवतरणों तथा कथनोंसे यह सिद्ध होता है कि दोषोंके त्याग तथा गुणोंके संग्रहमें प्रयत्न करना आवश्यक है ॥ ६ ॥

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ ७ ॥

दोषाणां हेयत्वं गुणानां संग्राह्यत्वं च समर्थितं सामान्येन, सम्प्रति विशिष्य दोषाणां हेयत्वं दृष्टान्तद्वारा विशदयति—**तदल्पमिति**। तत् तस्मात् दोषस्यानेकविधायशःप्रख्यापकत्वाद् निषिद्धत्वाच्च काव्ये अल्पम् पदपदांशगतमपि (किं पुनः शब्दार्थरसगतम्) दुष्टं दोषः कथञ्चन केनापि प्रकारेण नोपेक्ष्यम् न परित्यक्तव्यम्, सर्वथैव दोषाणां स्वल्पानामपि परिहाराय यत्नः करणीय इत्यर्थः, ननु स्वल्पो दोषो गुणसन्निपाते चन्द्रकरेष्वङ्क इव निमङ्क्ष्यति, कृतं तत्परिहारप्रयासेनेत्यत्राह—**स्यादिति**। यथा सुन्दरमपि सुविभक्तसुगठितसर्वाङ्गशालितया यथोचितपरिधानपरिष्कृततया च सुन्दरमपि रमणीयमपि वपुः शरीरम् एकेन कुत्राप्यङ्गविशेषेऽवस्थितेन लघुना श्वित्रेण श्वेतकुष्ठेन दुर्भगं सौभाग्यवर्जितम् निन्दापात्रं स्यात् जायेत, यथा शरीरे क्वचनाङ्गभेदेऽवस्थितेन श्वेतकुष्ठेन सुन्दरमपि शरीरं दुर्भगं जायते तद्वत् स्वल्पेन क्वचन पदांशे स्थितेन दोषेण काव्यमेव सकलं निन्दापात्रं भवति, अतः सर्वथा तत्परिहाराय यतनीयमिति भावः। दुष्टमिति भावे क्तः, दोष इत्यर्थः। दोषस्यात्यन्तपरिहार्यत्वे प्रक्रान्ते भामहेनाप्युक्तम्—

'सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते'॥

अत्रोपमानोपमेयभूतयोः पूर्वोत्तरवाक्ययोः बिम्बप्रतिबिम्बभावेन भिन्नधर्मनिर्देशाद् दृष्टान्तो नामालङ्कारः ॥ ७ ॥

हिन्दी—सगुण शब्दका सुप्रयोग करनेवाला प्रशंसाका पात्र होता है और सदोष शब्दका प्रयोग करनेवाला मूर्ख कहा जाता है, अतः काव्यमें (जो शब्दकी उत्तम श्रेणीमें है) थोड़ेसे दोषकी भी, पद-तदंशगत दोषकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि बहुतसे गुणोंमें वर्त्तमान छोटा-सा दोष क्या कर सकेगा, 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः', सब जगह यह न्याय काम नहीं करता, देखिये—एक सुन्दर शरीरवाले तथा बढ़िया वस्त्र पहने हुए बालकके किसी अङ्गविशेषमें श्वेतकुष्ठका धब्बा दीख पड़ता है तो वह घृणाका पात्र बन जाता है। शरीरके एक भागमें वर्त्तमान वह श्वेतकुष्ठ जैसे सभी गुणोंके समवधानमें भी उस सुन्दर बालकको घृणाका पात्र बना देता है, उसी तरह एक भागमें वर्त्तमान थोड़ासा भी दोष काव्यकी उत्कृष्टताको समाप्त कर डालता है, इससे यह सिद्ध होता है कि काव्यमें दोष न आ पड़े इसके लिये पूर्ण सतर्क रहना चाहिये। इसी प्रसङ्गमें कही गई भामहकी उक्ति ऊपर संस्कृत व्याख्यामें लिखी जा चुकी है ॥ ७ ॥

गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते जनः।
किमन्धस्याधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलब्धिषु ॥ ८ ॥

दोषाणां परित्यागो गुणानां संग्रहश्च कार्यत्वेनोक्तः, ते च ज्ञाताः सन्त एव हेया उपादेयाश्च भवितुं शक्नुवन्ति, तज्ज्ञानं च शास्त्रैकसम्पाद्यमित्याह—**गुणदोषानिति।** अशास्त्रज्ञः गुणदोषपरिचयप्रदसाहित्यशास्त्रज्ञानविधुरो जनो लोकः गुणान् उपादेयधर्मान्, श्लेषः प्रसाद इत्यादिना वक्ष्यमाणान् (काव्यशोभाजनकतयोपादेयान् अनुप्रासोपमादीनलङ्कारांश्च), दोषान् हेयतयोक्तान् अपार्थत्वादीन् कथं विभजते केन प्रकारेण इमे गुणा इमे च दोषा इति प्रातिस्विकरूपेण परिचिनुयात्, शब्दानुशासनादिज्ञानसम्पन्नः कथंचित्पदतदर्थज्ञानं लब्धुं क्षमोऽपि भवेत्, परं यावत्तस्य साहित्यशास्त्रज्ञानं न भवति, तावद् गुणान् दोषांश्च परिच्छेत्तुमसौ नैव क्षमेतेत्यर्थः। अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन विशदयति—**किमिति।** किं रूपस्य चक्षुरिन्द्रियमात्रग्राह्यगुणविशेषस्य भेदः श्वेतपीतादिरूपः तदुपलब्धिषु तत्परिज्ञानेषु अन्धस्य चक्षुरिन्द्रियविकलस्य अधिकारः क्षमत्वम् अस्ति ? नास्तीत्यर्थः। अयमभिप्रायः—यथा चक्षुरिन्द्रियविकलो जनो रूपभेदान् श्वेतपीतादीनवधारयितुमशक्तो भवति, तद्वत्साहित्यशास्त्रज्ञानविधुरो जनो गुणदोषविभागाक्षमो भवति, विभज्य तज्ज्ञानं चावश्यकं पूर्वोदीरितफलवत्त्वादतः साहित्यशास्त्रं सप्रयोजनमित्यावेदितं बोध्यम्। पूर्वश्लोकवदत्रापि दृष्टान्तोऽलङ्कारः ॥ ८ ॥

हिन्दी—जिसे साहित्यशास्त्रका परिचय नहीं प्राप्त होगा, वह गुण-दोषका विभाग किस प्रकार कर सकेगा? क्या रूपभेदको परखनेका अधिकार अन्धोंको होता है? जिसको साहित्यशास्त्रका ज्ञान नहीं है, उसे (शब्दानुशासनका ज्ञान रहनेपर) पदपदार्थका ज्ञान कदाचित् हो भी जाय, परन्तु उपादेयतया निर्दिष्ट श्लेष, प्रसाद आदि गुण तथा वर्जनीयतया कथित अपार्थत्व प्रभृति दोषोंका विभक्ततया ज्ञान कैसे संभव होगा? उसको दोषगुणका पृथक् पृथक् परिचय नहीं प्राप्त हो सकेगा, जैसे चक्षुरिन्द्रियविकल व्यक्तिको रूपभेद (श्वेतपीतादिका विभक्ततया ज्ञान) होना संभव नहीं है। इस श्लोकसे साहित्यशास्त्रका प्रयोजन कहा गया है। यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है ॥ ८ ॥

अतः प्रजानां[1] व्युत्पत्तिमभिसन्धाय सूरयः।

---

१. पदानां।

वाचां विचित्रमार्गाणां निबबन्धुः क्रियाविधिम् ॥ ९ ॥
तैः शरीरं च काव्यानामलङ्काराश्च[1] दर्शिताः[2] ।

अतः गुणदोषविभागज्ञानपूर्वककाव्यपरिशीलनजन्यानन्दस्य साहित्यशास्त्रज्ञानाधीनत्वात् सूरयः भरतादयो विद्वांसः प्रजानां लोकानाम् व्युत्पत्तिम् काव्यतो व्यवहारपरिज्ञानकौशलम् तद्विरचनचातुर्यम् वा अभिसन्धाय उद्दिश्य—एते लोकाः काव्यतो व्यवस्थितव्यवहारज्ञानवन्तो भवेयुः, काव्यं कर्तुं च वा क्षमेरन्निति प्रजाव्युत्पत्तिमीहमानाः सन्त इत्याशयः, विचित्रमार्गाणाम् नानाप्रकाराणाम् वैदर्भीगौडीयादिरीतिभेदेन शब्दार्थालङ्कारभेदेन च भिद्यमानरचनाप्रकाराणाम् वाचाम् काव्यात्मकगिराम् क्रियाविधिम् निर्माणपद्धतिं निबबन्धुः शास्त्रपरिभाषया विरचयामासुः । अत्र सूरयो निबबन्धुरिति तदुक्तीनामप्रमादत्वसंभावना, तया च तदनुसारिणो ममाप्युक्तेः सारवत्त्वमिति ध्वनितम् ॥ ९ ॥

तैः पूर्वसूरिभिः भरतादिभिः काव्यानाम् इष्टार्थयुतवाक्यानाम् गद्यपद्यमिश्रादिभेदेन भिन्नानाम् शरीरम् आत्मस्थानीयेष्टार्थाश्रयो देहः, अलङ्काराः अनुप्रासोपमादयः च दर्शिताः, प्राञ्चो भरतादयः सूरयोऽभीष्टार्थमात्मानम्, तदाश्रयं शब्दस्तोमं देहम्, तत्प्रसाधनपटूनलङ्कारानानुप्रासोपमादीन्, चकाराद्दोषांश्च प्रदर्शितवन्त इत्याशयः । गुणास्तु श्लेषादयो वैदर्भरीतेः प्राणतया मता अतः पदावलीसंस्थानविशेषात्मकवैदर्भरीतेः शरीररूपतया तादृशशरीरनिरुक्त्यैव निरुक्ता इति पृथगत्र गुणपदानुक्तावपि न्यूनत्वं नाशङ्कनीयम् ।

हिन्दी—गुण तथा दोषका विभागपूर्वक ज्ञान-ये गुण हैं, ये दोष हैं, इस प्रकारका धर्मभेदप्रकारक ज्ञान-साहित्यशास्त्रज्ञानके बिना नहीं हो सकता, इसलिये प्राक्तन आचार्य भरत आदि विद्वानोंने लोकको व्यवस्थित व्यवहारज्ञान मिल सके इसलिये नाना प्रकारोंमें—वैदर्भी-गौडीप्रभृति रीतियों एवं शब्दार्थालङ्कारादि प्रभेदसे भिन्न-काव्यात्मक वाणीके निर्माणका प्रकार बताया है। भरत आदि आचार्योंने देखा कि सकल जनको व्यवहार-ज्ञान व्यवस्थित रूपसे काव्यके द्वारा ही हो सकता है, अतः उन्होंने वैदर्भी, गौड़ी आदि रीतियों तथा शब्दार्थालङ्कारादिकोंके प्रभेदसे बहुधा विभक्त इस काव्यात्मक वाणीके निर्माण-प्रकारका यथावत् वर्णन कर दिया है ॥ ९ ॥

भरतादि प्राचीन आचार्योंने काव्यका स्वरूप बताया है, काव्यका लक्षण प्रदर्शित कर दिया है और काव्यकी विशिष्टता प्रकट करनेवाले अलङ्कारोंका भी निर्वचन करके बताया है। यहाँ अलङ्कार शब्द उपलक्षण है अतः अलङ्कार से उपस्कारकमात्र—रीति तथा गुणादि भी लिये जा सकते हैं। शरीर-निर्वचन से ही प्राणभूत रीतियोंका निर्वचन हो जाता है ॥

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥ १० ॥

तावदिति पदं वाक्यालङ्करणाय प्रयुज्यमानं बोध्यम्, इष्टाः अभिलषिताः सरसतया मनोहरतया च वर्णयितुमुद्दिष्टाः ये अर्थाः कविप्रतिभाप्रतिफलिताः सुन्दराः पदार्थाः तैर्व्यवच्छिन्ना युक्ता पदावली शब्दसमूहः शरीरं काव्यशरीरम्, इष्टार्थः पदसमुदयः काव्यमिति यावत् । नन्वेवं काव्यस्येष्टार्थपदसमूहत्वेन परिचेयत्वे 'कामिनी कमलं चन्द्रः क्षीरोदधिरहस्करः' इत्यादिपदसमुदयस्य काव्यत्वापत्तिरिति चेन्न, पदसमूहस्य साकाङ्क्षस्यैव काव्यशरीरत्वेन प्रतिपादयितुमिष्टत्वात् । अत्र सुन्दरपदार्थकानामप्येषां पदानां

---

१. अलङ्कारश्च । २. दर्शितः ।

परस्परनिराकाङ्क्षत्वात्। न च साकाङ्क्षपदसमुदयस्यैव काव्यशरीरत्वेनोपादानं निष्प्रमाणकमिति शङ्कनीयम्, तादृशपदसमुदयस्यैवेष्टार्थव्यवच्छिन्नत्वस्य संभवेन तादृशस्यैव पदसमुदयस्यात्र ग्रहीतुं योग्यत्वात्। इष्टार्थत्वं च चमत्कृतिबहुलत्वम्, चमत्कारश्च लोकोत्तर आह्लादः, आह्लादगतं लोकोत्तरत्वं च कविप्रतिभयोपस्थापितेनालौकिकसामग्रीविशेषेण सम्पादितः सुखत्वव्याप्योऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः। तेन 'पुत्रस्ते जातः' 'धनं ते दास्यामि' इति वाक्यार्थधीजन्यस्यानन्दस्य न लोकोत्तरत्वमतो न तद्वाक्ययोः काव्यत्वप्रसक्तिः। तादृशाह्लादं प्रति शब्दार्थानां कारणत्वं व्यङ्ग्यविशेषद्वारेण दोषाभावोपस्कृतगुणालङ्कारकृतसौन्दर्येण च, तेन काव्यस्य त्रैविध्यं फलति, यत्र वाच्यचमत्कृतेः व्यङ्ग्यचमत्कृतिः प्रधानतया परिस्फुरति तत्र ध्वनिकाव्यत्वव्यपदेशः, यत्र व्यङ्ग्यचमत्कृतिर्वाच्यचमत्कृतिसमाविष्टा सत्यङ्गभावं भजते तत्र गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वव्यवहारः, यत्र व्यङ्ग्यचमत्कृतिनिरपेक्षा वाच्यचमत्कृतिस्तत्र चित्रकाव्यत्वप्रथा ॥ १० ॥

हिन्दी—काव्यका शरीर-स्वरूप क्या है? काव्य किसे कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर इस कारिकार्धमें दिया गया है—**शरीरमिति**। इष्ट-सरस मनोहरतया वर्णन करनेके लिये अभिप्रेत अर्थसे युक्त शब्दको काव्यका शरीर कहा जाता है। इष्ट अर्थसे युक्त पदसमुदायको काव्य कहते हैं। यहाँ पर इतना जानना आवश्यक है कि इष्टार्थयुक्त पद होना-भर ही काव्यशरीर कहलानेके लिये पर्याप्त नहीं है, उन पदोंका साकाङ्क्षत्व-योग्यत्वादि अपेक्षित है, अतएव 'कामिनी कमल' आदि निराकाङ्क्ष पदसमुदायको काव्य नहीं कहा जा सकता। यह साकाङ्क्षत्वनिवेश कोई निष्प्रमाणक बात नहीं है, इष्टार्थव्यवच्छिन्नत्वान्यथानुपपत्त्या सिद्ध ही है।

इष्टार्थत्वसे यहाँ पर चमत्कारयुक्तत्व अभिमत है, चमत्कारका अभिप्राय लोकोत्तर आह्लादसे है, और आह्लादगत लोकोत्तरत्व कविप्रतिभोपस्थापित लौकिक सामग्रीसे सम्पादित सुखत्वव्याप्य अनुभवसाक्षिक जातिविशेषस्वरूप है, अतएव 'पुत्रस्ते जातः' 'धनं ते दास्यामि' इत्यादि लौकिकवाक्यार्थबुद्धिजन्य लौकिक आह्लादसे इस वाक्यसमूहको काव्यत्वप्राप्तिका अधिकार नहीं मिलता। उस अलौकिक आह्लादके प्रति शब्द तथा अर्थकी कारणता तीन प्रकारोंसे संभव है, १-मुख्य व्यङ्ग्यविशेष द्वारा, २-अमुख्य व्यङ्ग्यविशेष द्वारा, ३-दोषासंपृक्त गुणालङ्कारसमुद्भावित चमत्कार द्वारा। अतः काव्यके तीन भेद शुद्ध होते हैं, जहाँ पर वाच्यार्थसौन्दर्यापेक्षया व्यङ्ग्यार्थ सौन्दर्य प्रधानतया प्रकाशित होता हो वहाँ पर ध्वनिकाव्यत्वव्यवहार होता है, इसमें मुख्यव्यङ्ग्यविशेषद्वारक आह्लाद है, जहाँ पर व्यङ्ग्यार्थ सौन्दर्य वाच्यार्थसौन्दर्यापेक्षया गुणीभूत हो जाय, वाच्यार्थ सौन्दर्य कुक्षिप्रविष्ट-सा हो जाय उसे गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य नामसे व्यवहृत करते हैं, इसमें अमुख्यव्यङ्ग्यद्वारक आह्लाद है, और जहाँ पर दोषाभावके साथ गुणसद्भाव हो तथा वाच्यार्थमात्रकृत आह्लाद हो उसे चित्रकाव्य कहा जाता है। कुछ आचार्योंने चित्रकाव्यके दो भेद माने है, अर्थचित्र तथा शब्दचित्र। अर्थचित्रका स्वरूप तो यही माना है जो हम यहाँ कह आये हैं, शब्दचित्रका स्वरूप उन्होंने यह कहा है—यदि अर्थकी विशेष चिन्ता न करके शब्दको सजाकर उपस्थित करनेका प्रयास किया जाय, जैसा कि नवाभ्यासी कवि लोग किया करते हैं तो वह चित्र शब्दचित्र है।

इस प्रकार इष्टार्थव्यवच्छिन्न पदावलीको काव्यशरीर माननेवाले दण्डीके मतमें रमणीयार्थयुक्त वाक्य ही काव्य होता है, वाक्य उस पदसमुदायको कहते हैं, जो योग्यता, आकांक्षा और आसत्तिसे युक्त हो। अतः इनका लक्षण शब्दकाव्यवादी सिद्ध होता है।

काव्य शब्दका अर्थ क्या है? शब्दार्थयुगल अथवा केवल रमणीयार्थयुक्त शब्द? इस विषयमें

पक्षभेद चला आता है—कुछ आचार्य शब्दार्थयुगलको काव्य माननेके पक्षमें हैं और कुछ लोग रमणीयार्थक शब्दको ही काव्य मानते हैं, जैसे—

भामह—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा'।

वामन—'काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते'।

रुद्रट—'शब्दार्थौ काव्यम्'।

मम्मट—'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'।

आनन्दवर्धन—'शब्दार्थशरीरं तावत्काव्यम्'।

हेमचन्द्र—'अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्'।

वाग्भट—'शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालङ्कारौ च काव्यम्'।

विद्यानाथ—'गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्'।

विद्याधर—'शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः'।

यहाँ हमने कुछ आचार्योंके काव्यलक्षण उद्धृत कर दिये हैं, यह शब्दार्थयुगलकाव्यत्व-समर्थक आचार्योंके वचन हैं। इन लोगोंने शब्दार्थयुगलको काव्य क्यों माना? इस विषय पर विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि शास्त्रविमुख सुकुमारमति राजपुत्रादिकोंको शिक्षित करनेके लिये ही प्राधान्येन काव्यकी आवश्यकता होती है, अतः उन रङ्गरूटोंको गुडजिह्विकया उपदेश प्रदान करनेवाले काव्योंमें हृदयहारी अर्थ तथा मनोरम शब्दावलीका होना अपेक्षित था। अतः काव्यफलत्वेनाभिमत विनेयराजपुत्रादिशिक्षणकार्यमें शब्द तथा अर्थका समप्राधान्येन उपयोग देखकर आचार्योंने शब्दार्थयुगलको काव्य मान लिया। परन्तु शब्दमात्रको काव्य माननेवाले आचार्य इस मतके विरोधमें यह तर्क उपस्थित करते हैं कि 'काव्य जोरोंसे पढ़ा जा रहा है', 'काव्यसे अर्थ समझा जाता है,' 'मैंने काव्य तो सुन लिया परन्तु अर्थ नहीं समझा' इत्यादि सर्वलोकप्रचलित व्यवहारोंसे काव्य शब्दका अर्थ शब्दमात्र ही निर्धारित होता है, और वाग्व्य-वहारमें शब्दको ही प्राधान्य प्राप्त है, इसलिये भी अर्थोपस्कृत शब्दको ही काव्य माना जाना चाहिये।

पूर्वोक्त व्यवहारोंको उपपन्न करनेके लिये शब्दार्थयुगलैकदेश शब्द या अर्थमें (अग्रमात्र हस्तावयवमें हस्तोऽयम् इस व्यवहारकी तरह) लक्षणा कर ली जा सकती है यह कहना सङ्गत नहीं है, क्योंकि लक्षणा तो तब होगी जब कि काव्यपदकी शक्ति शब्दार्थयुगलमें निर्धारित हो गई हो, और उसीके चलते मुख्यार्थबाध होता हो। यहाँ तो अभी शब्दार्थयुगलमें काव्यपदकी शक्ति निर्धारित नहीं हुई है, इस स्थितिमें लक्षणा कैसे होगी?

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि 'वेद' 'पुराण' आदि संज्ञा शब्द भी जब शब्दमात्र-परत्वेन व्यवस्थापित हैं, तब तत्सजातीय इस 'काव्य' शब्दको भी शब्दमात्रपरक ही होना चाहिये, शब्दार्थयुगलपरक नहीं होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त शब्दार्थयुगल-काव्यतावादी यह तो बतावें कि काव्यपदप्रवृत्तिनिमित्त (काव्यत्व) शब्दार्थयुगलमें व्यासज्यवृत्ति (शब्दार्थोभयपर्याप्तवृत्ति) मानते हैं या प्रत्येकमें (शब्द तथा अर्थमें अलग अलग) पर्याप्तवृत्ति मानते हैं? इसमें पहला कल्प इसलिये असङ्गत है कि यदि काव्यत्वको शब्दार्थयुगलव्यासज्यवृत्ति कहते हैं तो जैसे 'एको न द्वौ' यह व्यवहार होता है, उसी तरह 'श्लोकवाक्यं न काव्यम्' यह व्यवहार भी होने लग जायगा। यदि द्वितीय पक्ष—अर्थात् शब्द तथा अर्थमें अलग अलग पर्याप्त काव्यत्व-मानते हैं तो शब्दार्थांशभेदसे एक ही काव्यको आप दो काव्य भी स्वीकार करनेको बाधित हो जाते हैं। अतः काव्यपदका अर्थ केवल शब्द ही माना जाय। इस पक्षमें भी बहुतसे आचार्य हैं। जैसे—

अग्निपुराण—'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम्'।
दण्डी—'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'।
शौद्धोदनि—'रसादिमद् वाक्यं काव्यम्'।
विश्वनाथ—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'।
जगन्नाथ—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'।
जयदेव—'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्'॥
माणिक्यचन्द्र—'काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्'।

इस तरह हम देखते हैं कि काव्यके लक्षणमें बड़ा भारी मौलिक मतभेद है। कुछ लोग जितनी दृढताके साथ शब्दार्थयुगलको काव्य मानते हैं, कुछ अन्य लोग उतनी ही दृढताके साथ शब्द-मात्रको काव्य स्वीकार करते हैं।

यहाँ पर सोचना यह है कि आखिर कौन पक्ष अधिक युक्तिसङ्गत है? मेरी बुद्धिमें शब्द-मात्रको काव्य कहनेवाला पक्ष ही ठीक है, क्योंकि वाग्व्यवहारमें शब्दमात्रका प्राधान्य है, वह अर्थापेक्षया अधिक व्यापक है, अतः वाग्व्यवहारविशेषरूप काव्यमें शब्दका प्राधान्य होगा। उसके समकक्षरूपमें अर्थका निवेश कर देना उचित नहीं है। यदि अर्थनिवेश कर देते हैं तो तुल्यन्यायसे वेदादि लक्षणोंमें भी अर्थनिवेश करना पड़ जायगा, और तब 'वेदः पठितः परमर्थो नावगतः' यह प्रतीति अनुपपन्न हो जायगी। अतः जैसे वेद-शब्दसे केवल शब्दविशेष समझा जाता है उसी तरह काव्य-शब्दसे भी केवल शब्द ही लिया जाना चाहिये। हाँ, यह जरूर है कि अर्थोपस्कृत ही शब्द काव्य होंगे, परन्तु लक्षणमें अर्थ पदका समावेश अनावश्यक है।

यहाँ पर एक शङ्का यह की जा सकती है कि यदि शब्दमात्रको काव्य कहा जाय तब 'काव्यं बुद्धम्' इत्यादि प्रतीति कैसे उत्पन्न होगी? इस प्रसङ्गमें यह उत्तर देना चाहिये कि इस प्रतीति—मधुरवर्ण अनुप्रासजन्य श्रुतिचमत्कारानुभव—को ही यहाँ पर 'बुद्धम्' पदसे स्वीकार किया गया है। जिसको अर्थज्ञान नहीं होता है वह भी अनुप्रासादिसौन्दर्यके प्रभावसे जो मानसिक तृप्ति प्राप्त करता है, उसी तृप्तिको उसने 'बुद्धम्' पदसे व्यक्त किया है। अनुभव साक्षी है कि—

'शिञ्जानमञ्जुमञ्जीराश्चारुकाञ्चनकाञ्चयः।
कङ्कणाङ्कभुजा भान्ति जितानङ्ग नवाङ्गनाः'॥

अथवा

'मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे'॥

इस तरहकी मधुरकोमलकान्तपदावलीको पढ़कर या सुनकर विना अर्थ समझे भी लोग यह समझ लेते हैं कि यह काव्य है।

यदि अर्थ काव्य होता तब तो जिस प्रकार—'कामिनी व्याहरति' 'नीरसतरुरिह विलसति' यह वाक्य काव्य कहे जाते हैं, उसी तरह 'स्त्री ब्रूते' 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठति' ये वाक्य भी काव्य कहे जाते, क्योंकि दोनों वाक्ययुगलोंमें अर्थ तो समान ही है, अतः काव्यलक्षणमें अर्थका समावेश दुरर्थक ही है।

यह तो काव्यलक्षणकी व्याख्या हुई, अब थोड़ा अर्थको भी लक्षणघटक बनानेवाले आचार्यों-के दलपति आचार्य मम्मटके लक्षणको देखिये। उनका लक्षण इस प्रकार है—'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'।

इस लक्षणमें 'शब्दार्थौ काव्यम्' मान लिया गया है, और उसमें तीन विशेषण लगाये गये हैं, उनमें पहला विशेषण है—'अदोषौ'। यदि निर्दोष-शब्दार्थको ही काव्य माना जायगा तब—

'न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः।
धिग्धिक् शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः' ॥

इस श्लोकमें विधेयाविमर्श नामक दोष होनेके कारण लक्षणकी अव्याप्ति होगी। इसे काव्य नहीं ही मानें यह बात नहीं कही जा सकती है, क्योंकि स्वयं काव्यप्रकाशकारने इसे ध्वनियुक्त कहकर उत्तम काव्य माना है (ऐसा लक्षण है कि उत्तमकाव्यतया अभिमत पद्यको काव्य तक नहीं बनने दे रहा है), एक बात और होगी कि यदि निर्दोष ही को काव्य माना जायगा तब काव्यका विषय बहुत कम रह जायगा, या यों कहिये कि काव्य नामक वस्तु हस्तनक्षत्रका खञ्जन बन जायगी, क्योंकि सर्वथा निर्दोष होना नितान्त कठिन होता है। यही नहीं, यदि निर्दोष को ही काव्य मानें तब 'दुष्टं काव्यम्' यह प्रतीति नहीं होगी, क्योंकि दोषयुक्तको तो आप काव्य मानते ही नहीं, फिर 'दुष्टं काव्यम्' आप किस प्रकार कहेंगे। दूसरा विशेषण है 'सगुणौ'। यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि काव्यप्रकाशकारने गुणोंको स्वयं रसधर्म कहा है—'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः'। गुण तभी रहेंगे जब रस रहेगा, अतः 'सगुणौ' से 'सरसौ' विवक्षित ऐसा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस तरह कहना तो एक प्रकारकी पहेली हो जाती है, 'प्राणिमान् देश है' इस अभिप्रायसे 'शौर्यादिमान् देश है' ऐसा कहनेकी प्रथा नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि 'सगुणौ शब्दार्थौ काव्यम्' ऐसा मान लेते हैं तब 'उदितं मण्डलं विधोः' 'गतोऽस्तमर्कः' इत्यादि वाक्यको काव्यत्व नहीं प्राप्त होता क्योंकि इनमें गुण नहीं है। तीसरा विशेषण है 'सालङ्कारौ'। यह तो और अविचारित है, क्योंकि हारादिवत् अलङ्कार तो शोभावर्धनके लिये धारण किये जाते हैं, उनका शरीरावयव होना कैसे उचित होगा।

इस प्रधान मतकी आलोचनासे ही शब्दार्थोभयकाव्यतावादी सभी आचार्योंके मतकी आलोचना हो जाती है।

शब्दकाव्यतावादी आचार्योंमें भी कुछ आचार्य ऐसे हैं जिनके मत पर कुछ विचार करना है, उनमें विश्वनाथने—'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' कहा है, शौद्धोदनिके मतमें 'रसादिमत्' कहा गया है, इन दोनों आचार्योंने रसके बिना काव्यत्व नहीं स्वीकार किया है, परन्तु इस पक्षमें वस्त्वलङ्कारप्रधान काव्योंमें काव्यलक्षण नहीं सङ्गत होगा, यह अव्याप्तिदोष होगा, उन्हें आप काव्य नहीं मानें यह तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि महाकवियोंने जलप्रवाह प्रपात, कपिविलसित, बाललीलाके वर्णन किये हैं, और उन्हें सहृदय जन काव्य मानते आये हैं। वस्त्वलङ्कारप्रधान काव्योंमें भी (कथञ्चित-परम्परया) रसस्पर्श है अतः ये उसी रसस्पर्शके बलपर काव्य कहे जा सकते हैं, यह बात ठीक नहीं जँचती है क्योंकि यदि इस तरह रसस्पर्शसे वाक्य काव्य कहे जाने लगेंगे तब तो 'गौश्चरति' इसे भी काव्य कहना पड़ेगा। संसारके सभी पदार्थ कहीं न कहीं विभावादिस्वरूप होते ही हैं, उनके द्वारा रसस्पर्श सर्वत्र मानना पड़ जायगा। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि इस पक्षमें भी कुछ दोष है। अन्तमें दण्डीका लक्षण ही ऐसा रह जाता है जिसे हम रसगङ्गाधरके प्रौढ लक्षणके रूपमें विवृत पाते हैं।

इस प्रसङ्गमें जिज्ञासुजनोपकारार्थ इतना और कह देना चाहता हूँ कि यद्यपि दण्डी तथा आलोचनारसिक जगन्नाथने शब्दमात्रको काव्य कहनेके लिये बहुत प्रयास किया है, परन्तु आलोचनाका अन्त यहीं ही नहीं है, जिन्हें इस प्रसङ्गमें और जानना हो वह बुधवर्ग नागेशकृत गुरुमर्मप्रकाशनामक रसगङ्गाधरव्याख्या, म. म. गङ्गाधरशास्त्रीकृत रसगङ्गाधरटिप्पणी, म. म. गोकुलनाथोपाध्यायकृत काव्यप्रकाशव्याख्या तथा म. म. गोविन्दठक्कुरकृत काव्यप्रदीप अवश्य देखें।

गद्यं[1] पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।
पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा ॥ ११ ॥

काव्यस्वरूपमुक्तं प्राग्, इदानीं प्रोक्तस्वरूपस्य काव्यस्य भेदानाह—गद्यमिति॰ गद्यते स्वाभाविकरूपेण स्वाभिधेयार्थबोधनाय लोकैरुच्चार्यत इति गद्यम्, पद्यम् श्लोकचरणमर्हतीति पद्यम्, मिश्रम् गद्यपद्योभयमिलितम्—एवं गद्यपद्यमिश्रनामकप्रकारत्रयेणोपलक्षितं तत् काव्यं त्रिधैव त्रिष्वेव प्रकारेषु व्यवस्थितम् नियतम्, काव्यस्य त्रय एव भेदाः संभवन्ति, गद्यपद्योभयरूपत्वात्। एवं भेदत्रयमभिधाय तत्र प्रथमं भेदं लक्षयति—पद्यमिति॰ काव्यभेदेषु प्रथमं पद्यम् श्लोकात्मकम् चतुष्पदी चतुर्भिः पादैश्चरणैर्निबद्धम् भवति, चतुर्णां पदानां समाहारश्चतुष्पदी, पादचतुष्टयात्मकं पद्यमित्यर्थः। यद्यपि वेदे द्वित्रिपद्यादयोऽपि दृश्यन्ते, तथापि केवललौकिकवृत्तपरत्वादत्र चतुष्पदीत्युक्तम्। वस्तुतस्तु चतुष्पदीत्युपलक्षणम्, तेन षट्पद्यादयोऽपि संग्राह्याः। तच्च पद्यम्—वृत्तम् जातिः इति प्रकारद्वयेन द्विधा द्विप्रकारकम्। तत्र अक्षरसङ्ख्यातं वृत्तम्, मात्रासङ्ख्याता जातिः, तदुक्तम्—

'पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसङ्ख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्' ॥ छन्दोमञ्जरी ॥ ११ ॥

हिन्दी—जिस काव्यका स्वरूप हम निरुक्त कर आये हैं वह काव्य तीन प्रकारका होता है—गद्य, पद्य और मिश्र (मिलित-गद्यपद्य उभयरूप)। गद्य उसे कहते हैं जिसे हम स्वभावतः बोलते हैं, जिसमें राग नहीं होता है, जो केवल अपना भाव प्रकाशित करनेके लिये स्वभावतः प्रयुक्त होता है। साहित्यदर्पणकारने गद्यके लक्षण तथा भेद इस प्रकार कहे हैं—

'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च। भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्' ॥

इस लक्षणमें 'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्' यह गद्यका स्वरूपकथन है। मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक ये चार उसके भेद हैं। इन चारों भेदोंके भी लक्षण उसी जगह बताये गये हैं, जैसे—

'आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्। अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं, तुर्यं चाल्पसमासकम् ॥'

मुक्तकमें समास बिल्कुल नहीं रहता है, वृत्तगन्धिमें छन्दोबन्धके कुछ अंश हों, परन्तु उनका क्रम कायम नहीं रह पाता हो, उत्कलिकाप्रायमें लम्बे-लम्बे समास किये गये हों और चूर्णकमें समास हों परन्तु कम। इनके उदाहरण ये हैं—

मुक्तक—'गुरुर्वचसि पृथुरुरसि अर्जुनो यशसि'।

वृत्तगन्धि—'समरकण्डूयननिबिडभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डशिञ्जिनीटङ्कारोज्जागरितवैरिनगर'। यहाँ 'कुण्डलीकृतकोदण्ड' यह अनुष्टुप् का चरण है।

उत्कलिकाप्राय—'बन्दारुवृन्दारकवृन्दशिरस्सुमस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुवन्द्यमानचरणयुगलनाहतावरीकृतलोकालिप्यमानकाश्मीरजद्रवदरविकसदरविन्दानाम्'।

चूर्णक—'गुणरत्नसागर, जगदेकनागर, कामिनीमदन, जनरञ्जन'।

पद्यका लक्षण कहा है—'छन्दोबद्धपदं पद्यम्'। छन्द अनेक प्रकारके होते हैं—मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका आदि। यह पद्य प्रायः चार चरणोंका होता है, इसीलिये आचार्य दण्डीने 'पद्यं चतुष्पदी' कहा है। वस्तुतः पद्यके चरणोंकी संख्या नियत नहीं होती है, विश-

१. पद्यं गद्यं च।

विदित गायत्री तीन ही चरणोंकी है, इतना ही नहीं, 'षट्पदी' नामक वृत्त भी प्रसिद्ध है, अतः 'चतुष्पदी' पद उपलक्षण मानना चाहिये। पद्यके दो प्रकार होते हैं—वृत्त एवं जाति। अक्षरसंख्यात चरणको वृत्त तथा मात्रासंख्यात चरणको जाति कहते हैं। उदाहरणके लिये स्रग्धरा आदि वृत्त हैं और आर्या आदि जाति हैं। वृत्तोंके भी सम, अर्धसम, विषम आदि भेद कहे गये हैं। समवृत्त जैसे—स्रग्धरा, अर्धसम—पुष्पिताग्रा, विषमवृत्त—वैतालीय। मिश्र शब्दसे गद्यपद्योभयमिश्रण विवक्षित है। नाटक, चम्पू आदि इस प्रभेदमें आते हैं। अन्यान्य आचार्योंने काव्यके भेद इस प्रकार बताये हैं, 'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्'। उनके अनुसार काव्य दो प्रकारके हैं—दृश्य और श्रव्य। श्रव्यके भेद काव्य, आख्यायिका, चम्पू आदि। दृश्यके भेद नाटक, रूपक, प्रहसनादि ॥ ११ ॥

छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः।
सा विद्या नौस्तितीर्षूणां[1] गभीरं काव्यसागरम् ॥ १२ ॥

वृत्तविभागस्य वक्तव्यतायाः प्रकरणप्राप्ततया तद्विषये वक्तव्यमाह—छन्द इति। छन्दांसि विचीयन्ते लक्षणत उदाहरणतो भेदप्रभेदतश्च निरुध्यन्ते यस्यां सा छन्दोविचितिर्नाम छन्दःशास्त्रविषयकः प्रबन्धः, तस्यां सकलः समग्रः तत्प्रपञ्चः वृत्तजात्योर्विस्तारः निदर्शितः उदाहृतः, उक्थादयः समार्धसमविषमादयो वृत्तभेदाः आर्यागीत्यादयो जातिभेदाश्च तत्र सामग्र्येण विवेचिताः, अतश्छन्दोज्ञानार्थं तादृश एव ग्रन्थः परिशीलनीय इत्यर्थः। सा विद्या छन्दोविचित्यादिग्रन्थसम्पाद्यं छन्दःशास्त्रविषयकं ज्ञानम् गभीरम् दुरवगाहम् काव्यसागरं काव्यरूपं महोदधिं तितीर्षूणाम् पारं जिगमिषूणाम् नौः पोतः भवतीति शेषः। यथाहि सागरपारं जिगमिषुर्जनः नावमवलम्बते, तत्र तन्मात्रस्योपायत्वात्तथा छन्दोविवेकज्ञानाय छन्दःशास्त्रमेव परिशीलनीयं तस्य तदेकोपायकत्वात् छन्दोज्ञानं हि काव्यस्य करणे परिशीलने चोपयुक्तं इत्याशयः। 'छन्दोविचितः' नाम छन्दोग्रन्थो दण्डिना प्रणीत इति बहव आहुः, 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च' इति च ते तदुपोद्बलकं स्मारयन्ति ॥

हिन्दी—वृत्तजाति आदि छन्दोभेदका विस्तारपूर्वक विवेचन 'छन्दोविचिति' नामक छन्दोग्रन्थमें विस्तारपूर्वक किया गया है, अतः उसका ज्ञान उसी ग्रन्थसे करना चाहिये क्योंकि काव्यरूप सागरमें (शब्दार्थरूप रत्न पानेकी इच्छासे) तरण करनेवालोंके लिये छन्दोज्ञान नौकारूप है। जिस प्रकार नौका लेकर समुद्रमें जानेवाले अभ्यापन्नभावसे स्वाभीष्ट रत्नादिसंग्रहणमें समर्थ हुआ करते हैं अन्यथा असफल रहते हैं, उसी तरह छन्दोज्ञान सम्पन्न जन काव्यसागरमें शब्दार्थरत्नका संग्रह कर पाते हैं अन्यथा नहीं। 'छन्दोविचिति' नामक एक छन्दोग्रन्थ दण्डिकृत था (जो अब अप्राप्य हो गया है) उसीका नाम इस पद्यमें आया है, इसीके आधार पर लोग 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च' मानते हैं ॥ १२ ॥

मुक्तकं कुलकं कोषः सङ्घात इति तादृशः।
सर्गबन्धांशरूपत्वादनुक्तः[2] पद्यविस्तरः ॥ १३ ॥

'गद्यं पद्यं च मिश्रञ्चे'ति काव्यत्रैविध्यमुक्तम्, तत्र पद्यकाव्यस्य बहवो भेदाः प्रथन्ते, 'मुक्तकम्', 'कुलकम्', 'कोषः', 'सङ्घातः' इत्यादयः, सर्वेषां तेषां विस्तारेणात्र वर्णनं न चिकीर्षितं सर्वेषामपि तेषां महाकाव्यांशरूपत्वान्महाकाव्यवर्णनेनैव तेषामपि वर्णनस्य

१. विवक्षूणां, विविक्षूणां। २. बन्धाङ्ग-।

कृतप्रायत्वात्, तदाह—**मुक्तकमिति**। मुक्तकम्—'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्' यथा—अमरुशतकादिः।

कुलकम्—

'द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते। कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्॥'

यथा—तत्र तत्र काव्यादौ वर्णनविशेषाः।

कोषः—

'कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः। व्रज्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः॥'

यथा—आर्यासप्तशत्यादिः।

सङ्घातः—'यत्र कविरेकमर्थं वृत्तेनैकेन वर्णयति काव्ये सङ्घातः स निगदितः।'

यथा—वृन्दावन-मेघदूतादिः।

एवंलक्षणलक्षिताः पद्यप्रभेदाः पृथगत्र न प्रपञ्चिताः, तेषां सर्वेषां सर्गबन्धांशरूपत्वात् सर्गबन्धात्मकमहाकाव्यांशरूपत्वात्, तत्र मुक्तककुलकौ नामाद्यभेदौ साक्षादंशरूपौ, अन्त्यौ कोषसङ्घातौ तु महाकाव्ये तत्तदुच्चावचवर्णने सम्भवत एवेति पृथगत्र न प्रपञ्चितौ॥ १३॥

हिन्दी—मुक्तक, कुलक, कोष, संघात आदि पद्यविस्तरका इस ग्रन्थमें विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है क्योंकि वे सभी सर्गबन्धात्मक महाकाव्यके अङ्गभूत हैं, इनमें मुक्तक तथा कुलक साक्षाद् अङ्ग हैं और कोष तथा संघात तद्वर्णनमें अङ्ग हो जाया करते हैं। मुक्तकका लक्षण है—'अन्यानपेक्ष एकश्लोकनिबन्धो मुक्तकम्'। कुलक-'अनेकपद्यैनैकक्रियाऽन्वितैनैकवाक्यार्थकथनं कुलकम्'। कोषः—'असंहतार्थानाम् एककवेरनेककवीनां वा वाक्यानां काव्यात्मनां निबन्धः कोषः'। संघातः-'कल्पितवस्तुकः एकच्छन्दोनिर्व्यूढः पद्यसमुदयः संघातः'। इस तरह सभी भेदोंके लक्षण अलग-अलग बताये गये हैं, ये सभी महाकाव्यके अङ्गभूत हैं, अतः इनका विस्तृत वर्णन यहाँ पर नहीं दिया जा रहा है॥ १३॥

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥ १४॥

मुक्तककुलकादीनां काव्यप्रभेदानां सर्गबन्धांशरूपत्वमुदीरितं, तत्र सर्गबन्धस्य स्वरूपं ज्ञापयितुमवशिष्यते, तदाह—**सर्गबन्ध** इत्यादिना। महाकाव्यमित्युद्देश्यपदम्, सर्गबन्ध इति च विधेयम्, महाकाव्यं नाम सर्गबन्धपदाभिलप्यमिति तदाशयः। सर्गः अवान्तरप्रकरणविशेषः, तत्कृतः बन्धो रचना महाकाव्यम्, यत्र प्रकरणानि सर्गपदेन व्यवच्छिद्यन्ते तादृशी रचना महाकाव्यम्, तस्य लक्षणम् इतरव्यावृत्तिकरं चिह्नम् उच्यते वक्ष्यमाणेनेति शेषः। आशीर्नमस्क्रियेत्यारभ्य जायते सदलङ्कृतीति पर्यन्तेन सन्दर्भेण काव्यं लक्ष्यत इत्यर्थः। तन्मुखम् तस्य महाकाव्यस्य मुखम् प्रारम्भः आद्याकृतिः आशीः नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोऽपि वा एतत्त्रितयान्यतमद्वारा तत्प्रारम्भः क्रियत इत्यर्थः। तत्र आशीर्नाम स्वेष्टजनस्य स्वस्य वा शुभाशंसनम्। एके तु स्वेष्टजनस्य शुभाशंसनमात्रमाशिषमाहुः, तदुक्तम्—

'वात्सल्याद्यत्र मान्येन कनिष्ठस्याभिधीयते। इष्टावधारकं वाक्यमाशीः सा परिकीर्तिता'॥

नमस्क्रिया—मदपेक्षया त्वमुत्कृष्ट इति परोत्कर्षसूचनपूर्वकस्वापकर्षबोधनानुकूलो व्यापारविशेषः, स च करशिरःसंयोगादिरूपस्तत्तद्देशविशेषभिन्नः। स चात्र शब्दोपनिबद्धो वेदि-

तव्यः। वस्तुनिर्देशः वर्णनीयकथाभागस्य प्रकारेण केनचिदुपनिबन्धः, स च क्वचिन्नायकनिर्देशेन क्वचित्तदावासदेशनिर्देशादिप्रकारेण वा क्रियते ॥ १४ ॥

हिन्दी—पहले श्लोकमें मुक्तक, कुलक आदि काव्योंको महाकाव्यांश मान लिया गया है, उसी का लक्षण इस श्लोकसे लेकर उन्नीसवें श्लोक तक बता रहे हैं। सर्गबन्ध शब्दसे महाकाव्य लिया जाता है, उसकी रचना सर्गोंके आधार पर की गई होती है, इसीलिये वह सर्गबन्ध कहलाता है, उस महाकाव्यका मुख-प्रारम्भ तीन प्रकारोंसे किया जाता है—आशीः, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश। आशीः से आशीर्वादकी विवक्षा है, आशीर्वाद शब्दका अर्थ होता है स्वेष्टजन अथवा अपने शुभकी इच्छा प्रकट करना, 'पुत्रस्ते भवतु', 'धनं मे स्यात्' इत्यादि वाक्योंसे वैसा ही भाव प्रकट होता है। केवल अन्यशुभेच्छा मात्रको आशीः पदार्थ समझनेवालोंके मतमें 'धनं मे स्यात्' इत्यादि प्रतीतियाँ कैसे बनेंगी। नमस्क्रियाका अर्थ है अपनी अपकृष्टताके साथ दूसरेका उत्कर्ष प्रदर्शित करनेवाला व्यापारविशेष, वह व्यापार कहीं पर करशिरःसंयोगात्मक होता है, कहीं पर शिरोभूमिसंयोगात्मक या अन्य किसी प्रकारका। वस्तुनिर्देशका अर्थ है कथाभागका निर्देश करना, वह कई प्रकारोंसे किया जाता है, कहीं नायकनिर्देशद्वारा और कहीं पर नायकके आवासदेशकालादि निर्देशद्वारा और कहीं पर कथा-भागगत वस्तु निर्देशद्वारा। उनके उदाहरणके लिये निम्नलिखित काव्योंके उद्धरण दिये जाते हैं—

आशीर्वाद—(स्वेष्टजनशुभाशंसन)—

'श्रियं क्रियाद्यस्य सुरागमे नमत्सुरेन्द्रनेत्रप्रतिबिम्बलाञ्छिता।
सभा बभौ रत्नमयैर्महोत्पलैः कृतोपहारेव स वोऽग्रजो जिनः' ॥

(चन्द्रप्रभाकाव्य)

स्वशुभाशंसन—'पूतं स्वतः पूततरं ततो यद् गाङ्गं पयः शङ्करमौलिसङ्गात्।
तत्पातु मातुः प्रणयापराधपादाहतेः पूततमं ततो नः' ॥

(शिवलीलार्णव)

नमस्कार—'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ' ॥

(रघुवंश)

वस्तुनिर्देश (नायकनिर्देश)—

'श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः' ॥ (शिशुपालवधं)

(नायकस्थानादिनिर्देश)—

'राकासुधाकरसितद्युतिदीप्यमानसौधावलीविलसिता मधुराभिधाना।
आसीदशेषविभवैरुपचीयमानैर्युक्ता पुरा यदुकुलोत्तमराजधानी' ॥ (कृष्णविभव)

(कथाभागनिर्देश)—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः' ॥ (कुमारसंभव)

इन्हीं प्रकारोंमेंसे अन्यतमका अवलम्बन करके महाकाव्योंका प्रारम्भ किया जाता है। यह निर्वचन लक्ष्यानुसारी है, यदि कोई कवि वसन्तवर्णनसे ही किसी महाकाव्यका प्रारम्भ करे तो कोई बाधा नहीं होगी ॥ १४ ॥

इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम् ॥ १५ ॥

---

१. फलोपेतं।

इतिहासेति। इतिहासकथोद्भूतम् इतिहासवर्णितकथामाधारीकृत्य प्रबद्धम्, इतिहासः-महाभारतं रामायणं च, अन्यद्वा राजतरङ्गिण्यादि। सदाश्रयम्-इतरद्वा, सतामापामरप्रसिद्धसद्भावानां बुद्धादीनां कथामाश्रित्य प्रवृत्तम्, यथाश्वघोषकृतबुद्धचरितादि। इतिहासप्रसिद्धकथां विहायापि प्रसिद्धस्य सत आश्रयेण प्रवृत्तं महाकाव्यं भवति, यथा प्रोक्तबुद्धचरितादि। चतुर्वर्गफलायत्तम्-चतुर्णां धर्मार्थकाममोक्षाणां वर्गः समूहः तत्र फले आयत्तं तत्फलमुद्दिश्य प्रणीतम्, तत्र काव्याद्धर्मप्राप्तिर्भगवन्नारायणचरणारविन्दस्तवादिना, अर्थप्राप्तिश्च प्रत्यक्षसिद्धा, कामप्राप्तिश्चार्थद्वारा, मोक्षप्राप्तिश्चैतज्जन्यफलाननुसन्धानात्। चतुरोदात्तनायकम्-चतुरो व्यवहारकुशलः उदात्तः धीरोदात्तो नायकः कथाप्रधानपुरुषो यत्र तादृशम्। इदं महाकाव्यलक्षणघटकम्॥ १५॥

हिन्दी—इतिहासकी कथापर आधारित होना, अथवा इतिहासप्रसिद्धिको छोड़कर किसी सत्पुरुषकी कथाका आश्रय लेना, धर्म अर्थ-काम-मोक्षकी सिद्धिरूप फलको उद्देश्य करके बनाया जाना एवं चतुर तथा उदात्त नायकका कथाका मुख्य पात्र होना महाकाव्यमें अपेक्षित है। इतिहास पदसे महाभारत, रामायण तथा अन्यान्य पुराण परिगृहीत होते हैं, इनमें वर्णित पुरुषको महाकाव्योंमें प्रधान नायक बनाया जाता है। यह कोई अनुल्लंघनीय नियम नहीं है, इतिहास-प्रसिद्धिके नहीं रहनेपर भी किसी सत्पुरुषको प्रधान नायक बनाकर महाकाव्यकी रचना की जा सकती है, जैसे अश्वघोषने भगवान् बुद्धको नायक बना कर 'बुद्धचरित' नामक महाकाव्य बनाया। महाकाव्यका फल धर्मार्थकाममोक्षरूप चतुर्वर्गकी सिद्धि मानी गई है। इसी फलको उद्देश्य बना कर महाकाव्यकी रचना की जाती है। उसमें—धर्मकी प्राप्ति भगवान्के चरणारविन्दोंकी स्तुतिद्वारा, अर्थकी प्राप्ति प्रत्यक्षसिद्ध, कामप्राप्ति अर्थद्वारा तथा मोक्षप्राप्ति काव्यजन्य धर्मार्थकामरूप फलोंके विषयमें अनासक्ति करनेसे सिद्ध होती है। महाकाव्योंमें नायकको चतुर तथा उदात्त होना चाहिये। नायकका लक्षण शास्त्रकारोंने इस प्रकार बताया है—

साहित्यदर्पण—

'त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही। दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता'॥

दशरूपक—

'नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः। शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः'॥

इस प्रकार कथित नायक धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त-भेदसे चार प्रकारके होते हैं। महाकाव्यमें चारों प्रकारके नायक लिये जाते हैं, अतः उदात्त पदको उपलक्षण समझना चाहिये। नायक कहीं एक देव, कहीं एक सद्वंशज क्षत्रिय, तथा कहीं एकवंशज बहुतसे क्षत्रिय हुआ करते हैं, जैसे—शिशुपालवधमें एक देव श्रीकृष्ण, नैषधीयचरितमें सद्वंशज एक क्षत्रिय नल, एवं रघुवंशमें एकवंशज बहुतसे क्षत्रिय दिलीपादि अग्निवर्ण पर्यन्त॥ १५॥

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥ १६॥

नगरार्णवेति। नगरं नायकाध्युषितं पुरम्, तद्वर्णनं यथा शिशुपालवधे तृतीयसर्गे द्वारकावर्णनम्, अर्णवः सागरः, तद्वर्णनं यथा रघुवंशे त्रयोदशसर्गे। शैलः पर्वतस्तद्वर्णनं यथा कुमारसम्भवस्य प्रथमे सर्गे शिशुपालवधस्य चतुर्थे च सर्गे। ऋतवो वसन्तादयः, [illegible] शिशुपालवधस्य षष्ठे सर्गे। चन्द्रार्कौ चन्द्रमस्सूर्यौ तयोरुदयः, अत्रोदये-

नास्तमयमपि बोध्यत उपलक्षणविधया, तथा चन्द्रसूर्ययोरुदयास्तमयवर्णनं फलितं, तद्यथा—किरातार्जुनीये नवमसर्गे शिशुपालवधे च नवमैकादशसर्गयोः। उद्यानमुपवनं सलिलं जलाधारः सरिदादिस्तत्र क्रीडाविहारः, तद्वर्णनं शिशुपालवधस्याष्टमसर्गे। मधुपानं मद्यसेवनं तद्वर्णनं. यथा-किरातार्जुनीये नवमसर्गे। रतं सम्भोगशृङ्गारस्तद्वर्णनं यथा—रघुमाघादौ तत्र तत्र। अत्र तृतीयान्तपदं वक्ष्यमाणेनाष्टादशश्लोकगतेनालङ्कृतमिति पदेनान्वेति। तथा चैभिर्वर्णनविशेषैरलङ्कृतं काव्यं कल्पान्तस्थायि यशोजनकं जायत इति पर्यवसितोऽर्थः॥ १६॥

हिन्दी—महाकाव्यमें नगरका, समुद्रका, पर्वतका, ऋतुओंका, चन्द्रोदय-सूर्योदय एवं चन्द्रास्त-सूर्यास्तका, उद्यानविहारका, जलक्रीडाका, मधुसेवन तथा संभोगका वर्णन होना चाहिये। उदाहरणस्वरूप तत्तत् काव्योंके स्थल ऊपरकी व्याख्यामें बता दिये गये हैं। प्रसङ्गवश यहाँ यह जानना चाहिये कि किस वस्तुके वर्णनमें क्या होना चाहिये।

नगरवर्णन—

'पुरेऽट्टपरिखावप्रप्रतोलीतोरणादयः। प्रासादाध्वप्रपारामवाप्यो वेश्या सतीत्वरी'॥

अर्णववर्णन—

'अब्धौ द्वीपाद्रिरत्नोर्मिपोतयादोऽगस्त्यप्लवाः। विष्णुकुस्यागमश्चन्द्राद्वृद्धिरौर्वोऽम्बुपूरणम्'॥

शैलवर्णन—

'शैले मेघौषधीधातुवंशकिन्नरनिर्झराः। शृङ्गपादगुहारत्नवनजीवाद्युपत्यकाः'॥

ऋतुवर्णन—

'सुरभौ दोलाकोकिलमारुतसूर्यगतितरुदलोद्भेदाः। जातीतरपुष्पचयाम्रमञ्जरीभ्रमरझङ्काराः॥

ग्रीष्मे पाटलमल्लीतापसरःपथिकशोषवातालयः। सक्तुप्रपाप्रपास्त्रीमृगतृष्णाम्रादिफलपाकाः'॥

'वर्षासु घनशिखिस्मयहंसगमाः पङ्ककन्दलोद्भेदौ। जातीकदम्बकेतकझञ्झानिलनिम्नगा हलिप्रीतिः'॥

'शरदीन्दुरविपटुत्वं जलाच्छतागस्त्यहंसवृषदर्पाः। सप्तच्छदपद्मासिताभ्रत्यशिखिपक्षमदपाताः'॥

'हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुबकहिमानि'। 'शिशिरे करीषधूमः कुमुदाम्बुजदाहशिखिरतोत्कर्षाः'॥

सूर्योदयवर्णन—

'सूर्येऽरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिकलोचनप्रीतिः। तारेन्दुदीपकौषधिचूकतमश्चौरचन्द्रकुलटार्तिः'॥

चन्द्रोदयवर्णन—

'चन्द्रे कुलटाचक्राम्बुरुहविरहितमोहानिरौज्ज्वल्यम्। जलधिजनिनेत्रकैरवचकोरचन्द्राश्मदम्पतिप्रीतिः'॥

उद्यानवर्णन—

'उद्याने सरणिः सर्वफलपुष्पलताद्रुमाः। पिकालिकेकिहंसाद्याः क्रीडावाप्यध्वगस्थितिः'॥

सलिलक्रीडावर्णन—

'जलकेलौ सरःक्षोभचक्रहंसापसर्पणम्। पद्मम्लानिः पयःक्षेपो दृग्रागो भूषणच्युतिः'॥

मधुपानवर्णन—

'सुरापाने विकलता स्खलनं वचने गतौ। लज्जमानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्तेक्षणभ्रमाः'॥

रतोत्सववर्णन—

'सुरते सात्त्विका भावाः सीत्कारः कुड्मलाक्षता। काञ्चीकङ्कणमञ्जीररवोऽधरनखक्षते'॥

इसी प्रकारके वर्णन होते हैं। इसमें कविगण अपनी रुचिके अनुसार परिवर्तन-परिवर्धन किया करते हैं, परन्तु सामान्य प्रकार ऐसा ही हुआ करता है. [illegible]

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥ १७ ॥

विप्रलम्भैरिति । विप्रलम्भो विप्रलम्भश्रृङ्गारः, 'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ' इति लक्षितः । स च 'पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकतया चतुर्विध' इति द्योतनायैवात्र बहुवचनप्रयोगः, तत्र पूर्वरागो नैषधीयचरिते चतुर्थसर्गे, मानो यथा कृष्णवैभवे राधायाः, प्रवासो यथा तत्रैव, करुणो यथा कादम्बर्यां महाश्वेतायाः । विवाहः पाणिग्रहणम् , तद्वर्णनं यथा रघुवंशेऽजेन्दुमत्योः । कुमारोदयः पुत्रोत्पत्तिः, तद्वर्णनं यथा रघुवंशे तृतीयसर्गे । मन्त्रः मन्त्रणा, रिपुजयार्थे प्रधानपुरुषैः, सह गुप्तसंभाषणं, तद्-वर्णनं यथा शिशुपालवधस्य द्वितीयसर्गे । दूतः प्रेष्यः, स च निसृष्टार्थमितार्थसन्देश-हारकभेदेन त्रिविधः, तत्राद्यो यथा उद्योगपर्वणि वासुदेवः, मितार्थो यथा रामायणेऽङ्गदः, सन्देशहारको यथा कादम्बर्यां केयूरकः । प्रयाणं विजययात्रा, तद्वर्णनं यथा रघुवंशे चतुर्थसर्गे । आजिः समरप्रसङ्गः, तद्वर्णनं यथा किरातार्जुनीये पञ्चदशसर्गे । नायका-भ्युदयः प्रधाननायकस्य विजयावाप्तिः, तद्वर्णनं यथा शिशुपालवधे श्रीकृष्णस्य विजयः । तत्र मन्त्रप्रयाणाजिविजयाः क्रमश एव वर्णनमर्हन्तीति बोध्यम् ॥ १७ ॥

हिन्दी—विप्रलम्भ श्रृङ्गारका वर्णन महाकाव्यमें होना चाहिये क्योंकि विप्रलम्भके बिना श्रृङ्गारकी पुष्टि नहीं होती है, लिखा है—

'न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते । कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते ॥'

विप्रलम्भ श्रृङ्गार की चार दशायें होती हैं—मान, प्रवास, पूर्वराग, करुण । इन चारों प्रभेदोंका वर्णन यथावत् किया जाता है ।

विप्रलम्भमें वर्णनीय—

'विरहे तापनिःश्वासचिन्ता मौनं कृशाङ्गता । अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता ॥'

विवाहका वर्णन, उसमें वर्णनीय—

'विवाहे स्नानशुभ्राङ्गभूषालुलुत्रयीरवाः । वेदी सीमन्ततारेक्षा लाजामङ्गलवर्तनम् ॥'

कुमारमें वर्णनीय—

'कुमारे शस्त्रशास्त्रश्रीकलावलगुणोच्छ्रयाः । वाह्यालीखुरलीराजभक्तिः सुभगतादयः ॥'

दूतमें वर्णनीय—

'दूते स्वस्वामितेजःश्रीविक्रमोन्नत्यकृद्वचः । शत्रुक्षोभकरी चेष्टा चातुर्यं दाक्ष्यमभीरुता ॥'.

प्रयाणमें वर्णनीय—

'प्रयाणे भेरिनिःस्वानभूकम्पचलधूलयः । करमोक्षध्वजच्छत्रवणिकछकटवेसराः ॥'

युद्धमें वर्णनीय—'युद्धे तु वर्मबलवीररजांसि तुर्यनिःश्वासनादशरमण्डपरक्तनद्यः ।
छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भिमुक्तामरीवृतभटाः सुरपुष्पवर्षाः ॥'

इस प्रकार प्रोक्त वर्णनसे युक्त होना महाकाव्यकी शोभाको बढ़ाता है । इन वर्णनोंमें सबका होना नितान्त अपरिहार्य नहीं है, कुछ अंशमें कमी क्षम्य होती है ॥ १७ ॥

अलङ्कृतमसङ्क्षिप्तं रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥ १८ ॥

अलङ्कृतमिति । नगरादारभ्य अभ्युदयपर्यन्तमुक्तानां वस्तूनां वर्णनैः अलङ्कृतमिति योजना असङ्क्षिप्तम्—अतिसङ्क्षेपवर्णितं हि वस्तु न स्वदते, यथा—'वसुदेवात्समुत्पद्य पूतनां विनिपात्य च । कंसं हत्वा द्वारकायामुषित्वा स्वर्गतो हरिः' इति कृष्णकथानकं न रोचते । रसाः-शृङ्गारादयो नव, भावः—'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः । भावः प्रोक्तः' इति लक्षितस्वरूपः । तैः रसैर्भावैश्च निरन्तरम् पूर्णम् । अनतिविस्तीर्णैः-साधारणतया विस्तारभाग्भिरपि समरसतास्पृक्त्वेन वैरस्यमनावहद्भिः, श्रव्यवृत्तैः हतवृत्ततादिदोषास्पृष्टच्छन्दोनिबद्धैः, सुसन्धिभिः—मुखप्रतिमुखगर्भविमर्शनिर्वहणनामकैः सन्धिभिः साधुसमुपयोजितैर्युक्तैः सर्गैरुपेतमिति वक्ष्यमाणेनान्वयः ॥ १८ ॥

हिन्दी—नगरसे लेकर नायकाभ्युदयपर्यन्त कहे गये विषयोंके वर्णनोंसे युक्त सर्ग हों, उन सर्गोंमें सर्वत्र रसभावकी सत्ता हो, उनका विस्तार अनतिबृहत् हो, छन्द ऐसे हों जिनमें हतवृत्तता आदि दोष नहीं आते हों, सन्धियोंका समावेश भलीभाँति हो सका हो, ऐसे सर्गोंसे काव्यका उत्कर्ष सिद्ध होता है । महाकाव्योंमें किस तरहके सर्ग हों इसका विचार इस श्लोकमें किया गया है । साहित्यदर्पणकारने सर्गोंके विषयमें इस प्रकार कहा है--

'एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः । नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते । सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥'

अनतिविस्तीर्ण सर्ग कहकर दण्डीने कविके सामर्थ्यपर इसके विस्तारको निर्भर कर दिया है, कुछ लोगोंका कहना है कि प्रतिसर्गमें तीससे अन्यून तथा दो सौसे अनधिक श्लोक हों । सन्धियोंका समावेश होना चाहिये, उनमें साङ्गनिर्वाह ही सुश्लिष्टत्व माना जाता है ॥ १८ ॥

सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति ॥ १९ ॥

सर्वत्रेति । सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैः प्रतिसर्गं भिद्यमानकथैः, अथवा सर्वेषां सर्गाणां समाप्तौ विपरीतच्छन्दोभिरित्यर्थः, पूर्णं सर्गं केनचिदेकेन च्छन्दसा निर्मायावसाने भिद्यमानेन वृत्तेन निर्माणमत्राभिप्रेतं बोध्यम् । तदुक्तमन्यत्र—'एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः' इति । एतत्प्रायिकं, नानावृत्तमयसर्गस्यापि दर्शनात् । यथा शिशुपालवधे चतुर्थः सर्गः । सदलङ्कृति—सत्यः शब्दार्थशोभाजननद्वारा रसोपकारिका अलङ्कृतयो यमकानुप्रासोपमोत्प्रेक्षादयो यत्र तादृशम्, एतेनालङ्कारसृष्टिं प्रति कवेरभिप्रायो निवेदितः । एतावत्पर्यन्तं महाकाव्यस्य लक्षणं प्रोक्तं, सम्प्रति तल्लक्षणलक्षितं काव्यं प्रशंसन् तस्य निर्माणे प्रवृत्तिमुपश्लोकयति—**लोकरञ्जकमिति** । तादृग्लक्षणकं हि काव्यं लोकरञ्जकं भवति, श्रोतृजनहृदयावर्जनक्षमं भवति, कल्पावसानपर्यन्तस्थायि च जायत इत्यर्थः । एतेनाक्षयकीर्तिप्राप्त्यभिलाषेण कविभिरत्र यतनीयम् इत्युक्तम् ॥ १९ ॥

हिन्दी—महाकाव्यके सर्गोंमें भिन्न भिन्न वृत्तान्त-घटनाओं का वर्णन होना चाहिये, अथवा 'भिन्नवृत्तान्तैः' का यह अर्थ है कि प्रत्येक सर्गके अन्त में दूसरे प्रकारके वृत्तका उपयोग किया जाय, जिस छन्दमें पूरा सर्ग लिखा गया हो अन्तिम श्लोकोंमें उससे कोई दूसरा छन्द चुना जाय । जैसे रघुवंशके द्वितीय सर्गमें पूरा सर्ग उपजाति छन्दमें लिखा गया है और अन्तिम श्लोक मालिनीछन्दका बनाया गया है । महाकाव्यमें एक अपेक्षित गुण—'सदलङ्कृति' होना है, अलङ्कारों—शब्दार्थालङ्कारों-यमक, उपमा आदिका सुन्दर समावेश होना आवश्यक है, ऐसा होनेसे काव्य श्रोतृवर्गका मनोरञ्जक होता है और वैसा ही काव्य

कल्पान्तरपर्यन्त स्थायी कीर्ति प्रदान करनेवाला हुआ करता है। अतः कल्पान्तस्थायी यशकी कामना रखनेवाले कवियोंको तल्लक्षणयुक्त काव्यके प्रति सोद्योग होना चाहिये ॥ १९ ॥

न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति ।
यद्युपात्तेषु[1] सम्पत्तिराराधयति तद्विदः ॥ २० ॥

न्यूनमिति—महाकाव्येऽपेक्षितत्वेन वर्णितास्तत्तद्वर्णनसद्भावादयोंऽशतः खण्डकाव्येष्वपि दृश्यन्तेऽतः खण्डकाव्येषु तल्लक्षणप्रसक्तिरथ तद्वारणाय सामस्त्येन तत्तद्गुणसमावेशो विवक्ष्यते चेदांशिक्यां न्यूनतायां सत्यां महाकाव्यान्यपि स्वलक्षणेन न व्याप्येरन्निति प्रसज्यमानानामुभयतः पाशां रज्जुमपनोदितुमाह—न्यूनमिति। अत्र पूर्वोक्तवर्णनीयसमुदयमध्ये कैश्चिदङ्गैर्न्यूनं रहितमपि काव्यं महाकाव्यम् न दुष्यति न दूषणीयं भवति, यदि उपात्तेषु वर्णयितुमङ्गीकृतेषु शैलादिषु सम्पत्तिः पूर्णताजनितो रसपोषः तद्विदः काव्यरहस्यज्ञातॄन् विदुषः आराधयति प्रसादयति. अयमाशयः—महाकाव्येषु वर्णनीयतयोक्तानां तेषां तेषां वस्तूनां कतिचिद् वस्तूनि वर्णितानि, कतिचिच्च हीनानि, न तावता कापि क्षतिर्भवति यदि वर्णयितुमुपात्ताः पदार्थाः साधु वर्ण्यमानाः सन्तो रसपरिपोषं जनयेयुः, रसपरिपोष एव हि तैर्वर्णनैश्चिकीर्षितः, स हि यद्यल्पसङ्ख्यकवस्तुवर्णनेनैव सम्पाद्यते तदा नास्ति सर्वेषामेवोद्दिष्टानां वस्तूनां वर्णनस्य नितान्तावश्यकतेति। यथा यदि कुत्रापि महाकाव्ये शैलर्तुवर्णनेनैव रसपरिपोषः सम्पाद्यते, तदा तत्र कुमारोदयमन्त्रद्युतवर्णनवैकल्येऽपि न कापि क्षतिरिति, तथा चोक्तं भोजराजेन—

'नावर्णनं नगर्यादेर्दोषाय विदुषां मतम्। यदि शैलर्तुरात्र्यादेर्वर्णनेनैव तुष्यति' ॥

तथा च तत्तद्वर्णनीयवस्तूपन्यासोऽन्यतमत्वेन विवक्षितो बोध्यः, प्राधान्येन रसपोषस्य यावता निष्पत्तिस्तावदवश्यमपेक्षितं मन्तव्यमिति। खण्डकाव्ये महाकाव्यलक्षणातिव्याप्तिशङ्का तु चमत्कारवैलक्षण्येन वारणीया ॥ २० ॥

हिन्दी—महाकाव्यके लिये जितने वर्णनीय विषय बताये गये हैं उनमें यदि कुछ विषयोंके वर्णन नहीं भी किये गये हों, परन्तु जिनका वर्णन किया गया हो, उतने विषयोंके वर्णनसे ही यदि श्रोता तथा अध्येता आदि रसपुष्टिका अनुभव करते हों तो वह न्यूनता नहीं मानी जायगी। महाकाव्यमें तत्तद्वर्णनीय वस्तुजातका वर्णन सामग्र्येण नहीं अपेक्षित है, अन्यतमत्वेन प्राधिकत्वेन वा अपेक्षित है ऐसा समझना चाहिये। यदि किसी कविने अपने निर्मेय महाकाव्यके लिये कुछ विषयोंका वर्णन किया, कुछको छोड़ भी दिया, तो यहाँ यह नहीं देखा जायगा कि इन्होंने तत्तत् वस्तुका वर्णन नहीं किया, अतः इनका महाकाव्य दुष्ट है, परन्तु यह देखा जायगा कि जितने विषयोंका वर्णन किया गया है उतनेमें रसकी पुष्टि होती है या नहीं! यदि रसकी पुष्टि हो जाती है तब उस न्यूनताका कोई मूल्य नहीं है। यहाँ पर यह ध्यान देनेकी बात है कि यदि कुछ विषयोंका वर्णन न्यून रह जायगा तो भी यदि महाकाव्य मानने लगेंगे तब खण्डकाव्य भी महाकाव्य कहे जाने लगेंगे, क्योंकि उन्हें भी तो 'खण्डकाव्यं महाकाव्यस्यैकदेशानुसारि यत्' इस लक्षण द्वारा ही निरुक्त किया गया है। इसका उत्तर यह समझना चाहिये कि महाकाव्य तथा खण्डकाव्यमें चमत्कारवैलक्षण्यकृत भेद है जो उसे असङ्कीर्ण बनाये रखता है। महाकाव्य तथा खण्डकाव्यके चमत्कार भिन्न-भिन्न प्रकारके हुआ करते हैं, अतः वर्णनीयविषयसाम्यकृत अतिव्याप्तिका भय नहीं है ॥ २० ॥

---

१. यद्युपात्तार्थसम्पत्तिः।

गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः॥ २१॥

गुणत इति। पूर्वोक्ते काव्यलक्षणे 'चतुरोदात्तनायक' मित्युक्तम्, तत्र नायकपदं प्रतिनायकस्याप्युपलक्षणं मन्यते, एतेन नायकप्रतिनायकयोरुत्कर्षापकर्षौ महाकाव्ये वर्णनीयावित्यायातं, तत्र द्वयी गतिः, प्राक् नायकस्य वर्णनं ततः प्रतिनायकस्य, तदनन्तरं नायककृतः प्रतिनायकपराजयः इत्येकः प्रकारः, अन्यश्च पूर्वं प्रतिनायकस्य वर्णनं ततो नायकवर्णनपुरस्कृतस्तत्कृतस्तदुच्छेद इति, तत्रानयोः प्रकारयोः प्रथमः प्रकारो रामायणे, द्वितीयश्च महाभारते, तत्र स्वमतं प्रकारं प्राधान्यं प्रापयितुं प्राक्प्रचलितं प्रकारं दर्शयति—**गुणत इति।** प्राक् प्रथमम् गुणतः नायकगुणवर्णनद्वारा नायकं काव्यनेतारं प्रधानपुरुषम् उपन्यस्य अभिधाय, तेन तथा वर्णितेन नायकेन विद्विषाम्। प्रतिनायकानाम् निराकरणम् उच्छेदः (वर्ण्येत), एषः मार्गः प्रकारः (प्राङ्नायकं वर्णयित्वा पश्चात्तदुच्छेद्य प्रतिनायकवर्णनपुरस्कृतो नायकरचिततदुच्छेदवर्णनम् इत्थंभूतः प्रकारः) प्रकृतिसुन्दरः स्वभावमनोरमः। काव्यस्य प्रधानमुद्देश्यं सदुपदेशः, स च सत्पुरुषाभ्युदयासत्पुरुषविनिपातप्रतिपादनेनैव प्रकटीकृतो भवति, तदर्थं तयोः क्रमशो वर्णनमपेक्षितं भवति, यथा रामायणे प्राग् रामस्य वर्णनं ततो रावणस्य वर्णनसहचरी तदुच्छेदकथा, तेनैवं वर्णनेन रामादिवत्प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवदिति सदुपदेशो गृहीतो भवति, तेनास्य मार्गस्य स्वभावसुन्दरत्वमावेदितं भवति॥ २१॥

हिन्दी—महाकाव्यके स्वरूपनिर्वचन-प्रसङ्गमें पहले कहा गया है—'चतुरोदात्तनायकम्' इस विशेषणमें आनेवाला नायकपद प्रतिनायकका भी उपलक्षण माना जाता है, फलतः यह सिद्ध हुआ कि महाकाव्यमें नायक, प्रतिनायक, उभयका वर्णन अपेक्षित है, उसमें विचारणीय यह है कि किसका वर्णन पहले किया जाय? इस सम्बन्ध में दो प्रकार आश्रित होते आये हैं, पहला प्रकार यह है कि पहले नायकके गुण-शौर्य-कुल-समृद्ध्यादिका विशद वर्णन करके बादमें प्रतिनायकका वर्णन किया जाय और नायकके द्वारा उसके निराकरण-उच्छेदका वर्णन किया जाय। यह प्रकार स्वभावतः सुन्दर होता है, क्योंकि काव्यका सर्वोच्च प्रयोजन 'सदुपदेश' माना जाता है, वैसा वर्णन करनेसे वह सिद्ध होता है। जैसे रामायणमें पहले रामचन्द्रका वर्णन किया गया है, बादमें रावणका वर्णन, तथा रामके द्वारा उसके उच्छेदका वर्णन किया गया है, जिससे यह उपदेश गृहीत होता है कि 'रामकी तरह आचरण करना भला है, रावणकी तरह आचरण करना भला नहीं है'॥ २१॥

वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं[1] च धिनोति नः॥ २२॥

वंशवीर्येति—नायकवर्णने प्रकारद्वयमिति प्रागभिहितं तत्रैकः प्रकारः पूर्वश्लोके प्रदर्शितः सम्प्रत्यनेन श्लोकेन द्वितीयं प्रकारं प्रस्तौति-वंशवीर्येति। वंशः कुलम्, वीर्यम् पराक्रमप्रकर्षः, श्रुतं शास्त्रज्ञानम्, आदिनौदार्यनीतिज्ञत्वादिपरिग्रहः। रिपोः प्रतिनायकस्य अपि वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा तज्जयात् तादृशस्य प्रतिनायकस्य जयात् उच्छेदात् नायकोत्कर्षस्य नायकश्रेष्ठत्वस्य कथनम् वर्णनम् नः अस्मान् धिनोति

१. वर्णनं।

प्रीणयति । अयमाशयः—नायकवर्णनात् प्राक् प्रतिनायकवंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा तत्पश्चात् तादृशस्यापि प्रतिनायकस्य नायकद्वारोच्छेदो वर्ण्यमानो नायकस्यैव सारवत्तातिशयं पुष्णातीति पक्षोऽयमस्मान् सविशेषमानन्दयति, यतो विजेतव्योत्कर्षवर्णनं हि विजेतुरुत्कर्षातिशयं गमयति । अयं च प्रकारः किरातार्जुनीये समादृतः, तत्र हि दुर्योधननीत्यादिवर्णनपूर्वकं पाण्डवानामुत्कर्षप्रतिपादनं कृतम् । 'धिनोति नः' इत्युक्त्वात्र स्वरुचिः प्रदर्शिता, तत्कारणं त्वत्र प्रकारे वस्तुवृत्तस्यानपलापो भवतीति, प्रतिनायकवर्णनपूर्वकनायकवर्णनेन कविप्रतिभाचमत्कारश्च भवति स्फुटं इति च बोध्यम् ॥ २२ ॥

हिन्दी—नायकके वंशादिवर्णनके पहले प्रतिनायकके कुल, पराक्रम, शास्त्रज्ञान आदि उत्कर्षका वर्णन कर लिया जाय, पीछे नायकका वर्णन हो और प्रतिनायकके संहारका भी वर्णन किया जाय, यह प्रकार मुझ (दण्डी) को बहुत अच्छा लगता है । तात्पर्य यह है कि पहले प्रतिनायकका पूरा वर्णन कर लिया जाय, पीछे नायकके वर्णनसे प्रारम्भ करके उसके द्वारा प्रतिनायकके उच्छेदनकका वर्णन कर लिया जाय, यह दूसरा प्रकार मुझे अधिक पसन्द है, क्योंकि इस प्रकारमें विजेतव्योत्कर्ष-वर्णन भी फलतः विजेताके उत्कर्ष-वर्णनमें ही पर्यवसित होता है, इस प्रकारका वर्णन किरातार्जुनीयमें किया गया है । यहाँपर एक आपत्ति उठाई जा सकती है कि प्रतिनायकका लक्षण तो निम्न प्रकारका बताया गया है—

'लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपुः ।' (दशरूपक)
'धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः' (साहित्यदर्पण)
'अन्यायवाँस्तदुच्छेद्य उद्धतः प्रतिनायकः' (नाट्यदर्पण)

फिर आप 'वंशवीर्यश्रुतादीनि' का वर्णन प्रमुख रूपसे प्रतिनायकमें किस तरह करना चाहते हैं ? इस आपत्तिका समाधान यह है कि भाग्यवश प्रतिनायकका जन्म बड़े कुलमें हुआ, पूर्वसंस्कारवश उसने शास्त्र भी पढ़े, परन्तु अपने अविनय-अविवेकके कारण सकल अन्य गुणोंके होते हुए भी उसका विनिपात हुआ, यह सदुपदेशप्रदान इस प्रकारके परिग्रहमें अनायास सिद्ध होता है । वंशवीर्यश्रुतादिगौरवसम्पन्न होकर अविवेकपुरस्कार करनेवालेका पराभव अवश्यंभावी है इस बातको प्रमित करानेके कारण ही आचार्य दण्डीने इस प्रकारको स्वाभिमत कहा है । इस प्रकारमें एक विशिष्टता यह भी है कि इसमें वास्तविकताका अपलाप नहीं करना पड़ता । इसके अतिरिक्त इस प्रकारके आश्रयणसे कविकी प्रतिभाका चमत्कार भी प्रकट होता है ॥ २२ ॥

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा ।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ॥ २३ ॥

एवं महाकाव्यं निरूप्य क्रमप्राप्तं गद्यं निरूपयति—**अपाद इति** । पादो गणमात्रानियमितः पद्यतुरीयांशः तद्भिन्नः अपादः गणमात्रानियमवर्जित इत्यर्थः । एतादृशः पदसन्तानः सुप्तिङन्तपदसमुदयो गद्यमित्याख्यायते । अस्य गद्यस्य—मुक्तकवृत्तगन्धिचूर्णकोत्कलिकाप्रायनामकाश्चत्वारो भेदाः सन्ति, तेऽपि कथाख्यायिकयोरेवान्तर्भवन्तीतिताननुपन्यस्य कथाख्यायिकारूपं भेदद्वयं निर्वक्ति—**इति तस्येति** । तस्य गद्यस्य द्वौ प्रभेदौ, कथा, आख्यायिका चेति । तत्र प्राचीनोक्तं कथाख्यायिकयोर्लक्षणमयं दूषयिष्यति, तदुपक्रमते—**तयोरिति** । तयोः कथाख्यायिकयोर्मध्ये आख्यायिका एवंलक्षणा प्राचीनैरुक्तेति भावः । प्राचीनमतानुसारिणा भामहेन कथाख्यायिकयोर्लक्षणमधिकृत्योक्तम्—

'प्रकृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना । गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता ॥
वृत्तमाख्यायते यस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् । वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च ॥
कवेरभिप्रायकृतैरङ्कनैः कैश्चिदङ्किता । कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयान्विता ॥
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि । संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा ॥
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते । स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ॥
अनिबन्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रादि तत् पुनः । युक्तं वक्त्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते ॥
तदेवं प्राचीनाः कथाऽऽख्यायिकयोर्लक्षणमाख्यातवन्तः । अत्रास्य लक्षणभेदस्य स्वानभिमतत्वसूचनाय किलशब्दप्रयोगो बोध्यः ॥ २३ ॥

हिन्दी—गणमात्रानियत पद्यतुरीयभाग पाद कहा जाता है, उससे रहित पद-सुबन्त-तिङन्त समुदाय—को गद्य कहते हैं, अर्थात् जिस सुबन्त-तिङन्त-पद-समुदायमें गणमात्रानियत पाद नहीं हो, उसको गद्य कहते हैं। उसके दो भेद हैं—आख्यायिका एवं कथा। उनमें आख्यायिकाका लक्षण यह है (जो आगेके श्लोकमें कहेंगे)। प्राचीनोक्त आख्यायिका तथा लक्षणोंकी अतिप्रसिद्धतासूचनार्थं इस भेदप्रकाशक श्लोकमें 'किल' शब्दका प्रयोग किया गया है, उसके स्वानभिमतत्वको वही किल शब्द प्रकट करता है ॥ २३ ॥

नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण[1] वा ।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः ॥ २४ ॥

प्राचीनाः कथाख्यायिकयोर्भेदं स्वमुखवाच्यत्वतदभावाभ्यां प्रयोजयतः, अर्थात् कथाख्यायिकयोराख्यायिका स्वयं नायकेन वाच्या, अन्या कथा नायकेन तदितरेण वा केनापि पुरुषेण वाच्या। एवं च आख्यायिकायां नायकमात्रस्य वक्तृता, कथायां त्वंशभेदेन नायकस्य तदितरस्य च पुरुषस्य वक्तृतेति प्राचीनाभिमतलक्षणाशयः। नन्वेवं प्राचीनलक्षणे नायकेन निजवृत्तकथनं स्वविकत्थना स्यात्, तच्च न युज्यते, यथोक्तमत्र प्रसङ्गे भामहेन—'स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः' इति चेत्तत्राह—स्वगुणाविष्क्रियेति। भूतार्थशंसिनः यथार्थव्याहारिणो नायकस्य स्वगुणाविष्क्रिया निजगुणवर्णनम् न दोषः, स हि यथार्थवक्तृत्वेन स्वमपि गुणमाविष्कुर्वन्न दुष्यति, स्वगुणस्य प्रसङ्गागतस्य वस्तुसतश्चाभिधानस्यात्मविकत्थनानन्तर्गतत्वात्, असति प्रसङ्गे अतिशयोक्तिपूर्वकं स्वगुणख्यापनमेव दोषाय भवति, न तु सति प्रसङ्गे वास्तवगुणाभिधानं दोषायेति। एतावत्पर्यन्तं कथाख्यायिकयोः प्राचीनं लक्षणं व्याख्यातम् ॥ २४ ॥

हिन्दी—कुछ लोग ऐसा भेद मानते हैं कि आख्यायिकामें नायक अपनी कथा अपने मुँहसे कहता है और कथामें नायक स्वयं भी कहता है या दूसरे ही कहते हैं। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि कथामें नायक अपने मुँहसे अपनी वर्णना कर लेता है। यहाँपर कुछ लोग यह आशङ्का प्रकट करते हैं कि उच्चवंशीय कथानायक अपने मुँहसे अपना वर्णन किस प्रकार करेगा? आत्मश्लाघा करना भले आदमीको किस प्रकार पसन्द आवेगा? इसी शङ्काके उत्तरमें आचार्य दण्डीने पूर्वोक्त श्लोकका उत्तरार्ध कहा है, उसका अर्थ यह है कि अपनेमें वस्तुतः वर्तमान गुणोंका वर्णन तो आत्मश्लाघा नहीं है। आत्मश्लाघा तो

---

१. नायकादितरेण।

अवर्तमानगुणप्रख्यापनको कहते हैं, वस्तुसद्गुणोंका वर्णन करनेसे नायकमें आत्मश्लाघाका दोष नहीं लगेगा। इस तरह कथा एवं आख्यायिकामें प्राचीनोक्त भेद बताया गया। आगेके श्लोकमें इस मतका विरोध किया जायगा ॥ २४ ॥

अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात् ।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग् वा भेदलक्षणम्[1] ? ॥ २५ ॥

प्राचीनैः कथाऽऽख्यायिकयोर्लक्षणनिरूपणप्रवृत्तैः कथायां नायकस्य वक्तृत्वं तथाऽऽख्यायिकायां तदितरस्य तथात्वमङ्गीकृतं, तदितः पूर्वमुपपादितं सम्प्रति तदपनुदति—**अपि त्विति**। तत्राख्यायिकायामपि अन्यैः नायकभिन्नैरुदीरणात् वर्णनात् अनियमः आख्यायिका नायकेनैव वाच्येति प्राचीनोक्तनियमभङ्गः अपि दृष्टः। अयमाशयः—आख्यायिकायां नायक एव वर्णयेदिति नियमो न व्यावहारिकोऽन्यैरपि वर्णनस्य कृतस्य दर्शनात्, एवं च नायं नियम इति। ननु नायकेतरकृतवर्णनसद्भावात् कथात्वमेव घटतां मास्तु तथाभूतस्य गद्यकाव्यस्याख्यायिकारूपत्वं तत्राह—**अन्यो वक्तेति**। कथायामन्यो वक्ता तयाऽऽख्यायिकायां स्वयं वक्तेति भेदकारणं भिन्नत्वप्रत्ययहेतुः वा कीदृक् ? न युक्तमिदं भेदकथनम्। स्वल्पवैलक्षण्यकृत एवानयोर्भेदो युक्तः, न वक्तृवैलक्षण्यकृत इत्याशयः ॥ २५ ॥

हिन्दी—प्राचीनोंने कथा और आख्यायिकामें यही भेद बताया है कि आख्यायिकाका नायक स्वयं अपनी कहानी प्रस्तुत करता है और कथामें कहीं नायक स्वयं अपनी कहानी कहता है और कहीं दूसरे भी उसकी कथाका वर्णन कर लेते हैं, यह भेद सङ्गत नहीं है, क्योंकि देखा गया है कि आख्यायिकामें भी दूसरेके द्वारा कथा प्रस्तुत की गई है। यहाँपर यह शङ्का हो सकती है कि जिस आख्यायिकामें दूसरेके द्वारा वर्णन किया गया है उसे कथा ही में अन्तर्भूत कर लिया जाय ? इसका उत्तर यह है कि कथाख्यायिकामें जब वक्तृव्यवस्था हो तब न ऐसा माना जाय, एकमें यह वक्ता दूसरेमें वह वक्ता इस तरहका भेदक धर्म क्यों माना जाय ? स्वरूप-भेद ही इनके भेदक हैं, वक्तृभेद नहीं ॥ २५ ॥

वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम् ।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत्प्रसङ्गे न कथास्वपि ॥ २६ ॥

एवं प्रागुक्तश्लोकेन वक्तृभेदकृतं कथाख्यायिकयोर्भेदं निषिध्य वक्त्रापरवक्त्रच्छन्दोनिवेशादिकृतं भेदमपि प्रतिषेद्धुमुपक्रमते-**वक्त्रञ्चेति**। वक्त्रम् अपरवक्त्रमिति च छन्दोभेदौ 'वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धयोऽनुष्टुभि ख्यातम्' इति वक्त्रलक्षणम्। 'अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ' इति वापरवक्त्रलक्षणम्। केचित्तु—'वैतालीयं पुष्पितायां चेच्छन्त्यपरवक्त्रकम्' इत्याहुः। उच्छ्वासः कथांशव्यवच्छेदसंज्ञा, स एव क्वचिदाश्वास इत्युक्तः, तत्सहितत्वं सोच्छ्वासत्वम् (एतत्त्रयम्) भेदकम् कथात आख्यायिकाया वैलक्षण्यप्रत्यायकम् चिह्नमिति चेत् तन्न युक्तियुतं वचः, प्रसङ्गतः कथायामपि वक्त्रापरवक्त्रयोर्निवेशस्य सम्भवात्। अयमाशयः—कथायामार्यां निबन्धुमध्यवसितस्य कवेर्मनसि 'आर्या वक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्' इति

---

१. कारणम्।

स्मृत्वा वक्त्रापवक्त्रयोर्निबन्धस्य प्रवृत्तिर्यदि जायते तदा सा नैव दोषाय भवति, कथायां वक्त्रापवक्त्रयोरनिवेशस्य मुखतः केनाप्यशिष्टत्वात् अपितु—'आर्या वक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्' इति सामान्यत एव निर्दिष्टत्वात्। एवमेव सोच्छ्वासत्वमपि न भेद-निर्णयकरम्, लम्भः कथायाः परिच्छेदस्य संज्ञा, उच्छ्वासश्च आख्यायिकायाः परिच्छेदस्य संज्ञेति विशिष्य न व्यवस्थितम्, तयोः संज्ञयोर्भिन्नत्वेऽपि संज्ञिनोरभिन्न-त्वात्, न हि कलशघटरूपसंज्ञाभेदेन घटरूपसंज्ञिभेदः प्रतीयते। रूपभेदो हि घटपटयो-र्भेदको न संज्ञाभेदः, संज्ञाभेदेऽपि कलशघटयोरभिन्नत्वात्। तस्मादेतत् भेदकरणमृजुधिया-मृजुधीत्वमात्रप्रत्यायकमेवेति। तदेव वक्ष्यति पुरः तदिति ॥ २६ ॥

हिन्दी—प्राचीनाचार्योंने कथा तथा आख्यायिकामें भेद करनेके लिये यह व्यवस्था की थी कि आख्यायिकामें परिच्छेदोंको उच्छ्वास शब्दसे व्यवहृत किया जाता है और कथामें लम्भक आदि अभिधानोंसे, इसी प्रकार आर्या छंदसे आख्यायिकामें काम लिया जाता है और वक्त्र तथा अपरवक्त्र छंदोंसे कथामें व्यवहार किया जाता है, परन्तु यह व्यवस्था सङ्गत नहीं है क्योंकि यह भेदचिह्न कथाकी तरह आख्यायिकामें भी निबद्ध हो सकते हैं, इनके भेदसे वस्तुभेद नहीं हो सकता। कथानिर्माणमें प्रवृत्त कवि यदि इन चिह्नोंसे काम लेता है, तो वही कवि आख्यायिकामें यदि भिन्न चिह्नोंका प्रयोग करे तो इससे आख्यायिका तथा कथामें कुछ अन्तर नहीं होता ॥ २६ ॥

आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः ॥ २७ ॥

कथायामपि आर्यादिवत् वक्त्रापरवक्त्रयोः प्रवेशे किं बाधकम्? प्रसङ्गतः कदाचिदार्यानिबन्धने प्रसक्तः कविर्वक्त्रस्मरणेन तयोर्निबन्धनं कुर्याच्चेत् न तद्दोषाय जायते। कथा वक्त्रापरवक्त्ररहितैव स्यादस्यार्थस्य स्पष्टं केनाप्यनुक्तेः। एवमेव लम्भादिकृतभेदस्यापि अयुक्तत्वं बोध्यम् ॥ २७ ॥

हिन्दी—कथाकाव्यमें भी आर्या आदिकी तरह वक्त्र तथा अपरवक्त्र नाम छन्दोंके समावेशमें कुछ बाधक नहीं है। फलतः कथा तथा आख्यायिका उभयत्र आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र इन तीनों वृत्तोंका यथेच्छ प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार लम्भक, उच्छ्वास आदि भी इनमें भेद नहीं सिद्ध कर सकते। कथामें भी लम्भक, उच्छ्वास आदि संज्ञासे प्रकरणविच्छेद किया जा सकता है और आख्यायिकामें भी, इस अवान्तर भेदोंसे कथा तथा आख्यायिकामें कुछ भेद सिद्ध होते नजर नहीं आते है। इस प्रकार आचार्य दण्डीने कथा तथा आख्यायिकामें कुछ भेद नहीं माना है, संज्ञाभेदको घटकलशादिभेदवत् अप्रयोजक बताया है ॥ २७ ॥

तत् कथाऽऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥ २८ ॥

तत् तस्मात् संज्ञाभेदस्याप्रयोजकत्वात् कथा आख्यायिका चेति संज्ञाद्वयाङ्किता नामद्वितयाभिधीयमाना एका जातिः तुल्यः पदार्थः। कथाया आख्यायिकायाश्च भेदो नास्ति, नामभेदस्त्वप्रयोजक इत्यर्थः। एवं कथाऽऽख्यायिकयोरभेदं प्रतिपाद्य खण्डकथा, परिकथा, कथालिका, इत्यादीनामपि परैरुक्तानां कथायामेवान्तर्भावं बोधयितुमाह—

---

१. प्रयोगः। २. लम्भादिर्।

अत्रैवेति। शेषा उक्तायाः कथाया अतिरिक्ता आख्यानजातयो गद्यकाव्यानि अत्र कथायामेव अन्तर्भविष्यन्ति समावेद्यन्ति। ता अपि नाममात्रभेदभाजः कथा एवेत्यर्थः। अग्निपुराणे—कथादिरूपप्रस्तावे पञ्चप्रकारता गद्यकाव्यानामभिहिता, तथा चोक्तं तेनैव—

'आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यञ्च पञ्चधा॥'

दण्डी तु सर्वानपि गद्यभेदान् कथायामेवान्तर्भावयति, तदिदं तस्य प्रौढिवादमात्रम्, सम्प्रदायपरिपन्थित्वात्तथाऽभिधानस्येति बोध्यम्॥ २८॥

हिन्दी—कथा और आख्यायिका यह केवल संज्ञाभेद है, संज्ञाओंके भिन्न होनेसे भी संज्ञी-वाच्य अर्थमें भेद नहीं होता, जैसे घट-कलशरूप संज्ञाभेद होनेपर भी वाच्यार्थरूप कम्बु-ग्रीवादिमत्पदार्थविशेषमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है, उसी तरह कथा-आख्यायिकारूप संज्ञाभेद होनेपर भी गद्यकाव्यरूप वाच्यार्थमें कुछ भी अन्तर नहीं है। इसी प्रकार खण्डकथा, परिकथा, कथानिका आदि गद्यप्रबन्धोंका भी आख्यायिकामें ही अन्तर्भाव समझना चाहिये॥ २८॥

**कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयादयः।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः॥ २९॥**

केचिदाचार्याः-'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता' इति प्राचीनोक्तिमनुसन्दधानाः कन्याहरणादीनि विशिष्याख्यायिकायां वर्णनीयत्वेन स्वीकुर्वन्तो वर्णनीयकन्याहरणादि-भेदेन कथाऽऽख्यायिकयोर्भेदमातिष्ठन्ते, तदपि न युक्तम्, इत्याह—**कन्याहरणेति**। कन्याहरणमसम्पन्नपाणिग्रहणां कन्यां बलाद् हृत्वा तया सह क्रियमाणो विवाहः' स हि राक्षसविवाहनाम्ना स्मृतिषु व्यपदिश्यते-यथोक्तं मनुना—

'हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं हठात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते'॥ (३.३३.)

समरः-युद्धक्रिया। स च त्रिप्रकारकः, समः, विषमः, समविषमश्च। तत्र समौ द्वन्द्वयुद्धं चतुरङ्गयुद्धं च। द्वन्द्वयुद्धं यथा रामरावणयोः। चतुरङ्गयुद्धं यथा कुरुपाण्डवानाम्। विषमो यथा—रामस्य खरदूषणत्रिशिरोभिः सह। समविषमो यथा—महेश्वरार्जुनयोः किरातार्जुनीये। विप्रलम्भः-'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ' इति लक्षणलक्षितः। स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्। अयं विप्रलम्भः संभोगस्याप्युपलक्षकः, विप्रलम्भस्य संभोगवर्णनसापेक्षत्वात्। उदयः-सूर्याचन्द्रमसोः, नायकस्य वाऽभ्युदयः। एते गुणाः सर्गबन्धसमाः महाकाव्यसदृशाः। एते हि वर्णनीय-विधया महाकाव्य इव। यद्येते विषयाः महाकाव्ये पद्यप्रबन्धविशेषेऽपि संभवन्ति तदा गद्यकाव्यभेदभूते कथारूपे किमिति न भवेयुः। एषां वर्णनं नाख्यायिकामात्रे क्रियते किन्तु पद्यप्रबन्धेऽपि, तदिदं भेदकथनं न युक्तमिति भावः॥ २९॥

हिन्दी—आख्यायिकामें 'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता' इस प्राचीनोक्तिके अनुसार-कन्याहरण-राक्षसविवाह, युद्ध, वियोग (संभोग), चन्द्रसूर्योदय, आदिका वर्णन होता है अतः इस वर्णनीय भेदसे कथा और आख्यायिकामें भेद सिद्ध है, इस तर्कका भी खण्डन इस कारिकामें किया गया है। यदि कन्याहरणादि वस्तु आख्यायिकामात्रनिष्ठ होते तब यह भेदक हो सकते

थे, परन्तु यह कन्याहरणादि तो महाकाव्योंमें भी वर्णनीयतया स्वीकृत है, अतः इनके वर्णनसे आख्यायिका और कथाका भेद प्रमाणित नहीं किया जा सकता ॥ २९ ॥

कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि[1] न दुष्यति ।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ[2] किं हि न स्यात् कृतात्मनाम् ॥ ३० ॥

'कवेरभिप्रायकृतैरङ्कनैः कैश्चिदङ्किता' इति प्रतिपादयता भामहाचार्येण कथायां किञ्चित्तादृशं चिह्नं कविना निवेशनीयं येन कथाऽऽख्यायिकयोर्भेदः प्रमितः स्यादित्युक्तं, तद्दूषयितुमियं कारिका । अन्यत्र कथातो भिन्ने पद्यप्रबन्धे महाकाव्यादौ । कविभावकृतम्–कविना स्वेच्छया निबद्धम् । तथा हि दृश्यते महाकाव्येषु, शिशुपालवधे प्रतिसर्गान्ते श्रीशब्दप्रयोगात् श्रयङ्कत्वम्, किरातार्जुनीये च लक्ष्म्यङ्कत्वम् । यथा महाकाव्यादौ कविः स्वेच्छया श्रयङ्कत्वादिकं निवेशयति तद्वत् कथाभिन्ने आख्यायिकादौ यदि किमपि स्वाभिमतं चिह्नं निवेशयेत्तेन न कापि त्रुटिः, तथा च न च तादृशशालित्वं कथामात्रनियतं, महाकाव्यादौ तद्दर्शनादतो न तादृशं चिह्नं कथाख्यायिकयोर्भेदप्रमापकम् । तदियता परिकरेण कथाऽऽख्यायिकयोर्भेदो निरस्तः । तादृशचिह्नस्य न कथाऽऽख्यायिकयोर्भेदमात्रज्ञापनपरत्वं येन वैयर्थ्यं शङ्क्येत, किन्तु मङ्गलाद्यन्यप्रयोजनप्रमापकत्वमपीत्याह—**मुखमिति** । कृतात्मनाम् कृतिनाम् सूरिणाम् इष्टार्थसंसिद्धौ मङ्गलादिरूपाभिमतार्थसम्पादने, मुखम्—उपायः, किं न स्यात्, तादृशं चिह्नं मङ्गलाद्यर्थं कृतं वेदितव्यम्, कथाख्यायिकयोर्भेदं बोधयितुमित्यर्थः ॥ ३० ॥

हिन्दी—आचार्य भामहने 'कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता' के अनुसार यह माना है कि कथामें कवि अपनी इच्छाके अनुकूल कुछ चिह्न लगाते हैं (जैसे माघने अपने काव्यमें प्रतिसर्गान्तश्लोकमें श्री शब्द लगाया, या किरातार्जुनीयमें भारविने लक्ष्मी शब्द जोड़कर उसे लक्ष्म्यङ्क बनाया) यही कथा तथा आख्यायिकामें भेद मानना चाहिये, परन्तु यह बात यदि कथामात्रमें देखी जाती तब हम इसे कथासे आख्यायिका का भेद समझते परन्तु ऐसा नहीं है। इस तरहके चिह्न तो पद्यप्रबन्ध महाकाव्योंमें भी दीखते हैं, तब भला इनसे कथा तथा आख्यायिकामें भेद कैसे निर्णीत किया जा सकेगा। कवि लोग इस तरहके चिह्न कथामें, आख्यायिकामें या महाकाव्यमें यहाँ जी चाहे लगाया करते हैं, तब इससे कुछ फल भामहके मतमें नहीं होता। कृती कविगण चाहे जिस तरहके शब्द-प्रयोग द्वारा अपना अभीष्ट अर्थ मङ्गलादिकी सिद्धि कर लिया करते हैं, उनकी वाणीपूजामें इतना सामर्थ्य होता है कि ये चाहे जिस शब्दसे अभिप्रेत अर्थ साध लिया करते हैं ॥ ३० ॥

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः ।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥ ३१ ॥

आचार्यदण्डिना 'गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्' इति काव्यभेदकथनप्रस्तावे प्रतिपादितम्, तत्र गद्यपद्ययोः प्रभेदेषु निरूप्यमानेषु सम्प्रति क्रमप्राप्तं मिश्रं नाम प्रभेदं जिज्ञपयिषुराह—**मिश्राणीति** । नाटकादीनि दृश्यकाव्यानि मिश्राणि गद्यपद्योभयात्मकतया मिश्राणि तत्पदव्यपदेश्यानि, तेषां नाटकादिदृश्यकाव्यानाम् अन्यत्र नाट्यशास्त्रादौ विस्तरः साङ्गं सरहस्यं च प्रतिपादनं कृतमस्तीति शेषः,

१. अन्यद्यापि । २. संसिद्ध्यै ।

हिन्दी—प्राकृत अनेक प्रकारके हैं—महाराष्ट्री, शौरसेनी, गौडी, मागधी आदि। उनमें महाराष्ट्री-प्राकृत सर्वोत्तम है, ऐसा विद्वान् कहा करते हैं, क्योंकि उसी प्राकृतप्रभेद महाराष्ट्रीमें 'प्रवरसेन' नामक कविने 'सेतुबन्ध' नामक काव्य की रचना की है, 'सत्तसई' प्रभृति ग्रन्थ भी उसी प्राकृतमें लिखे गये हैं, जिन ग्रन्थोंमें चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। 'सेतुबन्ध', 'सत्तसई' प्रभृति उत्तम ग्रन्थोंकी भाषा होनेके कारण ही महाराष्ट्री प्राकृत सर्वश्रेष्ठ प्राकृत मानी जाती है। उन ग्रन्थोंकी श्रेष्ठता इसलिये कही जाती है कि उनमें चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ बहुतायतसे प्राप्त होती हैं॥ ३४॥

शौरसेनी च गौडी च लाटी चान्या च तादृशी।
याति प्राकृतमित्येव[1] व्यवहारेषु सन्निधिम्[2]॥ ३५॥

शूरसेनो नाम कृष्णमातामहः प्रसिद्धस्तदधिकृतो मथुरासन्निहितो देशो भवति शूरसेनः, तदुक्तं भागवते—

'शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्। माथुराञ् शूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा'॥ शूरसेनपदमत्र तद्देशवासिषूपचर्यते, तथा च शूरसेनाभिधदेशवासिजनव्यवहार्या प्राकृतभाषा शौरसेनी बोध्या।

गौडी प्राकृतभाषा सा कथ्यते या गौडदेशवासिभिर्व्यवह्रियते, गौडो नाम वङ्गसमीपवर्ती देशविशेषः, यदुक्तं शब्दकल्पद्रुमे—

'वङ्गदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे। गौडदेशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः'॥

लाटी लाटजनव्यवहार्या, लाटश्च कर्णाटसन्निहितो देशविशेषः, तथा चोक्तम्—

'ददौ तस्मै सपुत्राय प्रीत्या वीरवराय च। लाटदेशे ततो राज्यं स कर्णाटयुतो नृपः'॥

तादृशी महाराष्ट्र्यादिसदृशी तत्तद्देशनाम्नोपलक्षिता अन्या मागधी अवन्तिजा प्राच्या वा, तदुक्तं नाट्यशास्त्रे—

'मागध्यवन्तिजा प्राच्या शूरसेनार्धमागधी। बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषाः प्रकीर्त्तिताः'॥

एताः सर्वा अपि भाषाः प्राकृतमिति, एवं प्राकृतनाम्ना एव व्यवहारेषु नाट्यशास्त्र-साहित्यशास्त्रादिव्यवहारेषु सन्निधिं याति प्राप्नोति, आचार्याः सर्वा अपीमा भाषाः प्राकृतपदेनैव व्यपदिशन्तीति भावः॥ ३५॥

हिन्दी—शूरसेन नामके राजा कृष्णमातामहके रूपमें प्रसिद्ध हैं, उनके द्वारा शासित भूखण्डको शूरसेन कहा जाता है, यह मथुरापुरीके आसपास है, वहाँकी जनता जिस प्राकृतका प्रयोग करती है, उसे 'शौरसेनी' प्राकृत कहते हैं। इसी तरह लाटदेशस्थ जनताद्वारा व्यवहृत भाषा लाटी कही जाती है। गौड देशकी भाषा गौडी कही जाती है, ये सभी देशनामोपलक्षित भाषायें नाट्यशास्त्र तथा साहित्यशास्त्रके व्यवहारोंमें प्राकृतनामसे व्यवहृत होती हैं॥ ३५॥

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः[3]।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्[4]॥ ३६॥

देशनामोपलक्षिता भाषाः प्राकृतपदाभिलप्या इत्युक्त्वा सम्प्रति जातिनामोपलक्षितभाषाणामपभ्रंशत्वमुपपादयति—**आभीरेति**। आभीरा गोपास्तदादयः आभीर-

१. इत्येवं। २. सन्निधिः। ३. काव्ये। ४. भ्रंश इतीरिताः।

शबरशकचाण्डालादयः, तेषां गिरस्तद्व्यवहार्या भाषाः आभीरीशाबर्यादयोऽपभ्रंश इति स्मृताः काव्येषु अपभ्रंशपदबोध्याः। आभीरादिगिरां केवलं काव्ये एवापभ्रंशपदवाच्यत्वं, शास्त्रेषु तु व्याकरणादिषु च्युतसंस्कृतीनाम् संस्कृतादन्यासां सर्वासामेव भाषाणां प्राकृतादीनामपभ्रंशपदबोध्यत्वमिति। शास्त्रे संस्कृतमपभ्रंशश्चेति द्वावेव प्रभेदौ, तत्र संस्कृतभिन्नमखिलमपि अपभ्रंशशब्दप्रतिपाद्यमिति भावः॥ ३६॥

हिन्दी—इससे पहलेवाली कारिकामें देशनामोपलक्षित सभी भाषाओंको प्राकृत-प्रभेद कहा गया है, जैसे महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी आदि। अब जातिनामोपलक्षित भाषाओंको अपभ्रंश कह रहे हैं। काव्यमें आभीर आदि जातियों द्वारा व्यवहृत होनेवाली भाषायें अपभ्रंश मानी जाती हैं। परन्तु यह केवल काव्यविषयक नियम है, व्याकरणादि शास्त्रमें तो अपभ्रंश संस्कृतसे भिन्न भाषासामान्यको कहा जाता है। पतञ्जलिने स्पष्ट कहा है कि यदि व्याकरणलक्षणहीन भाषाका प्रयोग होगा तो वह भाषा अपभ्रंश होगी, तथा उसके प्रयोक्ता म्लेच्छ समझे जायेंगे। देखिये—'ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै, म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः, म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्' (महाभाष्य-१-१-१)॥ ३६॥

संस्कृतं सर्गबन्धादि प्राकृतं स्कन्धकादि यत्।
ओसरादिरपभ्रंशो नाटकादि तु मिश्रकम्॥ ३७॥

भाषाभेदमभिधाय तत्तद्भाषाभेदेन पद्यप्रबन्धान् लक्षणमुखेन व्यवस्थापयति—**संस्कृतमिति**। सर्गबन्धादि महाकाव्यादिकम्[1]–संस्कृतम्–संस्कृतभाषायामेव निबन्धनीयं भवति, महाकाव्यखण्डकाव्यादि संस्कृतभाषायामेव विरच्यते नान्यस्यामिति प्रथमपादार्थः। तथा चोक्तमाग्नेये—

'सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत्।
तद्भवं न विशेत्तत्र तत्समं नापि किञ्चन'॥

यथा—रामायणादि। स्कन्धकादि स्कन्धकः छन्दोविशेषस्तद्विरचितं काव्यमपि स्कन्धकं, तत्प्राकृतम् प्राकृतभाषायामेव निबन्धनीयमिति द्वितीयपादार्थः। उक्तं चान्यत्र 'छन्दसा स्कन्धकेनैतत् क्वचिद्गलितकैरपि'। अस्योदाहरणं सेतुबन्धादि। ओसरो नामच्छन्दोभेदः, तद्ग्रथितं काव्यमपभ्रंशभाषायामेव विधातव्यम्, एतादृशे च काव्ये सर्गाः कुडवकाभिधा भवन्ति, तदुक्तमन्यत्र—

'अपभ्रंशनिबन्धेऽस्मिन्सर्गाः कुडवकाभिधाः।
तथापभ्रंशयोग्यानि च्छन्दांसि विविधानि च'॥

अपभ्रंशभाषायां निबद्धं काव्यम्—कर्णपराक्रमादि। नाटकादि तु मिश्रकम्—नानाभाषाभिर्मिश्रितं विधेयमिति यावत्। नाटकादौ पात्रभेदेन भाषानियम उक्तो यथा साहित्यदर्पणे—

'पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात् कृतात्मनाम्।
शौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशीनां च योषिताम्॥
आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत्।

---

१. स्कान्धादिकम्।

अत्रोक्ता मागधी भाषा राजान्तःपुरचारिणाम् ॥
चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठिनां चार्धमागधी ।
प्राच्या विदूषकादीनां धूर्त्तानां स्यादवन्तिका ॥
योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दीव्यताम् ।
शबराणां शकादीनां शाबरीं सम्प्रयोजयेत्' ॥

तदेवं भाषाभेदेन काव्यलक्षणानि निरुक्तानि, तथा च महाकाव्यं संस्कृतमयम्, स्कन्धकं प्राकृतमयम्, ओसरादिरपभ्रंशमयः, नाटकादि तु नानाभाषामयमिति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—इससे पूर्वमें भाषाका विभाग बताया गया है, इस कारिकामें भाषा-भेदसे पद्यप्रबन्धोंके लक्षण स्थिर किये जाते हैं। सर्गबन्ध अर्थात् महाकाव्य-खण्डकाव्य संस्कृतमें ही लिखे जाते हैं, स्कन्धक—एक प्रकार का वृत्त, उसमें लिखे गये काव्य प्राकृतमय ही होते हैं, इसी तरह ओसर आदि छन्दोंमें लिखे गये काव्योंकी भाषा अपभ्रंश भाषा ही होती है, नाटकोंमें सभी तरहकी भाषाओंका प्रयोग किया जाता है। नाटकोंमें पात्रभेदसे विविध भाषाका प्रयोग होता है, जिसकी व्यवस्था ऊपरकी टीकामें दी गई है ॥ ३७ ॥

कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते[1] ।
भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम् ॥ ३८ ॥

महाकाव्ये संस्कृतमेव भाषा, स्कन्धकादिवृत्तनिबद्धे प्राकृतमेव, ओसरादौ पुनरपभ्रंश इति काव्यप्रभेदप्रथमे पद्यकाव्ये भाषानियमं कृत्वा गद्यकाव्यगतं तन्नियममुपक्रमते—**कथा हीति**। कथालक्षणं प्रागुक्तं, सा हि कथा सर्वभाषाभिः सर्वविधाभिः प्राकृतभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते विरच्यते, कथायां भाषानियमो नास्तीत्यर्थः। तत्र संस्कृतभाषा-निबद्धकथोदाहरणं कादम्बर्यादि प्रसिद्धमेव। संस्कृतेतरभाषानिबद्धकथोदाहरणप्रदर्शना-याह—**भूतभाषेति**। भूतभाषामयीम् पैशाचभाषयोपनिबद्धाम् अद्भुतार्थाम् रमणीयवृत्त-घटिताम् बृहत्कथाम् नाम ग्रन्थमाहुः। इयं बृहत्कथा सम्प्रति नोपलभ्यते, तदनुवादभूता बृहत्कथामञ्जर्यादयो ग्रन्थाः प्रथन्ते ॥ ३८ ॥

हिन्दी—महाकाव्यकी भाषा नियमतः संस्कृत हो, स्कन्धकच्छन्दमें निर्मित काव्यकी भाषा प्राकृत हो, ओसर प्रभृति छन्दोंके योग्य भाषा अपभ्रंश होती है, इस प्रकार पद्यकाव्योंकी भाषाके विषय में निश्चय किया गया है, अब इस कारिकामें गद्यकाव्य-कथाकी भाषाके विषयमें अपना विचार प्रकट करते हैं। कथामें भाषाका कुछ नियम नहीं है, कथा संस्कृत भाषामें तथा अन्यान्य भाषाओंमें समानरूपसे लिखी जाती है। उदाहरणार्थ संस्कृतभाषानिबद्ध कथा 'कादम्बरी' एवं भूतभाषानिबद्ध कथा 'बृहत्कथा' उपस्थित की जा सकती है। बृहत्कथा गुणाढ्यकी रचना है, वह अपने मूल रूपमें प्राप्य नहीं है, उसके अनुवाद—बृहत्कथामञ्जरी एवं कथासरित्सागर आदि मिलते हैं ॥ ३८ ॥

लास्यच्छलितशम्पादि[3] प्रेक्षार्थम्[4] इतरत् पुनः ।
श्रव्यमेवेति[5] सैषाऽपि[6] द्वयी गतिरुदाहृता ॥ ३९ ॥

स्त्रीजनकृतं शृङ्गाररसप्रधानं नृत्यं लास्यम्, तथा चोक्तम्—

'लासः स्त्रीपुंसयोर्भावस्तदर्हं तत्र साधु वा। लास्यं मनसिजोल्लासकरं मृदङ्गहासवत् ॥

---

१. कथापि। २. पठ्यते। ३. शल्यादि, साम्यादि, शम्पादि। ४. प्रेक्ष्यार्थम्। ५. श्राव्यम्। ६. सैवेषा।

देव्यै देवोपदिष्टत्वात् प्रायः स्त्रीभिः प्रयुज्यते' । इति ।
'कोमलं मधुरं लास्यं शृङ्गाररससंयुतम् । गौरीतोषकरं चापि स्त्रीनृत्यं तु तदुच्यते' ॥ इति च ।

छलितं पुंनृत्यम्, तदुक्तं प्रेमचन्द्रेण—'पुंनृत्यं छलितं प्राहुः' इति । केचित्तु छलिकमिति पाठं प्रकल्पयन्तः—'छलिकं छद्मना वृत्तं सूरयस्तद्विदो विदुः' इति छलिकलक्षणमुपस्थापयन्ति । शम्पा पूर्वरङ्गान्तर्गतः वाद्यप्रयोगविशेषः, तदुक्तं नाट्यशास्त्रे—

'शम्पा तु द्विकला कार्या तालो द्विकल एव च ।
पुनश्चैककला शम्पा सन्निपातः कलात्रयम्' ॥ इति ।

आदिना ताण्डवहल्लीशरासकानां ग्रहणम्, तत्र ताण्डवलक्षणमुक्तं यथा—

'वीररौद्ररसाधारमद्भुतं शङ्करप्रियम् । पुरुषेण समारब्धं नृत्यं ताण्डवमुच्यते' ॥

अन्यच्च—

'उद्धतं तु महेशस्य शासनात् तण्डुनोदितम् । भरताय ततः ख्यातं लोके ताण्डवसंज्ञया' ॥

हल्लीशकलक्षणं यथा—

'मण्डलेन तु यत् स्त्रीणां नृत्यं हल्लीशकं तु तत् ।
तत्र नेता भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः' ॥

हल्लीशमेव तालबन्धविशेषयुक्तं रासकमिति प्रेमचन्द्रशर्माणः । एतत् सर्वं लास्यादि प्रेक्षार्थम् अवलोकनमात्रफलम्, दृश्यं काव्यमिति यावत् । इतरत्—इतः प्रेक्षार्थाल्लास्यादेर्भिन्नम् महाकाव्यादि श्रव्यमेव श्रवणमात्रलक्षणम् । उक्तश्चायमर्थो भोजराजेन यथा—

'श्रव्यं तत्काव्यमाहुर्यन्नेक्ष्यते नाभिनीयते ।
श्रोत्रयोरेव सुखदं भवेत्तदपि षड्विधम्' ॥ २-१५२

एवम् एषा अपि द्वयी गतिः द्विप्रकारा पद्धतिः प्राचीनैः कथिता । 'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्' इत्यादिना प्राचीनैः काव्यस्य भेदद्वयमुक्तमिति भावः ॥ ३९ ॥

हिन्दी—लास्य—स्त्रीजनद्वारा प्रस्तुत किया गया शृङ्गाररसप्रधान नृत्य लास्य कहा जाता है । छलित—पुरुषों द्वारा प्रस्तुत नृत्य छलित शब्दसे व्यवहृत होता है । शम्पा—पूर्वरङ्गके अन्तर्गत वाद्यप्रयोगविशेषको शम्पा कहते हैं । आदि पदसे ताण्डव हल्लीशक तथा रासकका ग्रहण होता है, ताण्डव—उस नृत्यका नाम है जिसका आधार वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस हो, जो शिवजीका अभीष्ट हो एवं पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया गया हो । हल्लीश उस नृत्यका नाम है जिसमें बहुत-सी स्त्रियाँ एक पुरुषको नेता बनाकर मण्डलाकारमें खड़ी हो नृत्य प्रस्तुत करती हों । रासक—हल्लीश नामक नृत्यप्रभेदमें जब खास तालबन्धका प्रयोग होता है तब वह रासक कहा जाता है । यह सकल—लास्यछलितशम्पादि केवल प्रेक्षार्थ-दृश्य है, इनके अतिरिक्त काव्य श्रव्य हैं, इस प्रकारसे प्राचीनोंने काव्यके दो प्रभेद कहे हैं । इससे पूर्व आचार्य दण्डीने—'गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत्त्रिधैव व्यवस्थितम्' गद्य, पद्य एवं मिश्र कहकर काव्यके तीन प्रभेद बताये थे, उसी प्रसङ्गको समाप्त करते समय प्राचीनोंके मत भी बता दिये गये हैं ॥ ३९ ॥

अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम् ।
तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरौ ॥ ४० ॥

'वाचां विचित्रमार्गाणाम्' इत्यादिना पूर्वं वाग्वैचित्र्यमुपक्रान्तमियता परिकरेण व्युत्पादितं सम्प्रति तासामेव वाचां रीतिभेदेन भिन्नतां बोधयितुमुपक्रमते—अस्त्यनेक

इति० परस्परं सूक्ष्मभेदः स्थूलबुद्धिजनावेद्यपार्थक्यः—केवलं परिपक्वबुद्धिविभवमात्राव-गम्य पार्थक्यः—गिरां वाचां मार्गः रचनाप्रकारः अनेकः बहुविधः अस्ति, तदुक्तं वामनेन—रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टपदरचना रीतिः सा च त्रिविधा—वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली चेति। विश्वनाथस्तु रीतीनां चातुर्विध्यमाह—

'पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा॥
वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा'।

सरस्वतीकण्ठाभरणे रीतीनां षड्विधत्वमुक्तम्—
'वैदर्भी साथ पाञ्चाली गौडीयावन्तिका तथा। लाटीया मागधी चेति षोढा रीतिर्निगद्यते'। आसां पुना रीतीनां लक्षणोदाहरणानि पुरो भाषाटीकायामुच्यन्ते। तत्र एतादृशीषु तिसृषु चतसृषु षट्सु वा रीतिषु वैदर्भगौडीये एव रीती प्रस्फुटान्तरे स्फुटभेदे, अन्यास्तु मिश्रिताः, अतः स्वल्पभेदानामन्यासां रीतीनां विशेषवर्णनं विहाय सुकुमारविकटबन्धात्मक-तयाऽत्यन्तविसदृशौ वैदर्भगौडीये रीती वर्ण्येते इत्याशयः॥ ४०॥

हिन्दी—'वाचां विचित्रमार्गाणां निबबन्धुः क्रियाविधिम्' ऐसा कहकर जिस वाग्वैचित्र्यका उपक्रम किया गया था, वह रीतिभेदसे ही सम्भव होता है, रीतियोंके भेदके विषयमें वामनने तीन भेद माने हैं—वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली। विश्वनाथ कविराजके मतमें रीतियाँ चार हैं—'वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा'। भोजराजने छः रीतियाँ कही हैं—
वैदर्भी साथ पाञ्चाली गौडीयाऽऽवन्तिका तथा। लाटीया मागधी चेति षोढा रीतिर्निगद्यते'॥
उन रीतियोंके लक्षण-उदाहरण इस प्रकार हैं—

वैदर्भी—
लक्षण—'माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका। अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते'॥
उदाहरण—'मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क वत्से क च तावकं वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः'॥

गौडीया—
लक्षण—ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः। समासबहुला गौडी……'
उदाहरण—'चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातनिष्पीडितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भीमः'।

पाञ्चाली—
लक्षण—'……वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयेः। समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता'।
उदाहरण—'मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे'॥

लाटी—
लक्षण—'लाटी तु रीतिर्वैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता'।
उदाहरण—'अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनामुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम्।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्बिभिन्दन् कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि'॥

आवन्तिका—
लक्षण—
'अन्तराले तु पाञ्चालीवैदर्भ्योर्यावतिष्ठते। सावन्तिका समस्तैः स्याद् द्वित्रैस्त्रिचतुरैः पदैः'॥

उदाहरण—'एतानि निस्सहतनोरसमञ्जसानि शून्यं मनः पिशुनयन्ति पदानि तस्याः।
एते च वर्मतरवः प्रथयन्ति तापमालम्बितोज्झितपरिग्लपितैः प्रवालैः ॥'

मागधी—

लक्षण—'पूर्वरीतेरनिर्वाहे खण्डरीतिस्तु मागधी।'

उदाहरण—'करिकवलनशिष्टैः शाखिशाखाग्रपत्रैररणसरणयोऽमी सर्वतो भीषयन्ते।
चलितशबरसेनादत्तगोश्रृङ्गचण्डध्वनिचकितवराहव्याकुला विन्ध्यपादाः ॥'

यहाँ रीतियों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं, इनके विषयमें अधिक जानना हो तो 'सरस्वतीकण्ठाभरण' आदि ग्रन्थोंमें देखिये ॥ ४० ॥

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः ॥ ४१ ॥
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दशगुणाः स्मृताः।
एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि ॥ ४२ ॥

'तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरौ' इति प्रतिज्ञातं लक्षणादिनोपपादयति—**श्लेष** इत्यादिभ्यां द्वाभ्यां कारिकाभ्याम्। श्लेषादीनां लक्षणानि वक्ष्यति। एते दशापि गुणा अत्रोद्दिष्टाः। इति एते दशगुणाः श्लेषादयः वैदर्भमार्गस्य प्राणाः प्राणवत् स्थितिहेतवः स्मृताः भरतादिभिः स्वीकृताः, तदुक्तं भरतेन—

'श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते ॥'

एवं च श्लेषादिगुणगणशालिनी पदरचना वैदर्भीरीतिरिति लक्षणं पर्यवसन्नम्। एवं वैदर्भीं निरूप्य गौडीं रीतिं निरूपयितुमाह—**एषामिति**। गौडवर्त्मनि गौडमार्गे गौडीयरीतौ एषां गुणानाम् विपर्ययः व्यत्यासः, स च कुत्रचिदत्यन्ताभावरूपः कुत्रचिदंशतः सम्बन्धरूपश्च प्रायशो दृश्यते। प्राय इति वैदर्भगौडीयरीत्योः क्वचिद् अनवसेयभेदत्वमपीति बोधयति, यथा ग्राम्यत्वानेयत्वादिविषये द्वयोरेकविधत्वम्, यथोच्यते—'एवमादि न शंसन्ति मार्गयोरुभयोरपि', 'नेदृशं बहु मन्यन्ते मार्गयोरुभयोरपि'। अत एव गौडी असमस्तपदेति केचित्प्रदर्शितवन्तः। इत्थं च वैदर्भी विरुद्धगुणवती पदरचना गौडीति लक्षणं पर्यवसितम्। तादृशविरुद्धधर्मवत्त्वं च दीर्घसमासपरुषाक्षरप्राचुर्यौद्धत्ययोगिरचनाविशेषशालित्वं बोध्यम्। उक्तञ्च—

'समस्तात्युद्भटपदामोजः कान्तिगुणान्विताम्। गौडीयेति विजानन्ति रीतिं रीतिविचक्षणाः' ॥

पुरुषोत्तमोऽप्येवमाह—

'बहुतरसमासयुक्ता सुमहाप्राणाक्षरा च गौडीया।
रीतिरनुप्रासमहिमपरतन्त्रा स्तोभवाक्या च ॥'

तदयमत्र विवेकः—एषु प्रागुक्तेषु दशसु गुणेषु श्लेषः, समता, सुकुमारता, ओजः इति, चत्वारः शब्दगुणाः, प्रसादः अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्तिः, समाधिः एते पञ्चार्थगुणाः, माधुर्यं तूभयगुण इति दण्डिनो मतम्। वामनादयस्तु शब्दगुणा अर्थगुणाश्च प्रत्येकं दशेति वदन्ति ॥ ४१-४२ ॥

---

१. कथ्यते।

हिन्दी—श्लेष—

'श्लिष्टमस्पृष्टशैथिल्यमल्पप्राणाक्षरोत्तरम् । शिथिलं मालतीमाला लोलालिकलिला यथा' ॥

प्रसाद—

'प्रसादवत्प्रसिद्धार्थमिन्दोरिन्दीवरद्युति । लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः' ॥

समता—

'समं बन्धेष्वविषमं ते मृदुस्फुटमध्यमाः । बन्धा मृदुस्फुटोन्मिश्रवर्णविन्यासयोनयः ॥
कोकिलालापवाचालो मामैति मलयानिलः' ।

सुकुमारता—

'अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारमिहेष्यते । मण्डलीकृत्यबर्हाणि कण्ठैर्मधुरगीतिभिः ।
कलापिनः प्रनृत्यन्ति काले जीमूतमालिनि' ।

अर्थव्यक्ति—

'अर्थव्यक्तिरनेयत्वमर्थस्य हरिणोद्धृता । भूः खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितादुदधेरिति' ।

उदारता—

'उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते । तदुदाराह्वयं तेन सनाथा काव्यपद्धतिः ॥
अर्थिनां कृपणा दृष्टिस्त्वन्मुखे पतिता सकृत् । तदवस्था पुनर्देव नान्यस्य मुखमीक्षते' ॥

माधुर्य—

'मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः । येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः' ॥

ओजः—

'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम् । पद्येऽप्यदाक्षिणात्यानामिदमेकं परायणम्' ॥

कान्तिः—'कान्तं सर्वजगत् कान्तं लौकिकार्थानतिक्रमात् ।'

समाधि—

'अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना । सम्यगाधीयते यत्र स समाधिः स्मृतो यथा ।
कुमुदानि निमीलन्ति कमलान्युन्मिषन्ति च । इति नेत्रक्रियाध्यासाल्लब्धा तद्वाचिनी श्रुतिः ॥'

इस तरह इन दश गुणोंके लक्षण-उदाहरण इसी ग्रन्थमें यथास्थान लिखे गये हैं। इस प्रकार बताये गये यही दश गुण वैदर्भी रीतिके प्राण—जीवनाधायक (स्वरूपोपपादक) कहे गये हैं। यह प्राचीन दशगुणवादी मत नाट्यसूत्रकार भरतसमर्थित है, भरतने—'काव्यार्थगुणा दशैते' कहकर अपनी राय साफ बता दी है, अतः 'माधुर्यौजःप्रसादाख्यास्त्रयस्तेन पुनर्दश' यह काव्यप्रकाशकारका साटोप कथन सम्प्रदायविरुद्ध मानना चाहिये। इन दशविध गुणोंमें श्लेष, समता, सुकुमारता, ओज ये चार शब्दगुण हैं। प्रसाद, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति, समाधि ये पाँच अर्थगुण हैं, और माधुर्य शब्दार्थोभय गुण है। ऐसा ही दण्डीका मत है। वामन आदि प्राचीन आचार्योंने दश शब्दगुण और दश अर्थगुण पृथक्-पृथक् स्वीकार किये हैं, इस विषयमें उनका ग्रन्थ द्रष्टव्य है। इन गुणोंका होना वैदर्भी रीतिका प्राण माना गया है। गौडी रीतिमें इन गुणोंका विपर्यय होता है, विपर्यय शब्दसे यहाँ अत्यन्ताभाव और आंशिक सम्बन्ध दोनों विवक्षित हैं। गौडी रीतिमें इन गुणोंका सर्वात्मना अभाव भी होता है, और कुछ स्थलोंमें अंशतः इन गुणों का समावेश भी होता है। 'प्रायः' कहने से कुछ अंशोंमें दोनों रीतिओंकी समता मानी जाती है, जैसे 'ग्राम्यत्व' दोनों रीतियोंमें अवश्य परिहार्य दोष माना गया है।।४१-४२॥

श्लिष्टमस्पृष्टशैथिल्यमल्पप्राणाक्षरोत्तरम् ।
शिथिलं मालतीमाला लोलालिकलिला यथा ॥ ४३ ॥

१ '[illegible]' इति [illegible] पाठः ।

अस्पृष्टशैथिल्यम् अंशतोऽपि शैथिल्यमस्पृशत् यत् तत् श्लिष्टम् श्लेषगुणोपेतम्, यत्र वाक्ये शिथिलो वर्णविन्यासो न भवति तद् वाक्यं श्लिष्टमित्यर्थः। शिथिलताविरहः श्लेष इत्युक्तं तत्र शैथिल्यमेव किमित्यपेक्षायामाह—**अल्पप्राणेति**। अल्पप्राणाः वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्च ते उत्तराः प्रधाना बहुला वा यत्र तादृशम् अल्पप्राणाक्षरोत्तरम् शिथिलम्, तदुदाहरणं यथा—**मालतीमालेति**। लोलालिकलिला सौरभाहरणचपलभ्रमरव्याप्ता मालतीमाला तदाख्यपुष्पस्रक् भातीति शेषः। अत्रोदाहरणेऽसंयुक्ताल्पप्राणवर्णबाहुल्याच्छैथिल्यं स्पष्टम्। जगन्नाथपण्डितराजस्तु 'श्लिष्टमस्पृष्टशैथिल्यम्' इति दण्डिलक्षणमुपन्यस्य तदित्थं परिष्करोति—'शब्दानां भिन्नानामपि एकत्वप्रतिभानप्रयोजकः संहितयैकजातीयवर्णविन्यासविशेषो गाढत्वापरपर्यायः श्लेषः'। उदाहरति च—'अनवरतविहद्द्रुमद्रोहिदारिद्र्यमायद्विद्विपोद्दामदर्पौघविद्रावणप्रौढपञ्चाननः'॥ ४३॥

हिन्दी—जिस वाक्यमें शिथिलता अंशतः भी नहीं आयी हो उसे श्लिष्ट—श्लेषगुणयुक्त कहते हैं। शिथिलताकी परिभाषा यह है कि—अधिकसंख्यामें अल्पप्राण वर्ण हों। उसका उदारण यही है—'मालतीमाला लोलालिकलिला'। इस उदाहरणमें असंयुक्त अल्पप्राणवर्णबाहुल्य विद्यमान है। श्लेषगुणके सम्बन्धमें आचार्योंने अलग-अलग अपने मत प्रकट किये हैं, भरताचार्यने स्वभावस्पष्ट किन्तु विचारगहनवचनको श्लेष कहा है—

उनका लक्षण यों है—

'विचारगहनं यत्स्यात्स्फुटं चैव स्वभावतः। स्वतः सुप्रतिबद्धं च श्लिष्टं तत परिकीर्त्तितम्'।

इसका उदाहरण दिया है :—

'स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः'॥

इस लक्षणमें वामनादि आचार्योंको यह अरुचि मालूम पड़ी कि यह तो अभिधानाभिधेय पद्धति है सन्दर्भरचना नहीं, इसी अरुचिको हृदयमें रखकर वामनादिने कहा—

'मसृणत्वं श्लेषः, मसृणत्वं नाम यस्मिन् सति बहूनि पदानि एकं पदवद् भासन्ते'। कहा है—यत्रैकपदवद्भावः पदानां भूयसामपि। अनालक्षितसन्धीनां स श्लेषः परमो गुणः'॥

इसका उदाहरण—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'॥

भोजराजने—'गुणः सुश्लिष्टपदता श्लेष इत्यभिधीयते'।

ऐसा लक्षण कहकर उदाहरण दिया है—

'उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।
तदोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः'॥

काव्यप्रकाशकारने—

'बहूनामपि पदानामेकपदवद्भासनात्मा श्लेषः'।

यह लक्षण लिखा है। इस श्लेष नामक गुणका अर्वाचीन आचार्योंने ओजमें अन्तर्भाव माना है, साहित्यदर्पणमें लिखा है—

'श्लेषः समाधिरौदार्यं प्रसाद इति ये पुनः। गुणाश्चिरन्तनैरुक्ता ओजस्यन्तर्भवन्ति ते'॥

भोजराजने इसी श्लेषको अर्थगुण भी माना है॥ ४३॥

अनुप्रासधिया गौडैस्तदिष्टं बन्धगौरवात्।
वैदर्भैर्मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैरिति॥ ४४॥

प्रागुदाहृतस्वरूपं शैथिल्यं वैदर्भा नाद्रियन्ते, किन्तु गौडास्तच्छैथिल्यं केवलमनुप्रासानुरागेण बहु मन्यन्ते, एतदुक्तमत्र कारिकायाम्—**अनुप्रासधिया गौडैस्तदिष्टम्** इत्यंशेन। वैदर्भास्तु शैथिल्यरहितं श्लिष्टं बन्धगौरवादाद्रियमाणाः श्लेषमुदाहरन्ति, **मालतीदाम लङ्घितं भ्रमरैरिति**। अत्र संयुक्तमहाप्राणवर्णविन्यासात् शैथिल्यं नास्ति। ततश्चास्पृष्टशैथिल्यतया भवतीदं श्लेषोदाहरणमिति बोध्यम् ॥ ४४ ॥

हिन्दी—इससे पूर्वकी कारिकामें श्लेषगुणके निर्वचनप्रसङ्गमें शिथिलताका लक्षण-उदाहरण बताया गया है, वह शिथिलता गौड़ लोगोंको पसन्द है क्योंकि गौड़ लोग अनुप्रासके प्रेमी होते हैं। वैदर्भ लोगोंको वह शिथिलता भली नहीं लगती, अतः शिथिलतारहित वर्णविन्यास-श्लिष्ट-श्लेषगुणयुक्त—बन्धगौरवके कारण उन्हें अधिक प्रिय होता है। श्लेषका उदाहरण—'मालती दाम लङ्घितं भ्रमरैः'। इस वाक्यमें संयुक्त महाप्राणवर्णबाहुल्य है, अतः यह श्लेषगुणयुक्त है ॥ ४४ ॥

प्रसादवत् प्रसिद्धार्थमिन्दोरिन्दीवरद्युति।
लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः ॥ ४५ ॥

प्रसादं नाम गुणं लक्षयति—**प्रसादेति**। प्रसिद्धार्थम् उभयार्थकशब्दस्याप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगे सति निहतार्थतारूपो दोष आपतेत्तद्वारणाय यत्र प्रसिद्धार्थकपदप्रयोगः, तादृशं प्रसिद्धार्थम्, अत एव च प्रतीतिसुभगं बोधसुन्दरम् अधिकपदत्वकष्टत्वादिदोषपरिहारेण झटित्यर्थोपस्थापकं वचः प्रसादवत् प्रसादाख्यगुणोपेतम्, यथा—**इन्दोरिति**। इन्दोः चन्द्रमसः इन्दीवरद्युतिनीलकमलाभम् श्यामम् लक्ष्म कलङ्कः लक्ष्मीं तनोति शोभां विस्तारयति। अत्रेन्दीवरादयः शब्दाः प्रसिद्धेष्वर्थेषु प्रयुक्ततया श्रुतिमात्रेणार्थबोधकाः अत्रत्यमुदाहरणं कालिदासीयं—'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोती'ति पद्यं स्फुटमनुहरतीति विद्वांसो विभावयन्तु ॥ ४५ ॥

हिन्दी—जिस वाक्यमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया गया हो जो सुनते ही अपना अर्थ प्रकट कर दें, वैसा वाक्य प्रसादगुण युक्त माना जाता है। अतः प्रसाद गुण का लक्षण यह है—'प्रसिद्धार्थकपदप्रयोगेणार्थप्रतीतौ चेतः सन्तोषापादको गुणः प्रसादः'। उदाहरण—'इन्दोरिन्दीवरद्युति लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' इस वाक्यके सभी शब्द शीघ्र अर्थप्रतीति करानेमें समर्थ हैं, क्योंकि इनमें कहीं भी निहतार्थत्वादि दोष नहीं है। प्रसादगुणका लक्षण भरतने यह कहा है—

'यथानुक्तो बुधैर्यत्र शब्दादर्थः प्रतीयते। सुखशब्दार्थसंयोगात् प्रसादः परिकीर्त्यते'।

उदाहरण दिया है—

'यस्यातुरतिगम्भीरजलदप्रतिमं गलम्। स वः करोतु निस्सङ्गमुदयं प्रति मङ्गलम्' ॥

वामनने प्रसादगुणमें शिथिलता तथा ओजका मिश्रण माना है, और लक्षण यह कहा है—

'शलथत्वमोजसा युक्तं प्रसादं च प्रचक्षते'।

उदाहरण दिया है—

'कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरीचयो न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः' ॥

यहाँ एक सन्देह होता है कि जैसे विरुद्ध-धर्म तेज-तिमिरका एक स्थानमें समावेश नहीं होता है उसी प्रकार शिथिलता और ओज इन दो विरुद्ध धर्मोंका एक वाक्यमें समावेश किस प्रकार हो सकेगा? इसका उत्तर वामनने यह दिया है कि जैसे करुण रसके नाटकोंको देखनेसे दुःख तथा सुख दोनोंका उदय एक साथ होता है, वहाँ पर विरुद्धसुखदुःखोभयसामानाधिकरण्य

होता है, उसी प्रकार प्रसादमें शिथिलता तथा ओज इन दोनों विरुद्ध वस्तुओंका एकाधिकरण्य मान लिया जायगा। उनका वचन है—

करुणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः। यथाऽनुभवतः सिद्धस्तथैवौजःप्रसादयोः' ॥

भोजराजने प्रसादके लक्षण उदाहरण इस प्रकार बताये हैं :—

लक्षण—'प्रसिद्धार्थपदत्वं यत् स प्रसादो निगद्यते'।

उदाहरण—'गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम्'।

काव्य प्रकाशकारने प्रसादके लक्षण उदाहरण यों कहे हैं :—

लक्षण—

'श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेद्। साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः' ॥

उदाहरण—

'परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयतः स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति बिसिनीपत्रशयनम्' ॥

वाग्भट—'झटित्यर्थार्पकत्वं यत् प्रसत्तिः सोच्यते बुधैः'।

विश्वनाथने—'चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च' ॥

यथा—'सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं मुक्ताकलाप लुठसि स्तनयोः प्रियायाः।
बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि' ॥

यह लक्षण-उदाहरण दिया है।

पण्डितराज जगन्नाथने प्रसादका लक्षण-उदाहरण इस प्रकार लिखा है :—

लक्षण—'गाढत्वशैथिल्याभ्यां व्युत्क्रमेण मिश्रणं बन्धस्य प्रसादः' ॥

उदाहरण—'किं ब्रूमस्तव वीरतां वयममी यस्मिन् धराखण्डल,
क्रीडाकुण्डलितभ्रु शोणनयने दोर्मण्डलं पश्यति ॥
माणिक्यावलिकान्तिदन्तुरतरैर्भूषासहस्रोत्करै-
र्विन्ध्यारण्यगुहागृहावनिरुहास्तत्कालमुल्लासिताः' ॥

उपर्युक्त प्रसाद शब्दगुण है। अर्थगुण प्रसाद भी कुछ आचार्योंने माना है।

व्युत्पन्नमिति गौडीयैर्नातिरूढमपीष्यते[1]।
यथानत्यर्जुना[2]ब्जन्मसदृक्षाङ्को वलक्षगुः ॥ ४६ ॥

गौडानामत्रप्रसादे नात्यादरस्ते हि तदभावेऽपि काव्यत्वमातिष्ठन्ते, तदाह—**व्युत्पन्नमिति**। गौडीयैः गौडदेशवासिभिः नातिरूढम् अनतिप्रसिद्धम् अपि निहतार्थतादिदोषयुक्तमपि व्युत्पन्नम् व्युत्पत्तियुतम् अवयवार्थयुक्तम् इति हेतोः इष्यते काव्यत्वेन स्वीक्रियते, एतद्वाक्यं प्रसादगुणविरहितमतो न काव्यमिति गौडा न मन्यन्ते, ते हि बन्धगाढत्वसद्भावे प्रसादराहित्येऽपि काव्यत्वमभ्युपगच्छन्तीति भावः। तदुदाहरति—**अनत्यर्जुनेति**। अनत्यर्जुनम् अनतिधवलम् नीलं यदब्जन्मकमलं तेन सदृक्षः समः अङ्कः कलङ्को यस्य तादृशः नीलकमलोपमकलङ्कधारी वलक्षगुः शुभ्रकरश्चन्द्रो भातीति शेषः। अत्रार्जुनशब्दः कार्त्तवीर्यतृतीयपाण्डवयोः प्रसिद्धः, श्वेते तु निहतार्थः, अब्जन्मशब्दः कमलार्थेऽवाचकः, उपमागर्भबहुव्रीहिणैव तदर्थबोधसंभवात् सदृशशब्दोऽधिकपदतादोषदुष्टः, श्रुतिकटुश्च,

१. रूढमितीष्यते। २. अनत्यर्जुन।

वलक्षगुशब्दोऽप्रयुक्ततादोषयुतः, एवंविधबहुदोषयुक्तापीयं रचना व्युत्पन्ना अवयवार्थादिना अर्थबोधिकेति गौडास्तामाद्रियन्त इत्यर्थः। इत्थमत्र विचार्यते, प्रसादाभावेऽपि काव्यत्वमिति गौडा बाढमाद्रियन्ताम्, परं सदोषाणामपि तैः काव्यत्वे स्वीक्रियमाणे रीतिप्रवाहोच्छेदः स्यादत एतादृशीयमाचार्यदण्डिन उक्तिस्तदधिक्षेपमात्रदृष्टयेति। उक्तं च प्रेमचन्द्रमहाशयेन—'वस्तुतस्तु वैदर्भपक्षपातितयैव मुक्तं ग्रन्थकृता, गौडानामपि दोषाङ्गीकारादिति ॥ ४६ ॥

हिन्दी—प्रसाद गुणका स्वरूप इससे पहलेवाली कारिकामें बताया गया है, उसी प्रसङ्गमें गौड़सम्प्रदायका मत इस कारिकामें प्रदर्शित किया जा रहा है। गौड़ लोग 'नातिरूढम्-अनतिप्रसिद्धम् नेयार्थत्वादिदोषयुतम् अपि'—जिसमें नेयार्थत्वादि दोष हो, ऐसे काव्यको भी व्युत्पन्न-योगार्थघटित-किसी प्रकारसे स्वार्थबोधक होनेके कारण काव्य मानते हैं। उनके मतमें नेयार्थत्वादि दोषके सद्भावमें-प्रसादके अभाव में भी यौगिकार्थके निकलते रहनेके कारण काव्यत्व अव्याहत रहता है, जैसे—अनत्यर्जुनाजन्म। इत्यादि। इस पद्यांशमें अनत्यर्जुन-अनतिधवल, नील, अब्जन्म-कमल के समान कलङ्कधारी श्यामलकमलोपमकलङ्कशाली-वलक्षगुः—शुभ्रांशु चन्द्रमा इस तरह अर्जुन पद कार्त्तवीर्य तथा पाण्डवमें प्रसिद्धार्थ है और श्वेतमें निहतार्थ है, अब्जन्म पद कमल अर्थमें अप्रसिद्ध है, उपमागर्भ बहुव्रीहिसे ही काम चल जाता, अतः सदृक्ष पद अधिक है, श्रुतिकटु भी है, वलक्षगुः पद अप्रयुक्ततादोषयुक्त है, इस तरह नाना दोषयुक्त होने पर भी गौड़ लोग इसे योगार्थघटित होनेके कारण काव्य मानते है। उनके सम्प्रदायमें प्रसादके होने न होनेका कोई महत्त्व नहीं है। बन्धकी गाढ़तामात्रसे काव्यत्व अबाधित होना चाहिये। आचार्य दण्डीने स्वयं वैदर्भमार्गपक्षपाती होनेके कारण गौड़ोंको इस कारिकामें निन्दित किया है। वस्तुतः गौड़लोग भी दोषका आदर करके काव्यत्वके पक्षपाती नहीं हुआ करते, उनके मतमें प्रसादका होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु इससे दोषका स्वीकार किया जाना नहीं सिद्ध होता, आचार्य दण्डीने गौड़ोंको नीचा दिखानेके लिए प्रौढिवादके रूपमें ऐसा कह दिया है ॥ ४६ ॥

समं बन्धेष्वविषमं ते मृदुस्फुटमध्यमाः।
बन्धा मृदुस्फुटोन्मिश्रवर्णविन्यासयोनयः ॥ ४७ ॥

अथावसरप्राप्तां समतां लक्षयति—**सममिति**। बन्धेषु काव्यसङ्घटनासु अविषमम् अविभिन्नम्, यादृशो बन्धः प्रारम्भे तादृश एव बन्धो यत्रोपसंहारे तादृशं वाक्यम् समम् समतानामकगुणोपेतमिति यावत्। एवञ्च येन बन्धेनोपक्रम्यते तेनैव बन्धेन समापनं समतेति पर्यवस्यति। तेषां बन्धानां भेदानाह—**त इति**। ते बन्धाः मृदुः कोमलः, स्फुटो विकटः, मध्यमः तदुभयमिश्रः तदेवं त्रिविधो बन्धः, तेषां स्वरूपमभिधातुमुपक्रमते—**बन्धा इति**। मृदुवर्णविन्यासयोनिर्मृदुः, स्फुटवर्णविन्यासयोनिः स्फुटः, मिश्रवर्णविन्यासयोनिश्च मिश्रः, मृदवो वर्णाः ह्रस्वस्वरवर्गान्त्यदन्त्यव्यञ्जनरूपाः, स्फुटा विकटा वर्णा दीर्घस्वरोष्म्यठडशपसहाः, एषां मिश्रणे मिश्रा मध्यमाः, एषां विन्यासो योनिः कारणं येषां ते तथोक्ताः। अत्र वर्णशब्दोऽसमासदीर्घसमासमध्यमसमासानामप्युपलक्षकः, एवञ्च त्रिविधवर्णसमासघटितानां बन्धानां त्रैविध्यात् तदुद्भाविता समताऽपि त्रिविधा, तत्र मृदुतायोनिं समतामुदाहरति—

विकटतायोनिं समतामुदाहरति—

'दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत-
ष्टङ्कारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः।
द्राक् पर्यस्तकपालसंपुटमिलद्ब्रह्माण्डभाण्डोदर-
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति।

मिश्रवर्णयोनिं समतामुदाहरति—

'मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे'॥

एवञ्च वर्णानां समासानां च त्रैविध्येन प्रबन्धत्रैविध्यम्, मृदुस्फुटमध्यमाभिधम्, तत्र मृदुतायोनिषु वैदर्भी रीतिः, विकटताख्यस्फुटतायोनिषु गौडीरीतिः, मिश्रतायोनिषु च पाञ्चालीति फलति ॥ ४७ ॥

हिन्दी—समता नामक गुणकी परिभाषा बताते हैं—समम्—काव्यसङ्घटनाको जिस तरहके बन्धसे प्रारम्भ करें उसी तरहके बन्धसे यदि समाप्त करें तब समता नामक गुण होता है, बन्ध तीन प्रकारके हैं-मृदु, स्फुट (विकट) एवं मिश्र, इनमें मृदुबन्ध उसे कहते हैं जिसमें मृदुवर्णविन्यास हो, मृदुवर्ण हैं—ह्रस्व स्वर, वर्गके अन्त्याक्षर एवं दन्त्य व्यञ्जन। स्फुटवर्णविन्यासवाले बन्धको स्फुट या विकट विन्यास कहते हैं, स्फुटवर्ण हैं—दीर्घस्वर, ओष्ठ्यवर्ण एवं ठडशषसह। इन दोनोंके मिश्रित विन्यासको मिश्रवर्ण कहते हैं। यहाँ पर मृदु, स्फुट, मिश्रवर्ण-विन्याससे क्रमशः असमास, दीर्घसमास एवं अल्पसमासका भी उपलक्षण जानना चाहिये। इस प्रकार त्रिविधवर्णविन्यास एवं समाससे उद्भावित होनेवाली समता भी तीन तरह की होगी। यही तीन तरहकी समता क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी एवं पाञ्चाली रीतियोंका कारण बनती है। इनके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं ॥ ४७ ॥

कोकिलाऽऽलापवाचालो मामैति मलयानिलः।
उच्छलच्छीकराच्छाच्छनिर्झराम्भःकणोक्षितः ॥ ४८ ॥
चन्दनप्रणयोद्गन्धिर्मन्दो मलयमारुतः।

पूर्वोक्तस्वरूपायाः समताया उदाहरणत्रयं दर्शयति—**कोकिलालापेति**। कोकिलानाम् आलापो मधुरध्वनिस्तेन वाचालः स शब्दः मलयमारुतो माम् इति मदभिमुखम् आगच्छति, अत्र मृदुबन्धेन प्रारब्धस्य सन्दर्भस्य तेनैव बन्धेन समापनान्मृदुबन्धात्मिका समता। उच्छलदिति। उच्छलन्तः उत्सर्पन्तो ये शीकराः जलबिन्दवस्तैरच्छाच्छम् अतिनिर्मलं यन्निर्झराम्भः तस्य कणैर्बिन्दुभिरुक्षितः सिक्तः, अत्रापि मलयमारुतो मामेतीति सम्बन्धनीयम्। अत्र विकटात्मकस्फुटबन्धेनोपक्रान्तस्य सन्दर्भस्य तेनैव समापनात्स्फुटबन्धविषया समता मध्यमसमतामुदाहरति—**चन्दनेति**। चन्दनप्रणयेन चन्दनकाननसंसर्गेण उद्गन्धिः उद्गतसौरभः मन्दः अनत्युल्बणः मलयमारुतः 'मामेति' इति क्रिययाऽन्वयः। अत्र प्रारम्भे स्फुटो बन्धश्चरमे च मृदुरिति मिश्रबन्धता ॥ ४८ ॥

हिन्दी—समता नामक गुणके तीनों प्रभेदोंके उदाहरण बताते हैं—कोकिलेति। कोयलोंकी कूकसे मुखरित मलयानिल मुझे छू रहा है। इस पद्यार्थभागमें मृदुबन्धसे प्रारम्भ किये

१ ...न। २. प्रभवो।

गये अर्थको उसी बन्धसे समाप्त किया गया है, अतः मृदु समता है। उच्छलदिति। उछलनेवाले जलकणोंसे रमणीय दीखनेवाले निर्झरजलसे सिक्त यह मलयमारुत मेरी तरफ आ रहा है। यहाँ पर विकटात्मक स्फुटबन्धसे उपक्रान्त सन्दर्भ उसी बन्धसे समाप्त किया गया है, अतः यह स्फुट समताका उदाहरण है। चन्दनेति०। चन्दन वनके सम्पर्कसे सुगन्धिपूर्ण तथा धीरे बहनेवाला मलयमारुत हमारी ओर आ रहा है इस पद्यांशमें मिश्रसमता है क्योंकि स्फुटबन्धसे प्रारम्भ करके मृदुबन्धसे समाप्त किया गया है। इस प्रकार आचार्य दण्डीने समताके तीन भेद बताये हैं। आचार्य भरतने समताकी परिभाषा यह कही है—

'नातिचूर्णपदैर्युक्ता न च व्यर्थाभिधायिभिः। न दुर्बोधा तैश्च कृता समत्वात्समता मता'॥

तथाच—परस्परविभूषणो गुणग्रामः समतेति लक्षणं फलति। इसका उदाहरण दिया है—

'स्मरनवनदीपूरेणोढा मुहुर्गुरुसेतुभिर्यदपि विधृता दुःखं तिष्ठन्त्यपूर्णमनोरथाः।
तदपि लिखितप्रख्यैरङ्गैः परस्परमुन्मुखाः नयननलिनीनालानीतं पिबन्ति रसं प्रियाः'॥

वामनके मतमें 'मार्गाभेदः समता' यही लक्षण है। उदाहरणमें दिया है—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'॥

भोजराजने समताका लक्षण कहा है—

'यन्मृदुप्रस्फुटोन्मिश्रवर्णबन्धविधिं प्रति। अवैषम्येण भणनं समता साऽभिधीयते॥'

उदाहरण—'यच्चन्द्रकोटिकरकोरकभारभाजि बभ्राम बभ्रुणि जटापटले हरस्य।
तद्वः पुनातु हिमशैलशिलानिकुञ्जझङ्कारडम्बरविरावि सुरापगाम्भः'॥

अविषमबन्धत्वं समतेति वाग्भटः, उदाहरण :—

'मसृणचरणपातं गम्यतां भूः सदर्भा विरचय सिचयान्तं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुपूर्णैः पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च'॥

पण्डितराज जगन्नाथने समताके लक्षण-उदाहरण इस प्रकार बताये हैं—

लक्षण—'प्रक्रमभङ्गेन अर्थघटनात्मकमवैषम्यं समता'।

उदाहरण—

'हरिः पिता हरिर्माता हरिर्भ्राता हरिः सुहृत्। हरिं सर्वत्र पश्यामि हरेन्यन्न भाति मे'।

आचार्य मम्मटने—समताके विषयमें अपनी राय यह प्रकट की है कि समता जहाँपर मार्गाभेदस्वरूप है वहाँ तो वह गुणके दोष ही हो जाती है, हाँ, जहाँपर वह मार्गाभेदस्वरूपातिरिक्तस्वरूप है, वहाँपर उसको प्रबन्धानुसार माधुर्यौजःप्रसादान्यतमान्तर्भूत मान लिया जायगा, उनका वचन परवर्ती कतिपय आचार्योंने भी माना, तदनुसार विश्वनाथ तथा हेमचन्द्रने भी समताको पृथक् गुण नहीं माना, विश्वनाथने लिखा है—

'क्वचिद्दोषस्तु समता मार्गाभेदस्वरूपिणी। अन्यथोक्तगुणेष्वस्या अन्तःपातो यथायथम्'॥ ४८॥

स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यो वररामामुखानिलैः॥ ४९॥
इत्यनालोच्य वैषम्यमर्थालङ्कारडम्बरौ।
अपेक्षमाणा ववृधे पौरस्त्या काव्यपद्धतिः॥ ५०॥

रुद्धमद्धैर्य इति। रुद्धमपसारितं मम धैर्यं गभीरत्वं येन तादृशः (मलयमारुतः) वररामाणां पद्मिनीनां रमणीनां मुखानिलैः सुरभिमुखपवनैः स्पर्द्धते, मदीयस्य धैर्यस्य लोपकरो दक्षिणानिलः पद्मिनीनायिकामुखपवनेन समं सौरभे स्पर्द्धत इत्यर्थ इति अत्रोदा-

---

१. रामानना। २. डम्बरम्। ३. अवेक्ष्य, अवेक्ष्य। ४. ववृते।

हरणे 'स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यः' इत्यंशे स्फुटो विकटो बन्धः, 'वररामामुखानिलैः' इत्यंशे च मृदुः, तदेवम् वैषम्यम् मृदुस्फुटयोर्बन्धयोर्विषमताम् अनालोच्य अविचार्य अर्थस्य अत्युक्तिरूपस्य अलङ्कारस्य वर्णानुप्रासस्य च डम्बरौ उत्कर्षौ अपेक्षमाणा काङ्क्षन्ती पौरस्त्या गौडीया काव्यपद्धतिः पद्यरचनासरणिः ववृधे। अयमाशयः—गौडाः कवयः केवलानुप्रासप्रवणमतयः मृदुस्फुटरचनाशालितया विषमगुणामपि रचनां बह्वाद्रियन्ते, काव्यत्वेन च स्वीकुर्वन्ति, वैदर्भास्तु अर्थांशे दृसदृष्टयोऽनुप्रासं च न बहुमन्यमाना विषमे पूर्वोक्तसदृशे प्रबन्धे नादरं पुष्णन्ति इदमेव वैषम्यं बोधयितुमयं ग्रन्थः॥ ४९-५०॥

हिन्दी—'स्पर्द्धते रुद्धमद्धैर्यः' इस अंशमें विकटबन्ध है, और 'वररामामुखानिलैः' इस अंशमें मृदुबन्ध है, इस प्रकार इस पद्यार्धमें दोनों बन्धोंको एकमें समाविष्ट कर दिया गया है, यह दोनों बन्ध एक दूसरेके विरुद्ध हैं परन्तु गौड़ीरीतिके प्रवर्त्तक गौड़देशवासी आचार्यगण इस वैषम्यकी चिन्ता नहीं करते, वह केवल अर्थ तथा अलङ्कारपर दृष्टि रखते हैं, उनके विचारमें इस पद्यार्धमें यदि अत्युक्तिरूप चमत्कारी अर्थ तथा अनुप्रासरूप शब्दालङ्कार विद्यमान हैं, तो इसे काव्य कहनेमें कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इसी तरहकी विचारधाराको पृष्ठभूमिमें रखकर गौड़ीरीतिकी काव्यसरिता प्रवाहित होती रही है।

इस स्थलमें गौडीय सम्प्रदाय तथा वैदर्भीय सम्प्रदायका अन्तर ध्यानमें दिलवानेका प्रयास किया गया है, गौड़ सम्प्रदायके प्रवर्त्तकगण इस बातकी चिन्ता नहीं रखते कि बन्धवैषम्य होगा, उन्हें विरुद्ध विषम बन्धवाली कवितामें भी यदि अतिशयोक्तिरूप आर्थिक चमत्कार और अनुप्रासरूप शाब्दिक चमत्कार मिल जाय तो उसका आदर वह अवश्य करेंगे, परन्तु वैदर्भ लोग, जो अनुप्रासको कविताका प्राण नहीं मानते, बन्धविषमता स्थलमें काव्यत्वको स्वीकार करनेमें सहमत नहीं होते॥ ४९-५०॥

मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः॥ ५१॥

माधुर्यं नाम गुणं लक्षयति—**मधुरमिति**। रसवत् सरसं वाक्यम् मधुरम् माधुर्याख्यगुणशालि, एतेन रसो माधुर्यमिति तयोरभेदः पर्यवस्यति, माधुर्यं नाम गुणः, गुणास्तावच्छब्दार्थनिष्ठतया साक्षात् परम्परया वा रसोपकारकाः समभ्युपगताः, न तु रसाभिन्नता गुणानां तत्कथमत्र माधुर्यगुणस्य रसात्मकत्वमुच्यते, तत्राह—**वाचीति**। वाचि शब्दे वस्तुनि अर्थे चापि रसस्थितिः व्यञ्जकतया संबन्धः, तेन वाक्यस्य रसव्यञ्जकवर्णरचनाशालित्वं रसव्यञ्जकार्थयुक्तत्वं वा माधुर्यमिति सिद्धम्। ननु रसस्वरूपमेव न ज्ञायते, तत्कथं प्रागुक्तं माधुर्यलक्षणमवगच्छेमेत्यत्राह—**येनेति**। यथा मधुव्रता भ्रमरा मधुना पुष्परसेन माद्यन्ति आह्लादमनुभवन्ति, तथा येन वस्तुना धीमन्तो बुद्धिमन्तः सहृदया माद्यन्ति स रसः काव्यार्थानुशीलनजन्मा चमत्कारापरपर्यायो लोकोत्तराह्लाद एव रसः, एवं च यस्य काव्यस्यासकृत्परिशीलनेऽपि सहृदया न वैरस्यमासादयन्ति, तत् मधुरं काव्यम्, इति स्वयमुन्नेयस्वरूपं माधुर्यं सिद्ध्यति॥ ५१॥

हिन्दी—रसवत् वाक्यको मधुर कहा जाता है, फलतः रस तथा माधुर्य एक वस्तु है। गुणको आचार्योंने साक्षात् परम्परया वा रसका उपकारक माना है, तब यहाँपर माधुर्य नामक गुणको रसस्वरूप कैसे कहा जाता है इसी प्रश्नका उत्तर देनेके लिये—'वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः' यह अंश कहा है। शब्द तथा अर्थ दोनोंमें व्यञ्जकतया रस रहता है, तब रस व्यञ्जक

वर्णरचनाशालित्व या रसव्यञ्जकार्थशालित्व, यही माधुर्यका लक्षण सिद्ध होगा। रसका स्वरूप बतानेके लिये एक उपमा प्रस्तुत की गई है—'येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः' अलिगण जैसे पुष्पासवसे मत्त हो उठते हैं, उसी तरह जिस शब्दार्थजन्य आह्लादातिरेकसे सहृदयगण आनन्दित हों, मत्त हो उठें, उसे ही रस कहा जाता है। इस प्रकार माधुर्यको रसस्थानीय मानकर लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

भामहने माधुर्यका लक्षण इस प्रकार कहा है :—

'श्रव्यं नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते'।

भरतने—

'बहुशो यच्छ्रुतं काव्यमुक्तं वापि पुनः पुनः। नोद्वेजयति तस्माद्धि तन्माधुर्यमुदाहृतम्'।

यह लक्षण कहा है, परन्तु काव्यप्रकाशकार प्रभृति इस तरहके लक्षणोंका विरोध करते हैं, उन लोगोंने स्पष्ट कहा है—

'ओजःप्रसादयोरपि श्रव्यत्वान्नैतल्लक्षणं निर्दोषम्'।

आचार्य वामनने—शब्दगत माधुर्यका लक्षण इस प्रकार बताया है—

'यापृथक्पदता वाक्ये तन्माधुर्यमिति स्मृतम्'।

इसका उदाहरण दिया है—

'स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः'॥

परन्तु वामनका यह लक्षण सङ्गत नहीं है, क्योंकि समासस्थलमें भी माधुर्यका स्वाद मिलता है, अतः पृथक्पदत्वको माधुर्य कहना ठीक नहीं है, देखिये—

'अनवरतनयनजललवनिपतनपरिमुषितपत्रलेखान्तम्।
करतलनिषण्णमबले वदनमिदं किन्न तापयति'॥

इस श्लोकमें समासबाहुल्य होनेपर भी माधुर्य स्पष्ट है।

काव्यप्रकाशकारने—

'आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्। करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्'॥

इस प्रकार अपना मत प्रकट किया है। आचार्य वाग्भटने भी—

'यत्र आनन्दमन्दं मनो द्रवति तन्माधुर्यं, तच्च रसभेदेन विविधम्'।

ऐसा कहकर उनके ही पदाङ्कोंका अनुसरण किया है।

दर्पणकारने कहा है—'चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते'।

पण्डितराजने अर्थगत माधुर्यका लक्षण या उदाहरण इस प्रकार बताया है—

लक्षण—'एकस्या एवोक्तेर्भङ्ग्यन्तरेण पुनःकथनात्मकमुक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम्'।

उदाहरण—

'विधत्तां निःशङ्कं निरवधिसमाधिं विधिरहो सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः।
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः सवित्री कामानां यदि जगति जागर्त्ति भवती'॥

इस प्रकार भिन्न-भिन्न आचार्योंने अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं॥ ५१॥

यया कयाचिच्छ्रुत्या[1] यत्समानमनुभूयते।
तद्रूपा[2] हि पदासत्तिः सानुप्रासा रसावहा॥ ५२॥

'माधुर्यलक्षणं निरूप्यमाणे वाचि रसस्थितिः' इत्युक्त्या विशिष्टवर्णविन्यासस्य रसव्यञ्जकत्वमुक्तम्, तत्र वैदर्भाभिमतं श्रुत्यनुप्रासं निरूपयति **यया कयाचिदिति**। यया

१. ——श्रुति। २. तद्रूपादि।

कयाचित् कण्ठ्यया तालव्ययाऽन्यया वा श्रुत्या उच्चारणेन यत् समानम् पूर्वोच्चारितवर्णसदृशम् अनुभूयते आस्वाद्यते तद्रूपा तादृशसादृश्यकरी पदासत्तिः अव्यवहितपदप्रयोगः सानुप्रासा श्रुत्यनुप्रासयुता (अतश्च) रसावहा रसपुष्टिकरी। एवञ्च कण्ठताल्वाद्यनेकस्थानोच्चार्यतया व्यञ्जनानां सादृश्यं श्रुत्यनुप्रास इति फलितम्। अलङ्कारस्यास्यात्र निरूपणं वैदर्भगौडसम्प्रदायभेदकथनप्रसङ्गातः कृतम्। तदग्रे वक्ष्यति—'काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः' ॥ ५२ ॥

हिन्दी—इससे पहली कारिकामें 'वाचिरसस्थितिः' कहकर बताया गया था कि रसकी व्यञ्जनामें विशिष्टवर्णविन्यासको साधन माना जाता है। इस कारिकामें उसी सम्बन्धमें बताना है कि वैदर्भमार्गानुगामी विद्वद्गण जिस श्रुत्यनुप्रासको रसव्यञ्जक मानते हैं उसका क्या स्वरूप है।

जिस पदसमुदायमें समानकण्ठादिस्थानजन्य वर्णोंकी अव्यवधानेन श्रुतिउच्चारण किया गया हो, उसको श्रुत्यनुप्रासयुक्त कहते हैं, वैसा पदसमुदाय रसव्यञ्जक होता है। भोजराजने श्रुत्यनुप्रासकी बड़ी प्रशंसा की है—

'आवृत्तिर्या तु वर्णानां नातिदूरान्तरस्थिता। अलङ्कारः स विद्वद्भिरनुप्रासः प्रदर्श्यते ॥

प्रायेण श्रुत्यनुप्रासस्तेष्वनुप्रासनायकः। सनाथैव हि वैदर्भी भाति तेन विचित्रिता' ॥

'यथा ज्योत्स्ना शरच्चन्द्रं यथा लावण्यमङ्गनाम्। अनुप्रासस्तथा काव्यमलङ्कर्तुमिह क्षमः' ॥

यद्यपि यह प्रकरण अलङ्कारनिरूपणका नहीं था, अलङ्कारोंका निरूपण अन्यत्र किया जायगा, तथापि वैदर्भगौड़मार्गभेदप्रदर्शनार्थं प्रसङ्गतः यहाँ श्रुत्यनुप्रासका लक्षण-उदाहरण बता दिये गये हैं। इसीलिए आगे चलकर कहा गया है कि—'काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः ॥ ५२ ॥

एष राजा यदा लक्ष्मीं[1] प्राप्तवान् ब्राह्मणप्रियः।
तदा[2] प्रभृति धर्मस्य लोकेऽस्मिन्नुत्सवो[3]ऽभवत् ॥ ५३ ॥

एष ब्राह्मणप्रियः दानादिना विप्रप्रीतिकरो राजा यदा लक्ष्मीं प्राप्तवान शासनाधिरूढः सन्समृद्धश्रीकोऽभवत्, तदाप्रभृति ततः कालात् अस्मिन् लोके धर्मस्य उत्सवः उत्कर्षः अभवत्। अस्मिन् राजनि सति धर्मः समेधमानोऽभूदित्यर्थः। अत्रैष राजेत्यंशे षकाररेफौ मूर्द्धन्यौ, जकारयकारौ च राजापदेत्यत्र तालव्यौ, यदा लक्ष्मीम् इत्यत्र दकारलकारौ दन्त्यौ, एवम् अपरत्रापि ते ते वर्णाः समानस्थानीयाः, इति स्थानसाम्याच्छ्रुत्यनुप्रासः, तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

'उच्चार्यत्वाद्यदैकत्र स्थाने तालुरदादिके। सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते' ॥

हिन्दी—यह ब्राह्मणप्रिय राजा जबसे शासनाधिरूढ़ हुआ है, तबसे धर्मकी अधिकाधिक उन्नति होने लग गई है, यही उदाहरणार्थ है। इस उदाहरणमें स्थानसाम्यवाले वर्णोंका विन्यास श्रुत्यनुप्रासप्रयोजक है ॥ ५३ ॥

इतीदं नादृतं गौडैरनुप्रासस्तु तत्प्रियः।
अनुप्रासादपि प्रायो वैदर्भैरिदमिष्यते[4] ॥ ५४ ॥

इति एवंभूतम् पूर्वप्रदर्शितप्रकारं रचनावस्तु श्रुत्यनुप्रासयुतं काव्यं गौडैः पौरस्त्यैः नादृतम् माधुर्यगुणशालितया नाभ्युपगतम् समानश्रुतिवर्णानां रसोपकारकचमत्कारशून्यतया

---

१. राज्यं। २. ततः। ३. उद्भवः। ४. ईप्सितम्, आदृतम्।

नायमलङ्कारोऽतोऽत्र सत्यपि माधुर्यं नाम गुणो नोपपद्यत इति गौडानामाशयः। गौडाः श्रुत्यनुप्रासं नाद्रियन्ते, किन्तु अनुप्रासः वर्णावृत्तिरनुप्रास इति वक्ष्यमाणलक्षणः तत्प्रियः गौडानां हृदयङ्गमः, ते हि सदृशवर्णोच्चारणजां चमत्कृतिं रसावहां मन्यन्ते। वैदर्भास्तु अनुप्रासादपि श्रुत्यनुप्रासमधिकमाद्रियन्ते, तदाह—**अनुप्रासादपि इति**। 'तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्' इति दिशा गौडवैदर्भाणामत्र रुचिभेद एव निबन्धनं, न त्वस्य क्षोदक्षमं किमपि तत्त्वमिति भावः॥ ५४॥

हिन्दी—इस श्रुत्यनुप्रासको गौड़ लोग अधिक महत्त्व नहीं देते हैं, उनके मतमें समानस्थान-जन्य वर्णोंके सन्निवेशविशेषसे रसोपकारक चमत्कृति नहीं उत्पन्न होती, अतः श्रुत्यनुप्रास होनेसे माधुर्य नामक गुण नहीं होता है, उनके मतमें वर्णावृत्तिरूप अनुप्रास अधिक रसावह-रसव्यञ्जक होता है, अतः वे अनुप्रासस्थलमें ही माधुर्यगुण मानते हैं। ठीक इसके विपरीत वैदर्भसम्प्रदायवाले आचार्य अनुप्रासंसे भी अधिक श्रुत्यनुप्रासका आदर करते हैं, यह तो रुचिभेद का स्थान है, इसमें कुछ युक्ति तो दी जाती नहीं है॥ ५४॥

वर्णावृत्तिरनुप्रासः पादेषु च पदेषु च।
पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी[1] यद्यदूरता॥ ५५॥

पादेषु श्लोकचतुर्थभागेषु पदेषु सुप्तिङन्तरूपेषु च वर्णावृत्तिः वर्णस्य वर्णयोः वर्णानाम् वा आवृत्तिः पुनःपुनरुच्चारणम् अनुप्रासः पुनःपुनरुच्चारणजन्या वर्णानां साम्यप्रतीतिरनुप्रासः, तदुक्तं प्रकाशकृता—**'वर्णसाम्यमनुप्रासः'** अत्र वर्णपदं व्यञ्जनपरकम्, केवलस्वराणामावृत्तौ चमत्कारविरहात्। सादृश्यस्य भेदगर्भतया वर्णेषूच्चारणकालसम्बन्धकृतो भेदो बोध्यः। वर्णावृत्तिश्च समीपस्थैव चमत्कारिणी भवति, न दूरस्थेति बोधयितुमाह—**पूर्वेति**। पूर्वस्य पूर्वोच्चारणविषयस्य वर्णस्य योऽनुभवः श्रावणप्रत्यक्षम् तज्जनितो यः संस्कारो भावनाविशेषस्तस्य बोधिनी उद्बोधकरी अदूरता द्वितीयवर्णादीनां निकटस्थितिः यदि स्यात्। चमत्कारजननी एव सादृश्यप्रतीतिर्वर्णावृत्तिरूपालङ्कारस्तत्र सादृश्यप्रतीतिर्द्वित्रिवर्णमात्रव्यवधानं सहते, नाधिकवर्णव्यवधानम्, इति भावः। अस्यानुप्रासस्य भेदाः काव्यप्रकाशादिग्रन्थतोऽवसेयाः॥ ५५॥

हिन्दी—वर्ण-व्यञ्जक अक्षरोंकी आवृत्ति समानश्रुतिको अनुप्रास नामक अलङ्कार कहते हैं वह पाद तथा पदमें होता है, काव्यप्रकाशमें, 'वर्णसाम्यमनुप्रासः' यही लक्षण दिया गया है सादृश्य भेदगर्भ होता है, अतः एक ही वर्णके आवृत्तिस्थलमें उन वर्णोंमें उच्चारण-काल-भेद-कृत भेद मानकर सादृश्य माना जाता है। आवृत्ति समीपस्थ रहने पर ही चमत्कारकारिणी होती है। अतः द्वित्रिवर्णव्यवधानसे अधिक व्यवधान रहनेपर अनुप्रास नहीं मानते। इसी बातको बतानेके लिये—'पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता' कहा गया है। यदि समश्रुति उच्चारणवाले वर्णोंकी दूरता इतनी अधिक न हो जिससे पूर्वोच्चारित वर्णश्रावणप्रत्यक्षजात संस्कार समाप्त हो जाय। इसका स्पष्ट आशय यह है कि अभी जिस व्यञ्जनका उच्चारण किया गया, उसके सुननेसे जात संस्कार जबतक मिटा नहीं है, तभी तक यदि दूसरा तत्सम वर्ण उच्चारित किया जाय, तो अनुप्रासनामक अलङ्कार होता है॥ ५५॥

चन्द्रे शरन्निशोत्तंसे कुन्दस्तबकविभ्रमे[2]।
इन्द्रनीलनिभं लक्ष्म संदधात्यलिनः[3] श्रियम्॥ ५६॥

---

१ बोधिनी। २. सन्निभे। ३. अलिकः।

कुन्दस्तबकविभ्रमे कुन्दनामकपुष्पगुच्छवत्सुन्दरे शरन्निशोत्तंसे शारदरात्रिभूषणायमाने चन्द्रे इन्द्रनीलनिभं श्यामलं लक्ष्म कलङ्कः अलिनः भ्रमरस्य श्रियम् शोभाम् सन्दधाति उत्पादयति, इन्द्रनीलमणिसमानकान्तिः (श्यामः) शशिनः कलङ्कः स्वच्छतया कुन्दपुष्पानुहारिणि चन्द्रमसि भ्रमर इव भासते इत्यर्थः। अत्र चतुर्ष्वपि पादेषु 'चन्द्र' 'इन्द्र' 'कुन्द' 'सन्द' इत्यंशेषु नकारदकाररेफाणां नकारदकारयोर्वाऽऽवृत्तिः कृतेति पादगतोऽयमनुप्रासः। स चायमनुप्रासः स्ववर्ण्यशृङ्गारविभावभूतं चन्द्रमुपस्कुर्वाणः शृङ्गारं पुष्णाति, इत्यर्थनिष्ठं माधुर्यं बोध्यम् ॥ ५६ ॥

हिन्दी—शरत्कालकी रातके अलङ्कारस्वरूप तथा कुन्दपुष्पके गुच्छकी तरह दीखनेवाले धवल चन्द्रबिम्बमें वर्त्तमान इंद्रनीलसमानवर्ण कलङ्कका धब्बा भ्रमरकी शोभा धारण करता है। शरत्कालके खुले हुए आकाशमें चमकता हुआ चन्द्रमा कुन्दस्तबककी तरह प्रतीत होता है और उसमें वर्त्तमान कलङ्क भ्रमरकी शोभा धारण करता है। इस श्लोकमें चारों चरणोंमें चन्द्र, इन्द्र, कुंद, सन्द्र, आदि पदोंमें नकार, दकार, रेफ तथा नकार-दकारकी आवृत्ति होनेसे पादगत अनुप्रास है ॥ ५६ ॥

चारु चान्द्रमसं भीरु बिम्बं पश्यैतदम्बरे।
मन्मनो मन्मथाक्रान्तं निर्दयं हन्तुमुद्यतम् ॥ ५७ ॥

हे भीरु भयभीतनयने ! चारु त्वदीयचिन्तनरसक्षालितम् मन्मनः मम चित्तम् निर्दयं यथा तथा क्रूरतापूर्वकम् हन्तुम् प्रहर्तुम् एतत् चान्द्रमसम् ऐन्दवम् बिम्बम् अम्बरे व्योमनि पश्य अवलोकय। कस्यचित्कामुकस्य कुपितां नायिकां प्रत्युक्तिरियम्। अत्र चतुर्षु पादेषु प्रथमे 'चारु-चन्द्र-भीरु' इति पदेषु 'चा' 'रु'वर्णयोरावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासः, द्वितीये पादे मकारवकारयोः संयुक्तयोरावृत्तिरिति च वृत्त्यनुप्रासः, स च पदगतः। पूर्वत्रोदाहरणे पादे पादे तेषामावृत्तिरत्र तु पदे पदे इति तथा ॥ ५७ ॥

हिन्दी—हे भयग्रस्तनेत्रे बाले, तुम्हारी चिन्ता करनेके कारण नितान्त पवित्र इस हमारे हृदयको निर्दयतापूर्वक सतानेको उद्यत यह आकाशस्थित चन्द्रबिम्ब देखो। मैं तुम्हारे लिये चिन्तित हूँ, चन्द्रमा हमको सता रहा है, इसपर ध्यान दो। इस श्लोकमें प्रथम पादमें चारु चान्द्रमस पदोंमें 'चा' एवं 'चारु भीरु' पदोंमें 'रु'का अनुप्रास है, वह पदगत है, अतः यह पदगत वृत्त्यनुप्रासका उदाहरण हुआ ॥ ५७ ॥

इत्यनुप्रासमिच्छन्ति नातिदूरान्तरश्रुतिम्[2]।
न तु रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमा इति ॥ ५८ ॥

अनुप्रासलक्षणे पूर्वं निरुच्यमाने—'पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता' इत्युक्तं सम्प्रति तदेव प्रत्युदाहरणप्रदर्शनविधया प्रपञ्चयति—**इत्यनुप्रासमिति**। इति एवंप्रकारकं नातिदूरान्तरश्रुतिम् नातिविलम्बेनोच्चार्यमाणसदृशवर्णम् (यावता पूर्वानुभूतवर्णजनितः संस्कारो न निवर्त्तते तावदत्रानतिदूरम्) अनुप्रासम् इच्छन्ति, न तु अतिदूरान्तरश्रुतिम्, तावता विलम्बेनोच्चारणे पूर्वानुभवजातस्य संस्कारस्य विलोपात्। तदेवोदाहरति—**न त्विति** अत्र रामापदगतमाशब्दश्रवणजः संस्कारश्चन्द्रमाःपदघटकमाशब्दश्रवणपर्यन्तं नावतिष्ठते

१. कर्त्तुम्। २. स्थितिम्। ३. सदृक्ष।

दूरत्वात्, अत ईदृशं दूरान्तरश्रुतिम् अनुप्रासं नेच्छन्ति ॥ ५८ ॥

हिन्दी—अनुप्रासलक्षणमें कहा गया था—'पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता', अर्थात् अनुप्रास वहीं पर माना जाता है जहाँ पर प्रथमोच्चारित वर्णजन्य संस्कार तत्सदृश दूसरे वर्णके उच्चारणतक बना रहे। तभी समानश्रुतिक वर्णोंके उच्चारणसे अनुप्रास होता है, फलतः 'रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमाः' इस पद्यार्थमें 'रामा' पद के 'मा' का संस्कार 'चन्द्रमा'पदगत 'मा' के उच्चारणकाल तक नहीं रह पाता है अतः यहाँ पर अनुप्रास नामक अलङ्कार नहीं हुआ। अतिदूरान्तर श्रुति होने के कारण वह अनुप्रास नहीं है ॥ ५८ ॥

स्मरः खरः खलः कान्तः कायः कोपश्च नः कृशः।
च्युतो मानोधिको रागो[1] मोहो जातोऽसवो गताः ॥ ५९ ॥
इत्यादि बन्धपारुष्यं शैथिल्यं च नियच्छति[2]।
अतो नैवमनुप्रासं दाक्षिणात्याः प्रयुञ्जते ॥ ६० ॥

अलङ्कारशास्त्रे प्रस्थानद्वयमेकं वैदर्भाणामपरञ्च गौडानां तयोराद्ये बन्धपारुष्यशैथिल्ययोः सद्भावे सत्यपि समानवर्णोच्चारणे न तत्तदलङ्कारस्वीकारः, गौडानां मते तु सतोरपि बन्धपारुष्यशैथिल्ययोः केवलं समानश्रुतिवर्णोच्चारणे भवन्त्यलङ्काराः, तदेतन्मतवैषम्यं स्पष्टयति च्युत इत्यादिना कारिकाद्वयेन। स्मरः कामः खरः तीक्ष्णः, कान्तः प्रियतमः खलः निष्ठुरः, नः अस्माकम् कायः शरीरम् कोपः कान्तविषयः परस्त्रीसंगादिजन्मा क्रोधश्च कृशः क्षीणः, मानः स्वीयगौरवरिरक्षिषा च्युतः गलितः, रागः संभोगाभिलाषोऽधिकः समुत्कटः, मोहः चित्तवैक्लव्यम् जातः प्रादुर्भूतः, असवः प्राणा गताः। अत्र प्रथमचरणे रेफखकारयोः द्वितीये पादे ककाराणां चावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासः, तृतीयचतुर्थपादयोर्दन्त्यवर्णानां निवेशात् श्रुत्यनुप्रासः। प्रथमार्धे विसर्गबाहुल्यात् पारुष्यं द्वितीयार्धे संयुक्तवर्णविरहकृतं शैथिल्यम्। अत्र वृत्त्यनुप्रासश्रुत्यनुप्रासयोः पारुष्यशैथिल्यदोषग्रस्तत्वान्नेमौ अलङ्कारतां प्राप्नुतः। अतश्चाभ्यां विप्रलम्भशृङ्गारस्यानुपकृतत्वान्नात्र माधुर्यगुणः। तदेतत्कण्ठत आह—**इत्यादीति**। इत्यादि पूर्वोक्तम् उदाहरणद्वयम् (आद्यपादयोर्बन्धपारुष्यम् अन्त्यपादयोः शैथिल्यं च) नियच्छति समर्पयति, विसर्गबाहुल्यादाद्यपादयोः पारुष्यम्, तदुक्तम्—'अनुस्वारविसर्गौ तु पारुष्याय निरन्तरौ' इति। अन्तिमपादयोस्तु संयुक्तवर्णाभावात् शैथिल्यम्। ईदृशं सदोषमलङ्कारं दाक्षिणात्या नाद्रियन्ते—गौडास्तु केवलमनुप्रासलुब्धाः सदोषमपि तमङ्गीकुर्वन्तीति भावः ॥ ५९-६० ॥.

हिन्दी—इस अलङ्कार में दोष के रहने पर क्या होगा, अलङ्कार माना जायगा या नहीं? इसी प्रश्नका उत्तर इन दो कारिकाओंमें दिया गया है। कुछ आचार्य इस प्रकारके सदोष स्थलमें अलङ्कार मानते हैं, उन्हें अलङ्कार-लोभ है, कुछ लोग रसानुपकारकतया इन सदोष अलङ्कारों को अलङ्कारताविरहित समझते हैं। 'स्मरः खरः' इस श्लोकके प्रथम दो चरणोंमें विसर्गबाहुल्य होनेसे बन्धपारुष्य है, क्योंकि रीतिशास्त्रियोंने कहा है—'अनुस्वारविसर्गौ तु पारुष्याय निरन्तरौ'। इसी प्रकार उत्तरार्धमें संयुक्त वर्णके नहीं होनेसे शैथिल्य दोष है। इस प्रकार सदोष इन अलङ्कारोंका आदर दक्षिणात्य-वैदर्भ लोग नहीं करते। गौड़ लोग इसका भी आदर करते हैं ॥ ५९-६० ॥

१. रोगो। २. निगच्छति।

आवृत्तिं वर्णसङ्घातगोचरां यमकं विदुः ।
तत्तु नैकान्तमधुरमतः पश्चाद्विधास्यते ॥ ६१ ॥

यथा वर्णावृत्तिरूपोऽनुप्रासो रसपोषकमाधुर्यगुणशाली मन्यते तथा पदाऽऽवृत्तिरूपं यमकमपि तथा मन्यते न वेत्यपेक्षायामाह—**आवृत्तिमिति** । वर्णसङ्घातगोचरां पूर्वोक्तवर्णसमुदायविषयाम् आवृत्तिम् भूयो भूय उच्चारणं—यथानुपूर्वीकाणां स्वरव्यञ्जनसमुदायानाम् असकृदुपादानं यमकं नामालङ्कारमालङ्कारिका आहुः, तदुक्तं प्रकाशकृता 'सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः । क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते' इति । अनुप्रासे बहूनां क्वचिदेकस्य-रसहितस्य व्यञ्जनस्यावृत्तिः, यमके तु स्वरसहितानां व्यञ्जनानां क्रमेण तेन तथैवानुपूर्व्यावृत्तिर्भवतीत्युभयोर्भेदः । तत् यमकं तु नैकान्तमधुरं नात्यन्तमनोहरम्, अतः पश्चात् माधुर्यगुणनिरूपणानन्तरं शब्दालङ्कारप्रस्तावे विधास्यते । अनुप्रासे—'अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः' इत्यादौ यादृशी चारुता न तादृशी यमके—'नवपलाशपलाशवनं पुरः' इत्यादौ । अपि च वर्णसङ्घातावृत्तौ अर्थावगमः क्लेशेन भवति, न तथाऽनुप्रास इत्यनुप्रासापेक्षयाऽत्र माधुर्यस्य न्यूनत्वं बोध्यम् ॥ ६१ ॥

हिन्दी—वर्णावृत्तिरूप अनुप्रास रसपोषक माधुर्यशाली माना जाता है, उसी तरह पदावृत्तिरूप यमक भी माधुर्यशाली माना जाय, इस प्रसङ्ग में निषेधात्मक उत्तर देते हैं—आवृत्तिमिति । वर्णसङ्घातकी आवृत्तिको यमक माना जाता है, वह अतिशय मधुर नहीं होता, अतः उसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन माधुर्यगुणनिरूपणके बाद शब्दालङ्कारनिरूपण-प्रसङ्गमें किया जायगा ।

दण्डीके मतमें अनुप्रास और यमकमें अनुप्रास अधिक रसमाधुर्यपोषक होता है, यमक उतना रसपोषक नहीं होता, जैसे विजातीय पुष्पसङ्कीर्ण पुष्पमाला अधिक रमणीय होती है, तदपेक्षया एकप्रकारक पुष्पमाला कम रमणीय होती है । अनुप्रासस्थलमें मध्य-मध्यमें भिन्न-भिन्न वर्णोंके समावेशके हो जानेसे उसका चमत्कार बढ़ जाता है, जैसे—'अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः' इत्यादि स्थलमें । यमकस्थलमें एक प्रकारसे वर्णसङ्घातकी आवृत्ति हुई रहती है वह उतना आकर्षक नहीं होती, जैसे—'नवपलाशपलाशवनं पुरः, स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्' इत्यादि श्लोकमें ॥ ६१ ॥

कामं सर्वोऽप्यलङ्कारो रसमर्थे निषिञ्चतु[2] ।
तथाप्यग्राम्यतैवैनं[3] भारं वहति भूयसा ॥ ६२ ॥

'मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः' इत्युद्देशवाक्ये वस्तुनि—अर्थे रसस्थितिरुक्ता, तेनार्थगतं माधुर्यं निर्दिष्टं, तदिदानीं प्रपञ्चयति—**काममिति** । सर्वः प्रबन्धप्रकारकः शब्दगतोऽर्थगतस्तदुभयगतश्चालङ्कारः । कामं यथायोगमर्थे वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यात्मके वस्तुनि रसं चमत्कारविशेषं निषिञ्चतु उपपादयतु, काममर्थास्तैस्तैरलङ्कारैः रसपुष्टिमासादयन्तु, परन्तु तथापि तत्तदलङ्काराणां रसोपकारकत्वे सत्यपि अग्राम्यता ग्रामिकादिव्यवहारविमुखता विदग्धजनव्यवहारः भूयसा प्राधान्येन बाहुल्येन इमं रसोद्बोधकतालक्षणं भारं वहति । अयमाशयः—यद्यप्यलङ्काराणामस्ति रसपोषकत्वं तथापि ग्राम्यतारहितेष्वेव स्थलेषु ते रसपोषकतां बिभ्रति, न ग्राम्येषु अग्राम्यव्यवहारसमृद्धान्येव वाक्यानि प्राधान्येन रसं पुष्णन्तीति भावः ॥ ६२ ॥

१. आवृत्तिमेव संघात । २. निषिञ्चति । ३. एवं ।

हिन्दी—इससे पहले माधुर्यगुणके निरूपण-प्रारम्भमें 'मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः' यह कहकर वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यात्मक अर्थमें रसस्थिति कही गई थी, फलतः अर्थगत माधुर्यकी स्वीकृतिकी ओर इङ्गित मिलता है, उसी अर्थमाधुर्यका विशद स्वरूप इस कारिका द्वारा बताते हैं। इसका अर्थ यह है कि भले ही सभी प्रकारके अलङ्कारगण (शब्दार्थ तदुभयगतं तत्तदलङ्कार) अर्थमें रसका निषेक (आधान) करें, परन्तु बाहुल्येन प्रायः करके अर्थमें रसनिषेकका भार अग्राम्यता ही ढोती है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि अलङ्कारोंके कारण भी अर्थ रसोद्बोधक होते हैं, परन्तु बाहुल्येन वही अर्थ रसोद्बोध-समर्थ होते हैं जिनमें ग्राम्यता नामक दोषका विरह—अग्राम्यता हो। काव्यके हृदयरूप विदग्ध व्यवहारके हो जानेपर अलङ्कारोंकी जरूरत नहीं रह जाती। ऐसा देखा जाता है कि निरलङ्कार शब्दार्थमें भी रसपोषकता है। इस श्लोकमें प्रतियोगिविधया निर्दिष्ट ग्राम्यता पद अश्लीलता आदिका भी उपलक्षक है। इस कारिकामें 'भूयसा' कहकर आचार्यने सङ्केत किया है कि कहीं-कहीं ग्राम्यता और अश्लीलता भी दोषस्वरूप नहीं होती। इसी बातको ध्यानमें रखकर विश्वनाथने कहा है—'सुरतारम्भगोष्ठ्यादावश्लीलत्वं गुणो भवेत्'। इस प्रसङ्गमें यह भी जानना आवश्यक है कि ग्राम्यता कई तरहसे होती है, जैसे अवैदग्ध्यग्राम्यत्व—

'स्वपिति यावदयं निकटे जनः स्वपिति तावदहं किमपैति ते।
इति निगद्य शनैरनुमेखलं मम करं स्वकरेण रुरोध सा'॥

असभ्यार्थनिबन्धनग्राम्यत्व—

'ब्रह्मचर्योपतप्तोऽहं त्वं च क्षीणा बुभुक्षया। भद्रे भजस्व मां तूर्णं तव दास्याम्यहं पणम्'॥ ६२॥

कन्ये कामयमानं मां न[1] त्वं कामयसे कथम्।
इति ग्राम्योऽयमर्थात्मा वैरस्याय[2] प्रकल्पते॥ ६३॥
कामं कन्दर्पचाण्डालो[3] मयि वामाक्षि निर्दयः।
त्वयि निर्मत्सरो दिष्ट्येत्यग्राम्योऽर्थो रसावहः॥ ६४॥

अग्राम्यताऽर्थगतं माधुर्यं भूयसा सृजतीत्युक्तं, तत्राग्राम्यतास्वरूपबोधनाय तदपेक्षितां ग्राम्यतां प्रथममुदाहरति—**कन्ये इति**। हे कन्ये, कामयमानं रतये समुत्कण्ठमानं मां त्वं कथं न कामयसे, अत्र कन्यापदं दुहितृपरतया प्रसिद्धमिति प्रथममेवानुचितप्रयुक्त्या वैरस्यमावहति एवमेवात्रत्यः सर्वोऽप्यर्थो विस्पष्टमभिधीयमानतया सभ्यानां लज्जामुत्पादयन् रसास्वादवैमुख्यजनकः। अतश्चेदृशोऽर्थः सर्वथाऽनादरणीयः। अत्र यद्यपि शृङ्गारानुकूलयोः ककारमकारयोरावृत्त्या वृत्त्यानुप्रासो वर्तत इति शक्यते कथयितुं तथापि नासावनुप्रासो वर्ज्यमपि ग्राम्यार्थेन निकृष्टीभवन्तं शृङ्गारं प्रभवत्युपकर्तुम्। अतोऽत्र ग्राम्यतादोषसद्भावो माधुर्यमपनयति तदेवं ग्राम्यतामुदाहृत्य तद्विरुद्धस्वभावामग्राम्यतामाह—**काममिति**। हे वामाक्षि रमणीयायतलोचने, कन्दर्पचाण्डालः क्रूरप्रहारी कामः मयि निर्दयः अतिरुष्टतया नितान्तकुपितः, दिष्ट्या भाग्येन त्वयि निर्मत्सरः अपगतरोषः इति एतादृशः अग्राम्यः विदग्धजनव्यवहारविषयोऽर्थः रसावहः रसव्यञ्जकतया माधुर्यगुणोपेत इत्यर्थः। अनेनाग्राम्येणार्थेन विप्रलम्भः पुष्यते॥ ६३–६४॥

हिन्दी—हे कन्ये, मैं कामसे पीड़ित हूँ, तुम मुझे क्यों नहीं चाहती हो? इसमें जो ग्राम्य-असभ्यजनव्यवहार्य अर्थ प्रयुक्त हुआ है वह श्रोताके हृदयमें वैरस्य-विमुखताको उत्पन्न करता है। इस श्लोकमें सर्वप्रथम 'कन्या' पद आया है, जो लड़कीके लिये प्रयुक्त होता है, उसके

१ अयं च। २ वैरस्यायैव कल्पते। ३ कामाग्नौ।

प्रयोगसे बड़ी विरसता आ गई है। इसी प्रकार इसमें प्रयुक्त अर्थ खुलकर किये गये रति-निवेदनके कारण विदग्ध जनोंके हृदयोंमें लज्जाकी उत्पत्ति करता हुआ विरसता उत्पन्न करता है, अतः यह ग्राम्य है। इसी अर्थको यदि सम्यजनव्यवहार्य भाषामें कहेंगे, तब वह अग्राम्य होगा, तथा उससे रसकी पुष्टि होगी, इसका उदाहरण दिया है—कामम् इत्यादि। हे सुन्दर नयनोंवाली रमणी, कन्दर्प चाण्डाल मेरे ऊपर निर्दय है, परन्तु भाग्यवश वह तुम्हारे विषयमें उतना अधिक कुपित नहीं है। कामदेवके निर्दय प्रहारोंसे मैं जर्जर हो रहा हूँ, परन्तु तुम नहीं, इस तरह कहे गये इस अर्थमें सभ्यजनव्यवहार्य अर्थका प्रयोग हुआ है, जो विप्रलम्भ शृङ्गारकी पुष्टि करता है। इसमें वही अर्थ है जो पूर्वोक्त ग्राम्यतोदाहरणवाले पद्यमें है, परन्तु अपने-अपने कथनप्रकारसे भिन्न तरहके कार्य करता है॥ ६३-६४॥

शब्देऽपि ग्राम्यताऽस्त्येव सा सभ्येतरकीर्त्तनात्।
यथा यकारादिपदं रत्युत्सवनिरूपणे॥ ६५॥
पदसन्धानवृत्त्या[1] वा वाक्यार्थत्वेन वा पुनः।
दुष्प्रतीतिकरं ग्राम्यं यथा या[2] भवतः प्रिया॥ ६६॥

माधुर्यप्रतिबन्धकमर्थगतं ग्राम्यत्वमुक्तं, सम्प्रति शब्दगतं तन्निरूपयति—**शब्देऽपि इति**। सभ्येतरस्य असभ्यस्य सभायामुच्चारणायोग्यस्य शब्दस्य कीर्त्तनात् उच्चारणात् शब्देऽपि ग्राम्यता नाम दोषः अस्त्येव, यथा रत्युत्सवनिरूपणे रतिक्रीडाप्रसङ्गे यकारादि 'याभ'पदम्। 'यभ्' मैथुने इत्यतो धातोर्निष्पन्नं याभपदं नितान्तग्राम्यं, तद्धि श्रवणसमकालमेव वैरस्यं समापादयद् ग्राम्यम्। सुरतनिधुवनादिपदानि रत्यर्थकान्येव सन्त्यपि ग्राम्यतां न स्पृशन्ति, तदर्थकमेव च याभपदमश्लीलं ग्राम्यं च भवतीति शब्दस्वभावः। अयं च नार्थगतः किन्तु शब्दगतो दोष इति बोध्यम्। सोयं ग्राम्यतादोषो विशिष्टपदनिष्ठः केवलं विशिष्टपद एव नायम्, पदानां सान्निध्यविशेषेण वाक्यार्थविशेषेण चापीदमीयः प्रतिभासः, तदाह—**पदसन्धानेति**। पदानां सन्धानेन सन्धिना वृत्त्या सत्तया पदानां परस्परसन्धौ सति ग्राम्यतोदयते, यथा—'चलं डामरचेष्टितम्' इत्यत्र सन्धौ सति लण्डापदम्, अत्र पदसन्धानेनासभ्यार्थत्वम्। एवमस्योदाहरणं कारिकागतं याभवतः प्रिया 'या भवतः' इति विच्छिद्य पाठे न ग्राम्यतयाऽश्लीलत्वं, तस्यैव 'याभवतः' इति पदसन्धानेन पाठे याभवतः सततमैथुनानुरक्तस्य भवतः प्रिया सततसुरतप्रदानेन प्रीणयित्रीत्यर्थेनासभ्यत्वम्॥ ६५-६६॥

हिन्दी—माधुर्यप्रतिबन्धक अर्थगत ग्राम्यत्वका स्वरूप पहले बताया गया है, इन दो कारिकाओं द्वारा शब्दगत ग्राम्यत्वका स्वरूप बताया जाता है। सभ्येतर—असभ्य सभामें उच्चारणके अयोग्य अर्थके कीर्त्तन-अभिधानसे शब्दमें भी असभ्यताकी प्रतीति होती है, जैसे यकारादि 'यभ्' धातुनिष्पन्न पदोंके उच्चारणसे। यह शब्दगत ग्राम्यता दो प्रकारसे संभव है—पदसन्धानवृत्ति एवं वाक्यार्थतया दुष्प्रतीतिकर। पदसन्धान वृत्तिसे मतलब यह है कि पदोंके समीपस्थ होनेसे जो असभ्य हो जाय, जैसे—या, भवतः ये दो पद अलग-अलग रहनेपर ग्राम्य नहीं हैं, परन्तु इन्हीं दोनों पदोंको यदि सन्निधानवृत्ति समीपस्थता सन्धि हो जाय तब 'याभवतः' हो जानेसे सततमैथुनानुरक्त रूप अर्थ होने लगता है जो नितान्त ग्राम्य है। इस कारिकामें दो प्रकारसे ग्राम्यताका संभव होना कहा है, पदसन्धानवृत्ति तथा वाक्यार्थत्व। उसमें पदसन्धानवृत्तिका

1. पदसंघात। 2. वा।

उदाहरण 'कामवतः प्रिया' कहा गया है। वाक्यार्थत्वेन दुष्प्रतीतिकररूप ग्राम्यत्वका उदाहरण उक्त कारिकामें ॥ ६५-६६ ॥

खरं प्रहृत्य विश्रान्तः पुरुषो वीर्यवानिति।
एवमादि न शंसन्ति मार्गयोरुभयोरपि ॥ ६७ ॥

वीर्यवान् पराक्रमशाली पुरुषो दाशरथी रामः खरं तन्नामकं दैत्यभेदं प्रहृत्य हत्वा विश्रान्तो विश्रमं प्राप्तः। एषः प्राकरणिकोऽर्थः प्रथमं प्रतीयते, पश्चात्—वीर्यवान् गाढशुक्रः पुरुषः कश्चन कामुकः खरं गाढं प्रहृत्य मदनध्वजेन मदनमन्दिरं ताडयित्वा विश्रान्तः ग्लानिं प्राप्त इत्यसभ्योऽर्थः प्रतीयते। एवं वाक्यार्थगताश्लीलदोषेण दुष्टत्वान्नात्र माधुर्यम् ॥ ६७ ॥

हिन्दी—'भगवान् रामने खर नामक दानवको मार करके विश्राम लिया', यह इस उदाहरणवाक्यका प्रधान अर्थ है, परन्तु प्रधान अर्थकी प्रतीतिके पश्चात् यह भी अर्थ प्रतीत होता है कि वीर्यवान् किसी युवा कामुकने मदनध्वज द्वारा कामशास्त्रोक्त भगताडन करके विश्राम किया, इस अर्थमें असभ्यता है, इस तरहके अर्थकी प्रशंसा न वैदर्भमार्गमें है न गौडमार्गमें। दोनों सम्प्रदायके आचार्य इस ग्राम्यत्वदोषको हेय मानते हैं ॥ ६७ ॥

भगिनीभगवत्यादि सर्वत्रैवानुमन्यते।
विभक्तमिति माधुर्यमुच्यते सुकुमारता ॥ ६८ ॥

भगिनीभगवत्यादि पदं योनिलिङ्गादिग्राम्यार्थप्रतिपादकशब्दघटितमपि सर्वत्रैव गौडवैदर्भमार्गयोः सर्वविधेषु काव्येषु च अनुमन्यते निर्दुष्टतया शिष्टैः स्वीक्रियते। एषां शिष्टपरिगृहीतानां भगिनीभगवतीशिवलिङ्गविश्वयोनिप्रभृतिशब्दानां प्रयोगः सर्वत्र व्यवहारे काव्येषु वैदर्भ्यादिषु रीतिषु च अनुमन्यते निर्दोषतया स्वीक्रियते। तथा चोक्तं भोजराजेन—

'ग्राम्यं घृणवदश्लीलामङ्गलार्थं यदीरितम्। तत्संवीतेषु गुप्तेषु लक्षितेषु न दुष्यति' ॥
'संवीतस्य हि लोकेऽस्मिन् न दोषान्वेषणं क्षमम्। शिवलिङ्गस्य संस्थाने कस्यासभ्यत्वभावना' ॥

तदेवं माधुर्यं नाम गुणः सप्रपञ्चमुपदर्शितः, सम्प्रति क्रमप्राप्तां सुकुमारतां निरूपयितुमुपक्रमते, तदाह—उच्यते सुकुमारतेति ॥ ६८ ॥

हिन्दी—ग्राम्यता-अश्लीलताके वर्णनप्रसङ्गमें कुछ अपवादस्थल बतानेके लिये यह कारिका लिखी गई है। भगिनी, भगवती, विश्वयोनि, शिवलिङ्ग आदि पद लोकव्यवहार, काव्य, वैदर्भी आदि रीतियाँ, सभी जगह निर्दोष माने जाते हैं, उनके प्रयोगमें कुछ भी बाधा नहीं है। भोजराजने इस प्रसङ्गमें असभ्यार्थक शब्द-समुदायके निर्दोष होनेके तीन प्रभेद बताये हैं—'तत्संवीतेषु गुप्तेषु लक्षितेषु न दुष्यति'। संवीतसे अभिप्राय है अपुष्टतया स्वीकृतसे। अपुष्टतया अङ्गीकृतका ही संवीत कहते हैं।

इसका उदाहरण—

'तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां यतात्मने रोचयितुं यतस्व।
योनिस्तु तद्वीर्यनिषेकभूमिः सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम्' ॥

गुप्त उसको कहते हैं जहाँ प्रसिद्ध अर्थसे अप्रसिद्ध असभ्य अर्थका गोपन हो जाय, यथा—

'सुदुस्त्यजा यद्यपि जन्मभूमिः गनैरसंबाधमयां बभूवे।
स तेऽनुनेयः सुभगोऽभिमानी भगिन्ययं न प्रथमाभिसन्धिः' ॥

यहाँ जन्मभूमि, संबाध, सुभग, भगिनी आदि पद अपने जन्मस्थान, संकट, सुन्दर, बहन आदि प्रसिद्ध अर्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं, उनके अप्रसिद्ध अर्थ योनि, श्रीभग आदि गुप्त हो गये हैं, अतः इनका प्रयोग सर्ववादिसिद्ध है। इसी तरह कल्पित होनेपर भी ग्राम्यता नहीं होती :—

'ब्रह्माण्डकारणं योऽप्सु निदधे बीजमात्मनः। उपस्थानं करोम्येष तस्मै शेषाहिशायिने'॥

इस श्लोकमें ब्रह्माण्ड, उपस्थान शब्दोंसे यद्यपि असभ्य अर्थका स्मरण हो जाता है तथापि यहाँ इन पदोंकी लक्षणा अन्य अर्थोंमें हो गई है, अतः इन्हें ग्राम्य नहीं माना जाता।

इस प्रकार माधुर्यका सविस्तर वर्णन गौड़वैदर्भमार्गमें यथायोग्य किया गया है। इसके बाद सुकुमारता नामक गुणका निरूपण करेंगे। सारांश यह है कि गौड़सम्प्रदायवाले आचार्य वृत्त्यनुप्रासप्रधान प्रबन्धको मधुर मानते हैं, एवं वैदर्भसम्प्रदायानुगामी आचार्यगण श्रुत्यनुप्रासप्रधान काव्यको मधुर कहते हैं, इस प्रकार माधुर्य विभागद्वयमें अवस्थित है। बस माधुर्यका अन्त हो गया, अब सुकुमारता नामक गुणका वर्णन क्रमप्राप्त होनेके कारण किया जा रहा है॥ ६८॥

अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारमिहेष्यते[1]।
बन्धशैथिल्यदोषोऽपि[2] दर्शितः सर्वकोमले॥ ६९॥

अनिष्ठुराणि श्रुतिकटुत्वदोषास्पृष्टानि कोमलानि प्रायः बाहुल्येन यत्र तत् अनिष्ठुराक्षरप्रायम् बाहुल्येन कोमलवर्णघटितमिति यावत्, तादृशं वाक्यं सुकुमारम् इह साहित्यशास्त्रे इष्यते कविभिरास्थीयते। सुकुमारतयाऽभिमते काव्ये केवलं कोमला एव वर्णाः स्युर्नेदं नितान्तमपेक्ष्यते, किन्तु भूयसा सुकुमाराण्यक्षराणि स्युरेव, केवलकोमलाक्षरविन्यासे तु क्रियमाणे न केवलं लक्षणाव्याप्तिरेव, अपि त्वनर्थान्तरमपि स्यात्, तथाहि सति सर्वकोमले बन्धशैथिल्यदोषोऽपि प्रसज्येत-तदाह—बन्धेति। तथा चोक्तं शिथिलतालक्षणप्रस्तावे—शिथिलमल्पप्राणाक्षरोत्तरम्, यथा—'मालतीमालालोलालिकलिला' इति। एवं च यत्र कोमलाक्षराणां मध्ये मध्ये परुषाक्षरविन्यासेन मुक्तामालाया अन्तरान्तरा रत्नगुम्फनेनेव जायमानं किमपि चारुत्वं सुकुमारत्वमिति बोध्यम्। न चैवं सति प्रागुक्तस्वरूपस्य श्लेषाख्यगुणस्यास्य सुकुमारत्वस्य चैक्यापत्तिः उभयोर्लक्षणसाम्यादिति वाच्यम्, श्लेषस्य महाप्राणमिश्रिताल्पप्राणाक्षरविन्यासविशेषेण सुकुमारतायाश्चानिष्ठुराक्षरप्रायत्वेन द्वयोः परस्परभिन्नत्वात्।

काव्यप्रकाशकारादयस्तु सौकुमार्यं श्रुतिकटुत्वदोषाभावस्वरूपं मन्यमाना इदं पृथग् गुणत्वेन नाभ्युपगच्छन्ति, एवमेव तदनुगामिनो विश्वनाथप्रभृतयः। सौकुमार्यलक्षणप्रसङ्गे भरतः—

सुखप्रयोज्यैर्यच्छब्दैर्युक्तं सुश्लिष्टसन्धिभिः। सुकुमारार्थसंयुक्तं सुकुमारं तदिष्यते॥

एतदुदाहरणं यथा—

'अङ्गानि चन्दनरजःपरिधूसराणि ताम्बूलरागसुभगोऽधरपल्लवश्च।
अच्छाञ्जने च नयने वसनं तनीयः कान्तासु भूषणमिदं विभवावरोधः'॥

भोजराजेन तु दण्डिन एव लक्षणोदाहरणे स्वीकृते।

वामनस्तु अजरठत्वं सौकुमार्यं तच्चापारुष्यस्वरूपं मन्यते, 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' इत्यादि कालिदासीयं च पद्यं—सुकुमारबन्धमुदाहरति।

१. इहोच्यते। २. दोषो हि।

जगन्नाथपण्डितराजस्तु—अकाण्डे शोकदायित्वाभावरूपमपारुष्यं सुकुमारता, यथा—'त्वरया याति पान्थोऽयं प्रियाविरहकातरः' अत्र 'प्रियामरणकातर' इति पाठे पारुष्यं तद्रहितत्वात्सुकुमारतेति। आचार्यदण्डी सौकुमार्यं शब्दगुणमभिप्रैति, परे त्विदमर्थगुणं गृणन्ति। वस्तुतस्तु अर्थसौकुमार्यस्यामङ्गलरूपाश्लीलताख्यदोषाभावस्वरूपत्वेन न गुणत्वं तदुक्तं दर्पणकृता—'ग्राम्यदुःश्रवतात्यागात् कान्तिश्च सुकुमारता' इति ॥ ६९ ॥

हिन्दी—जिसमें प्रायः करके-बाहुल्येन अनिष्ठुर, श्रुतिकटुत्व दोषसे रहित अक्षर हों, अर्थात् कोमल वर्णोंसे जिसका सङ्गठन किया गया हो, वैसे वाक्यको सुकुमार–अर्थात् सुकुमारता नामक गुणसे भूषित कहा जाता है। 'प्रायः' पद इस लक्षण में बड़ा उपयोगी है, उससे यह अभिप्राय निकलता है कि सुकुमार वाक्यमें यह कोई नियम नहीं है कि सभी अक्षर अकठोर ही हों, इतना अवश्य चाहिये कि बाहुल्य कोमल वर्णोंका ही हो, जैसे मुक्तामाला में यदि बीच-बीच में रत्नान्तर लगा दिये जाते हैं तो उसकी शोभा और बढ़ जाती है. उसी तरह सुकुमार वाक्योंमें बीच-बीच में एकाध परुष वर्णके हो जानेसे कोई क्षति नहीं होती, प्रत्युत लाभ ही होता है। इसी बातको बतानेके लिये उत्तरार्धमें स्पष्ट कहा गया है कि यदि सभी वर्ण कोमल ही रहेंगे, तब बन्धशैथिल्यदोष उपस्थित होगा। जैसे—'मालतीमालालोलालिकलिला'।

इस सौकुमार्य गुणको काव्यप्रकाशकार आदि परवर्त्ती आचार्योंने श्रुतिकटुत्वरूप दोषका अभावस्वरूप मानकर इस गुणको अस्वीकृत कर दिया है। कुछ लोग सौकुमार्यको अर्थगुण भी मानते हैं, उनके मतमें अर्थगत सौकुमार्य वह है जिसमें अर्थगत पारुष्य नहीं आया हो, जैसे 'प्रियामरणकातरः' की जगहपर 'प्रियाविरहकातरः' कहकर पारुष्य से पृथक् रखा गया है। वस्तुतः यह अर्थगत सौकुमार्य गुण भी अमङ्गलरूपाश्लीलतादोषाभावस्वरूप ही है, अतः यह भी आवश्यक नहीं माना जायगा ॥ ६९ ॥

मण्डलीकृत्य बर्हाणि कण्ठैर्मधुरगीतिभिः।
कलापिनः प्रनृत्यन्ति काले जीमूतमालिनि ॥ ७० ॥

पूर्वकारिकायां लक्षितस्य सुकुमारतानामकस्य गुणस्योदाहरणमुपन्यस्यति—**मण्डलीति**। जीमूतमालिनि मेघमेदुरे काले बर्हाणि स्वीयपिच्छानि मण्डलीकृत्य मण्डलाकारेण विस्तार्य मधुरगीतिभिः मधुरं शब्दायमानैः कण्ठैः कलापिनो मयूराः प्रनृत्यन्ति, नृत्यमारभन्ते, ध्वनत्सु जलधरेषु तद्ध्वनिश्रवणसन्तुष्टा मयूराः स्वीयानि पिच्छानि मण्डलाकारेण वितत्य सानन्दं नृत्यन्तीत्यर्थः। अत्र निष्ठुराक्षरपरित्यागात्सुकुमारतागुणः ॥ ७० ॥

हिन्दी—वर्षाकालके उपस्थित होनेपर मधुर शब्द करनेवाले अपने कण्ठोंसे शब्द करते हुए गीत-सा गाते हुए एवं अपनी पूँछको मण्डलाकारमें फैलाये हुए यह मयूर नृत्य करने लगते हैं। इस वाक्यमे परुष वर्णका अप्रयोग है, प्रायः कोमल अक्षरोंके ही प्रयोग हो पाये हैं, अतः सुकुमारता नामक गुण माना जाता है ॥ ७० ॥

इत्यनूर्जित एवार्थो नालङ्कारोऽपि तादृशः।
सुकुमारतयैवैतदारोहति सतां मनः ॥ ७१ ॥

सुकुमाराताख्यस्य पूर्वं लक्षितस्योदाहृतस्य च गुणस्यावश्यस्वीकार्यत्वे युक्तिमुपन्यस्यति—**इत्यनूर्जित इति**। इति अस्मिन् पद्ये अर्थः अनूर्जितः रससम्पर्कशून्यतयाऽनति-

---

१. मुखम्।

स्फुट एव अलङ्कारोऽपि न तादृशः अतिशययुतः, समासोक्तिः सत्यपि नातिरसस्पृक्, (तथाऽपि अर्थालङ्कारयोरनतिप्रस्फुटत्वेऽपि) एतत्पद्यम् सुकुमारतयैव सौकुमार्यनामकगुण-सद्भावेनैव सतां मनः आरोहति, सद्भिरिदं यत्काव्यत्वेनाभ्युपेयते, तत्र केवलं सुकुमारता-नामकगुणसद्भाव एव कारणं, नार्थविशेषः, तस्यानूर्जितत्वात्, नाप्यलङ्कारविशेषः, तस्याप्य-परिनिष्ठितत्वात्, अतश्च सौकुमार्यमवश्यं गुणत्वेनास्थेयमिति भावः ॥ ७१ ॥

हिन्दी—पूर्वलक्षित एवम् उदाहृत सुकुमारता गुणके विषयमें मतभेद है, कुछ लोग इसे स्वीकार करते हैं और कुछ लोग इसको श्रुतिकटुत्वरूपदोषाभावस्वरूप मानते हैं। भरतमुनिने सुकुमारताको गुण माना है, परन्तु कुछ प्राचीन तथा तदनुवर्त्ती अर्वाचीन आचार्य इसे गुण नहीं मानते, उनका कथन है कि जब तक अर्थचमत्कृति न होगी, तब तक सुकुमारताका कोई लाभ नहीं है, वह स्वतः दोषाभावस्वरूप ही है, इसी मतका खण्डन इस कारिकामें किया गया है। दण्डीका कहना कि पूर्वोक्त उदाहरणश्लोकमें अर्थ अनूर्जित-अनतितेजस्वी है, इसी तरह अलङ्कार भी अनति-प्रस्फुट है, फिर भी यह पद्य सज्जनोंको भला लगता है, इसका एकमात्र कारण सौकुमार्य गुणका सद्भाव ही है, इस स्थितिमें सौकुमार्य गुणका माना जाना उचित है। दण्डीने अलङ्कारापेक्षया और अर्थापेक्षया भी गुणोंको काव्यमें प्रधान अङ्ग माना है, उनके मनमें यह बात बैठ गई थी—

'तया कवितया किं वा किं वा वनितया तया। पदविन्यासमात्रेण यया नापहृतं मनः' ॥

दण्डीका स्पष्ट आशय मालूम पड़ता है कि गुणवैचित्र्यके नहीं रहनेपर अर्थ और अलङ्कार रहकर भी काव्यकी शोभा नहीं बढ़ाते हैं, दण्डीको एक अच्छे समर्थक मिल गये हैं—भोजराज। उनका कथन है :—

'अलंकृतमपि श्रव्यं न काव्यं गुणवर्जितम्'।
'यदि भवति वचश्च्युतं गुणेभ्यो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङ्गनायाः।
अपि जनदयितानि दुर्भगत्वं नियतमलङ्करणानि संश्रयन्ते' ॥

जैसे किसी स्त्रीके शरीरमें सभी अलङ्कार सजा दिये गये हों परन्तु यौवन नहीं हो तो वह आकर्षक नहीं होती, उसी तरह यदि काव्यमें गुण नहीं हो, किन्तु अलङ्कार हो तो वह काव्य फीका ही लगता है ॥ ७१ ॥

दीप्तमित्यपरैर्भूम्ना कृच्छ्रोद्यमपि बध्यते।
न्यक्षेण क्षपितः पक्षः क्षत्रियाणां क्षणादिति ॥ ७२ ॥

अपरैः गौडकविभिः दीप्तम् दीप्तियुतम् दीप्तिसंज्ञकौज्ज्वल्ययुक्तम् इति हेतोः कृच्छ्रो-द्यम् कष्टोच्चार्यमपि पदं बध्यते काव्ये प्रयुज्यते। ओजस्विरचनानुकूलतया परुषवर्णघटितमत एव कष्टोच्चार्यमपि बध्यते गौडैः, एतदुदाहरणेन विशदीकरोति—**न्यक्षेणेति**। न्यक्षेण-निर्गतनेत्रेण जन्मान्धेन धृतराष्ट्रेण क्षत्रियाणां समस्तराजन्यानां पक्षः समूहः क्षणेन अल्पकालेन क्षपितः विनाशितः, दुर्मन्त्रद्वारा महाभारतयुद्धे विनाशं गमित इत्यर्थः। अत्र धृतराष्ट्रस्यायुध्यमानतया न वीररसप्रसङ्गः, वस्तुतस्त्वत्र करुणो रसः, तत्र चौजः-प्रधानरचनायाः अयुक्तत्वाच्च केवलमुच्चारणेनापि तु रसप्रसङ्गेनापि कृच्छ्रोद्यमिदं गौडा आद्रियन्ते ॥ ७२ ॥

---

१. क्षयितः।

हिन्दी—गौड़ लोग सौकुमार्य की अपेक्षा नहीं करते, इसी बातका वर्णन सोदाहरण इस कारिकामें किया गया है। अपर—गौड़ सम्प्रदायके कविगण दीप्त-ओजोगुणयुक्त मान कर कष्टोच्चार्य वर्णगुम्फित काव्यका भी निर्माण करते हैं। उदाहरण—न्यक्षेणेत्यादि। जन्मान्ध धृतराष्ट्रने क्षत्रियोंके समूहको थोड़े समयमें समाप्त करवा दिया, अपने पुत्र दुर्योधनादिको ऐसी दुर्बुद्धि दी जिससे अन्ततः सारे क्षत्रिय कट मरे। इस पद्यार्धमें करुणरस है, वीर नहीं क्योंकि धृतराष्ट्र तो युद्धरत था नहीं, ऐसी हालतमें यहाँपर ऐसा कष्टोच्चार्य पदकदम्ब नहीं प्रयुक्त करना चाहिये। लेकिन गौड़ जन केवल ओजके लोभसे ऐसा प्रयोग भी किया करते हैं ॥ ७२ ॥

अर्थव्यक्तिरनेयत्वमर्थस्य हरिणोद्धृता।
भूः खुरक्षुण्णनागासृग्लोहितादुदधेरिति ॥ ७३ ॥

क्रमप्राप्तमर्थव्यक्तिनामकं गुणं निरूपयति—**अर्थव्यक्तिरिति**। अर्थस्य पदप्रतिपाद्यस्य अनेयत्वम् अध्याहारादिकल्पनां विनैव प्रत्येयत्वम् अर्थव्यक्तिर्नाम शब्दगुणः, अर्थात् यावन्तोऽर्था अन्वयबोधौपयिकतयाऽपेक्ष्यन्ते तद्बोधनाय तावतां पदानां विन्यासोऽर्थव्यक्तिः, उदाहरणं यथा—हरिणा वराहरूपभृता भगवता विष्णुना खुरेण स्वशफेन क्षुण्णाः ताडिताः ये नागाः रसातलस्थाः सर्पास्तेषामसृग्भिः शोणितैः लोहितात् रक्तात् उदधेः सागरात् भूः उद्धृता उपरि नीता। अत्र सागरपयोरञ्जनकारणीभूतो नागासृक्सम्पर्कः पृथगुक्तिमन्तरा नेयः स्यात् अतः पृथगुक्त इति नात्र नेयत्वमिति भवत्यर्थव्यक्तिः। तदनुक्तौ तु नेयार्थत्वेन नार्थव्यक्तिः, अभिधास्यति तदग्रेतनोदाहरणेन ॥ ७३ ॥

हिन्दी—जिस वाक्यमें विवक्षित अर्थ समझनेके लिये अध्याहारादि कष्ट कल्पनायें नहीं करनी पड़ें, सभी शब्द वाक्यार्थबोधमें अपेक्षित अर्थोंको स्पष्टतया बताते हों उस वाक्यमें अर्थव्यक्तिनामक गुण माना जाता है। जैसे—हरिणा इति। भगवान् विष्णु वराहावतारमें अपने खुरसे कुचले गये नागोंके शोणितसे रक्तवर्ण समुद्रके जलसे इस पृथ्वीको ऊपर ले आये अर्थात् पृथ्वीका उद्धार किया, प्रलयकालमें जलमग्न हुई इस पृथ्वीको पानीसे बाहर निकाला। इसमें सागरका पानी लाल क्यों हुआ ? इसका कारण यदि नहीं कहा गया होता तो नेयार्थ हो जाता, जैसे आगे कहे गये प्रत्युदाहरणश्लोक—'मही महावराहेण लोहितादुद्धृतोदधेः' में सागरके लाल होनेमें कारण नहीं कहनेसे नेयार्थ हो गया है। यह अर्थव्यक्ति शब्दगुण है ऐसा दण्डीका मत है, इस अर्थव्यक्ति नामक शब्दगुणका लक्षण अन्यान्य आचार्योंके अनुसार इस प्रकार है :—

भरत—

'सुप्रसिद्धा धातुना तु लोककर्मव्यवस्थिता।
या क्रिया क्रियते काव्ये सार्थव्यक्तिः प्रकीर्त्तिता' ॥

भोजराज—'यत्र संपूर्णवाक्यत्वमर्थव्यक्तिं वदन्ति ताम्' ॥ यथा—

'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ' ॥

वाग्भट—'यत्र सुखेनार्थप्रतीतिः सार्थव्यक्तिः'। यथा—

'बाले तिलकलेखेयं भाले भिल्लीव राजते।
भ्रूलताचापमाकृष्य न विद्मः कं हनिष्यति' ॥

पण्डितराज जगन्नाथ—

झटिति प्रतीयमानार्थान्वयकत्वमर्थव्यक्तिः, इति शब्दगताऽर्थव्यक्तिः, अर्थी स्वर्थव्यक्तिः—वर्णनीयस्वासाधारणक्रियारूपयोर्वर्णनमर्थव्यक्तिः। काव्यप्रकाशकारने इस अर्थका स्वभावोक्तिमें

अन्तर्भाव माना है। उनका कहना है—'अभिधास्यमानस्वभावोक्त्यलङ्कारेण वस्तुस्वभावस्फुटस्वरूपार्थव्यक्तिः स्वीकृता'।

साहित्यदर्पणकारने अर्थव्यक्तिका अन्तर्भाव प्रसाद गुणमें किया है। कहा है :—

'अर्थव्यक्तेः प्रसादाख्यगुणेनैव परिग्रहः'।

इस प्रसङ्गमें साफ-साफ यही समझना चाहिये कि शाब्दी अर्थव्यक्तिका प्रसाद गुणमें अन्तर्भाव मानते हैं और आर्थी अर्थव्यक्तिको स्वभावोक्त्यलङ्कारस्वरूप। इस प्रकार दोनों तरहकी अर्थव्यक्तिका अपलाप कर लेते हैं ॥ ७३ ॥

मही महावराहेण लोहितादुद्धृतोदधेः।
इतीयत्येव निर्दिष्टे नेयत्वमुरगासृजः ॥ ७४ ॥

पूर्वकारिकायामर्थव्यक्तिनिरूपणप्रस्तावेऽनेयार्थत्वमवश्यमपेक्ष्यत्वेन स्वीकृतं, तज्ज्ञानस्य नेयार्थत्वज्ञानाभावे सम्पत्तुमशक्यतया सम्प्रति सोदाहरणं नेयार्थत्वमाह—**महीति**। अर्थः प्रागुक्तः, अत्र केवलम्—खुरक्षुण्णनागासृगिति नोक्तं, यदभावेऽम्बुधिलौहित्यमित्यनुपपद्यमानं कष्टकल्पनादिनोन्नेयं प्रसज्यत इतीदं नेयार्थम्। उक्तश्चायमर्थो भोजराजेन—

'वाक्यं भवति नेयार्थमर्थव्यक्तेर्विपर्ययात्।
महीमहावराहेण लोहितादुद्धृतोदधेः।
इतीयत्येव निर्दिष्टे नेया लौहित्यहेतवः' ॥

काव्यप्रकाशकारादयस्तु-रूढिप्रयोजनाभावादशक्तिकृतं लक्ष्यार्थप्रकाशनं नेयार्थत्वमाहुः ॥७४॥

हिन्दी—'मही महावराहेण' इस उदाहरणमें सागरके लाल होनेका कारण नहीं बताया गया है, अतः कष्टकल्पना द्वारा लाल होनेके कारणका उन्नयन किया जाता है अतः यह नेयार्थ होनेके कारण अर्थव्यक्तिरहित है। यहाँ इतना बता देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि लक्षणा दो प्रकारसे की जाती है—निरूढलक्षणा और प्रयोजनलक्षणा। निरूढलक्षणा एक तरहसे अभिधाकी तरह होती है, क्योंकि वह प्रसिद्धिसे उद्भूत होती है, इसीलिये उसे अनादितात्पर्यमूलक कहते हैं, जैसे 'कर्मणि कुशलः'। इसी तरह प्रयोजनवती लक्षणा किसी खास वस्तुको बतानेके लिये की जाती है, जैसे 'गङ्गायां घोषः'। इसमें शैत्यप्रतीति प्रयोजन है। इन दोनों लक्षणाओंको दुष्ट नहीं कहा जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ लक्षणायें ऐसी भी की जाती हैं, जिनके मूलमें शब्दोंकी अशक्ति उच्चारित पदोंका विवक्षितार्थप्रत्यायनाक्षमत्व होता है। इस तरहकी अशक्तिमूलक लक्षणा नहीं करनी चाहिये, वैसा करनेसे नेयार्थत्व दोष होता है, इसी बातको दृष्टिमें रखकर आचार्योंने नेयार्थता दोषके स्वरूपनिर्वचनकालमें कहा है—'रूढिप्रयोजनाभावादशक्तिकृतं लक्ष्यार्थप्रकाशनं नेयार्थत्वम्', उदाहरण दिया—

शरत्कालसमुल्लासिपूर्णिमाशर्वरीप्रियम्। करोति ते मुखं तन्वि चपेटापातनातिथिम् ॥

यहाँ पर 'चपेटापातनातिथि' शब्दसे 'जित' अर्थ लक्षित किया गया है, जिसे रूढि या प्रयोजन दो में से कोई भी बल प्राप्त नहीं है। यह सारी बात कुमारिल ने स्पष्ट कह दी है—

'निरूढा लक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत्। क्रियन्ते साम्प्रतं काश्चित् काश्चिन्नैव त्वशक्तितः' ॥

इस कारिकामें अन्तिम चरणद्वारा जिसका निषेध किया गया है, उसी लक्षणाके अवलम्बनमें नेयार्थत्वका उदय होता है ॥ ७४ ॥

नेदृशं बहु मन्यन्ते मार्गयोरुभयोरपि।
नहि प्रतीतिः सुभगा शब्दन्यायविलङ्घिनी ॥ ७५ ॥

ईदृशं नेयार्थम् वाक्यम् उभयोरपि गौडवैदर्भमार्गयोराचार्या न बहु मन्यन्ते नाद्रियन्ते, उभयोरपि सम्प्रदाययोराचार्या नेयार्थत्वं न युक्ततयाऽऽतिष्ठन्त इत्यर्थः, तत्र कारणमुपन्यस्यति—शब्दन्यायः शाब्दबोधपद्धतिः वृत्त्युपस्थितानामेवार्थानां बोध इत्येवं रूपो व्यवहारस्तद्विलङ्घिनी तत्प्रतिकूला प्रतीतिः (नेयार्थप्रतीतिः) नहि सुभगा न रमणीया, अत एव तादृश्याः प्रतीतेरहृद्यत्वमभ्युपेत्य संप्रदायद्वयेऽपि नादरो नेयार्थग्रहणप्रयोगादेरिति भावः ॥ ७५ ॥

हिन्दी—इस तरहके नेयार्थ वाक्यका कहीं भी आदर नहीं होता है, गौड़ या वैदर्भ किसी भी सम्प्रदायके आचार्य उसका आदर नहीं करते, क्योंकि शाब्दबोधके नियम—वृत्त्युपस्थापित, अर्थोंका ही अन्वय हो—इस तरहके नियमका उल्लङ्घन करनेवाली प्रतीति सुन्दर नहीं हुआ करती। जिस बोधमें शाब्दबोधके सिद्धान्तोंकी अवहेलना की जाती है वह बोध हृद्य नहीं होता है, इसीलिये गौड़वैदर्भ दोनों सम्प्रदायके आचार्यगण नेयार्थका त्याग ही अभीष्ट मानते हैं ॥ ७५ ॥

उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते ।
तदुदाराह्वयं तेन सनाथा काव्यपद्धतिः ॥ ७६ ॥

यस्मिन् वाक्ये उक्ते अभिहिते सति कश्चित् उत्कर्षवान् वर्णनीयवस्तुमहत्तासूचकः गुणो धर्मविशेषः प्रतीयते ज्ञायते, तद्वाक्यम् उदाराह्वयम् उदारम् उदारतानामकगुणयुक्तम् तेन उदारतानामकगुणेन काव्यपद्धतिः काव्यरीतिः सनाथा कृतार्था चमत्कृतेत्यर्थः, भवतीति शेषः। येन वाक्येन प्रयुज्यमानेन सता वर्णनीयस्य वस्तुनः कोऽपि महिमातिशयो बुद्धिगोचरो भवति तदुदारं वाक्यमित्याशयः, तत्र महिमातिशय उत्कर्षख्यापनेन आकर्षख्यापनेन चोभयथा संभवति, चमत्कारस्योभयथा समुत्पाद्यत्वात्। अयं चार्थगुणः, वाक्यस्यार्थद्वारैव गुणव्यञ्जकत्वात्। वामनस्तु विकटत्वस्वरूपमुदारत्वं शब्दगुणमेवाह, विकटत्वं तु पदानां नृत्यत्प्रायत्वम्, यथा—'सुचरणविनिविष्टैर्नूपुरैर्नर्त्तकीनां झणिति रणितमासीत्तत्र चित्रं कलञ्च' ॥ ७६ ॥

हिन्दी—जिस वाक्यके प्रयुक्त होनेपर उस वाक्यार्थके द्वारा वर्णनीय वस्तुके लोकोत्तर चमत्कार की अवगति हो, उसमें उदारता नामक गुण होता है, उससे काव्यमार्ग सफल होता है, काव्यका प्रयोजन चमत्कार ही माना जाता है, उदारतासे चमत्कारका पोषण होता है, अतः उदारताको काव्यका जीवन माना गया है। यहाँ पर यह समझना चाहिये कि वाक्य जब गुणव्यञ्जक होंगे तब स्वीय अर्थ द्वारा ही; इससे यह अर्थगुण हुआ, वामनादि ने जो एक उदारता मानी है वह विकटत्वस्वरूप है अतः वह शब्दगुण है।

भरतने उदारताकी यह परिभाषा की है—

'दिव्यभावपरीतं यच्छृङ्गाराद्भुतचेष्टितम्। अनेकभावसंयुक्तमुदारं तत् प्रकीर्त्तितम्' ॥

भोजराजने कहा है—'विकटाक्षरबन्धत्वमार्यैरौदार्यमुच्यते'।

'भूत्युत्कर्षमुदारता'............. ।

इसमें पहला लक्षण शब्दगुण-उदारताका है और दूसरा लक्षण अर्थगुण-उदारताका। इ: उदारताको अर्वाचीन आचार्यगण गुणरूपमें नहीं मानते, उनका आशय है कि शब्दगुण-उदारता ओजमें अन्तर्भाव होता है और अर्थगुण-उदारता अग्राम्यतादोषाभावस्वरूप है ॥ ७६ ॥

अर्थिनां कृपणा दृष्टिस्त्वन्मुखे पतिता सकृत् ।
तदवस्था पुनर्देव नान्यस्य मुखमीक्षते ॥ ७७ ॥
इति त्यागस्य वाक्येऽस्मिन्नुत्कर्षः साधु लक्ष्यते ।
अनेनैव पथान्यत्र समानन्यायमूह्यताम् ॥ ७८ ॥

पूर्वोक्तलक्षणमौदार्यं दृष्टान्तेन विशदयति—**अर्थिनामिति** । हे देव महाराज अर्थिनां याचकानां कृपणा दीना दृष्टिः त्वन्मुखे सकृत् एकदा पतिता सती पुनः पश्चात् तदवस्था दीना भूत्वा अन्यस्य दात्रन्तरस्य मुखं नेक्षते न पश्यति, त्वयैव पूरिताभिलाषा दीना न याचनाय दात्रन्तरमुपसर्पन्तीत्यर्थः, एवमत्रोदाहरणे लक्षणसङ्गमायाह—**इतीति** । इति एवं वाक्येऽस्मिन् पूर्वोक्ते श्लोकवाक्ये त्यागस्य दानस्योत्कर्षः साधु स्फुटं लक्ष्यते, एवमेव क्वचिदन्यस्य बलरूपादेरप्युत्कर्षप्रतीतावुदारत्वं शक्यसंभवमिति बोधयति—**अनेनैवेति** । अनेनैव त्यागोत्कर्षदर्शनसजातीयेन पथा प्रकारेण समानन्यायम् एतत्तुल्यम् उदाहरणान्तरम् ऊह्यताम् तर्क्यताम् ॥ ७७–७८ ॥

हिन्दी—पूर्वोक्तलक्षण उदारताका उदाहरण तथा उसका सङ्गमन इन दो श्लोकों द्वारा किया गया है । जो याचक दीनभावसे एक बार आपका मुख देख लेता है उसे फिर कभी किसीका मुख याचकके रूपमें नहीं देखना पड़ता । आप उसे इतना धन दे देते हैं कि उसकी आर्थिक दीनता दूर हो जाती है । यही है इसका अर्थ । इस श्लोकमें राजाके दानका उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है अतः उदारता गुण है, इसी तरह अन्यान्य वस्तुओंके उत्कर्षप्रतिपादन होने पर भी उदारता गुण होगा ॥ ७७–७८ ॥

श्लाघ्यैर्विशेषणैर्युक्तमुदारं कैश्चिदिष्यते ।
यथा लीलाम्बुजक्रीडासरोहेमाङ्गदादयः ॥ ७९ ॥

स्वाभिमतमुदारतालक्षणं निरुच्य सम्प्रति परकीयं तल्लक्षणोदाहरणादि बोधयति—**श्लाघ्यैरिति** । इदमग्निपुराणीयस्य लक्षणस्य कीर्त्तनम्, तत्र हि—'उत्तानपदतौदार्यं युतं श्लाघ्यैर्विशेषणैः' इत्युक्तम् । तदुदाहरणं यथा—**लीलाम्बुजेति** । अत्र लीलाम्बुजपदेनाम्बुजे लीलेति विशेषणेन वर्णाकारसौरभातिशयशालित्वम्, क्रीडासरःपदे सरसः क्रीडाविशेषणेन कमलसारसविहारनौकासनाथत्वम्, एवम् हेमाङ्गदपदस्थहेमपदेन रत्नखचितत्वं प्रतीयते, एवमेव मणिनूपुर-रत्नकाञ्ची-कनककुण्डलादिपदेषु ॥ ७९ ॥

हिन्दी—दण्डी स्वाभिमत उदारतालक्षण बताकर अब अग्निपुराणोक्त उदारतालक्षण प्रदर्शित करते हैं । श्लाघ्य विशेषणोंसे युक्त वाक्यका उदार कहा जाता है, जैसे लीलाम्बुजादि । यहाँ अम्बुजमें लीलाविशेषण लगानेसे उसके आकार-वर्ण-सौरभ आदि गुणोंका उत्कर्ष प्रतीत होता है, इसी तरह क्रीडासर, हेमाङ्गद आदि पदोंमें भी ॥ ७९ ॥

ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम् ।
पद्येऽप्यदाक्षिणात्यानामिदमेकं परायणम् ॥ ८० ॥

ओजोगुणं निरूपयति—**ओज इति** । समसनम् द्वयोर्बहूनां वा पदानाम् एकपदत्वप्राप्तिः समासः, समासभूयस्त्वम् समासबाहुल्यम् ओजो नाम गुणः, बहुपदसमास ओज

इत्यर्थः, एतत् समासभूयस्त्वम् गद्यस्य जीवितम् प्राणस्वरूपम्, अस्मिन्हि सति गद्यमतीव स्वदते इत्यर्थः। अदाक्षिणात्यानां पौरस्त्यानां गौडानाम् पद्येऽपि (अपिर्गद्यसमुच्चायकः) इदं समासबाहुल्यम् एकं परायणम् अवलम्बनम्। गौडीवैदर्भाश्चोभयेऽपि ओजोगुणमाद्रियन्ते, नात्र तयोर्वैमत्यम्, तत्र गौडा गद्ये पद्ये च समानभावेनौजः समाद्रियन्ते, वैदर्भास्तु गद्यमेवौजसा भूषणीयं जीवनीयं च मन्यन्त इति विशेषो बोध्यः॥ ८०॥

हिन्दी—समासकी बहुलता होनेपर ओज गुण माना जाता है। इस गुणके संबन्धमें गौड़वैदर्भ सम्प्रदायोंमें सहमति है, दोनों सम्प्रदाय इसे माननेवाले हैं, अन्तर इतना ही है कि वैदर्भ लोग ओजगुणको गद्यमात्रका जीवन कहते हैं और गौड़ सम्प्रदायवाले गद्य तथा पद्य दोनों प्रकारकी रचनाके लिये इसे समानरूपसे अवलम्बन मानते हैं। समास शब्दगत वस्तु है, अतः यह ओज शब्दगुण है, ऐसा दण्डीका मत प्रतीत होता है क्योंकि उन्होंने 'समासभूयस्त्वम् ओजः' यही लक्षण कहा है।

वामनने 'अर्थस्य प्रौढिः ओजः' ऐसा लक्षण करके अर्थगत ओज भी माना है, उन्होंने इसे पाँच प्रकारका बताया है। शब्दगत ओजका लक्षण वामनने 'गाढबन्धत्वमोजः' कहा है।

भोजराज, वाग्भट, हेमचन्द्र, जगन्नाथ इत्यादि आचार्योंने भी ओजको शब्दगत तथा अर्थगत मानकर लक्षण-उदाहरण दिये हैं।

काव्यप्रकाशकारने—'ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपदीप्तत्वजनकम्' ऐसा लक्षण किया है, और 'वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु' स्वीकार किया है, तदनुसार तीन उदाहरण भी दिये जाते हैं। विश्वनाथ कविराजने भी उन्हींके पदचिह्नका अनुसरण किया है॥ ८०॥

तद्गुरूणां लघूनां च बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः।
उच्चावचप्रकारं[1] तद्[2] दृश्यमाख्यायिकादिषु॥ ८१॥

तत् ओजः गुरूणाम् दीर्घवर्णानाम् लघूनाम् ह्रस्ववर्णानां च बाहुल्येन आधिक्येन अल्पत्वेन न्यूनत्वेन मिश्रणेन उभयविधवर्णसाङ्कर्येण च त्रिधा भवति, क्वचित् दीर्घा एव वर्णा भूयांसः, क्वचिच्च लघव एव तथा क्वचिच्च तयोर्मिश्रणं तदेवमिदमोज उच्चावचप्रकारं नानाविधं तच्च आख्यायिकादिषु गद्यप्रबन्धेषु दृश्यम् द्रष्टव्यम्। अत्रादिपदं चम्पूविरुदादिगद्यप्रचुरग्रन्थसंग्राहकम्॥ ८१॥

हिन्दी—पूर्वोक्त ओज गुण नानाप्रकारके होते हैं, कहीं गुरु वर्णोंकी बहुलता होती है, कहीं लघु वर्णोंकी बहुलता होती है, और कहीं दोनों प्रकारके वर्णोंकी मिलावट (मिश्रण) होती है, इस प्रकारसे अवान्तर भेदोंके होनेके कारण ओज अनेक प्रकारका होता है। ओज गुणका विशेष प्रयोग आख्यायिका, विरुद, चम्पू वगैरह गद्यप्रचुर ग्रन्थोंमें देखनेको मिलता है॥ ८१॥

अस्तमस्तकपर्यस्तसमस्तार्कांशुसंस्तरा।
पीनस्तनस्थिताताम्रकम्रवस्त्रेव[3] वारुणी॥ ८२॥
इति पद्येऽपि पौरस्त्या बध्नन्त्योजस्विनीर्गिरः।
अन्ये त्वनाकुलं हृद्यमिच्छन्त्योजो गिरां यथा॥ ८३॥
पयोधरतटोत्सङ्गलग्नसन्ध्यातपांशुका।
कस्य कामातुरं चेतो वारुणी न करिष्यति॥ ८४॥

---

१. प्रकारेण। २. [illegible]। ३ [illegible]

अस्तम् अस्ताचलस्तस्य मस्तके शिखरदेशे पर्यस्ताः व्याप्ताः प्रसृता ये समस्ता अर्कांशवः सायंकालिकसूर्यकिरणाः तैः संस्तरः आच्छादनं यस्याः सा तादृशी वारुणी पश्चिमाशा पीनः पुष्टो यः स्तनस्तस्मिन् स्थितम् आताम्रम् ईषल्लोहितम् कम्रम् सुन्दरम् च वस्त्रं यस्याः सा तादृशी इव भातीति शेषः। पश्चिमाशाया वर्णनमिदम्, सन्ध्याकाले सूर्यस्य रक्ताभाः किरणाः पश्चिमाचलशिखरे प्रसरन्ति, मन्ये वारुणी दिशा नायिका पीनस्तनभागे रक्तं वस्त्रमिव धारयति इत्याशयः। अनुप्रासपूर्णतया गौडा इदमोजस उदाहरणं मन्यन्ते। इति एवम् पद्येऽपि पौरस्त्या गौडा ओजस्विनीः ओजोगुणयुताः गिरः बध्नन्ति प्रयुञ्जते, अनुप्रासरसिका गौडा ओजोगुणं पद्येऽप्याद्रियन्त इत्यर्थः। अन्ये वैदर्भास्तु गिराम् वाचाम् अनाकुलम् अनाकुलत्वम् सुखोच्चार्यत्वम् हृद्यम् मनोहरम् ओजः ओजोगुणम् इच्छन्ति। तदुदाहरणम्—**पयोधरेति**। पयोधरो मेघ एव पयोधरः स्तनस्तस्य तटं प्रान्तदेशस्तदुत्सङ्गे मध्यभागे लग्नं सन्ध्यातपः सायंकालिकसूर्यकिरणा एव अंशुकं रक्तवासो यस्याः सा एतादृशी वारुणी पश्चिमदिशा नायिका कस्य जनस्य चेतो हृदयं कामातुरम् अनङ्गपीडायुतं न करिष्यति सर्वमपि जनं कामातुरं करिष्यतीत्यर्थः। अत्र यद्यपि ओजोगुणाद्यपेक्षितः समासोऽस्ति, परन्तु पूर्वोदाहरण इव क्लिष्टपदं नास्तीति वैदर्भा अभिमन्यन्ते। इदमत्र बोध्यम्—अयमोजोगुणो गौडवैदर्भयोरुभयोरपि सम्प्रदाययोरिष्टः, परं गौडसम्प्रदायानुगामिनोऽनुप्रासलोभात् कष्टपदबहुलसमासविन्यासने श्रोतृणां बुद्धीर्व्यामोहयन्ति, वैदर्भास्तु बन्धपारुष्यशैथिल्यादिदोषपरिहारेण प्रसन्नार्थक-पदानां समासेन बुद्धीः प्रसादयन्ति, समासभूयस्त्वमुभयोः समानम्, परन्तु कष्टत्वमारत्यमात्रे भेद इति॥ ८२-८४॥

हिन्दी—सूर्यके समस्त किरणजालसे आच्छादित अस्ताचल पर बिखरी हुई शोभासे युक्त पश्चिम दिशा उस नायिकाके समान मालूम पड़ रही थी, जिसने रक्त वस्त्रसे अपने पीन कुचोंको आच्छादित कर लिया हो। इस प्रकारसे गौड़ लोग पद्यमें भी ओजोगुणयुक्त वाणीका प्रयोग करते हैं, वैदर्भसम्प्रदायवाले वाणीमें ओजगुण तभी पसन्द करते हैं जब वह स्पष्टार्थ तथा सरलतया हृदयग्राहिणी होती है। सन्ध्याकालिक सूर्यके किरणजालसे बादलोंके तटों (स्तनोंके ऊपरी भाग) को आच्छादित कर पश्चिम दिशा (बाला) किसके मनको कामातुर नहीं कर देगी॥ ८२-८४॥

कान्तं सर्वजगत्कान्तं लौकिकार्थानतिक्रमात्।
तच्च वार्ताभिधानेषु वर्णनास्वपि दृश्यते॥ ८५॥

लौकिकस्य लोकप्रसिद्धस्यार्थस्य वस्तुनः अनतिक्रमात् अपरित्यागात् सर्वजगत्कान्तम् सर्वप्रियम् आपामरप्रसिद्धार्थोपनिबन्धनात् सर्वजनहृद्यं वाक्यम् कान्तं कान्तिनामकगुणयुतम्, एवं च लोकप्रसिद्धार्थवर्णनं कान्तिरिति फलितम्। अयं च कान्तिगुणः आचार्यदण्डिमतेनार्थगुणः, अर्थानुसन्धानतः पूर्वमस्यानुदयात्, तच्च कान्तिगुणोपेतं वाक्यं वार्ताभिधानेषु लौकिकोपचारवचनप्रयोगेषु तथा वर्णनासु प्रशंसापरकवाक्येषु च दृश्यते॥ ८५॥

हिन्दी—लोकप्रसिद्ध वस्तुका अतिक्रमण-त्याग-नहीं करनेके कारण जो सर्वलोकप्रिय हो, आपामरप्रसिद्ध अर्थके प्रयोगसे जो सबको अच्छा लगे, उसे कान्त अर्थात् कान्तिगुणयुक्त मानते

हैं, उस गुणकी अधिकता लौकिक उपचारमें—प्रशंसापरक वचनोंमें मिलती है। आचार्य दण्डी कान्तिको—कान्ति गुणको—अर्थगुण स्वीकार किया है क्योंकि अर्थानुसन्धान होने पर ही उसः सर्वहृद्यता प्रतीत होगी।

भरतने कान्तिका लक्षण यह कहा है—

यन्मनःश्रोत्रविषयमाह्लादयति ह्रीन्दुवत्। लीलाद्यर्थोपपन्नां वा तां कान्तिं कवयो विदुः॥

इसका उदाहरण हेमचन्द्रने दिया है—

ददृशुर्दूरदेशस्थां सीतां वल्कलधारिणीम्। अङ्गदाह्लादनङ्गस्य रतिं प्रव्रजितामिव॥

वामनोक्त कान्तिलक्षण यह है—

औज्ज्वल्यं कान्तिः, औज्ज्वल्यं नाम नवप्रतिभाप्रकर्षः, यदभावे, पुराणीबन्धच्छायेयमि व्यपदिशन्ति।

भोजराजने—'यदुज्ज्वलत्वं बन्धस्य काव्ये सा कान्तिरुच्यते'। कान्तिका इस प्रकार लक्षण कर यह उदाहरण दिया है—

'निरानन्दः कौन्दे मधुनि विधुरो बाकवकुले न साले सालम्बो लवमपि लवङ्गे न रमते।
प्रियङ्गौ नासङ्गं रचयति न चूते विचरति स्मरँल्लक्ष्मीलीलाकमलमधुपानं मधुकरः'॥

काव्यप्रकाशकारने कान्ति गुणको ग्राम्यत्वदोषाभावरूप माना है, इसे पृथक् गुण नहीं स्वीक किया।

पण्डितराजने—'अविदग्धवैदिकादिप्रयोगयोग्यानां पदानां परिहारेण प्रयुज्यमानेषु पदेषु लोक सरशोभारूपमौज्ज्वल्यं कान्तिः' ऐसा लक्षण कहा है और यह उदाहरण दिया है—

'नितरां परुषा सरोजमाला न मृणालानि विचारपेशलानि।
यदि कोमलता तवाङ्गकानामथ का नाम कथाऽपि पल्लवानाम्'॥

गृहाणि नाम तान्येव तपोराशिर्भवादृशः।
संभावयति यान्येवं पावनैः पादपांसुभिः॥ ८६॥
अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः।
अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे॥ ८७॥
इति सम्भाव्यमेवैतद्विशेषाख्यानसंस्कृतम्।
कान्तं भवति सर्वस्य लोकयात्रानुवर्त्तिनः॥ ८८॥

तानि एव गृहाणि गृहपदवाच्यानि प्रशस्तानि गृहाणि, भवादृशो युष्मत्सदृः तपोराशिः तपस्वी यानि गृहाणि पावनैः पवित्रतासम्पादकैः पादपांसुभिः चरणरजोभिः संभावयति आदरभाजनं करोति, यत्र भवादृशस्य तपस्विनः पदधूलिः पतति तानि गृहाणि धन्यानि, तदितराणि त्वधन्यानि तादृशसौभाग्यभाजनत्वाभावादिति भाव। अत्र सत्पुरुषचरणसम्पर्केण गृहाणां प्राशस्त्यवर्णनं लोकप्रसिद्धमेवेतीदं वार्त्ताभिधा रूपा कान्तिः। वर्णनारूपां कान्तिमुदाहरति—**अनयोरिति**। हे अनवद्याङ्गि, सर्वानिन्द्यतनो सुन्दरि, तव बाहुलतान्तरे हस्तद्वयस्य मध्ये वक्षोदेशे जृम्भमाणयोः वर्धमानयोः स्तनयोः कुचयोः अवकाशः स्थानम् न पर्याप्तः न अलम्, विशालयोः कुचयोरवस्थानयोग्यं स्थानं नास्ति तव वक्षसि, तेन तदौन्नत्यविशालत्वे व्यञ्जिते। अत्र वर्णना कान्तिगुणः।

इति एतत्पूर्वदर्शितं स्थलद्वयम् वार्त्ताविषयं वर्णनाविषयं चोदाहरणद्वयम् सम्भाव्यम् लोकप्रसिद्धतया संभवदुक्तिकम्, न तु कविप्रतिभामात्रकल्पितम्, तदेवेदं स्वतःसम्भवि विशेषाख्यानसंस्कृतम् विशिष्टप्रकारककथनेन संस्कृतम् उपश्लोकितं रञ्जितं सत् सर्वस्य लोकयात्रानुवर्त्तिनः लोकव्यवहारनिपुणस्य जनस्य कान्तं रमणीयं भवति, वार्त्तावर्णनयोः करणीययोः केवलं सामान्यपदप्रयोगेण कथने सति न कान्तिगुणः, अपितु विशिष्टवर्णनात्मकप्रकारेणैव कान्तिगुण इति भावः ॥ ८६–८८ ॥

हिन्दी—वास्तवमें वेही गृह गृह हैं—सौभाग्यशाली गृह हैं—जिन गृहोंको आपके समान तपस्वी जन अपने चरण की धूलिसे गौरवशाली बनाते हैं। इस श्लोकमें सत्पुरुषचरणधूलिसे गृह की सौभाग्यशालिताका वर्णन किया गया है, जो लोकव्यवहारप्रसिद्ध है, अतः यहाँ पर वार्त्तानिधानरूप कान्ति गुण है। दूसरा उदाहरण देते हैं—हे अनिन्द्यसर्वावयवे सुन्दरि! इन तेरे दोनों बढ़ते हुए स्तनोंके लिये लताके समान तेरे दोनों हाथोंके मध्यभागमें वक्षःस्थलपर पर्याप्त स्थान नहीं है, इन उभरे हुए कुचोंके लिये जितना स्थान पर्याप्त रूपमें अपेक्षित है, उतना लम्बा चौड़ा तुम्हारा वक्षःस्थल नहीं है। इस वर्णनमें लौकिक अर्थको बढ़ाकर कहा गया है, अतः कान्ति गुण है। इन दोनों उदाहरणोंमें जो बात कही गई है वह संभाव्य है—संभवदुक्तिक है, कहा जा सकता है, उसीको विशिष्ट प्रकार-वर्णन-प्रशंसाके लिये कहनेके कारण रोचक हो गया है, अतः इस तरहका कथन लोकव्यवहारनिष्णात जनके लिये हृद्य होता है ॥ ८६–८८ ॥

लोकातीत इवात्यर्थमध्यारोप्य विवक्षितः।
योऽर्थस्तेनातितुष्यन्ति विदग्धा नेतरे जनाः ॥ ८९ ॥
देवधिष्ण्यमिवाराध्यमद्यप्रभृति नो गृहम्।
युष्मत्पादरजःपातधौतनिःशेषकिल्बिषम् ॥ ९० ॥
अल्पं निर्मितमाकाशमनालोच्यैव वेधसा।
इदमेवंविधं भावि भवत्याः स्तनजृम्भणम् ॥ ९१ ॥
इदमत्युक्तिरित्युक्तमेतद्गौडोपलालितम्।
प्रस्थानं प्राक्प्रणीतं तु सारमन्यस्य वर्त्मनः ॥ ९२ ॥

अत्यर्थम् लोकातीतः अत्यन्तं लोकप्रसिद्धिमतिक्रान्त इव योऽर्थः अध्यारोप्य कविप्रतिभया कल्पितः सन् विवक्षितः वक्तुमिष्टो भवति, यं कमपि कल्पनामात्रनिष्पन्नस्वरूपं वस्तुविशेषम् कवयो विवक्षन्ति, तेन तादृशेन कल्पितार्थेन विदग्धाः चतुरा गौडा एव अतितुष्यन्ति नितरां प्रीतिमावहन्ति, इतरे जनाः वैदर्भाः न, अतितुष्यन्तीत्यर्थः। लोकप्रसिद्धिमतिक्रम्य स्थितेन कविकल्पितेनार्थेन केवलं गौडा एव सन्तुष्यन्ति, न वैदर्भाः, सेयं वस्तुस्थितिः। तत्र कान्तिगुणप्रक्रमे कविप्रतिभामात्रकल्पितेऽर्थे वार्त्ताप्रशंसयोरुदाहरणद्वयं दर्शयति—**देवधिष्ण्यमिति**। अल्पमिति च। अद्यप्रभृति अद्यारभ्य युष्मत्पादरजसां भवच्चरणधूलीनाम् पातेन पतनेन धौतं क्षालितं निःशेषं किल्बिषं सकलं पातकं यस्य तादृशम् नो गृहम् अस्मदीयमागारम् देवधिष्ण्यम् देवमन्दिरमिव आराध्यम् अजायतेति शेषः, यथा देवागारं लोका बह्वाद्रियन्ते, तथैव भवच्चरणधूलिपतनसञ्जातपातकनिवृत्तीदं मम गृहं लोका बहुमानेन संभावयिष्यन्तीत्यर्थः। अत्र हि कविकल्पित-

वस्तुना• लोकप्रसिद्धिरतिक्रम्यते, लोके हि सत्पुरुषचरणरजःसंपर्केण गृहस्य पवित्रतैव प्रसिद्धा नैव देवागारवदाराध्यता, सा तु तत्र कविनाऽध्यारोपिता। अत्र लौकिकार्थातिक्रमान्नेयं वैदर्भाणां मते कान्तिः, किन्तु गौडा इमां कान्तिमाहुः। वर्णनायां गौडाभिमतां कान्तिमाह—भवत्याः इदं पुरतो दृश्यम् स्तनजृम्भणम् कुचकलशविकासः एवंविधम् समस्ताकाशव्यापकम् भावि भविष्यत् अनालोच्य मनसाऽप्यचिन्तयित्वा वेधसा ब्रह्मणा आकाशम् अल्पम् स्वल्पविस्तारम् निर्मितम्। यस्मिन्नाकाशाभोगे मेरुमन्दरादयोऽसंबाधमासते तत्रापि व्योमनि वर्द्धमानयोः स्तनयोरवकाशाप्राप्त्या ब्रह्मणा स्तनयोर्विस्तारमविचिन्त्यैवाल्पं व्योम निर्मितं, यदि भवदीययोः स्तनयोर्विस्तारं ब्रह्मा पूर्वमचिन्तयिष्यत्तदा नेतादृशमल्पं व्योम निर्माय कृतित्वमाकलयिष्यदित्यर्थः। इदं वर्णनमतिशयोक्तिरूपम्, इदमपि गौडा एव कान्तित्वेनोदाहरन्ति, न वैदर्भा इति बोध्यम्। एवं गौडवैदर्भयोः कान्तिविषयं सिद्धान्तभेदं निरूपयति—इदम् पूर्वोक्तस्वरूपं काव्यम् अत्युक्तिः अतिशयोक्तिरूपम् इत्युक्तम् अलङ्कारशास्त्रनिष्णातैः एतत् अतिशयोक्तिरूपतया स्वीकृतम्, एतत् गौडोपलालितम् गौडैः कान्तिगुणत्वेनाभ्युपेतम्, प्राक् प्रणीतं पूर्वोक्तम्—कान्तं सर्वजगत्कान्तमित्यादिना पूर्वं निरूपितम् प्रस्थानं मार्गः अन्यस्य वर्त्मनः गौडभिन्नस्य वैदर्भसम्प्रदायस्येत्यर्थः ॥ ८९-९२ ॥

हिन्दी—जिस काव्यमें लोकातीत—लोकप्रसिद्धिसे बाहरके अर्थ कविकल्पनाद्वारा अध्यारोपित होकर प्रयुक्त हों, उससे विदग्ध—चतुर गौड़ लोग ही अतिशय सन्तोषका अनुभव करते हैं, वैदर्भ लोग नहीं। वार्ता—लोकोपचार-विषयमें या प्रशंसा-विषयमें जहाँ पर लोकप्रसिद्धिको छोड़कर कविगण अतिरञ्जनसे काम लेते हैं, वैसे काव्यमें अपनेको अत्यधिक बुद्धिमान् समझने वाले-विदग्ध-गौड़ लोगही सन्तुष्ट होते हैं, विदर्भमार्गके अनुयायी नहीं। गौड़ाभिमत कान्ति गुणके दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, उनमें पहला उदाहरण लोकोपचारका तथा द्वितीय उदाहरण वर्णनाका है।

हमारा गृह आजसे देवस्थानके समान सर्वपूज्य हो गया, क्योंकि आपके पदरजके गिरनेसे इस घरका समस्त पाप धुल गया है।

हे सर्वानवद्यगात्रे, आपके स्तन इतने बड़े होंगे इस बातको नहीं ध्यानमें रखा, अत एव ब्रह्माने आकाशको इतना छोटा बनाया, यदि ब्रह्माकी बुद्धिमें आपके स्तनोंके भावी विस्तारकी बात आती, तो वह अवश्य इसको छोटा न बनाकर थोड़ा बड़ा बनाते।

यह अत्युक्ति है, अतिशयोक्ति है, जो गौड़ लोगोंको अधिक प्रिय है, इससे पूर्वमें—'कान्तं सर्वजगत्कान्तम्' इत्यादि द्वारा जो सोदाहरण कान्तिगुण बताया है वह विदर्भ संप्रदायका सार है ॥ ८९-९२ ॥

अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना।
सम्यगाधीयते तत्र स समाधिः स्मृतो यथा ॥ ९३ ॥
कुमुदानि निमीलन्ति कमलान्युन्मिषन्ति च।
इति नेत्रक्रियाध्यासाल्लब्धा तद्वाचिनी श्रुतिः ॥ ९४ ॥

समाधिं नाम गुणं लक्षयति—**अन्यधर्म इति**। लोकसीमानुरोधिना लौकिकमर्यादापालनजागरूकेण कविना अन्यधर्मः अप्रस्तुतगतो गुणः ततोऽन्यत्रार्थात् प्रस्तुते यत्र

वाक्यार्थे सम्यग् आधीयते साध्यवसानलक्षणया प्रत्याय्यते सः समाधिर्नाम गुणः स्मृतः आचार्यैः कथितः। इत्थं च प्रस्तुतस्य धर्मं तिरोधाय तत्र सदृशतया अप्रस्तुतधर्मस्य तादात्म्याध्यवसानं समाधिरिति फलितोऽर्थः। अयं समाधिरर्थगुणः, अर्थे अर्थान्तरारोपात्। उदाहरणमाह—**कुमुदानीति**। कुमुदानि स्वनामख्यातानि पुष्पाणि निमीलन्ति सङ्कुचन्ति, कमलानि सरोजानि च उन्मिषन्ति विकसन्ति। इति अनयोः वाक्ययोर्नेत्रक्रिययोः निमीलनोन्मीलनयोः संकोचविकासरूपयोरर्थयोरध्यासात् आरोपात् तद्वाचिनी श्रुतिः तत्प्रतिपाद्यता तच्छब्दवाच्यता लब्धा, अयमाशयः—निमीलनोन्मीलने नयनधर्मौ, कुमुदसङ्कोचकमलविकासयोः प्रतिपाद्ययोर्निमीलनोन्मीलनशब्दावुच्चार्यमाणौ सादृश्यातिशयमहिम्ना सङ्कोचविकासयोरुपचर्येते, सादृश्यमूलकमेव च तयोरेकशब्दप्रतिपाद्यत्वम्, तद्वाचिनी श्रुतिः तच्छब्दवाच्यता ॥ ९३-९४ ॥

हिन्दी—लोकसीमाके पालनमें तत्पर कविद्वारा जब अप्रस्तुत वस्तुके धर्म प्रस्तुत वस्तुपर आरोपित किये जाते हैं तब उसको समाधि गुण कहते हैं। यह अर्थगुण है क्योंकि एक अर्थपर दूसरा अर्थ आरोपित होता है। वामन आदिने आरोहावरोहक्रमरूप समाधिको शब्दगुण स्वीकार किया है। अन्यान्य आचार्योंके लक्षण उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

भरत—

'अभियुक्तैर्विशेषस्तु योऽर्थस्यैवोपलभ्यते। तेन चार्थेन सम्पन्नः समाधिः परिकीर्त्यते ॥'

भोजराज—'समाधिः सोऽन्यधर्माणां यदन्यत्राधिरोपणम्'।

(उदाहरण)—

प्रतीच्छत्याशोकीं किसलयपरावृत्तिमधरः कपोलः पाण्डुत्वादवतरति ताली परिणतिम्।
परिम्लानप्रायामनुवदति दृष्टिः कमलिनीम्, इतीयं माधुर्यं स्पृशति न तनुत्वं च भजते ॥

यहाँ पर प्रतीच्छति, अवतरति, अनुवदति, इत्यादि चेतनक्रियाओंका अचेतन अधरादि पर आरोप किया गया है, अतः समाधि गुण है।

वाग्भट—'अन्यस्य धर्मो यत्रान्यत्रारोप्यते स समाधिः'।

पण्डितराज जगन्नाथने समाधिको अर्थगुण नहीं मानकर एक विचित्र लक्षण बता दिया है जिससे यह कविताका नहीं कविका गुण हो जाता है, उनका लक्षण है—'अवर्णितपूर्वोऽयमर्थः पूर्ववर्णितच्छायो वेति कवेरालोचनं समाधिः'। 'समाधिस्तु कविगतः काव्यस्य कारणं, न तु गुणः, प्रतिभाया अपि काव्यगुणत्वापत्तेः'।

आचार्य दण्डीने जिसे अर्थगुण कहा है उस समाधिका उदाहरण दिया है—कुमुदिनीति। कुमुदिनी बन्द हो रही है, (निमीलित-संकुचित हो रही है) और कमल खुल रहे हैं (उन्मिषित हो रहे हैं—खिल रहे हैं) इसमें आँखकी क्रियाओं (निमीलन और उन्मेष) का कुमुदिनी एवं कमलकी क्रियाओंपर आरोप किया गया है, इसीलिए उसी क्रियाको प्रकट करनेवाले शब्द प्रयुक्त हुए हैं ॥ ९३-९४ ॥

निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्।
अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते ॥ ९५ ॥
पद्मान्यर्कांशुनिष्ठ्यूताः पीत्वा पावकविप्रुषः।
भूयो वमन्तीव मुखैरुद्गीर्णारुणरेणुभिः ॥ ९६ ॥
इति हृद्यमहृद्यं तु निष्ठीवति वधूरिति।

इतः पूर्वं समाधिगुणप्रस्तावे साध्यवसानलक्षणयाऽन्यदीयधर्मस्यान्यत्रारोपो भवतीत्युक्तम्, तत्प्रसङ्गेन कानिचित्पदानि गौणवृत्त्यैव शोभातिशयं वहन्ति, नतु मुख्यवृत्त्येत्यभिधातुमाह—**निष्ठ्यूतेत्यादि**। निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि निष्ठ्यूतम् उद्गीर्णम् वान्तम् इत्यादि पदम् गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् लाक्षणिकम् लक्षणावृत्त्याश्रयम् एवं सत् अतिसुन्दरम् सहृदयमनोहरम् (तथा सत्येव समाधिगुणोदयात्) अन्यत्र मुख्यया वृत्त्या प्रयुक्तत्वे तु ग्राम्यकक्षां विगाहते ग्राम्यत्वदोषपूर्णं भवतीत्यर्थः। उदाहरणमाह—पद्मानि कमलानि अर्कांशनिष्ठ्यूताः सूर्यकरक्षिप्ताः पावकविप्रुषः वह्निस्फुलिङ्गान् पीत्वा उद्गीर्णारुणरेणुभिः बहिस्त्यक्तरक्तपरागैः भूयो वमन्तीव। सांध्यपवनकम्पितस्खलत्परागपद्मवर्णनमिदम्। सूर्यनिष्ठ्यूताग्निकणपायिनो जलजसमूहाः स्खलत्परागतया उद्गीर्णारुणरेणुभिर्मुखैः पुनरपि पीतपूर्वान् अग्निकणान् वमन्तीवेति भावः। अत्र निष्ठ्यूतपदं बहिःक्षिप्ते, पानपदं ग्रहणे, वमतिक्रिया बहिःक्षेपे, उद्गीर्णपदं निर्गमे, एवमेतानि पदानि लाक्षणिकानि। इति हृद्यम् एतत् सहृदयमनोहरम्, ग्राम्यकक्षविगाहितयाऽहृद्यं तु यथा निष्ठीवति वधूरिति। निष्ठ्यूतपदं तथान्यदपि च तादृशं पदं लाक्षणिकत्वे सति चमत्कारातिशयं पुष्णाति। तथा प्रयुक्तं महाकविसुबन्धुना—'अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्'। तथा चैतानि निष्ठ्यूतादिपदानि लक्षणायां कृतायामेव शोभातिशयं पुष्यन्ति इति प्रतिज्ञातं समर्थितम् ॥ ९५-९६ ॥

हिन्दी—कमल सूर्यकी किरणों से थूके हुए (निकलते हुए) अग्निकणोंका पान करके अपने मुखोंसे लाल परागरेणुओंको निकालते हुए (वमन करते हुए) ऐसे दीख पड़ते हैं, मानो वमन कर रहे हों।

इस श्लोकमें सान्ध्य पवनसे कम्पित तथा परागपाती कमलका वर्णन किया गया है। यहाँ निष्ठ्यूत पदका मुख्यार्थ है थूकना, लक्ष्यार्थ निकलना, वमन्ति का मुख्यार्थ-वमन करना, लक्ष्यार्थ बाहर निकालना, उद्गीर्णका मुख्यार्थ उगलना, लक्ष्यार्थ गिराना है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि थूकना, उगलना, वमन आदि शब्द यदि मुख्यार्थ छोड़कर गौण वृत्तिके द्वारा अन्यार्थका बोध करावें तो सुन्दर होते हैं, लाक्षणिक प्रयोग हो जानेके कारण समाधि गुणके उद्भूत हो जानेसे चमत्कारयुक्त हो जाते हैं, जैसे यहाँ पूर्वोक्त उदाहरणमें; और जहाँ पर मुख्यार्थमें ही रहते हैं वहाँ इन पदोंके प्रयोग होने पर ग्राम्यत्व दोष होता है। वैसा होनेपर वह असुन्दर हो जाता है, जैसे वधूः निष्ठीवति ॥ ९५-९६ ॥

युगपन्नैकधर्माणामध्यासश्च स्मृतो[1] यथा ॥ ९७ ॥
गुरुगर्भभरक्लान्ताः[2] स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तयः।
अचलाधित्यकोत्सङ्गमिमाः समधिशेरते ॥ ९८ ॥
उत्सङ्गशयनं सख्याः स्तननं गौरवं क्लमः।
इतीमे[3] गर्भिणीधर्मा बहवोऽप्यत्र दर्शिताः ॥ ९९ ॥

'अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र' इत्यादिकारिकया समाधिर्नाम गुणो लक्षितः, तत्र किमेकधर्मारोप एव समाधिरुतानेकधर्मेऽपीति शङ्कायामाह—**युगपदिति**। नैकधर्माणाम् अन्यदीयगुणक्रियारूपानेकधर्माणाम् युगपत् सहैव अध्यासः आरोपश्च समाधिः स्मृतः, तथा चैकस्मिन्धर्मे

आरोप्यमाण इवानेकस्मिन्नपि धर्म आरोप्यमाणे समाधिर्नाम गुणो भवतीति निष्कर्षः। तत्रैकधर्मारोपे समाधिरुदाहृतपूर्वः, सम्प्रति बहुधर्मारोपरूपसमाधिमुदाहरति—**गुरुगर्भेति।** गुर्व्यः एकत्र मेघमालायां जलेनापरत्र गर्भिण्यां गर्भभारेण च स्थूलाः, एवं गर्भभरेण अन्तर्गतजलेन भ्रूणेन च क्लान्ताः मन्दीभूताः, स्तनन्त्यः शब्दायमानाः क्लान्ति-सूचकशब्दं कुर्वत्यश्च, एतादृश्यो मेघपङ्क्तयः घनमालाः (गर्भिण्यश्च) इमाः अचला-धित्यकायाः पर्वतोर्ध्वदेशस्य (सख्याश्च) उत्सङ्गम् क्रोडं समधिशेरते संश्रयन्ते, यथा गर्भिण्योऽङ्गनाः स्थूलोदराः क्लान्ताः सशब्दाश्च सख्युत्सङ्गे शेरते, तथैव मेघमाला जलपूर्णा मन्दाः स्तनन्त्यश्च पर्वतोर्ध्वदेशमाश्रयन्तीति भावः। अत्र मेघपङ्क्तिषु तत्तद्धर्म-निगरणेन बहूनां गौरवादीनां गर्भिणीधर्माणां युगपदध्यासात् समाधिर्नाम गुणः। तदेवोप-पादयति—**उत्सङ्गेति।** 'सख्या उत्सङ्गे शयनं स्तननं गौरवं क्लमः' इतीमे बहवो गर्भिणी-धर्मा दर्शिताः आरोपेण मेघमालायां कथिताः। स्तननादेर्गर्भिणीधर्मत्वमाह वाग्भटः—

क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्च्छा छर्दिररोचकम्।
जृम्भाप्रसेकः··············॥ इत्यादि। (शारीरस्थाने १. ५०)

अत्र स्तनितशब्दः सामान्यध्वनिपरो न मेघशब्दपरः, तथा सति तस्य गर्भिणीधर्मत्वा-प्रसक्तेः॥ ९७–९९॥

हिन्दी—पूर्वोक्त समाधिलक्षणमें 'अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र' इस प्रकार सामान्यतः अन्य धर्म कहा गया है, उसमें एक धर्मका अध्यास या अनेक धर्मका अध्यास हो यह बात स्पष्ट नहीं की गई है उसीको स्पष्ट करते हैं—युगपदिति। अनेक धर्मोंका एक साथ आरोप भी समाधि नामक गुण है। उसका उदाहरण—गुरुगर्भेति। यह मेघमाला (सगर्भा नायिका) भारी जल (गर्भभार) से मन्दीभूत होकर गरजती (सिसकती) है, और अचलाधित्यकाकी (सखीकी) गोदमें सोती है। इस श्लोकमें सखीकी गोदमें सोना, शब्द करना, मन्दता, गौरव आदि अनेक गर्भिणीधर्मोंका मेघमालामें आरोप किया गया है। यद्यपि—'स्तनितभणितादि सुरते' इस अमरके अनुसार स्तनित का अर्थ सुरत-शब्द ही होता है, तथापि यहाँपर—'आर्त्तस्तनितसंनादे रुधिराम्बुहराकुले' इत्यादि हरिवंशस्थ प्रयोगके देखनेसे स्तनित शब्द सामान्य ध्वनिमें प्रयुक्त हुआ है॥ ९७–९९॥

तदेतत्काव्यसर्वस्वं समाधिर्नाम यो गुणः।
कविसार्थः समग्रोऽपि तमेनमनुगच्छति॥ १००॥

समाधिं प्रशंसन् गुणनिरूपणमुपसंहरति—तत् तस्मात् प्रोक्तदिशा काव्यचमत्कृतिजन-नात् समाधिर्नाम यो गुणः पूर्वमुक्तः एतत् काव्यसर्वस्वम् काव्ये जीवनस्वरूपतयाऽवश्यम-पेक्षणीयम्। तमेनं समाधिं समग्रोऽखिलोऽपि गौडवैदर्भसम्प्रदायविभक्तः कविसार्थः कविगणः एनम् समाधिम् अनुगच्छति आद्रियते, साभिनिवेशं स्वकाव्येषु योजयितुं यतते॥ १००॥

हिन्दी—इस प्रकार वर्णित यह समाधि गुण काव्यमें चमत्कार उत्पन्न करनेके कारण काव्यका जीवन है, अतः अवश्य उपादेय है, गौड़ तथा वैदर्भ दोनों सम्प्रदायोंके अनुगामी कविगण इसे अपनाते हैं।

गुणके सम्बन्धमें प्राचीन तथा अर्वाचीन आचार्योंमें बड़ा भारी मतभेद है, प्राचीन वाम-नाचार्योंने—

'श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता। अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजःकान्तिसमाधयः'॥

इन दश अर्थगुणोंको तथा इसी नामवाले दश शब्दगुणोंको स्वीकार करते हैं। सबके अलग-अलग लक्षण-उदाहरण भी उन्होंने दिये हैं।

मम्मट आदि नवीन आचार्योंने इन बीस गुणोंकी जगह पर केवल तीन गुण माने हैं। उनका कहना है कि—

'केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात् परे श्रिताः। अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश॥'

इस प्रकार मम्मटने दश शब्दगुणों को अस्वीकृत कर दिया है, उन्होंने—श्लेष, उदारता प्रसाद और समाधि नामक चार शब्दगुणोंको ओजोव्यञ्जक घटनामें अन्तर्भूत बताया है। माधुर्यको व्यङ्ग्यमाधुर्य गुणव्यञ्जक रचनास्वरूप ही कहा है। समताको जो मार्गाभेदस्वरूप है, उसे अनवीकृतत्वरूप दोष बताया है। कान्ति और सुकुमारताको ग्राम्यत्व और कष्टत्वरूप दोषाभावस्वरूप कहा है, एवं अर्थव्यक्ति नामक गुणको प्रसादमें अन्तर्भूत बताया है। इस प्रकार प्राचीनोक्त दश गुणोंका माधुर्य, ओज, प्रसाद नामक स्वाभिमत गुणत्रयमें अन्तर्भाव बताया गया है, 'माधुर्यौजःप्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश'। यह हुआ शब्दगत दश गुणोंका विवेचन।

अर्थगत दश गुणोंका भी इस प्रकार अन्तर्भाव किया गया है—

श्लेष तथा ओजोगुणके प्राचीनोक्त चार भेद वैचित्र्यमात्र हैं, अतः उन्हें गुण नहीं मानना चाहिये।

प्रसादगुण अधिकपदत्वरूप दोषाभावस्वरूप है।

माधुर्य उक्तिवैचित्र्यमात्र है। इसे अनवीकृतत्वरूप दोषाभावस्वरूप कहा गया है।

सुकुमारता अमङ्गलरूपाश्लीलत्वदोषाभावरूप है।

उदारता ग्राम्यत्वरूप दोषाभावस्वरूप है।

समता भग्नप्रक्रमत्वरूप दोषाभावस्वरूप है।

साभिप्रायविशेषणत्वरूप ओजका पञ्चम प्रकार अपुष्टार्थत्वरूप दोषाभावस्वरूप है।

अर्थव्यक्तिका स्वभावोक्ति नामक अलङ्कारमें अन्तर्भाव होता है।

कान्तिको रसध्वनिरूप या रसवदलङ्काररूप माना है।

समाधिको कविका गुण माना गया है, काव्यगुण नहीं।

इस प्रकार दशविध अर्थगुणोंकी भी विवेचना की गई है। फलतः तीन—माधुर्यौजःप्रसाद नामक गुण ही अर्थगत हैं। दण्डीने अपना विचार भरतके अनुसार कायम रखा है॥ १००॥

इति मार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात्।
तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः॥ १०१॥
इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यापि शक्यते॥ १०२॥

इति प्रागुक्तप्रकारेण तयोः गौडवैदर्भमार्गयोः स्वरूपस्य असाधारणधर्मस्य निरूपणात्—'इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दशगुणाः स्मृताः। एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि॥' इत्यादिना भिन्नतया प्रतिपादनात् मार्गद्वयं गौडवैदर्भप्रस्थानद्वयम् भिन्नम् अत्यन्तविसदृशम्। प्रतिकविस्थिताः तद्भेदाः तयोर्गौडवैदर्भमार्गयोरवान्तरप्रकारा आवन्तिकीलाटीमागध्यादयः वक्तुं न शक्यन्ते। तयोर्मार्गयोरवान्तरभेदोऽशक्यनिरूपणस्तत्र कारणं दृष्टान्तेन विशदयति—इक्षुक्षीरेति। इक्षुः, क्षीरं पयः, गुड इक्षुविकारस्तदानीनां इक्षुक्षीरगुडशर्कराखर्जूरप्रभृतिमधुरपदार्थानां [illegible]

वाचामधिष्ठात्र्याऽपि आख्यातुं वक्तुं न शक्यते तथैव गौडवैदर्भसम्प्रदाययोर्विद्यमानानां लाटीमागध्यादीनां प्रभेदविशेषाणां विशिष्टं भेदतारतम्यं वक्तुमशक्यमिति भावः ॥१०१-१०२॥

हिन्दी—इस प्रकार परस्पर भिन्न दो मार्ग—सम्प्रदाय चलते आ रहे हैं, इनके स्वरूपका निरूपण कर दिया गया, इनमें अवान्तर प्रभेद कविभेदसे अनन्त हैं, उनका वर्णन असंभव है।

जिस प्रकार ईख, दूध एवं गुड़में वर्तमान माधुर्यमें अन्तर है, वह अन्तर महान् है, परन्तु उसका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकती, उसी प्रकार गौड़वैदर्भ-सम्प्रदायान्तर्गत उपभेदोंके बीच वर्तमान महान् भेदका वर्णन अशक्य है ॥ १०१-१०२ ॥

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः ॥ १०३ ॥

एतावता ग्रन्थेन काव्यस्वरूपमभिधाय सम्प्रति तत्कारणमाह—**नैसर्गिकीति**। नैसर्गिकी स्वभावसिद्धा पूर्वजन्मसंस्कारासादिता प्रतिभा प्रज्ञा तथा संशयादिमलसम्पर्करहितम् बहु नानाशास्त्रविषयं परिशीलनं श्रुतम् शास्त्राभ्यसनम्, तानि च शास्त्राणि पदवाक्यप्रमाणसाहित्यच्छन्दोऽलङ्कारश्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमनाट्याभिधानकोशकामार्थयोगशास्त्रादिरूपाणीति परिगणितमाचार्यैः, तथा अमन्दः महान् अभियोगः काव्यविच्छिक्षया पुनः पुनः काव्यकरणप्रवृत्तिरित्येतत्त्रयं काव्यसंपदः काव्यसम्पत्तेः साधुकाव्यनिर्मिते कारणम्। कारणमित्येकवचनेन कारणता व्यासक्ता न तु प्रत्येकपर्याप्तेति बोधितम् ॥ १०३ ॥

हिन्दी—यहाँ तक सोपोद्घात काव्यस्वरूपवर्णन किया गया, अब इस कारिकासे काव्यका कारण बताते हैं। पूर्वजन्मसंस्कारासादित प्रतिभा, नानाशास्त्रपरिशीलन और काव्य करनेका सतत अभ्यास ये ही तीन वस्तु मिलितरूपमें काव्यके प्रति कारण हैं। कारणपदमें एकवचन विभक्ति सम्मिलित कारणताकी अभिव्यक्ति करती है। यहाँ पर अन्यान्य आचार्योंके मतमें काव्यकारणत्वका जो विचार किया गया है, वह भी संक्षेपमें प्रस्तुत किया जाता है। अतिप्राचीन आलङ्कारिक भामहने कहा है—

'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः।
शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम् ॥
विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियाऽऽदरः'।

इन शब्दोंमें भामहने प्रतिभा, काव्यज्ञशिक्षा और विविध शास्त्रज्ञानको कारण माना है।

यहाँ इतना स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि भामहने प्रतिभाको प्राधान्य दिया है और काव्यज्ञशिक्षा तथा अभ्यासको सहायक माना है परन्तु दण्डीने तीनोंको समान भावसे कारण पदपर आसीन किया है।

वामनने कहा है—'लोको विद्या प्रकीर्णञ्चेति काव्याङ्गानि'। 'लोकवृत्तं लोकः, शब्दस्मृत्यभिधानकोशच्छन्दोविचितिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्याः, लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवावेक्षणं प्रतिभानमवधानञ्च प्रकीर्णम्, कवित्वबीजं प्रतिभानम्, जन्मान्तरगतसंस्कारविशेषः कश्चित्, यस्माद्विना काव्यं न निष्पद्यते, निष्पन्नं वा हास्यायतनं स्यात्'।

इस प्रकार वामनने भामहके पक्षमें ही अपना साक्ष्य दिया है ऐसा प्रतीत होता है, रुद्रटने अपने काव्यालङ्कार में इस प्रकार कहा है—

'त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यासः'।

रुद्रटके इस वचनसे काव्यप्रकाशकारके मतकी पुष्टि होती है, काव्यप्रकाशकारने कहा है—

इससे काव्यकारणता व्यासज्यवृत्त्या त्रितयगत है यह दण्डीका मत प्रमाणित किया जाता है। पीयूषवर्षी जयदेवने कहा है—

'प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति। हेतुर्मृदम्बुसम्बद्धबीजव्यक्तिर्लतामिव' ॥

इस प्रसङ्गमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि त्रितयकारणतावादी लोगों में दो सम्प्रदाय हैं, एक समान भावसे कारणतावादी, दूसरे प्राधान्येन प्रतिभाकारणवादी होकर भी व्युत्पत्ति तथा अभ्यासको सहायक माननेवाले। प्रथम पक्षमें स्पष्टतः काव्यप्रकाशकार, दण्डी आदि आते हैं और द्वितीय पक्षमें वामन, रुद्रट, जयदेव आदि।

पण्डितराज जगन्नाथने केवल प्रतिभाको कारण माना है, वह कहते हैं—

'तस्य च कारणं केवला कविगता प्रतिभा, नतु त्रयमेव, बालादेस्तौ (व्युत्पत्त्यभ्यासौ) विनापि केवलान्महापुरुषप्रसादादपि प्रतिभोत्पत्तेः'।

पण्डितराजको अपने सिद्धान्तका बीज राजशेखरके ग्रन्थ काव्यमीमांसामें मिला था, वहाँ कहा है—

'सा शक्तिः केवलं काव्ये हेतुरिति यायावरीयः। विप्रसृतिश्च सा व्युत्पत्त्यभ्यासाभ्याम्। शक्तिकर्तृके हि प्रतिभाव्युत्पत्तिकर्मणी। शक्तस्य प्रतिभाति। शक्तश्च व्युत्पद्यते' ॥ १०३ ॥

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासनागुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥ १०४ ॥

यद्यपि सहजा प्रतिभा पुरुषप्रयत्नसंपाद्या न भवति, तथाऽपि सहजप्रतिभाऽभावेऽपि कवित्वम् संभवति तदाह—**न विद्यत इति**। अद्भुतम् अलौकिककविताप्रकटीकारेणाश्चर्यावहम् पूर्ववासनागुणानुबन्धि प्राक्तनसंस्कारसंबद्धम् प्रतिभानम् प्रतिभाशक्तिः यद्यपि न विद्यते, तथापि श्रुतेन तत्तच्छास्त्रपरिशीलनेन यत्नेन काव्यज्ञशिक्षया काव्यकरणाभ्यासेन च उपासिता सेविता वाक् कमपि अनुग्रहम् काव्यकरणसामर्थ्यरूपं प्रसादम् करोत्येव। ध्रुवमित्यनेन व्यभिचारशङ्का निरस्ता। प्रतिभाऽभावेऽपि शास्त्राभ्यासकवितानिर्माणप्रवृत्तिभ्यां जायते काव्यकरणसामर्थ्यमिति भावः। एतेन प्रतिभाऽभावेऽपि कालिदासादयः प्राक्तनप्रतिभाऽभावेऽपि देव्याराधनादिना प्रतिभां प्रादुर्भावयामासुरिति यत्नस्य सार्थक्यमुक्तम् ॥ १०४ ॥

हिन्दी—यद्यपि वह अद्भुत प्रतिभा, जो पूर्वकी वासना—प्राक्तन संस्कारसे उत्पन्न होती है, न भी हो, तथापि पठन तथा काव्याभ्यासके द्वारा सरस्वतीकी सेवा करने वालोंके ऊपर सरस्वती अवश्य अनुग्रह करती है। प्राक्तनसंस्कारवशोन्मिषित प्रतिभाके न रहने पर भी यदि शास्त्रोंका अध्ययन तथा काव्य करनेका अभ्यास जारी रखा जायगा, तो सरस्वती अवश्य कवितानिर्माणमें साफल्यरूप अनुग्रह करेगी ॥ १०४ ॥

तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभिः।
कृशे कवित्वेऽपि जनाः कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते ॥ १०५ ॥

इत्याचार्यदण्डिनः कृतौ काव्यादर्शे मार्गविभागो नाम
प्रथमः परिच्छेदः।

तत् तस्मात् (सेविता सरस्वती निश्चयेन दयते इति हेतोः) अस्ततन्द्रैः आलस्यरहितैः कीर्तिमीप्सुभिः कवित्वादिजनितशयोऽभिलाषशालिभिः अनिशं सततम् सरस्वती उपास्या खलु निश्चयेनाराध्या। कदाचित् कवित्वे काव्यनिर्माणे कृशे स्वल्पे अपि कृतश्रमाः कृतकाव्यनिर्माणाभ्यासा जनाः विदग्धगोष्ठीषु सहृदयसमाजेषु विहर्तुं सरसतया काव्यरहस्यज्ञत्वेन यथायथं काव्यानि बोद्धुम् ईशते क्षमन्ते, प्रतिभाया अभावेऽपि यदि लोकोऽनलसः सन् काव्यकर्मणि व्याप्रियते, तदाऽसत्यपि काव्यनिर्माणप्रावीण्ये काव्यार्थज्ञत्वमासाद्य सरसजनसमाजे दक्षतामुपयाति, सरस्वत्युपासनं व्यर्थं नैव जायते, अतः सर्वथा सरस्वत्युपासनीयेति भावः ॥ १०५ ॥

हिन्दी—इसलिये कीर्त्तिकी कामना रखने वालोंको चाहिये कि वे आलस्यका त्याग करके परिश्रमपूर्वक सरस्वतीकी उपासना—शास्त्राध्ययन तथा काव्यकरणाभ्यास में तत्पर रहें, (प्रतिभाके नहीं रहनेके कारण शास्त्रज्ञान और अभ्यासके होने पर भी यदि) कवित्वका उद्भव अत्यल्पमात्रामें होगा, नहींकी मात्रामें होगा, तथापि सरस्वतीकी निरन्तर उपासना करने वालोंको रसिकजनगोष्ठीमें काव्यार्थज्ञानशक्तिसे यथोचित व्याहार तथा व्यवहारकी क्षमता प्राप्त हो जायगी, सरस्वतीकी उपासना व्यर्थ नहीं हो सकती है, कवि न हों, काव्यज्ञ होकर रहेंगे ॥ १०५ ॥

इति मैथिल पण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मप्रणीते काव्यादर्श'प्रकाशे'
प्रथमपरिच्छेद 'प्रकाशः'।

द्वितीयः परिच्छेदः

काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ॥ १ ॥

अथावसरप्राप्तान् अलङ्कारान्निरूपयितुकामो दण्डी प्रथममलङ्कारसामान्यलक्षणमाह— **काव्यशोभेति ।** काव्यस्य इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावलिः काव्यमिति लक्षितस्वरूपस्य शोभायाः रमणीयतायाः कराः सम्पादका ये धर्मा अनुप्रासोपमादयस्तान् अलङ्कारान् प्रचक्षते आहुः, प्राचीना इति शेषः । यथा सौन्दर्यमण्डितस्य वपुषो हारादयः शोभामतिशाययन्ति, तथा गुणवतः काव्यस्यानुप्रासोपमादयः शोभां पुष्यन्ति इत्याशयः, एतेनालङ्काराणां शब्दार्थगतत्वं प्रतीङ्गितं कृतम् । स्फुटीभविष्यति चेदमग्रे–'इति वाचामलङ्काराः पञ्चैवान्यैरुदाहृताः' इत्युपक्रमे, 'गिरामलङ्कारविधिः सविस्तरं स्वयं विनिश्चित्य धिया मयोदितः' इति चोपसंहारे । भरतेनाप्यत्र प्रसङ्गे इत्थमेवोक्तम्—'काव्यस्यैते ह्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्तिताः' । वामनोऽप्याह—'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः, तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः' । अयमेव च गुणालङ्कारयोर्भेदो यद् गुणा नित्याः, तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः, अलङ्कारास्तु चलस्थितयः । एतच्चालङ्कारलक्षणनिर्वचनप्रसङ्गे प्रतिपादितमाचार्यैः, तथा च काव्यप्रकाशः—'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः । उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥ उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् । हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥' काव्यप्रदीपकारोऽपि लक्षणनिर्वचनवर्त्मनार्थमिममावर्त्तयति— 'रसोपकारकत्वे सति तदवृत्तित्वं, तथात्वे सति रसव्यभिचारित्वम्, अनियमेन रसोपकारकत्वं चेति सामान्यलक्षणत्रयमलङ्काराणाम् ।' एतावताऽलङ्कारसामान्यं लक्षितम्, सम्प्रति तत्तदलङ्काराणां बहुप्रभेदत्वं विभाव्य तद्विवेचने स्वस्यासामर्थ्यं सविनयमुपन्यस्यति— **ते चाद्यापीति ।** ते च अलङ्काराः अद्यापि सम्प्रति अपि विकल्प्यन्ते विविधकल्पनाभिः नवनवा उद्भाव्यन्ते, तथा चोक्तं ध्वन्यालोके—'सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च' इति । अतः कः तान् अलङ्कारान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति साकल्येन निरूपयिष्यति । मेधाविनां कल्पनायाः कदापि विरामाभावात् कल्पनाप्रभविनामलङ्काराणामियत्तया परिच्छिद्य निरूपणमशक्यमिति तात्पर्यम् ॥ १ ॥

हिन्दी—काव्यकी शोभाको समृद्ध करनेवाले धर्मोंको अलङ्कार कहते हैं, पूर्वोक्तस्वरूप काव्यकी शोभा जिनसे बढ़े ऐसे धर्म अलङ्कार कहे जाते हैं । जैसे सौन्दर्यमण्डित शरीरको हारादि अलङ्कार अधिक सुशोभित करते हैं उसी तरह गुणयुक्त काव्यको अनुप्रासोपमादि अधिक शोभासम्पन्न बनाते हैं । काव्यप्रकाशकारने अलङ्कारका जो लक्षण दिया है उससे प्रसङ्ग स्पष्ट हो जाता है, उन्होंने लिखा है—

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् । हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः' ॥

अर्थात् जैसे हार आदि आभूषण कण्ठ आदि अङ्गके सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं, उसी तरह उपमा आदि अलङ्कार शब्द और अर्थरूप अङ्गके सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं ।

इस प्रसङ्गमें इतना जान लेना आवश्यक है कि प्राचीन आचार्यगण अलङ्कारोंको शब्दार्थगत मानते थे, दण्डीने भी इसी बातको स्वीकार किया है, उन्हें अलङ्कारोंसे रसोत्कर्षकी चिन्ता नहीं थी, परन्तु बादके आचार्योंने अलङ्कारोंसे रसको उत्कृष्ट बनानेकी दिशामें ध्यान दिया। काव्य-प्रकाशकारने कहा है—

'ये वाच्यवाचकलक्षणाङ्गातिशयमुखेन मुख्यरसं सम्भविनमुपकुर्वन्ति ते कण्ठाद्यङ्गानामुत्कर्षाधानद्वारेण शरीरिणोऽप्युपकारका हारादय इवालङ्काराः। यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्र-पर्यवसायिनः'।

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है—

'कविताके अलङ्कार वे हुआ करते हैं जो कविताके वाचक और वाच्य—शब्द और अर्थरूप अङ्गोंके सौन्दर्यकी वृद्धि किया करते हैं, और उसी प्रकार किया करते हैं जैसे हार आदि आभूषण किसी सुन्दरीके कण्ठ आदि अङ्गों की। किन्तु अलङ्कारोंसे वाच्यवाचकरूप अङ्गोंकी सौन्दर्य-वृद्धि तभी संभव है जबकि कविताका व्यक्तित्व—कविताका रसरूप आत्मतत्त्व सुन्दर हो, क्योंकि आभूषणोंसे भी कण्ठ आदि अङ्गोंकी श्रीवृद्धि तभी हुआ करती है जब कि उन्हें धारण करने वाली स्त्री सुन्दरी हो, अन्यथा तो जैसे किसी कुरूप स्त्री के हार आदि आभूषण देखने वालोंके लिये दृष्टिवैचित्र्यसे लगने लगते हैं, वैसे ही नीरस कविताके अनुप्रास आदि अलङ्कार पढ़ने वालोंके लिये वैचित्र्यमात्र प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार अलङ्कारका लक्षण बताया गया, अब उसका समग्रभावसे वर्णन करना संभव नहीं है क्योंकि वे तो प्रतिदिन नये-नये बनते हैं, अतः किसकी क्षमता है कि उनका समग्र भावसे निरूपण कर सके, यह बात उत्तरार्धसे कही गई है। आचार्य दण्डोने इस कारिकार्धसे अपनी नम्रता प्रकट की है, उनका कहना है कि ध्वनिकारके शब्दोंमें—'सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च' प्रतिदिन मेधावियोंकी कल्पनायें नयी-नयी कल्पनाओं द्वारा नये-नये अलङ्कारोंको प्रस्तुत किया करती हैं, इस दशामें अलङ्कारोंका समग्रभावसे वर्णन कर सकना किसीके लिये संभव नहीं है, फलतः मैं भी वैसा नहीं कर सकूंगा ॥ १ ॥

किन्तु बीजं विकल्पानां पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम्।
तदेव प्रति संस्कर्त्तुमयमस्मत्परिश्रमः ॥ २ ॥

'कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति' इति प्रागलङ्काराणामानन्त्यादसंभवदुक्तिकत्वं निरूपितं, ततश्चायमुद्यमो माकारीति चेत्तत्राह—**किन्त्विति**। किन्तु तथापि अलङ्काराणामानन्त्येपि विकल्पानाम् अर्वाचीनकृतकल्पनाप्रभवाणामलङ्काराणां बीजं सामान्यमूलम् पूर्वाचार्यैः भरतादिभिः प्रदर्शितम् उक्तम्, तदेव प्राचीनोक्तं विकल्पबीजं प्रतिसंस्कर्त्तुं सम्यक्तया स्फुटीकर्तुम् अयम् एतद्ग्रन्थप्रणयनरूपोऽस्मत्परिश्रमः आयासः। यथा नवीनैरुद्भावितानामुपमाभेदानां बीजं भरतेन 'उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृतिसमाश्रया' इत्युपन्यस्तम्, तद्भेदास्तु तदेव बीजमाधारीकृत्यान्यैः कल्पिताः तदेव तादृशं बीजजातमन्विष्य प्रतिसंस्कर्त्तुमहमुद्यतोऽस्मीति भावः ॥ २ ॥

हिन्दी—पूर्वाचार्य भरत आदिने नये-नये आविष्कृत किये जाने वाले अलङ्कारोंके बीज—संक्षिप्तरूप से बतलाये हैं, यह मेरा एतद्ग्रन्थनिर्माणरूप परिश्रम इसीलिये हो रहा है कि प्राचीनोक्त अलङ्कारबीजोंका विशद विवेचन किया जाय।

इससे पहले कारिकामें विकल्पों को अनन्त बता कर अलङ्कारोंका समग्र विवेचन असाध्य कहा गया था, उसपर यह शङ्का की जा सकती थी कि जब अलङ्कारनिर्वचन असाध्य कार्य है तब चन्द्रबिम्बाहरणकी तरह उसे छोड़ ही क्यों न दिया जाय, इसी शङ्काका उत्तर प्रकृत कारिकामें दिया गया है। इस कारिकामें दण्डीने बताया है कि जो अलङ्कारबीज प्राचीनोंने बताये हैं, मैं उनका विशद विवेचन प्रस्तुत करनेके लिये यह ग्रन्थ लिख रहा हूँ ॥ २ ॥

काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः ।
साधारणमलङ्कारजातमन्यत् प्रकाश्यते ॥ ३ ॥

तदित्थं सामान्यतोऽलङ्कारनिरूपणस्योपक्रान्तत्वं समर्थितम्। इतः पूर्वं प्रसङ्गतो निर्णीतानां श्रुत्यनुप्रासादीनामलङ्काराणां निरूपणमसम्बद्धमस्थानगतं च मा प्रसाङ्क्षी-दिति स्पष्टयति—काश्चिदिति। काश्चित् श्रुत्यनुप्रासवृत्त्यनुप्रासयमकादयः अलङ्क्रियाः अलङ्काराः मार्गविभागार्थम् गौडवैदर्भमार्गयोर्भेदस्य स्फुटीकरणार्थम् प्राग् इतः पूर्वमपि प्रथमपरिच्छेदे उक्ताः, अतः परतस्तदवर्णनेऽपि न न्यूनता। अन्यत् पूर्वोक्तालङ्कार-भिन्नम् साधारणम् उभयसम्मतम् गौडवैदर्भमार्गद्वयसमानम् अलङ्कारजातम् अलङ्कार-समुदयः प्रकाश्यते लक्षणोदाहरणादिना विशदीक्रियते ॥ ३ ॥

हिन्दी—इससे पहले प्रथम परिच्छेदमें भी हमने श्रुत्यनुप्रास आदि अलङ्कारोंके निरूपण किये थे, वह प्रसङ्गवश किया गया था, क्योंकि गौड़ वैदर्भरूप प्रस्थानद्वयके निरूपणमें उनका परिचय अपेक्षित था, क्योंकि श्रुत्यनुप्रास वैदर्भमार्गसम्मत है, गौड़में नहीं, इत्यादि बातें बिना अलङ्कार-स्वरूप-परिचयके स्पष्ट नहीं हो सकती थीं, अतः प्रसङ्गवशात् कुछ अलङ्कारोंका परिचय कराया गया था, अब इस परिच्छेदमें साधारण—उभयमार्गानुमोदित—गौड़ वैदर्भ दोनों प्रस्थानोंमें समान भावसे आद्रियमाण अन्य अलङ्कारोंके निरूपण किये जायेंगे ॥ ३ ॥

स्वभावाख्यानमुपमा रूपकं दीपकावृती ।
आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना ॥ ४ ॥
समासातिशयोत्प्रेक्षा हेतुः सूक्ष्मो लवः क्रमः ।
प्रेयो रसवदूर्जस्वि पर्यायोक्तं समाहितम् ॥ ५ ॥
उदात्तापह्नुतिश्लेषविशेषास्तुल्ययोगिता ।
विरोधाप्रस्तुतस्तोत्रे व्याजस्तुतिनिदर्शने ॥ ६ ॥
सहोक्तिः परिवृत्त्याशीः सङ्कीर्णमथ भाविकम् ।
इति वाचामलङ्कारा दर्शिताः पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥

अलङ्कारेषु लक्षणीयेषु तान्नामग्राहं गणयति—स्वभावाख्यानमिति। स्वभावाख्यानं स्वभावोक्तिः उपमा रूपकम् दीपकं च आवृत्तिश्च दीपकावृती आवृतिपदं वृतेः क्तिन्प्रत्ययेन निवृत्तम्, आवृत्तिदीपकं नामालङ्कारं बोधयितुं प्रयुज्यते। आक्षेपः, अर्थान्तरन्यासः, व्यतिरेको, विभावना, समासो नाम समासोक्तिः, अतिशयः अतिशयोक्तिः, उत्प्रेक्षा, हेतुः, सूक्ष्मः, लवः-लेशः, क्रमः, यथासङ्ख्यम्, प्रेयः, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्तम्, समाहितम् समाधिपरनामकम्, उदात्तः, अपह्नुतिः, श्लेषः, विशेषः, विशेषोक्तिः,

तुल्ययोगिता, विरोधः, अप्रस्तुतस्तोत्रम्, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुतिः, निदर्शना, सहोक्तिः, परिवृत्तिः, आशीः, संकीर्णम्, संसृष्टिः, भाविकम्, इति एते वाचाम् अलङ्काराः पूर्वसूरिभिः दर्शिताः। एतेषां पञ्चत्रिंशत्सङ्ख्यकानामुद्दिष्टनामकानामलङ्काराणामर्थालङ्कारत्वे स्थितेऽपि वाचामलङ्कारा इति कथनं शब्दार्थयोर्वैयाकरणाभिमतमभेदमारोप्य कृतम्, पूर्वसूरिभिर्दर्शिता इति कथनेन प्राचीननिर्दिष्टा एवालङ्कारा मया लक्षणोदाहरणादिना विव्रियन्ते नतु स्वयमलङ्काराः कल्प्यन्ते, तादृशकल्पनाप्रसूतानामलङ्काराणामानन्त्यादिति प्रकाशितम् ॥ ४-७ ॥

हिन्दी—अलङ्कारोंका निरूपण करना है, अतः पहले उनके नाम निर्देश कर दिये जाते हैं : १-स्वभावोक्ति, २-उपमा, ३-रूपक, ४-दीपक ५-आवृत्तिदीपक, ६-आक्षेप, ७-अर्थान्तरन्यास, ८-व्यतिरेक, ९-विभावना, १०-समासोक्ति, ११-अतिशयोक्ति, १२-उत्प्रेक्षा, १३-हेतु, १४-सूक्ष्म, १५-लेश, १६-यथासङ्ख्य, १७-प्रेयः, १८-रसवत, १९-ऊर्जस्वि, २०-पर्यायोक्त, २१-समाधि; २२-उदात्त. २३-अपह्नुति, २४-श्लेष, २५-विशेष, २६-तुल्ययोगिता, २७-विरोध, २८-अप्रस्तुतप्रशंसा, २९-व्याजस्तुति, ३०-निदर्शना, ३१-सहोक्ति, ३२-परिवृत्ति, ३३-आशीः, ३४-संसृष्टि, ३५-भाविक। यही पैंतीस अलङ्कार प्राचीन आचार्योंने माने हैं, ये अलङ्कार यद्यपि अर्थगत हैं, तथापि इन्हें वाणीका-शब्दका अलङ्कार इसलिये कहा जाता है कि शब्द और अर्थमें अभेद माना जाता है, शब्दार्थतादात्म्य वैयाकरणोंका सिद्धान्त है ॥ ४-७ ॥

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा ॥ ८ ॥

क्रमप्राप्तेऽलङ्कारनिर्वचने प्रथमपरिगणितां स्वभावोक्तिं लक्षयति—**नानावस्थमिति।** आद्या अलङ्कारनामनिर्देशावसरे प्राथम्येनोद्दिष्टा अलङ्कृतिः स्वभावोक्तिः जातिश्चेति नामद्वयवती। तल्लक्षणं तु नानावस्थमिति। पदार्थानां तत्तद्भेदभिन्नानाम् पदार्थानां स्थावरजङ्गमात्मकवस्तूनाम् नानावस्थम् जातिगुणक्रियाद्रव्यवशेन विविधप्रकारकम् रूपम् स्वरूपविशेषम् साक्षात् विवृण्वती सूक्ष्मत्वाद् दुर्दर्शमपि प्रत्यक्षमिव दर्शयन्ती (स्वभावोक्तिर्नामालङ्कृतिर्भवतीति शेषः) एवञ्च वस्तुनो यथावत् स्वरूपस्फुटीकरणसमर्थमसाधारणधर्मवर्णनं स्वभावोक्तिरिति लक्षणं फलितम्। अलङ्कारसामान्येऽपेक्षितं चमत्कारकत्वं त्वत्रापि निश्चयेनापेक्षितम्, अतश्च—

'दीर्घपुच्छश्चतुष्पादः ककुद्माँल्लम्बकम्बलः। गोरपत्यं बलीवर्दस्तृणमत्ति मुखेन सः' ॥

इत्यादौ नायमलङ्कारः, अलङ्कारजीवातोश्चमत्कारस्यानुपलब्धेः ॥ ८ ॥

हिन्दी—भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें स्थित पदार्थोंके रूपमें स्थित, पदार्थोंके रूपको प्रत्यक्ष करके दिखलानेवाली अलङ्कृति स्वभावोक्ति या जाति नाम से प्रथित है, अर्थात् जिसमें पदार्थोंका ऐसा सजीव स्वाभाविक वर्णन हो जिससे उनका प्रत्यक्ष-सा दर्शन होने लगे उस अलङ्कारका नाम स्वभावोक्ति या जाति है, वह आदिम है अर्थात् इस ग्रन्थमें प्रथम गृहीत है। इस तरह स्वभावोक्तिका यह लक्षण प्रकट होता है कि किसी वस्तुका यथावत् स्वरूप-स्फुटीकरणसमर्थ असाधारणधर्म-वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार है। यहाँ पर इतना अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि सभी अलङ्कारोंमें अलङ्कारसामान्यापेक्षित चमत्कार आवश्यक है, अतः यहाँ भी स्वरूपवर्णनमें यदि चमत्कार नहीं होगा तो अलङ्कार नहीं होगा, जैसे—

'[illegible] । गोरपत्यं बलीवर्दस्तृणमत्ति मुखेन सः' ॥

प्रतीयते गम्यते अभिधादिवृत्त्या प्रतीयते सा उपमा नामालङ्कारः, तथा च काव्यनिष्ठं चमत्कारजनकं द्वयोः सादृश्यमुपमेति लक्षणं सिद्ध्यति चमत्कारविरहे सादृश्यं नोपमा, यथा गौरिव गवय इत्यत्र। उक्तञ्च रसगङ्गाधरे—'सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपस्कारकमुपमा, सुन्दरमिति सादृश्यविशेषणम्, सौन्दर्यं च चमत्कृत्याधायकत्वम्, चमत्कृतिश्चानन्दविशेषः। तस्या उक्तलक्षणाया उपमायाः अयं सद्यो वक्ष्यमाणलक्षणः प्रपञ्चो विस्तरः प्रदर्श्यते उदाहरणादिना प्रकाश्यते ॥ १४ ॥

हिन्दी—उद्देशक्रमप्राप्त उपमालङ्कारका लक्षण बताते हैं, जिस काव्यमें यथाकथञ्चित् जिस किसी तरहसे गुणक्रियादि द्वारा स्फुट सादृश्य प्रतीत हो वह उपमा है, अर्थात् दो वस्तुओंका सादृश्य उपमालङ्कार है। इस सादृश्य में चमत्कारजनकत्व होना आवश्यक है, अतएव—'गौरिव गवयः' इस वाक्यमें स्फुट सादृश्य रहने पर भी उपमालङ्कार नहीं होता है क्योंकि चमत्कार नहीं है।

उपमाऽलङ्कारके चार अङ्ग होते हैं—उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, उपमावाचक। सादृश्यप्रतियोगी उपमान कहा जाता है और सादृश्यानुयोगी उपमेय कहा जाता है। उपमान और उपमेय इन दोनोंमें रहनेवाला समान धर्म साधारण धर्म कहलाता है। इवादि शब्द उपमावाचक कहलाते हैं। जैसे—'कमलमिव मुखं मनोज्ञम्' इस वाक्यमें मनोज्ञतारूप धर्मके द्वारा कमलके साथ मुखकी उपमा दी गई है। अतः मनोज्ञत्व साधारण धर्म हुआ, कमल उपमान, मुख उपमेय और इव शब्द उपमाका वाचक शब्द हुआ ॥ १४ ॥

अम्भोरुहमिवाताम्रं मुग्धे करतलं तव।
इति धर्मोपमा साक्षात्तुल्यधर्मप्रदर्शनात् ॥ १५ ॥

हे मुग्धे सुन्दरि, तव करतलम् पाणितलम् अम्भोरुहमिव कमलतुल्यम् आताम्रं रक्तम् इति एतादृक् साधारणधर्मप्रयोगात्मा धर्मोपमानामोपमाप्रपञ्चः, तत्र हेतुमाह—**साक्षादिति**। साक्षात् शब्दतः तुल्यधर्मस्य द्वयोः समानस्य धर्मस्य आताम्रत्वस्य प्रदर्शनात् प्रकाशनात्। अत्रेवशब्दश्रवणाच्छ्रौत्युपमा। उपमानोपमेयसाधारणधर्मसादृश्यवाचकानां प्रयोगाच्च पूर्णेयमुपमा ॥ १५ ॥

हिन्दी—हे मुग्धे, तुम्हारा करतल कमलके समान रक्तवर्ण है, यह धर्मोपमा हुई, क्योंकि इस वाक्यमें शब्दतः आताम्रत्वरूप तुल्यधर्म प्रकाशित किया गया है।

उपमाके चारों अङ्ग जहां पर उपात्त रहते हैं वह पूर्णोपमा है, जहां पर एक, दो या तीन का अनुपादान होता है, वह लुप्तोपमा होती है, इस प्रकारके भेद अर्वाचीन आचार्योंने बताये हैं, परन्तु दण्डीने प्राचीनाभिमत भेद ही स्वीकार किये हैं। धर्मोपमा और वस्तूपमाका वर्णन अग्निपुराण में भी किया गया है—

'यत्र साधारणो धर्मः कथ्यते गम्यतेऽथवा। ते धर्मवस्तुप्राधान्याद्धर्मवस्तूपमे उभे' ॥ १५ ॥

राजीवमिव ते वक्त्रं नेत्रे नीलोत्पले इव।
इयं प्रतीयमानैकधर्मा वस्तूपमैव सा ॥ १६ ॥

राजीवमिवेति। ते तव वक्त्रं मुखम् राजीवम् कमलम् इव, नेत्रे नयने नीलोत्पले नीलकमले इव, इयं निर्दिश्यमानस्वरूपा उपमा प्रतीयमानः शब्देनानुच्यमानतया

गम्यमानः एकधर्मः साधारणधर्मो यस्यां सा वस्तूपमा भवतीति शेषः । यत्रोपमानोपमेयोपमावाचकानां शब्दत उपादानं साधारणधर्ममात्रं तु गम्यमेव सा वस्तूपमेति फलितार्थः, तदुदाहरणमेतदुक्तम् । इमामर्वाचीना धर्मलुप्तोपमापदेनाभिलपन्ति ॥ १६ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख लाल कमलके समान है, और तुम्हारे नयन नील कमलके समान हैं, इस पद्यार्थमें वस्तूपमानामक अलङ्कार है क्योंकि इसमें उपमान और उपमेयका साधारण धर्म शब्दोपात्त नहीं है प्रतीयमान है। आशय यह है कि जिस वाक्यमें उपमान, उपमेय और उपमावाचक शब्दका प्रयोग रहे, परन्तु साधारण धर्म शब्दोपात्त नहीं हो, उसकी प्रतीति (किसी तरह) हो जाती हो, उसे वस्तूपमा कहते हैं, जैसे—'राजीवमिव' इस पद्यार्थमें कमल तथा मुखका साधारण धर्म मनोज्ञता प्रतीयमान है। अर्वाचीन आचार्य इस तरहकी उपमाको वस्तूपमा नहीं कह कर धर्मलुप्तोपमा नामसे पुकारते हैं ॥ १६ ॥

त्वदाननमिवोन्निद्रमरविन्दमभूदिति ।
सा प्रसिद्धिविपर्यासाद्विपर्यासोपमेष्यते ॥ १७ ॥

त्वदाननमिति । उन्निद्रम् प्रबुद्धम् विकसितं कमलम् त्वदाननमिव त्वदीयमुखमिव अभूत् आसीत्, इति प्रसिद्धेः ख्यातेः—कमलमुपमानं भवति, मुखं चोपमेयं भवतीति प्रसिद्धेः विपर्यासात् वैपरीत्यात् विपर्यासोपमा नामालङ्कार इष्यते। प्रस्तुतत्वेन वर्णनीयानां मुखादीनामुपमेयत्वम्, तदुत्कृष्टताप्रतिपादनाय न्यस्ताना चन्द्रारविन्दादीनामुपमानत्वं भवतीति कवित्वमार्गप्रसिद्धिः, यत्र काव्ये उपमेयोत्कर्षप्रतिपदनाय विपर्यासः उपमेयोपमानभावावेपर्ययः क्रियते सा विपर्यासोपमा कथ्यत इत्याशयः ॥ १७ ॥

हिन्दी—विकसित होनेपर कमल तुम्हारे मुखके समान हो गया, इस वाक्यमें प्रसिद्धिका विपर्यास हो गया है—अर्थात् प्रस्तुत मुखको उपमेय एवं कमलको उपमान रूपमें वर्णित होना चाहिये, वैसा नहीं करके मुखको ही उपमान एवं कमलको उपमेय बना दिया गया है, अतः यह विपर्यासोपमा हुई। नवीन आचार्य गण इस तरहके अलङ्कारको 'प्रतीप' कहते हैं—कुवलयानन्दकारने लिखा है—

'प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् । त्वल्लोचनसमं पद्मं त्वद्वक्त्रसदृशो विधुः' ॥

पण्डितराजने भी इसका यह उदाहरण दिया है—

'किं जल्पसि मुग्धतया हन्त ममाङ्गं सुवर्णवर्णमिति ।
तद्यदि पतति हुताशे तदा हताशे तवाङ्गवर्णं स्यात्' ॥ १७ ॥

तवाननमिवाम्भोजमम्भोजमिव ते मुखम् ।
इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योन्योत्कर्षशंसिनी[3] ॥ १८ ॥

तवाननमिति । तव आननं मुखमिव अम्भोजम् कमलम्, अम्भोजमिव ते मुखम् इति एवम् अन्योन्यस्य परस्परस्य उत्कर्षस्य गुणगौरवस्य शंसिनि कथयित्रीयम् अन्योन्योपमा नाम अलङ्कारः। अयमाशयः—यत्र तृतीयसदृशव्यवच्छेदार्थम् उपमानोपमेययोः परस्परसादृश्यं निबध्यते साऽन्योन्योपमा नाम। उपमानं कमलम् उपमेयं मुखं च निबद्ध्य तयोः पुनः कमलम् उपमेयम् मुखञ्चोपमानं इत्येवं यत्र परस्परौपम्यप्रतिपादनं साऽन्योन्योपमेति भावः। अत्र द्वयोरपि मुखाम्भोजयोः प्रस्तुतत्वं बोध्यम्, अम्भोजस्याप्रस्तुतत्वे तदु-

१ [illegible] । २ [illegible] । ३ शालिनी ।

त्कर्षप्रतिपादनवैयर्थ्यात्। अप्पयदीक्षितोऽपि 'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि' इत्युभयप्रस्तुतत्वमेवोदाहृतवान् ॥ १८ ॥

हिन्दी—तुम्हारे मुखके समान कमल है, और कमलके समान तुम्हारा मुख है, इस वाक्यमें परस्पर उत्कर्षप्रतीति की जाती है अतः यह अन्योन्योपमा नामसे प्रख्यात है। प्रस्तुतको उपमेय एवं अप्रस्तुत को उपमान बनाया जाता है, जहाँ पर दोनों ही प्रस्तुत हों वहाँ पर दोनों ही क्रमशः उपमेय और उपमान बनाये जाते हैं, इससे तृतीय सदृशका व्यवच्छेद पर्यवसित होता है, तुम्हारा मुख कमलके समान है और कमल तुम्हारे मुखके समान है, इससे कमल और मुखके समान तीसरा कोई पदार्थ नहीं है यह प्रतीत होता है, इस तरहकी तुलनाको अन्योन्योपमा कहते हैं। अप्पय्यदीक्षितने भी इस प्रसङ्गमें उभयप्रस्तुतत्व स्वीकार किया है, जैसा कि 'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि' इस उदाहरणसे स्पष्ट है। पण्डितराज जगन्नाथने इसको अन्य अर्वाचीन आचार्योंकी तरह उपमेयोपमा नामसे व्यवहृत किया है। उनके मतानुसार तृतीय सदृशव्यवच्छेद मात्र इसका फल है, और यह उभय प्रस्तुतमें ही हो ऐसा कोई बन्धन नहीं है, प्रस्तुताप्रस्तुतमें भी यह हो सकता है, उदाहरण के लिये उन्होंने लिखा है—

कौमुदीव भवती विभाति मे कातराक्षि भवतीव कौमुदी।
अम्बुजेन तुलितं विलोचनं लोचनेन च तवाम्बुजं समम् ॥ १८ ॥

त्वन्मुखं कमलेनैव तुल्यं नान्येन केनचित्।
इत्यन्यसाम्यव्यावृत्तेरियं सा नियमोपमा ॥ १९ ॥

त्वन्मुखमिति। त्वन्मुख कमलेनैव तुल्यम् अन्येन केनचिच्चन्द्रादिना तुल्यं न, तेषां तदपेक्षया हीनत्वात्, इति अत्र वाक्ये अन्यसाम्यव्यावृत्तेः अन्येषां चन्द्रादीनां सादृश्यस्य निषेधात् इयं नियमोपमा नामालङ्कारः। एकस्य वस्तुनो बहूपमानसद्भावे हीनताप्रत्यय इति सदृशान्तरव्यवच्छेदपूर्वकं यत्र क्वचनैकत्र सादृश्यं निबध्यते सा नियमोपमेति भावः ॥ १९ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख कमलके समान है, दूसरी किसी भी वस्तुके समान नहीं है, इस वाक्यमें दूसरी वस्तुओंसे सादृश्यका प्रतिषेध हो जाता है अतः इसे नियमोपमा नामक अलङ्कार कहते हैं। किसी भी वर्णनीय वस्तुका यदि उपमानबाहुल्य हो तो उसका अपकर्ष प्रतीत होता है, इसी दृष्टिकोणसे यदि एक उपमान बताकर उपमानान्तरप्रतिषेध कर दिया जाय तब उसे नियमोपमा नामसे व्यवहृत किया जाता है ॥ १९ ॥

पद्मं तावत्तवान्वेति मुखमन्यच्च तादृशम्।
अस्ति चेदस्तु तत्कारीत्यसावनियमोपमा ॥ २० ॥

अनियमोपमां लक्षयति—**पद्ममिति।** तावदिति वाक्यालङ्कारे पद्मं कमलम् तव मुखम् अन्वेति अनुकरोति, अन्यत् कमलादितरत् चन्द्रादि तत्कारि त्वदीयमुखानुकारि अस्ति चेदस्तु, इति एवं नियमाभावात् उपमानविषये नियमाभावात् इयम् अनियमोपमा नामालङ्कार इत्यर्थः ॥ २० ॥

हिन्दी—कमल तो तुम्हारे मुखका अनुकरण करता ही है, यदि कमलातिरिक्त चन्द्रादि भी [illegible] इसको अनियमोपमा कहते हैं, क्योंकि इसमें उपमान

समुच्चयोपमाऽप्यस्ति न कान्त्यैव मुखं तव।
ह्लादनाख्येन चान्वेति कर्मणेन्दुमितीदृशी ॥ २१ ॥

समुच्चयोपमां लक्षयति—**समुच्चयोपमेति**। तव मुखं कोमलं कान्त्या एव न अपि तु ह्लादनाख्येन [1]अनुरञ्जनाभिधेन कर्मणा क्रिययापि इन्दुम् चन्द्रम् अन्वेति, न केवलं कान्तिमात्रेण तव मुखं चन्द्रानुकारि किन्तु लोकनयनसन्तर्पणाख्यकर्मणापीति एतादृशी समुच्चयोपमाऽपि अस्ति। अत्र गुणस्य कान्तेः ह्लादनाख्यस्य कर्मणश्च समुच्चयेन समुच्चयोपमानाम्ना व्यवहारः। ईदृशीतिकथनाद्यथात्र गुणक्रिययोः समुच्चयस्तथा क्वचिदुदाहरणे साधारणधर्मसमुच्चयेऽपीयं भवतीति व्यञ्जितम् ॥ २१ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख केवल कान्तिसे ही नहीं, ह्लादनरूप-लोकानुरञ्जन रूप कर्मसे भी चन्द्रमाका अनुकरण करता है, केवल सौन्दर्यमात्रही नहीं लोकनेत्रप्रसादनरूप क्रिया में भी तुम्हारे मुखको चन्द्रमाकी तुलना प्राप्त है, इस वाक्यमें समुच्चयोपमा है, क्योंकि इसमें गुण—कान्ति और क्रिया—ह्लादनका समुच्चय है। इस कारिकामें 'ईदृशी' कहा गया है जिसका अभिप्राय यह है कि ऐसी और भी समुच्चयोपमा होती है उसका साधारण धर्म समुच्चयमें संभव है ॥ २१ ॥

त्वय्येव त्वन्मुखं दृष्टं दृश्यते दिवि चन्द्रमाः।
इयत्येव भिदा नान्येत्यसावतिशयोपमा ॥ २२ ॥

अतिशयोपमां लक्षयति—**त्वय्येवेति**। त्वन्मुखं त्वयि एव दृष्टम्, दिवि आकाशे चन्द्रमाः दृश्यते, इयती एव भिदा, एतावानेव भेदः, अन्य भिदा भेदो न, इति एवम् अतिशयोपमा भवतीति शेषः। उपमानोपमेययोर्महत्यपि भेदे वर्तमाने किञ्चिद्भेदं प्रदर्श्य नान्यो भेदो वर्तत इति अभिन्नताध्यवसानेनोपमेयस्य गुणक्रियातिशयो वर्णित इतीयमतिशयोपमा। अत्रेवादिशब्दा प्रयोगात्साम्यं व्यञ्जनगम्यम् न चात्र रूपकध्वनिः, आश्रयभेदस्य स्पष्टतयाभिधानेनाभेदप्रतीतेरभावात्। नापि व्यतिरेकः, उपमानादुपमेयाधिक्यस्याप्रतीतेः। तस्मादियमुपमैव ॥ २२ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख केवल तुम में ही दीखता है, और चन्द्रमा आकाशमें दीखता है दोनोंमें केवल आश्रयमात्रकृत भेद है अन्य भेद नहीं है, यह अतिशयोपमा कहलाती है। उपमान चन्द्र और उपमेय मुखमें यद्यपि बहुत भेद है, तथापि आश्रयभेदमात्रका प्रदर्शन करके अन्य भेद छिपा दिये गये हैं, और अभेदाध्यवसाय कर दिया गया है, जिससे उपमेय गुण-क्रियाका अतिशय प्रतीत होता है इसीलिये इसे अतिशयोपमा कहते हैं। यहाँ साम्य व्यञ्जनगम्य है क्योंकि उसका वाचक इवादि शब्द प्रयुक्त नहीं है। इसको रूपकध्वनि नहीं कहा जा सकता है क्योंकि आश्रयभेदके स्पष्ट प्रतिपादित होनेसे अभेदप्रतीति नहीं होती है। इसे आप व्यतिरेक भी नहीं कह सकते क्योंकि इसमें उपमानापेक्षया उपमेयकी अधिकता नहीं प्रकाशित होती है। अतः यह उपमाका ही प्रभेद है ॥ २२ ॥

मय्येवास्या मुखश्रीरित्यलमिन्दोर्विकत्थनैः।
पद्मेऽपि सा यदस्त्येवेत्यसावुत्प्रेक्षितोपमा ॥ २३ ॥

मय्येवेति। अस्याः प्रस्तुतनायिकायाः मुखश्रीः मुखशोभासमा शोभा मयि इन्दौ एव विद्यते इति ईदृशैः इन्दोर्विकत्थनैः आत्मश्लाघाभिः अलम् न किमपि फलम्, यत्

[1] धर्मेण।

यस्मात् असौ एतदीयमुखशोभासमा शोभा पद्मे कमलेऽपि अस्त्येव, असौ उत्प्रेक्षितोपमा। चन्द्रमाः पूर्वोक्तप्रकारकं विकत्थनं न कुरुते, नायक एव चाटूक्तये तथोत्प्रेक्षत इतीयमुत्प्रेक्षया लब्धास्पदत्वादुत्प्रेक्षितोपमा कथ्यते ॥ २३ ॥

हिन्दी—इस नायिकाके मुखकी शोभाके सदृश शोभा केवल मुखमें ही है इस प्रकार चन्द्रमाकी आत्मश्लाघा व्यर्थ है क्योंकि कमलमें भी इसके मुखकी शोभाके समान शोभा वर्त्तमान है, इस वाक्यमें उत्प्रेक्षितोपमा नामका अलङ्कार है। चन्द्रमामें इस तरहकी आत्मश्लाघाकी संभावना तो केवल नायककी चाटूक्तिपरायणतासे ही हुई है, अतः इसे उत्प्रेक्षितोपमा कहते हैं ॥ २३ ॥

यदि किञ्चिद् भवेत् पद्मं सुभ्रु विभ्रान्तलोचनम्।
तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा ॥ २४ ॥

यदीति। हे सुभ्रु सुन्दरि, यदि पद्मम् किञ्चित् मनाक् विभ्रान्तलोचनम् घूर्णितनेत्रम् भवेत् जायेत, तत् तर्हि ते तव मुखश्रियं धत्ताम् प्राप्नोतु। यदि कमले नेत्रसंयोगो घटेत तदा तत्त्वन्मुखश्रियमधिगन्तुमीशीत, इयमसौ अद्भुतोपमा। विभ्रान्तलोचनत्वादयो धर्मा मुखस्यैव, तेषां सम्भावनया पद्मे कल्पितत्वेन मुखसादृश्यवर्णनं चमत्कारातिशयाय भवतीति अद्भुतोपमालङ्कारोऽयम् ॥ २४ ॥

हिन्दी—हे सुभ्रु सुन्दरी, यदि कमल चञ्चलनयन हो जाय, तब वह तुम्हारे मुखकी शोभा प्राप्त करे, यह अद्भुतोपमाऽलंकार है। चञ्चलनयनत्व धर्म मुखका ही है। चाटूक्तिपरायण नायकने संभावनाद्वारा उसे कमलमें कहा है, यही चमत्कार का स्थान है इसे दण्डी अद्भुतोपमा कहते हैं। प्राचीन अन्य आचार्योंने भी इसे अद्भुतोपमा नामसे ही कहा है—

'यत्रोपमेयधर्माः स्युरुपमानेऽधिरोपिताः। चमत्कारविधानार्थमाहुस्तामद्भुतोपमाम्' ॥

काव्यप्रकाशकारके मतमें यह अतिशयोक्ति ही है, उनका लक्षण है—

'प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्। विज्ञेयातिशयोक्तिः सा……॥

उदाहरण यह दिया गया है—

'राकायामकलङ्कं चेदमृतांशोर्भवेद्वपुः। तस्या मुखं तदा साम्यपराभवमवाप्नुयात्' ॥

यहाँ पर इतना समझ लेना आवश्यक है कि जिस वाक्यमें संभावना करके भी औपम्यकी अनिष्पत्ति ही कविको अभिप्रेत होती है वहाँ उपमा न होकर अतिशयोक्ति ही होती है, जैसे—'राकायाम्' इत्यादि पूर्वोक्त उदाहरणमें चन्द्रशरीरका कलङ्कमुक्त होना असंभव है अतः उसके द्वारा मुखसाम्यप्राप्ति भी असंभव ही है, अतः मुखसाम्यमें कविका अभिप्राय हो नहीं सकता है, अतः यह उपमा नहीं, अतिशयोक्ति ही है।

'पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रोष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य' ॥

इस श्लोकमें अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि फूलका प्रवालोपहित होना संभव है। यहां पर कवि औपम्यका अभाव नहीं देखता है। संभावना केवल चारुतातिशय-प्रकाशनके लिये की गई है। अतः प्राचीनोंने इसे अतिशयोक्ति नहीं कह कर उत्पाद्योपमा कहा है।

आचार्य दण्डीके मतानुसार 'राकायाम्' और 'पुष्पं प्रवालोपहितम्' दोनों जगह अद्भुतोपमा ही है ॥ २४ ॥

---

१. अयं श्लोकः क्वचिन्नास्ति।

शशीत्युत्प्रेक्ष्य तन्वङ्गि त्वन्मुखं त्वन्मुखाशया।
इन्दुमप्यनुधावामीत्येषा मोहोपमा स्मृता ॥ २५ ॥

शशीति। हे तन्वङ्गि कृशाङ्गि, त्वन्मुखम् शशी चन्द्र इति इत्यम् उत्प्रेक्ष्य संभाव्य (अनन्तरं त्वद्विरहे) त्वन्मुखाशया त्वद्वदनस्पृहया त्वन्मुखमेवेदमिति भ्रान्त्या इन्दुम् अपि अनुधावामि अनुसरामि तद्दर्शनबद्धादरो भवामि, इत्येषा मोहोपमा स्मृता, कविभिरिति शेषः। मोहो भ्रान्तिः सादृश्येन इन्दौ मुखभ्रमस्तन्मूलकतया मोहोपमेयम्। तदुक्तम् अग्निपुराणे—

'प्रतियोगिनमारोप्य तदभेदेन कीर्तनम्।
उपमेयस्य यन्मोहोपमासौ परिकीर्तिता' ॥ २५ ॥

हिन्दी—हे तन्वाङ्गि, तुम्हारे मुखको मैंने चन्द्रमा समझ लिया और तुम्हारे विरहमें तुम्हारे मुखको देखनेकी स्पृहासे चन्द्रमाका अनुधावन किया करता हूँ, इसमें मोहोपमा नामक अलङ्कार है। मोह—भ्रम—सादृश्यवशात् चन्द्रमामें मुखभ्रम, तम्मूलकतया इसे मोहोपमा कहते हैं। यह प्राचीनोंका नामकरण है। अर्वाचीन आचार्योंने इसे 'भ्रान्तिमान्' नामक अलङ्कार कहा है। अप्पय्यदीक्षितने लिखा है—

'कविसंमतसादृश्याद्विषये पिहितात्मनि। आरोप्यमाणानुभवो यत्र स भ्रान्तिमान् मतः' ॥
उनके द्वारा प्रस्तुत भ्रान्तिमान्‌के उदाहरण भी बड़े चमत्कारपूर्ण हैं—

'कपाले मार्जारः पय इति करॉल्लेढि शशिनः तरुच्छिद्रप्रोतान् बिसमिति करी सङ्कलयति।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताऽप्यंशुकमिति प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विभ्रमयति' ॥

एक ऐसा भी उदाहरण है जिसमें उत्तरोत्तर भ्रान्ति पल्लवित होती गई है—

'वल्लालक्षोणिपाल, त्वदहितनगरे सञ्चरन्ती किराती
कीर्णान्यादाय रत्नान्युरुतरखदिराङ्गारशङ्काकुलाङ्गी।
कृत्वा श्रीखण्डखण्डं तदुपरि मुकुलीभूतनेत्रा धमन्ती
श्वासामोदानुधावन्मधुकरनिकरैर्धूमशङ्कां तनोति' ॥ २५ ॥

किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्ते लोलेक्षणं मुखम्।
मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा ॥ २६ ॥

किं पद्ममिति। अन्तर्भ्रान्तालि मध्ये भ्रमद्भ्रमरयुगलमिदं पद्मं कमलं किम्? अथवा ते तव लोलेक्षणं चलनेत्रं मुखं किम्? इति मम चित्तं दोलायते द्वैधमिवानुभवति, इतीयं संशयोपमा नामालङ्कारः। मध्ये भ्रमद्भ्रमरपद्मत्वप्रकारकं त्वत्सम्बन्धिमुखत्वप्रकारकं च संशयात्मकं ज्ञानं (त्वदीयमुखे) जायत इत्यर्थः। तदत्र संशयस्य चमत्कारकतया संशयोपमा नामालङ्कारः। एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानार्थावमर्शः संशयः, अस्य च सादृश्यपर्यवसायितयोपमाभेदे संग्रहः ॥ २६ ॥

हिन्दी—क्या यह मध्यभागमें घूमते हुए भ्रमरसे युक्त कमल है या चञ्चलनेत्रों वाला तुम्हारा मुख है? इस दुविधामें हमारा हृदय घूम रहा है। यहाँ पर संशयोपमा नामक उपमाभेद होता है। अर्वाचीन आचार्यगण इसे सन्देहालङ्कार मानते हैं। कविराजने कहा है—

'अविरोप्य हरस्य हन्त चापं परितापं प्रशमय्य बान्धवानाम्।
परिणेष्यति वा न वा युवायं निरपायं मिथिलाधिनाथपुत्रीम्' ॥ २६ ॥

न पद्मस्येन्दुनिग्राह्यस्येन्दुलज्जाकरी द्युतिः।
अतस्त्वन्मुखमेवेदमित्यसौ निर्णयोपमा ॥ २७ ॥

निर्णयोपमां लक्षयति— **न पद्मस्येति**। इन्दुनिग्राह्यस्य चन्द्रेण कृताभिभवस्य पद्मस्य इन्दुलज्जाकरी चन्द्रसङ्कोचकारिणी द्युतिर्न संभवति, यत्पद्मं चन्द्रमसाऽभिभूतपूर्वं तस्य द्युतिश्चन्द्रमसं स्वजेतारं सङ्कोचयेदिति न संभवति, अतः इदं चन्द्रलज्जाकरीं द्युतिं बिभ्रत् त्वन्मुखमेवेति असौ निर्णयोपमा नामालङ्कारः। अत्रेदं पद्मं मुखं वेति संशयः पूर्वमवतारणीयः, ततश्चायं निश्चयः, संशयोत्तरनिश्चयस्यैव निर्णयालङ्कारस्वरूपतयाग्निपुराणेऽभिहितत्वात्, तथा चोक्तं तत्र—'उपमेयस्य संशय्य निश्चयान्निश्चयोपमा'। निश्चयोपमा निर्णयोपमा इति चानर्थान्तरम् ॥ २७ ॥

हिन्दी—जिस पद्मको चन्द्रमाने अभिभूत कर दिया था उस पद्मकी द्युति चन्द्रमाको लज्जित करने वाली नहीं हो सकती है, अतः यह तुम्हारा मुख ही है, इसको निर्णयोपमा कहते हैं। अग्निपुराणमें इसीको निश्चयोपमा शब्दसे कहा गया है। इसका उदाहरणान्तर यह दिया जा सकता है—

'किन्तावत् सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्याः।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्बिब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः' ॥

विश्वनाथ आदि अर्वाचीन आचार्य इसे निश्चयान्त संदेह कहते हैं ॥ २७ ॥

शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि श्रीमत्सुरभिगन्धि च।
अम्भोजमिव ते वक्त्रमिति श्लेषोपमा स्मृता ॥ २८ ॥

शिशिरेति। ते तव वक्त्रम् अम्भोजं कमलमिव शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि चन्द्रप्रतिद्वन्द्वि, (अत्र मुखपक्षे शिशिरांशोः प्रतिस्पर्धीति विग्रहः, अम्भोजपक्षे तु शिशिरांशुः प्रतिस्पर्धी यस्येति विग्रह इति बोध्यम्। श्रीमत् प्रशंसनीयशोभम्', सुरभिगन्धि घ्राणतर्पणगन्धयुतं च। अत्र विशेषणत्रयमपि श्लेषद्वारा मुखे कमले चोभयत्रान्वेतीति इयं श्लेषोपमा स्मृता। श्लेषश्चात्रार्थश्लेषः। अत्र श्लेषस्य विद्यमानत्वेऽपि न श्लेषालङ्कारः, सादृश्यजन्यचमत्कारे श्लेषचमत्कारस्य लीनतया तस्यालङ्कारकत्वायोगात्। अतश्चात्र श्लेषानुप्राणितोपमा ज्ञेया ॥ २८ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख कमलकी तरह चन्द्रप्रतिपक्षि, श्रीमत् एवं सुरभिगन्धयुत है, इसमें श्लेषोपमा नामक अलङ्कार है, यहाँ पर चन्द्रप्रतिस्पर्द्धि, श्रीमत् और सुरभिगन्धि यह तीनों विशेषण श्लिष्ट हैं अतः इसे श्लेषोपमा नामक अलङ्कार कहा जाता है ॥ २८ ॥

सरूपशब्दवाच्यत्वात् सा समानोपमा यथा।
बाले वोद्यानमालेयं सालकाननशोभिनी ॥ २९ ॥

समानोपमां निर्वक्ति—**सरूपेति**। सरूपम् समानम् सत्यप्यर्थभेदे समानाकृति,

[illegible] सा समानोपमा भवतीति शेषः.

यथेति तदुदाहरणोपन्यासः, इयम् उद्यानमाला वनपङ्क्तिः बाला वधूरिव सालकेन चूर्णकुन्तलललितेन आननेन शोभिनी सशोभा, वनपङ्क्तिर्यथा सालानां वृक्षाणां काननेन वनेन शोभायुता तथा बालापि सालकाननेन (चूर्णकुन्तलयुक्तमुखेन) शोभायुता, तदत्रोपमायां भिन्नयोरपि उपमानोपमेयधर्मयोः समानशब्दवाच्यत्वात्साधारण्यम्। अस्यां च शब्दश्लेषो हेतुः, वृक्षकाननेति परपदप्रयोगे उपमाभावात् ॥ २९ ॥

हिन्दी—जहाँ पर उपमान और उपमेयगत धर्म समानानुपूर्वीक शब्दद्वारा बताया गया हो, अर्थभेदेन भिन्न होनेपर भी उपमानोपमेयगत धर्मोपस्थापकशब्दसमानाकृतिक हो, उसे समानोपमानामक उपमाभेद मानते है। जैसे—यह बाला उद्यानमालाकी तरह सालकाननशोभिनी है। यहाँ पर 'सालकाननशोभिनी' शब्दका उपमानभूत उद्यानमालापक्षमें—सालवृक्षोंके वनसे शोभायुक्त, तथा उपमेय बालापक्षमें—चूर्णकुन्तलसे युक्त मुखसे शोभायुक्त यह अर्थ है, परन्तु दोनों अर्थोंके उपस्थापक शब्द—'सालकाननशोभिनी' में समानता, सरूपता, एकानुपूर्वीकत्व होनेसे यहाँ समानोपमा है ॥ २९ ॥

पद्मं बहुरजश्चन्द्रः क्षयी ताभ्यां तवाननम्।
समानमपि सोत्सेकमिति निन्दोपमा स्मृता ॥ ३० ॥

पद्ममिति। पद्मम् कमलम् बहुरजः परागधूसरम्, चन्द्रः क्षयी कृष्णपक्षे नश्यद्द्युतिः, (कमलं धूलिपूर्णं क्षयी चन्द्रः) ताभ्यां कमलचन्द्राभ्यां समानम् तुलितमपि तवाननं त्वन्मुखम् सोत्सेकम् सगर्वम्। यत्तव मुखं धूलिपूर्णेन कमलेन, क्षयिणा चन्द्रमसा च सादृश्यमावहति तस्यापि सगर्वता? नोचितस्तस्य गर्व इत्यर्थः। इति एषा निन्दोपमा स्मृता कविभिरुक्ता। अत्र साम्यमात्रपर्यवसायित्वात् तस्यैव कविसंरम्भगोचरत्वात् प्रतीयमानेऽपि भेदे तस्य प्राधान्याभावान्न व्यतिरेकः। प्राधान्येन भेदस्य चमत्कृतिजनकत्व एव तस्य निश्चितत्वात् ॥ ३० ॥

हिन्दी—कमलमें परागरूप धूल भरी पड़ी है, चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाता है, उन्हीं दोनोंसे समता रखता है यह तुम्हारा मुख, फिर भी इसे अपनी रमणीयतापर पूरा गर्व है! इसे निन्दोपमा कहा गया है। यह निन्दा साम्यपर्यवसायिनी है, साम्य ही कविका अभिप्रेत भी है, अतः भेदप्रधानरूपमें विवक्षित नहीं है, इसीलिये यहाँ व्यतिरेक नामक अलङ्कार नहीं हुआ, क्योंकि जहाँ पर प्राधान्येन भेद चमत्कारक हो, वहीं व्यतिरेक माना जाता है ॥ ३० ॥

ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मश्चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः।
तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते ॥ ३१ ॥

ब्रह्मण इति। पद्मः कमलम् ब्रह्मणोऽपि उद्भवः उत्पत्तिस्थानम्, चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः शम्भुना मस्तके निधाय कृतादरः, तौ पद्मचन्द्रौ त्वन्मुखेन तुल्यौ इति सा प्रशंसोपमा उच्यते। पद्मचन्द्रौ महद्भ्यां ब्रह्मशिवाभ्यां प्रभवस्थानत्वे शिरोभूषणत्वे च क्रमश आश्रितौ इति तयोर्महत्ता, तावेव च जगत्त्रितयरोचनेन तव मुखेनापि तुलिताविल्यहो तयोः प्रकर्षः इत्थं, पद्मचन्द्रौ अधिकगुणतयोपमानभूतेन मुखेन प्रशंसिताविति मुखस्य गुणातिशयो व्यञ्जितः। अत्र विपर्यासोपमासमेधिता प्रशंसा, तत्र प्रशंसायाः

न पद्मं मुखमेवेदं न भृङ्गौ चक्षुषी इमे।
इति विस्पष्टसादृश्यात् तत्त्वाख्यानोपमैव सा॥ ३७॥

न पद्ममिति। इदं पुरो दृश्यमानम् पद्मं कमलं न किन्तु मुखमेव, इमौ भृङ्गौ भ्रमरौ न किन्तु चक्षुषी नयने एव, इत्येवं विधिनिषेधप्रकाशनवर्त्मना विस्पष्टसादृश्यात् सादृश्यस्य स्पष्टीकरणात् इयं तत्त्वाख्यानोपमा ज्ञेया। भ्रमनिरासाय भ्रमविषयस्य तत्त्वस्य यथार्थस्वरूपाविष्करणं तत्त्वाख्यानम्, तन्मूलकत्वादस्यास्तत्त्वाख्यानोपमानाम्ना व्यवहारः। निर्णयोपमायां संशयपूर्वकं तत्त्वाख्यानम्, अत्र तु भ्रान्तिपूर्वकं तत्त्वाख्यानमित्यनयोर्भेदः॥ ३७॥

हिन्दी—यह कमल नहीं है मुख ही है, यह भ्रमर नहीं हैं नयन ही हैं, इस प्रकार विधिनिषेधोभयाभिधान द्वारा सादृश्य स्पष्ट करनेके कारण इसे तत्त्वाख्यानोपमा कहते हैं। निर्णयोपमामें संशयपूर्वक तत्त्वाख्यान रहता है, और यहाँ भ्रान्तिपूर्वक तत्त्वाख्यान रहता है, यही इन दोनोंमें अन्तर है॥ ३७॥

सर्वपद्मप्रभासारः समाहृत इव क्वचित्।
त्वदाननं विभातीति तामभूतोपमां विदुः॥ ३८॥

सर्वपद्मेति। क्वचित् एकत्रस्थाने विधात्रा समाहृतः एकत्रीकृत्य स्थापितः सर्वपद्मप्रभासारः सकलकमलकान्तिपुञ्ज इव त्वदाननं विभाति तामिमाम् (कवयः) अभूतोपमाम् विदुः आहुः। अभूतेन अनिष्पन्नेन उपमानेन औपम्यस्य वर्णनम् अभूतोपमा, नात्रेवशब्दः सम्भावनायाम् अपितु साधर्म्यवाचकः, तेन समाहृत इत्यस्य संभावनया समाहरणेऽपि उत्प्रेक्षावाचकाभावात् केवलसंभावनाचमत्कृत्यपेक्षया तादृशसंभावनानिष्पन्नोपमानसादृश्यवर्णनचमत्कृतेः प्राधान्यादत्रोपमैव ज्ञेया। अविद्यमानस्य केवलं कविप्रतिभया कल्प्यमानस्य धर्मिणो यत्र वर्णनं तत्राभूतोपमा, स्वयं विद्यमानस्य धर्मिणो यत्रान्यधर्मिणां सम्मेलनकल्पनया साम्यवैचित्र्यवर्णनं तत्राद्भुतोपमेत्युभयोर्भेदः॥ ३८॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख ऐसा मालूम पड़ता है मानो ब्रह्माने सकल कमलकान्तिपुञ्जको एक स्थानपर एकत्रित कर दिया हो, इसे अभूतोपमा कहते हैं। अभूत—अनिष्पन्न उपमानके साथ सादृश्यप्रकाशन होनेके कारण इसे अभूतोपमा कहते हैं। अभूतोपमामें कविकल्पित अभूतधर्मीका उपन्यास होता है और स्वयं विद्यमान धर्मीका अन्य धर्मीके साथ मिलन होनेसे जहाँ वैचित्र्यवर्णन होता है वह अद्भुतोपमा है, यही दोनोंमें भेद है॥ ३८॥

चन्द्रबिम्बादिव विषं चन्दनादिव पावकः।
परुषा वागितो वक्त्रादित्यसंभावितोपमा॥ ३९॥

चन्द्रबिम्बादिति। इतः एतस्मात् तव वक्त्रात् परुषा कठोरा वाक् वाणी चन्द्रबिम्बात् शशाङ्कमण्डलात् विषं गरलम् इव, चन्दनात् पावकोऽग्निरिव। अत्र उपमानभूताभ्यां चन्द्रचन्दनाभ्यां विषपावकनिर्गमस्येव तव वदनात् परुषवाङ्निस्सरणस्यासंभावितत्वादियमसम्भावितोपमाऽलङ्कारः॥ ३९॥

हिन्दी—[illegible] मुखसे कठोर वाणीका निकलना उसी प्रकार होगा जैसे चन्द्रमण्डलसे

विष और आगका निकलना संभव हो, तभी तुम्हारे मुखसे कठोर वाणीका निकलना संभव हो सकता है। इसमें असंभावित वस्तुके साथ सादृश्यवर्णन किया गया है अतः यह असंभावितोपमा है ॥ ३९ ॥

चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादिशीतलः ।
स्पर्शस्तवेत्यतिशयं बोधयन्ती बहूपमा ॥ ४० ॥

चन्दनोदकेति । चन्दनोदकं मलयाङ्गरागः, चन्द्रांशवः शशिकराः, चन्द्रकान्तः स्वनामप्रसिद्धो मणिभेदः, एतदादिशीतलः एतत्प्रभृतिसुखकरस्तव स्पर्शः, इति अतिशयं बोधयन्ती उपमानान्तरावस्थितशैत्यगुणापेक्षया प्रस्तुते विशेषं गमयन्ती इयं बहूपमा नामोपमाप्रभेदः । अर्वाचीना इमां मालोपमामाहुः ॥ ४० ॥

हिन्दी—चन्दनजल, चन्द्रकिरण, चन्द्रकान्तमणि प्रभृति वस्तुओंकी तरह तुम्हारा स्पर्श अतिशीतल है, इसमें शैत्योपमानतया प्रसिद्ध कदल्यादिसे प्रस्तुत वस्तुमें अतिशय प्रतीत होता है अतः इसे बहूपमा कहते हैं। अर्वाचीन आचार्यगण इसे मालोपमा कहते हैं, उनका लक्षण-उदाहरण यह है, लक्षण—'मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते'।

उदाहरण—

'वारिजेनेव सरसी शशिनेव निशीथिनी । यौवनेनेव वनिता नयेन श्रीर्मनोहरा' ॥ ४० ॥

चन्द्रबिम्बादिवोत्कीर्णं पद्मगर्भादिवोद्धृतम् ।
तव तन्वङ्गि वदनमित्यसौ विक्रियोपमा ॥ ४१ ॥

चन्द्रबिम्बादिति । हे तन्वङ्गि कृशगात्रि, तव वदनं मुखम् चन्द्रबिम्बात् शशिमण्डलात् उत्कीर्णम् इव उट्टङ्कितम् इव, पद्मगर्भात् उद्धृतम् इव, इति इयम् विक्रियोपमानामालङ्कारः । अत्रोपमानभूतौ इन्दुबिम्बपद्मगर्भौ प्रकृती वदनञ्च विकृतिः । प्रकृतिविकृत्योश्चास्ति साम्यमिति विक्रियोपमा । एतदुक्तमग्निपुराणे—

'उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा' ।

अन्यत्राप्युक्तम्—

'उपमेयस्य यत्र स्यादुपमानविकारता ।
प्रकृतेर्विकृतेः साम्यात् तामाहुर्विक्रियोपमाम्' ॥ ४१ ॥

हिन्दी—हे कृशाङ्गि, तुम्हारा मुख ऐसा लगता है मानो चन्द्रमण्डलसे उत्कीर्ण-खचित हो, कमलपुष्पगर्भसे निकाला गया हो, इसे विक्रियोपमा कहते हैं। यहाँ पर उपमानभूत चन्द्रबिम्ब और पद्मगर्भ प्रकृति हैं और वदन विकृति है, प्रकृतिके साथ विकृतिका साम्य अवश्यंभावी है, अतः यह विक्रियोपमा हुई ॥ ४१ ॥

पूष्ण्यातप इवाह्नीव पूषा व्योम्नीव वासरः ।
विक्रमस्त्वय्यधाल्लक्ष्मीमिति मालोपमा मता ॥ ४२ ॥

पूष्णीति । यथा आतपः प्रकाशः पूष्णि सूर्ये (लक्ष्मीमधात्), पूषा अह्नि दिवसे (लक्ष्मीमधात्), वासरो दिवसश्च व्योम्नि आकाशे (लक्ष्मीमधात्) तथा विक्रमः

पातस्य पदार्थस्य तदुत्तरवाक्ये कर्तृतयोपादानम्, एवमग्रेऽपि, तदियं मालासाम्यान्मालोपमापदेनोक्ता। पूर्वं निरुक्तायां—'चन्दनोदकचन्द्रांशुचन्द्रकान्तादिशीतलः। स्पर्शस्तवेत्यतिशयं बोधयन्ती बहूपमा' इति स्वरूपायां बहूपमायां केवलमुपमाबाहुल्यम्, अस्यां तु पूर्ववाक्यस्थपदस्योत्तरवाक्ये सम्बन्धस्ततश्चोपमाबाहुल्यमपीत्युभयोर्भेदः। नव्यास्त्वत्र तत्रोभयत्रापि मालोपमामेव मन्यन्ते ॥ ४२ ॥

हिन्दी—जैसे प्रकाशने सूर्यको लक्ष्मी दी है, सूर्यने दिनको लक्ष्मी दी है, और दिनने आकाशको लक्ष्मी दी है उसी तरह पराक्रमने आपको लक्ष्मी दी है। यह मालोपमा मानी जाती है। जैसे मालामें गुथे गये एक फूलका दूसरेसे, दूसरेका तीसरेसे संबन्ध होता है, उसी तरह इसमें प्रथम वाक्यमें अधिकरणतया गृहीत पदार्थका तदुत्तरवाक्यमें कर्तृतया सम्बन्ध होता है, जैसे 'पूष्ण्यातप इव' इस प्रथम वाक्यमें अधिकरणतया गृहीत पूषाका तदुत्तरवाक्य—'अह्नीव पूषा'में—कर्तृतया सम्बन्ध हुआ है, इसी प्रकार आगे भी हुआ है, अतः इसे मालासाम्य होनेके कारण मालोपमा कहते हैं। बहूपमामें केवल उपमानबाहुल्य होता है, इस मालोपमामें पूर्ववाक्यस्थ पदका उत्तरवाक्यमें अन्वय तथा तदनन्तर उपमानबाहुल्य होता है, यही दोनोंमें भेद है। नवीन आचार्यगण बहूपमाको और इसको भी मालोपमा ही मानते हैं ॥ ४२ ॥

वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थः कोऽपि यद्युपमीयते।
एकानेकेव शब्दत्वात्सा वाक्यार्थोपमा द्विधा ॥ ४३ ॥

वाक्यार्थेनैवेति। यदि कोपि वाक्यार्थः वाक्यार्थेन परेण वाक्यार्थेन एव उपमीयते, तदा वाक्यार्थोपमा नामालङ्कारो भवति। वाक्यार्थयोरुपमानोपमेयभावेन साम्यस्य वर्णनात् वाक्यार्थोपमेति नामकरणम्। सा चेयं वाक्यार्थोपमा द्विप्रकारा—एकेवशब्दघटिता अनेकेवशब्दघटिता च। तत्रायं विवेकः, यदा वाक्यस्थिताखिलपदार्थसाम्यप्रत्यायनेच्छा तदा प्रत्युपमानमिवशब्दप्रयोगः इत्यनेकेवशब्दघटिता सा, यदा तु प्रधानपदार्थबोधोत्तरं पश्चात् पर्यालोचनया अवान्तरपदार्थानां साम्यं प्रतीतमिवावभासते तदा प्रधानोपमानपुरत एवेवशब्दप्रयोगेणैव सकलसाम्यप्रतीतिरित्येकेवशब्दप्रयोगघटिता सा ॥ ४३ ॥

हिन्दी—जब एक वाक्यके अर्थसे दूसरे वाक्यके अर्थकी उपमा दी जाती है तब वाक्यार्थोपमा नामक अलङ्कार होता है। यह दो प्रकारका होता है १-एक इव शब्दघटित और २-अनेक इव शब्दघटित। जब वाक्यस्थित सभी पदार्थोंमें साम्यबोधनेच्छा होती है तब प्रत्येक उपमानके साथ इव शब्द लगा दिया जाता है। उस स्थितिमें यह अनेक इव शब्दसे घटित होती है, और जब प्रधानपदार्थान्वयबोधोत्तर पर्यालोचन करनेपर अवान्तर पदार्थोंका साम्य स्वतःप्रतीत-सा मालूम पड़ता है, तब प्रधानोपमानके साथ ही एकमात्र इव शब्दका प्रयोग होता है, उस स्थितिमें यह एक इव शब्दघटित होती है ॥ ४३ ॥

त्वदाननमधीराक्षमाविर्दशनदीधिति।
भ्रमद्भृङ्गमिवालक्ष्यकेसरं भाति पङ्कजम् ॥ ४४ ॥

एकेवशब्दघटितां वाक्यार्थोपमामुदाहरति—**त्वदाननमिति**। अधीराक्षम् चञ्चल-

साम्यमुपमानोपमेयात्मकवाक्यद्वयेन निबद्धम्। अतश्चेयं वाक्यार्थोपमा, अत्र च विशिष्टयोरेवोपमानोपमेयत्वप्रतीतिरिष्टेत्येकेवशब्दप्रयोगः ॥ ४४ ॥

हिन्दी—चञ्चल नेत्रोंसे युक्त और प्रकाशित होनेवाली दन्तद्युतिसे मण्डित यह तुम्हारा मुख मँडराते हुए भ्रमरसे युक्त तथा लक्ष्यकिञ्जल्क कमलके समान शोभित होता है। इसमें पूरे मुखको पूरे कमलसे उपमा दी गई है, यह बात दूसरी है कि प्रधानवाक्यार्थबोधोत्तर नेत्रका भ्रमरसे और दन्तद्युतिका किञ्जल्कसे साम्य मालूम पड़ जाता है। यह एक इव शब्दघटित वाक्यार्थोपमाका उदाहरण है ॥ ४४ ॥

नलिन्या इव तन्वङ्ग्यास्तस्याः पद्ममिवाननम्।
मया मधुव्रतेनेव पायं पायमरम्यत ॥ ४५ ॥

अनेकेवशब्दघटितां वाक्यार्थोपमामाह—**नलिन्या इति**। मधुव्रतेन भ्रमरेण इव मया नलिन्याः पद्मलताया इव तस्याः तन्वङ्ग्याः कृशकायलतायाः सुन्दर्याः पद्मम् इव आननम् पायं पायम् असकृत्पीत्वा अरम्यत रतिरासाद्यत। यथा भ्रमरः पद्मिन्याः पद्मं पीत्वा पीत्वा रमते तथाहमपि तस्याः कृशाङ्ग्या मुखं पीत्वाऽरंसीति भावः। अत्रानेकेवशब्दप्रयोगः सर्वाङ्गसाम्यं बोधयति ॥ ४५ ॥

हिन्दी—नलिनीलताके समान उस कृशाङ्गी सुन्दरीके कमलसदृश मुखका भ्रमरके समान मैं बार-बार पान (चुम्बन) करके आनन्दमग्न हो गया। यहाँ पद्मिनीलता—नायिका, कमल—मुख, और मधुकर तथा मैं इनमें उपमानोपमेयभाव पृथक्-पृथक् इव शब्दोंसे प्रकट किया गया है। अनेक इव शब्दोंवाली वाक्यार्थोपमाका यह उदाहरण है ॥ ४५ ॥

वस्तु किञ्चिदुपन्यस्य न्यसनात्तत्सधर्मणः।
साम्यप्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा यथा ॥ ४६ ॥

प्रतिवस्तूपमां निर्वक्तुमारभते—**वस्तु किञ्चिदिति**। किञ्चित् प्रकृतं वस्तु उपन्यस्य प्रथममभिधाय तत्सधर्मणः प्रकृतवस्तुसमानस्य अप्रकृतस्य न्यसनात् प्रकृतसमर्थनार्थम् वाक्यान्तरेण प्रतिपादनात् साम्यप्रतीतिः विनापीवादिशब्दप्रयोगं सादृश्यबोधो भवति, तत्र प्रतिवस्तूपमा नामालङ्कारः। प्रतिवस्तु प्रतिपदार्थम् उपमा समानधर्मो यस्यां सा प्रतिवस्तूपमा, एतच्च सधर्मणः इति लक्षणघटकेन—अप्रस्तुतवाक्येऽपि धर्मोपादानमावश्यकमिति सूचयता विवृतम्। 'यत्रोपमानोपमेयवाक्ययोरेकः समानो धर्मः पृथक् निर्दिश्यते सा प्रतिवस्तूपमे'ति कुवलयानन्देऽप्पयदीक्षिताः। काव्यप्रकाशे तु—'प्रतिवस्तूपमा तु सा। सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः' इत्याहुर्मम्मटभट्टाः। पृथक् प्रतिपादनं च भिन्नशब्देनैव, तत्पदावृत्तौ कथितपदत्वरूपदोषप्रसक्तेः। अत्र लक्षणनिरुक्तौ साम्यप्रतीतिरस्तीति वदतो दण्डिन उपमाजीवातुभूतस्य साम्यस्यात्र प्राधान्येन भानात् उपमाप्रपञ्च एवास्या अन्तर्भावो युक्त इत्याशयो व्यज्यते ॥ ४६ ॥

हिन्दी—किसी एक प्रस्तुत वस्तुका कुछ वर्णन करके यदि तत्समानधर्मवाले किसी अप्रस्तुत वस्तुका वर्णन किया जाय तो प्रतिवस्तूपमा होती है ॥ ४६ ॥

प्रतिवस्तूपमामुदाहरति—**नैकोऽपीति**। अद्यापि जायमानेषु अद्ययावत् प्राप्तजन्मसु राजसु भूपालेषु एकोऽपि त्वादृशः तव तुल्यो नास्ति, ननु निश्चये, पारिजातस्य पादपो वृक्षो द्वितीयो नास्त्येव। अत्र पूर्ववाक्ये त्वत्सदृशो नास्ति, परवाक्ये च द्वितीयो नास्ति, इत्येक एव सादृश्यप्रतिषेधाख्यो धर्मः शब्दान्तरेण वाक्यद्वये निर्दिष्ट इति प्रतिवस्तूपमा ॥ ४७ ॥

हिन्दी—प्रतिवस्तूपमाका उदाहरण देते हैं—पैदा होनेवाले भूपोंमें आजतक कोई तुम्हारे ऐसा नहीं हुआ, निश्चय ही पारिजातवृक्षका द्वितीय जोड़ा नहीं होता है। यहाँ पर प्रस्तुत राजाका निर्देश करके तत्सधर्मा पारिजातका निर्देश किया गया है। यहाँ पर पूर्ववाक्यमें 'त्वत्सदृश नहीं हुआ' कहा है और उत्तरवाक्यमें 'द्वितीयो नास्ति' कहा है, एक ही वस्तु दो तरहसे कही गई है, 'सामान्यस्य एकस्य वाक्यद्वये द्विःस्थितिः' यह काव्यप्रकाश भी इसके अनुकूल ही है ॥ ४७ ॥

अधिकेन समीकृत्य[1] हीनमेकक्रियाविधौ।
यद्ब्रुवन्ति स्मृता सेयं तुल्ययोगोपमा यथा ॥ ४८ ॥

तुल्ययोगोपमां लक्षयति—**अधिकेनेति**। हीनं न्यूनगुणं पदार्थम् अधिकेन गुणाधिकपदार्थेन समीकृत्य तुलनामानीय यद्ब्रुवन्ति सा इयं तुल्ययोगोपमा स्मृता। हीनाधिकयोस्तुल्यत्वेन योगे यदौपम्यं सा तुल्ययोगोपमेति भावः ॥ ४८ ॥

हिन्दी—न्यून गुणवाले पदार्थको अधिक गुणवाले पदार्थके साथ तुलना देकर समानकार्यकारितया कहा जाय तो तुल्ययोगोपमा होती है। प्रकृत तथा अप्रकृत पदार्थका एकधर्माभिसम्बन्धरूप तुल्ययोगिता दूसरी है। तुल्ययोगितामें प्रकृत तथा अप्रकृत सभीका समकक्षभावसे वर्णन होता है, अतः वहां पर उपमानोपमेय भावकी अपेक्षा नहीं होती है, अतः वहाँ वाच्य अथवा व्यङ्ग्य साम्य नहीं होता है। इस तुल्ययोगोपमामें प्रकृत और अप्रकृतमें उपमानोपमेयभाव विवक्षित रहा करता है। यहां साम्य भी प्रतीत होता ही है, वाच्य या व्यङ्ग्यरूपमें। एक बात और है कि तुल्ययोगिताकी प्रवृत्ति स्तुति या निन्दाके लिये होती है और तुल्ययोगोपमा की प्रवृत्ति केवल साम्यप्रतिपादनार्थ होती है, यही सब भेद इन दोनोंमें है ॥ ४८ ॥

दिवो जागर्ति रक्षायै पुलोमारिर्भुवो[2] भवान्।
असुरास्तेन हन्यन्ते सावलेपास्त्वया[3] नराः ॥ ४९ ॥

उदाहरणमाह—**दिवो जागर्त्तीति**। पुलोमारिः इन्द्रः दिवः स्वर्लोकस्य रक्षायै जागर्त्ति, भवान् भुवः रक्षायै जागर्त्तीत्यत्रापि योजनीयम्। तेन इन्द्रेण असुराः दैत्याः हन्यन्ते, त्वया सावलेपाः गर्वोद्धताः नृपा हन्यन्ते। अत्र हीनस्य प्रस्तुतस्य राज्ञः गुणाधिकेन महेन्द्रेण सह तुल्यताप्रतिपादनात्तुल्ययोगोपमा। अत्र साधर्म्यं व्यङ्ग्यमेव, इवाद्यप्रयोगात् ॥ ४९ ॥

हिन्दी—इन्द्र स्वर्गकी रक्षाके लिए सतर्क रहा करते हैं और आप पृथ्वीकी रक्षाके लिये। वह असुरों का नाश करते हैं और आप उद्धत नृपोंका। यहां पर हीन गुणवाले प्रस्तुत राजाको गुणाधिक महेन्द्रके साथ तुल्यता बताई गई है अतः तुल्ययोगोपमा अलङ्कार हुआ ॥ ४९ ॥

कान्त्या चन्द्रमसं धाम्ना सूर्यं धैर्येण चार्णवम्।
राजन्ननु करोषीति सैषा हेतूपमा मता ॥ ५० ॥

---

[1] ... [2] ... [3] ... तपस्वया। ४. स्वता।

हेतूपमामाह—कान्त्या देहप्रभया चन्द्रमसमनुकरोषि, धाम्ना प्रतापेन सूर्यमनुकरोषि, धैर्येण अर्णवमनुकरोषि, इयं हेतूपमा, चन्द्रादिभिः समं नृपसादृश्यस्य हेतूनां कान्त्यादीनां निर्दिष्टत्वात् ॥ ५० ॥

हिन्दी—हे राजन् ! आप कान्तिसे चन्द्रमाका, तेजसे सूर्यका और धैर्यसे समुद्रका अनुकरण करते हैं, यह हेतूपमा है, क्योंकि इसमें चन्द्रादिके साथ राजाकी तुलनाके हेतु कान्त्यादि निर्दिष्ट है ॥ ५० ॥

न लिङ्गवचने भिन्ने न हीनाधिकतापि वा ।
उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥ ५१ ॥

इयता परिकरेण विविधभेदामुपमां निरुच्य सम्प्रति तद्गतान्दोषान्विवक्षुरादौ दोषाणां तेषां व्यवस्थितविषयत्वमुपपादयति—**न लिङ्गेति** । यत्र धीमताम् उद्वेगः प्रतीतिविघातजन्या व्याकुलता न भवति तत्र भिन्ने उपमानसम्बन्धिलिङ्गवचनापेक्षयाऽतिरिक्ते लिङ्गवचने हीनाधिकता उपमानस्य न्यूनता अधिकताऽपि वा उपमादूषणाय अलम् समर्था न भवन्ति । अयमाशयः—भिन्नं लिङ्गं, भिन्नं वचनम् , उपमानहीनता, उपमानाधिकता चेति सत्यमुपमादोषाश्चत्वारः परन्तु नैषां तत्र दोषत्वं यत्र सत्यपि लिङ्गवचनभेदे सत्यपि वा हीनाधिकत्वे धीमतामुद्वेगो न जायते । उद्वेगस्यैव दूषकतया तदभावे दोषाभ्युपगमनैरर्थक्यात् । प्रायो भिन्नलिङ्गवचनयोरुपमानोपमेययोः सतोरेकतरलिङ्गवचनानुगतेन समानधर्मेणोभयोः सम्बन्धो दुर्घटो भवति, एतादृशी उपमा सामान्यत उद्वेगं जनयति, किञ्च उपमानस्य हीनतायामुपमेयस्यानुत्कर्षः, अधिकतायां च तदपेक्षयोपमानस्य निकृष्टतरतया वैरस्यमिव जायते इत्यमी दोषा उद्वेगजनकतया हेयत्वेनोक्ताः, परन्तु यत्र धीमतामुद्वेगो न स्यात् , केनापि प्रकारेणोपमानोपमेययोर्लिङ्गवचनभेदे हीनाधिकत्वे च वा सत्यपि साधारणधर्मतया विवक्षितस्य धर्मक्रियादेर्युगुभयत्रान्वयः संभवति तदा नास्ति दोषत्वम् । अदोषतोदाहरणव्याख्यायामिदं स्पष्टीभविष्यति ॥ ५१ ॥

हिन्दी—प्राचीन आलङ्कारिक भामहने उपमाके सात दोष गिनाये हैं—

'हीनताऽसम्भवो लिङ्गवचोभेदो विपर्ययः ।
उपमानाधिकत्वं च तेनासदृशताऽपि वा ॥
त एते उपमादोषाः सप्त मेधाविनोदिताः ।' (काव्यालङ्कार २. ३९–४०)

वामनने भी भामहका ही अनुसरण किया है—

'हीनत्वाधिकत्वलिङ्गवचनभेदासादृश्यासंभवास्तद्दोषाः' ।

वामनने विपर्ययको छोड़ दिया है, शेष छः दोष स्वीकार किये हैं ।

आचार्य दण्डीने—भामहोक्त दोषसप्तकमें—विपर्यय, असादृश्य, असंभव इन तीन दोषोंको नहीं माना है, क्योंकि उनके उपमालक्षणमें—'सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते' कहा गया है, उद्भूत सादृश्यस्थलमें इनका संभव नहीं है । शेष चार दोषोंके विषयमें उनका वक्तव्य है कि यदि लिङ्गभेद, वचनभेद, हीनता और अधिकता रहने पर भी किसी कारणवश श्रोतृजन

स्त्रीव गच्छति षण्ढोऽयं वक्त्येषा स्त्री पुमानिव ।
प्राणा इव प्रियोऽयं मे विद्या धनमिवार्जिता ॥ ५२ ॥

लिङ्गवचनभेदस्यादोषतां निदर्शयति—**स्त्रीवेति** । अयं षण्ढः क्लीबः स्त्रीव गच्छति, एषा स्त्री पुमानिव वक्ति, एतस्मिन् वाक्यद्वये साधारणधर्मत्वेनोपात्ताया गमनवचनक्रियाया भिन्नलिङ्गयोरप्युपमानोपमेययोः सुखमन्वेतुमर्हतया प्रतीतिविघातजन्यत्रासरूपोद्वेगाभावात् लिङ्गभेदस्य नोपमादूषकत्वम् । एवम्—अयं जनो मे प्राणा इव प्रियः, मया विद्या धनम् इवार्जिता, अनयोरुदाहरणयोः प्राणशब्दो नित्यबहुवचनान्तः, धनशब्दो नित्य-नपुंसकः, अतोऽगतिकगत्या—यथा प्राणाः प्रियास्तथाऽयं मे प्रियः, यथा च धनमर्जितं तथा विद्याऽर्जितेति लिङ्गविपरिणामेनान्वयः सम्पाद्य एवेति नात्र सहृदयानामुद्वेग इति नोपमादोषः । इत्थमेव चन्द्र इव मुखम् , सुधावदधरः इत्यादिस्थलेऽपि प्रतीतिविघात-विरहान्नोपमादोष इति ॥ ५२ ॥

हिन्दी—यह नपुंसक स्त्रीकी तरह जाता है, यह स्त्री पुरुषके समान बोलती है । इन उदाहरण-वाक्योंमें लिङ्गवचनभेदरूप दोष नहीं है, क्योंकि यहां उपात्त साधारण धर्म गमन तथा वचनका उपमान और उपमेय दोनोंमें अन्वय सम्भव है, अतः यहाँ दोष नहीं है । इसी तरह—यह मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, इसने धनकी तरह विद्या अर्जित की है, इन वाक्योंमें प्राणशब्द नित्यबहुवचनान्त है और धन शब्द नित्य नपुंसक है, उसका अन्वय बिना लिङ्ग-वचन विपरि णामके संभव नहीं है, अतः अगत्या लिङ्गवचन-विपरिणाम करके ही अन्वय करना होगा वहाँ भी सहृदयोंको उद्वेग नहीं होता है, यह भी दोष नहीं है ॥ ५२ ॥

भवानिव महीपाल देवराजो विराजते ।
अलमंशुमतः कक्षामारोढुं तेजसा नृपः ॥ ५३ ॥

उपमानस्य हीनत्वाधिकत्वयोरदोषतामुदाहरति—**भवानिति** । हे महीपाल भवानिव देवराजो विराजते, अत्र नृपतेर्मनुष्यतया देवतास्वरूपादिन्द्राद् हीनत्वं, तथा नृपतेर्देवांशसंभवतया नोद्वेगकरत्वमस्या उपमायाः । एवम्—तेजसा नृपः अंशुमत सूर्यस्य कक्षाम् साम्यम् आरोढुम् प्राप्तुम् अलम् समर्थः, अत्र जात्याधिकोऽशुमानुपमान कृतः, परन्तु नृपस्य देवांशतया नोद्वेग इति न दोषः ॥ ५३ ॥

हिन्दी—हे राजन् , आपकीही तरह इन्द्र शोभा पाते हैं, इस उदाहरणमें उपमान नृप मनु होनेके कारण उपमेय इन्द्रसे हीन है, अतः हीनत्व दोष होना चाहिये, परन्तु राजा देवांश है है, उसकी हीनता उद्वेगजनक नहीं है, अतः यह दोष नहीं है, इसी तरह—यह राजा प्रता सूर्य की समता पानेमें समर्थ है, इस वाक्यमें उपमान सूर्य जात्या अधिक है, परन्तु पूर्वोक्त प्रका उद्वेग नहीं हो पाता है, अतः यह भी दोष नहीं माना जाता है ॥ ५३ ॥

इत्येवमादौ सौभाग्यं न जहात्येव जातुचित् ।
अस्त्येव क्वचिदुद्वेगः प्रयोगे वाग्विदां यथा ॥ ५४ ॥

उपसंहरति—**इत्येवमिति** । इति एवमादौ एतादृशे उदाहरणनिवहे—सत लिङ्गवचनभेदे हीनत्वेऽधिकत्वे च सौभाग्यं न जहाति वैचित्र्यं न नश्यति, अतो

दोषः। न चैवमेषां दोषाणां सर्वथा विरह एव प्रसज्यत इत्यत्राह—न सर्वथैषां दोषाणामभाव एव, किन्तूद्वेगसापेक्षतादोषाणामिति भावः। क्वचित् प्रयोगे वाग्विदां सहृदयानाम् उद्वेगः प्रतीतिमान्थर्यकृता विकलता अस्त्येव, अतस्तत्रावश्यं दोषसत्तेति, तदुदाहरणं यथो वक्ष्यते ॥ ५४ ॥

हिन्दी—ऊपर दिये गये उदाहरणोंमें उद्वेग नहीं है, यह वैचित्र्यरूप सौभाग्यसे हीन नहीं हो सके हैं, अतः यहाँ पर पूर्वोक्त उपमादोष नहीं होते हैं। नीचे ऐसे उदाहरण दिये जायेंगे जिनमें सहृदयोंको उद्वेग होता है जिससे उन्हें दुष्ट माना जाता है ॥ ५४ ॥

हंसीव धवलश्चन्द्रः सरांसीवामलं नभः।
भर्तृभक्तो भटः श्वेव खद्योतो भाति भानुवत् ॥ ५५ ॥

उपमादोषस्थलमुदाहरति—**हंसीवेति**। 'चन्द्रः हंसीव धवलः' अत्रोपमानोपमेययोः हंसीचन्द्रयोर्लिङ्गभेदः, 'सरांसीव नभः अमलम्' इत्यत्र वचनभेदः, 'भर्तृभक्तः स्वामिभक्तो भटः शूरः श्वा इव' अत्रोपमानस्य शुनो निकृष्टजातित्वात् जातिन्यूनता, 'खद्योतो भानुवत् भाति' इत्यत्र खद्योतसूर्ययोरन्तरस्यात्यन्तमहत्तयाऽधिकता ॥ ५५ ॥

हिन्दी—हंसीके समान चन्द्रमा शुभ्र है, इसमें उपमान हंसी और उपमेय चन्द्रमामें लिङ्गभेद है, सरोवरोंके समान आकाश स्वच्छ है, इस वाक्यमें उपमान सरोवर और उपमेय आकाशमें वचनभेद है, स्वामिभक्त शूर कुत्तेकी तरह है, इसमें उपमान कुत्तेकी जाति हीन है और जुगनू सूर्यकी तरह चमक रही है, इसमें उपमान जात्या अधिक है। इस प्रकार लिङ्गभेद, वचनभेद, जातिहीनता और जात्यधिकतारूप उपमाके चार दोषोंके उदाहरण दिये गये ॥ ५५ ॥

ईदृशं[1] वर्ज्यते सद्भिः कारणं तत्र[2] चिन्त्यताम्।
गुणदोषविचाराय[3] स्वयमेव मनीषिभिः ॥ ५६ ॥

ईदृशमिति। ईदृशं पूर्वोक्तोदाहरणसमानं सद्भिः काव्यशास्त्रनिष्णातैः वर्ज्यते त्यज्यते, तत्र कारणं प्रतीतिमान्थर्यजननद्वारा वैरस्योत्पादकत्वं चिन्त्यताम् स्वयमूह्यताम्, तथाकृते सति मनीषिभिर्गुणदोषविचारः सुसम्पादो भवतीत्याह—**गुणदोषविचारायेति**। स्पष्टमन्यत् ॥ ५६ ॥

इस तरहके दोषोंका सहृदय लोग त्याग करते हैं, उस त्यागमें प्रतीतिमान्थर्यकृत उद्वेगरूप कारणका ऊह स्वयं करें, बुद्धिमान् लोग गुण-दोषका विचार करनेके लिये दूषकताबीजका विचार करें ॥ ५६ ॥

इववद्वायथाशब्दाः समाननिभसन्निभाः।
तुल्यसङ्काशनीकाशप्रकाशप्रतिरूपकाः ॥ ५७ ॥
प्रतिपक्षप्रतिद्वन्द्विप्रत्यनीकविरोधिनः ।
सदृक्सदृशसंवादिसजातीयानुवादिनः ॥ ५८ ॥
प्रतिबिम्बप्रतिच्छन्दसरूपसमसंम्मिताः।
सलक्षणसदृक्षाभसपक्षोपमितोपमाः ॥ ५९ ॥
कल्पदेशीयदेश्यादिः[6] प्रख्यप्रतिनिधी अपि।
सवर्णतुलितौ शब्दौ ये [7]चान्यूनार्थवादिनः ॥ ६० ॥

१. ईदृशो। २. स्वत्र। ३. इदं श्लोकार्धं क्वचिन्नोपलभ्यते। ४. च्छन्द। ५. सप्रभाः। ६. देश्यादि। ७. च तुल्यार्थं।

समासश्च बहुव्रीहिः शशाङ्कवदनादिषु ।
स्पर्धते जयति द्वेष्टि द्रुह्यति प्रतिगर्जति ॥ ६१ ॥
आक्रोशत्यवजानाति कदर्थयति निन्दति ।
विडम्बयति सन्धत्ते[1] हसतीर्ष्यत्यसूयति ॥ ६२ ॥
तस्य मुष्णाति सौभाग्यं तस्य कान्तिं विलुम्पति ।
तेन सार्धं विगृह्णाति तुलां तेनाधिरोहति ॥ ६३ ॥
तत्पदव्यां पदं धत्ते तस्य कक्षां[2] विगाहते ।
तमन्वेत्यनुबध्नाति तच्छीलं तन्निषेधति ॥ ६४ ॥
तस्य चानुकरोतीति शब्दाः सादृश्यसूचकाः[3] ।
उपमायामिमे प्रोक्ताः[4] कवीनां बुद्धिसौख्यदाः ॥ ६५ ॥

(इत्युपमाचक्रम्[5])

इववद्वेति । पर्यवसित उपमाभेदप्रस्तावः, सम्प्रति तद्वाचकान्निर्देष्टुमयमुपक्रमः । अभिधालक्षणाव्यञ्जनाभिश्च तत्प्रतीतिः, तत्र वाचकलक्षकव्यञ्जकान्सहैव निर्दिष्टवान् दण्डी । श्रौत्यार्थ्यादिप्रविभागाभावेन तच्चिन्तामुक्ततयेत्थं कृतम् । अथाप्यादौ वाचका एव निर्दिष्टाः । इवशब्दः प्रसिद्धः, 'वत्' इति द्विविधस्यापि वतिप्रत्ययस्य संग्राहकः । अन्यत्स्पष्टम् ॥ ५७-६५ ॥

हिन्दी—इव, वत् , वा इत्यादि शब्द उपमाके प्रकाशक हैं, इनमें कुछ अभिधाद्वारा, कुछ लक्षणाद्वारा और कुछ व्यञ्जनाद्वारा उपमाको प्रकाशित करते हैं। यहाँ पर निर्दिष्ट सभी उपमावाचक शब्दोंका लक्ष्यमें प्रयोग उदाहरणोंद्वारा स्फुट प्रतिपत्त्यर्थ प्रदर्शित किया जा रहा है।

१ इवशब्द (निपात-अव्यय)—

'हंसीव कृष्ण ते कीर्त्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते' ।

२ वत्—यह तद्धितप्रत्यय है, यह दो प्रकारका होता है, एक—'तत्र तस्येव' इस सूत्रसे विहित, दूसरा—'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इस सूत्रसे विहित। क्रमशः एकही श्लोकमें दोनोंके उदाहरण दिये जाते हैं :—

'गाम्भीर्यगरिमा तस्य सत्यं गङ्गाभुजङ्गवत् । दुरालोकः स समरे निदाघाम्बररत्नवत्' ॥

३ वाशब्द—'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम' ।

४ यथाशब्द—

'धन्यस्यानन्यसामान्यसौजन्योत्कर्षशालिनः । करणीयं वचश्चेतः सत्यं तस्यामृतं यथा' ॥

५ समानशब्द—'भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज' ।

६ निभशब्द—'प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम्' ।

७ सन्निभशब्द—'भगवान् यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः' ।

८ तुल्यशब्द—'अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्त्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भतुल्यम्' ।

९ संकाशशब्द—'विमाने सूर्यसङ्काशे रघुराजो व्यराजत' ।

१० नीकाशशब्द—

'आकाशनीकाशतटां तीरवानीरसङ्कुलाम् । बभूव चरतां हर्षः पुण्यतीर्थां सरस्वतीम्' ॥

---

१. संबन्धे । २. कक्ष्यां । ३. सूचिनः । ४. इदं श्लोकार्धं क्वचिन्नोपलभ्यते ।

११ प्रकाशशब्द—'चन्द्रप्रकाशं वदनं तरुण्या भाति सुन्दरम्'।
१२ प्रतिरूपकशब्द—'वाग्भिः सुधायाः प्रतिरूपकाभिस्तनोति मोदं हृदि मेऽनिशं या'॥ ५७॥
१३ प्रतिपक्षशब्द—'पङ्केरुहश्रीप्रतिपक्षभूतनेत्रप्रभाभिः स्पृहणीयशोभम्'।
१४ प्रतिद्वन्द्विशब्द—'चन्द्रप्रतिद्वन्द्वि विभाति बालामुखं निशायां ललितोत्सवेषु'।
१५ प्रत्यनीकशब्द—'कामस्य प्रत्यनीकोऽयम्'।
१६ विरोधिन्शब्द—'त्वं रतेश्च विरोधिनी'।
१७ सदृक्शब्द—'न त्वया सदृगन्योऽस्ति त्रैलोक्येऽपि मनोरमः'।
१८ सदृशशब्द—'सुधाकरश्रीसदृशी च कीर्त्तिः'।
१९ संवादीशब्द—'विभाति बालावदने स्मितश्रीः संवादिनी शारदचन्द्रिकायाः'।
२० सजातीयशब्द—'कृष्णागुरुसजातीयम्'।
२१ अनुवादीशब्द—'पीयूषस्यानुवादिनम्'॥ ५८॥
२२ प्रतिबिम्बशब्द—'चन्द्रस्य प्रतिबिम्बं सत्सङ्गं सन्तापहं श्रये'।
२३ प्रतिच्छन्दशब्द—'जामदग्न्यप्रतिच्छन्दः'।
२४ सरूपशब्द—'सरूपो यः किरीटिनः'।
२५ संमितशब्द—'सम्मितो रघुनाथस्य शिवराजो विराजते'।
२६ समशब्द—'पाणिः पल्लवेन समस्तव'।
२७ सलक्षणशब्द—'इन्दुसलक्षणवदने'।
२८ सदृक्षशब्द—'सुधासदृक्षोऽधरस्य रसः'।
२९ आभाशब्द—'ज्योत्स्नाभाः स्मितमधुरा नर्मालापाः'।
३० सपक्षशब्द—'दलद्द्राक्षानिर्यद्रसभरसपक्षा भणितयः'।
३१ उपमितशब्द—'राक्षसोपमिता वाग्भिः खला दीनांस्तुदन्त्यलम्'।
३२ उपमाशब्द—'साधवस्तोषयन्त्यन्यांस्ताभिरेव सुरोपमाः'॥ ५९॥
३३ कल्पप्रत्यय—'पूर्णेन्दुकल्पवदना'।
३४ देश्यप्रत्यय—'मृणालीदेश्यदोर्लता'।
३५ देशीयप्रत्यय—'चक्रदेशीयजघना सा स्वप्नेऽपि न दृश्यते'।
३६ प्रख्यशब्द—'गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः'।
३७ प्रतिनिधिशब्द—
'भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्। अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधिः कृतः'॥
३८ सवर्णशब्द—'ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः'।
३९ तुलितशब्द—'मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्'॥
४० अन्यूनार्थवाचक सभी शब्द उपमाप्रत्यायक होते हैं, जैसे—अन्यून, अनून, अहीन इत्यादि। क्रमशः उदाहरण—
(क) अन्यूनशब्द—'सुधाऽन्यूनानि गङ्गाया जलानि'।
(ख) अनूनशब्द—'अमृतानूनरसाधरा प्रिया'।
(ग) अहीनशब्द—'अहीनं चन्द्रमण्डलात्—तन्मुखम्'॥ ६०॥
४१ बहुव्रीहिसमास—'कमलकरा करभोरूः कुवलयनयना'।
४२ कर्मधारयसमास—'शोणाधरांशुसंभिन्नास्तन्वि ते वदनाम्बुजे'।
४३ स्पर्धते—'स्पर्धते रुद्धमद्धैर्यो वररामामुखानिलैः'।
४४ जयति—'जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरु-शृङ्गस्य तदा तदासनम्'।
४५ द्वेष्टि—'त्वन्मुखं द्वेष्टि सुधाकरस्तत्पापेन लोके दधते कलङ्कम्'।

४६ द्रुह्यति—'द्रुह्यन्ति तल्लोचनमम्बुजानि ततो निमीलन्ति निशासु तानि'।
४७ प्रतिगर्जति—'न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्' ॥ ६१ ॥
४८ आक्रोशति—'अम्बुजमाक्रोशति ते मुखम्'।
४९ अवजानाति—'अवजानाति ते वक्त्रं पद्मं नेयं कथा मृषा'।
५० कदर्थयति—'कदर्थयति कान्ताया मुखं मे फुल्लपङ्कजम्'।
५१ निन्दति—'निन्दत्यधरश्च बन्धूकम्'।
५२ विडम्बयति—स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः' ॥

५३ सन्धत्ते—
'चन्दनः शीततां धत्ते, सौरभ्यं कमलं, शशी। लावण्यं, त्वन्मुखं बाले सन्धत्ते तत्त्रयं कथम्' ॥
५४ हसति—'अकलङ्कतया वक्त्रं हसन्तीन्दुं कलङ्किनम्'।
५५ ईर्ष्यति—'ईर्ष्यति कपिचेष्टायै चपलमतिर्यो यदीयदुश्चरितम्'।
५६ असूयति—'नित्यमसूयति वानरवदनाय नमः खलाय शतशस्ते' ॥ ६२ ॥

५७ तस्य मुष्णाति सौभाग्यम्—
५८ तस्य कान्तिं विलुम्पति—
५९ तेन सार्धं विगृह्णाति—
६० तुलां तेनाधिरोहति-
६१ तत्पदव्यां पदं धत्ते—
६२ तस्य कक्षां विगाहते—

इन छः वाक्योंमें कविने उदाहरणकी रचना स्वतः कर दी है, इनके उदाहरण अलगसे देनेकी आवश्यकता नहीं है ॥६३॥

६३ तमन्वेति—'पद्ममन्वेति ते मुखम्'।
६४ तमनुबध्नाति—'शशाङ्कमनुबध्नाति मुखमित्यमृषा कथा'।
६५ तच्छीलम्—'शीलं धत्ते पयोजस्य राधाचरणयोर्युगम्'।
६६ तन्निषेधति—'निषेधति मुखं बाले तव फुल्लं कुशेशयम्' ॥ ६४ ॥
६७ तस्यानुकरोति—'सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य'।

ऊपर गिनाये गये शब्द सादृश्यसूचक हैं, इनमें अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जनावृत्तिद्वारा सादृश्यको प्रकाशित करनेकी क्षमता है, इनमें इव, वत्, यथा आदि शब्द अभिधाद्वारा सादृश्यका ज्ञान कराते हैं, तुल्यादिशब्द सादृश्यमें शक्त न होकर सादृश्यविशिष्टमें शक्त हैं अतः उनके द्वारा अर्थसादृश्यकी प्रतीति होती है। निषेधति, असूयति आदि शब्द सादृश्यके लक्षक हैं और अनुकरोति आदि सादृश्यके व्यञ्जक हैं। इन उपमासूचक शब्दोंका सञ्चयन कवियोंकी बुद्धिको सुख (क्लेशराहित्य) प्रदान करनेके लिये किया गया है।

यहाँ इतना और बता देना आवश्यक है कि यह उपमावाचकोंका परिगणन नहीं है, यह तो निदर्शनमात्र है, इसके अतिरिक्त रूपमें भी उपमा प्रकाशित की जा सकती है, जैसे—अनुहरतिशब्दसे—'अनुहरति मनोजबाणलक्ष्मीं सुभगतनो तव चञ्चलः कटाक्षः'। सहाधीतिशब्दसे—'अवधूत्य दिवोऽपि यौवतैर्न सहाधीतवतीमिमामहम्' सतीर्थ्यशब्दसे—'कमलसतीर्थ्यं वदनं कुमुदसहाध्यायिनो हासाः ॥ ६५ ॥

उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।
यथा बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवः ॥ ६६ ॥

उपमानन्तरं रूपकं लक्षयति—**उपमैवेति**। तिरोहितः निगूहितः विद्यमानोऽपि सादृश्यातिशयप्रकाशनाय कविना निह्नुतो भेदः प्रस्तुताप्रस्तुतयोर्वैधर्म्यं यस्यां तादृशी उपमा सादृश्यमेव रूपकं नामाऽलङ्कारः। रूपयति उपमानोपमेययोरेकरूपतामापादयति तद्रूपकमिति तदक्षरार्थः। *यथा मुखं चन्द्र इति*। अत्र मुखचन्द्रपदाभ्यां मुखत्वचन्द्रत्वरूपपरस्परविरुद्धधर्मत्वेनोपस्थितयोरपि मुखचन्द्रयोर्भेदनिगूहनेनाभेदप्रतिपत्तिः। इयं चाभेदप्रतीतिराहार्यरूपा। परिष्कृतं लक्षणं जगन्नाथस्य यथा—उपमेयतावच्छेदकपुरस्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानमुपमानतादात्म्यं रूपकम् इति। उपमेयतावच्छेदकपुरस्कारेणेति विशेषणादपह्नुतिभ्रान्तिमदतिशयोक्तिनिरासस्तथाहि अपह्नुतौ स्वेच्छया निषिध्यमानत्वात्, भ्रान्तिमति भ्रान्तिजनकदोषेणैव प्रतिबध्यमानत्वात्, अतिशयोक्तिनिदर्शनयोश्च साध्यवसानलक्षणामूलत्वादुपमेयतावच्छेदस्य पुरस्कारो नास्ति। शब्दादिति विशेषणात् मुखमयं चन्द्र इति प्रात्यक्षिकाहार्यनिश्चयगोचरचन्द्रतादात्म्यव्यवच्छेदः। निश्चीयमानमिति विशेषणात्संभावनात्मनो नूनं मुखं चन्द्र इत्युत्प्रेक्षाया व्यावृत्तिः, उपमानोपमेयविशेषणाभ्यां सादृश्यलाभात् 'मुखं मनोरमा रामा' इत्यादि शुद्धारोपतादात्म्यनिरासः। उदाहरणमाह—**बाहुलतेति**। बाहुरेव लता, पाणिरेव पद्मम्, चरण एव पल्लव इत्युपमानप्रधानो मयूरव्यंसकादित्वात्समासः ॥ ६६ ॥

हिन्दी—यदि अतिशय सादृश्य बतानेके लिये उपमान और उपमेयका भेद छिपाकर दोनोंमें अभेद-सा बताकर कहा जाय तो उस सादृश्यको रूपक कहा जाता है। रूपकशब्दकी व्युत्पत्ति है—रूपयति तद्रूपतां नयति—उपमानोपमेये सादृश्यातिशयद्योतनद्वारा एकतां नयतीति रूपवान्। अभिप्राय यह है कि उपमान और उपमेयके भिन्नस्वरूपमें प्रकाशित होने पर भी दोनोंमें अत्यन्त साम्यके प्रदर्शनके लिये काल्पनिक अभेदका किया जाना ही रूपक है। जैसे 'मुखं चन्द्रः' इस वाक्यमें मुख और चन्द्रमाके अपने-अपने स्वरूपमें प्रकाशित होने पर भी दोनोंमें अभेदका आरोप किया गया है। यह अभेदारोप भी जब चमत्कारयुक्त होगा तब ही इसे अलङ्कार माना जायगा, अत एव 'लोष्टः पाषाणः' इस अभेदारोपमें रूपक नहीं होगा। उदाहरण—बाहुलता, चरणपङ्कज, पाणिपल्लव। इन उदाहरणों में 'बाहुरेव लता, चरण एव पङ्कजम्, पाणिरेव पल्लवः' इस प्रकार उपमानप्रधान मयूरव्यंसकादि समास हुआ है। 'मुखपद्मम्' इत्यादि समासस्थलमें यदि विशेषण प्राधान्येन उपमानगत होगा तब रूपक माना जायगा, जैसे 'विकसितं मुखपद्मम्' यहाँ विकास पद्मधर्म है, पद्म उपमान है अतः इसे रूपक कहा जायगा। वही विशेषण यदि उपमेयगत होगा तब उसको उपमा माना जायगा, जैसे 'सहासं मुखपद्मम्', यहाँ हास उपमेयभूत मुखका धर्म है अतः उपमा है। इस प्रकार उपमारूपकका साङ्कर्य अविशेषणकस्थलमें बना ही रहता है ॥ ६६ ॥

अङ्गुल्यः पल्लवान्यासन् कुसुमानि नखत्विषः[1]।
बाहू लते वसन्तश्रीस्त्वं नः प्रत्यक्षचारिणी ॥ ६७ ॥

पूर्वकारिकायां समस्तरूपकस्थलान्युदाहृतानि सम्प्रति व्यस्तस्थलीयरूपकाण्युदाहरति—**अङ्गुल्य इति**। अङ्गुल्यः अङ्गुल्यभिधया प्रथिताः करशाखाः पल्लवानि किसलयानि, नखत्विषः नखमयूखाः कुसुमानि प्रसूनानि, बाहू करौ लते इव, तदित्थं त्वं नः प्रत्यक्षचारिणी दर्शनविषयीभूता वसन्तश्रीः वासन्ती शोभा। उपमास्थले इव रूपकेऽपि

१. नखार्चिषः।

सहृदयहृदयोद्वेगाभावे उपमानोपमेययोर्भिन्नलिङ्गतादोषाय न भवतीति सूचनाय पूर्वोक्त-वाक्यत्रये भिन्नलिङ्गयोरुपमानोपमेययोर्निर्देशः। एवमेव क्वचिद्रूपके वचनभेदोऽपि न दोषाय, यथा प्रयुज्यते—शास्त्राणि चक्षुर्नवमिति ॥ ६७ ॥

हिन्दी—पूर्वकारिकामें—'बाहुलता', 'चरणपङ्कज', 'पाणिपल्लव' यह समासस्थलगत रूपकके उदाहरण बताये गये हैं, इस कारिकामें असमस्तस्थलीय रूपकके उदाहरण बताते हैं—अङ्गुल्य इत्यादि। तुम्हारी अङ्गुलियाँ पल्लव हैं, तुम्हारे नखोंकी कान्तियाँ फूल हैं, तुम्हारे बाहु लता हैं, इस प्रकार तुम हम लोगोंके सामने प्रत्यक्षचारिणी वसन्तशोभा हो।

उपमाके निरूपणप्रसङ्गमें यह बात कही गई है कि यदि सहृदयोंको खटके नहीं तब उपमान और उपमेयका लिङ्गभेद दोष नहीं माना जाता है, वही बात रूपकमें भी मान्य है, अतः 'अङ्गुल्यः पल्लवानि', 'कुसुमानि नखत्विषः', 'बाहू लते' इन उदाहरणोंमें लिङ्गभेद अविचारणीय है। इसी तरह वचनभेद भी क्षम्य है, जैसे—'शास्त्राणि चक्षुर्नवम्' इसमें सकलशास्त्र-प्रवीणता बतानेके लिये-उसके द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेके लिये 'शास्त्राणि' यह विशेषण बहुवचनान्त प्रयुक्त किया गया है, यह दोषाधायक नहीं है ॥ ६७ ॥

इत्येतदसमस्ताख्यं समस्तं पूर्वरूपकम्।
स्मितं मुखेन्दोर्ज्योत्स्नेति समस्तव्यस्तरूपकम् ॥ ६८ ॥

इति एतत् अव्यवहितपूर्वोक्तम्—'अङ्गुल्यः पल्लवानी'ति रूपकत्रयम् असमस्ताख्यम् असमस्तरूपकसंज्ञकम्, पूर्वरूपकम् पूर्वकारिकायामुक्तं रूपकम् बाहुलता पाणिपल्लवादि-रूपम् समस्तम् समस्तरूपकसंज्ञकम्, उपमानोपमेययोस्समासासमासकृतोऽयं भेदः। सम्प्रति तृतीयं प्रकारं समस्तव्यस्तरूपकमुदाहरति—**स्मितमिति**। मुखेन्दोः मुखमे-वेन्दुश्चन्द्रस्तस्य स्मितं किञ्चिद्धसितम् ज्योत्स्ना इति अत्र मुखेन्दोरिति समस्तम्, स्मितं ज्योत्स्नेति व्यस्तं तदिदं संहृत्य समस्तव्यस्तरूपकं नाम ॥ ६८ ॥

हिन्दी—यह पूर्वकथित-'अङ्गुल्यः पल्लवानि' इत्यादि रूपकत्रय असमस्तरूपक हैं, और पहले वाली कारिकामें उक्त—'बाहुलता' 'चरणपङ्कज' आदि रूपक समस्तरूपक हैं, 'स्मितं मुखेन्दोर्ज्योत्स्ना' यह समस्तव्यस्तरूपक है, क्योंकि इसमें 'मुखेन्दोः' पदमें समास है और 'स्मितं ज्योत्स्ना' में समास नहीं है ॥ ६८ ॥

ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि नखदीधितिकेसरम्।
ध्रियते मूर्ध्नि भूपालैर्भवच्चरणपङ्कजम् ॥ ६९ ॥

सम्प्रति सकलरूपकमुदाहरति—**ताम्रेति**। ताम्राङ्गुल्यो रक्ता अङ्गुलयः दलश्रेणिः पत्रावलिः यत्र तादृशम्, नखानां दीधितयः किरणा एव केसराणि किञ्जल्कानि यस्मि-स्तादृशञ्च भवच्चरणपङ्कजम् त्वत्पदकमलम् भूपालैस्त्वद्वशवर्तिराजभिर्मूर्ध्नि ध्रियते शिरसा उह्यते ॥ ६९ ॥

हिन्दी—लाल-लाल अङ्गुलियाँ पत्रावली हैं, नखकी श्वेत रक्तकान्ति केशर है, इस तरहके आपके चरणको वशवर्ती राजागण अपने शिरपर रखते हैं, आज्ञा मानते हैं ॥ ६९ ॥

अङ्गुल्यादौ दलादित्वं पादे चारोप्य पद्मताम्।
तद्योग्यस्थानविन्यासादेतत् सकलरूपकम् ॥ ७० ॥

लक्षणं सङ्गमयति—**अङ्गुल्यादाविति**। अङ्गुलिषु दलत्वम्, नखकिरणेषु केसरत्वम्,

रूपकम् , सर्वावयवरूपणं हि सकलरूपकत्वार्थमपेक्षितम् , तच्चात्र दलकेसररूपसर्वावयवरूपणादुपपन्नम् । इदमेव साङ्गं, सावयवं रूपकमिति नवीना आहुः, तथा चोक्तं पण्डितराजेन—

परस्परसापेक्षनिष्पत्तिकानां रूपकाणां सङ्घातः सावयवम् । यथा :—

'सुविमलमौक्तिकतारे धवलांशुकचन्द्रिकाचमत्कारे ।
वदनपरिपूर्णचन्द्रे सुन्दरि राकासि नात्र सन्देहः' ॥

इदं सकलरूपकमपि द्विविधं— समस्तासमस्तभेदात् , तत्रेदं— 'ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि' इत्यादि पद्यं समस्तसकलरूपकोदाहरणम्, 'अङ्गुल्यः पल्लवान्यासन्' इति च पूर्वोक्तमसमस्तसकलरूपकोदाहरणमिति बोध्यम् ॥ ७० ॥

हिन्दी—इस श्लोकमें अङ्गुलियोंमें पत्रावलीका रूपण किया गया है, नखकान्तिमें केशरका रूपण किया गया है, और चरणमें पद्मका रूपण किया है जिससे पादपद्मको राजाके मस्तकरूप योग्य स्थानपर प्रतिष्ठित किया जा सके, वह सकलरूपक है क्योंकि इसमें कमलके सभी अवयव रूपित किये गये हैं। इसी सकलरूपकको नवीन आचार्यगण साङ्ग या सावयव रूपक कहते हैं। यह सकलरूपक दो प्रकारका होता है—समस्त सकलरूपक और असमस्त सकलरूपक। उसमें 'ताम्राङ्गुलिदलश्रेणि' यह समस्त सकलरूपक है, और 'अङ्गुल्य. पल्लवानि' यह असमस्त सकलरूपक है ॥ ७० ॥

अकस्मादेव ते चण्डि स्फुरिताधरपल्लवम् ।
मुखं मुक्तारुचो धत्ते घर्माम्भःकणमञ्जरीः ॥ ७१ ॥

अवयवरूपकमुदाहरति—**अकस्मादेवेति** । हे चण्डि कोपने, अकस्मात् सहसा एव स्फुरिताधरपल्लवम् चलदोष्ठकिसलयं ते तव मुखम् मुक्तारुचः मौक्तिकाकाराः घर्माम्भःकणमञ्जरीः स्वेदोदकबिन्दुरूपाः मञ्जरीः धत्ते धारयति, कोपयुक्तायास्तव मुखं स्विद्यति, स्वेदकणाश्च मुक्तावदवभासन्ते इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

हिन्दी—हे मानशीले, सहसा तुम्हारे (मुखपर) पसीनेकी बूँदें मञ्जरीकी तरह दीखने लगीं, तुम्हारे अधरपल्लव हिलने लगे, तुम्हारे कोपका उदय हो आया ॥ ७१ ॥

मञ्जरीकृत्य घर्माम्भः पल्लवीकृत्य चाधरम् ।
नान्यथा कृतमत्रास्यमतोऽवयवरूपकम् ॥ ७२ ॥

मञ्जरीति । अत्र प्रस्तुतोदाहरणे घर्माम्भः मञ्जरीकृत्य कर्णमञ्जरीत्वेन रूपयित्वा अधरञ्च पल्लवीकृत्य पल्लवतया रूपयित्वाऽपि आस्यम् मुखं न अन्यथा कृतम् पद्मत्वेन रूपितमिति अतः अवयवरूपकमेतत् । अवयविनो मुखस्य पद्मत्वेनारूपणेऽपि अवयवानां घर्माम्भःकणाधरादीनां मञ्जरीत्वपल्लवत्वादिना रूपणादवयवरूपकमिदम् । अर्वाचस्त्वाचार्या इदमेकदेशविवर्तिरूपकनाम्ना व्यवहरन्ति । तत्रायं विशेषः—दण्डिनोऽवयवरूपकेऽवयवानां रूपणे कृतेऽपि निश्चयेनावयविनो रूपणस्याभावः, नवीनाभिमतैकदेशविवर्त्तिरूपके तु अवयवानामन्यतमस्यापि रूपणस्य विरहः, अवयविन एव रूपणस्य विरह इत्युभयोरन्यतरः प्रकार आस्थितो भवति ॥ ७२ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें स्वेदबिन्दुको मञ्जरीसे रूपण दिया गया है, और अधरको पल्लवका रूपक किया गया है, परन्तु मुखको किसी दूसरे रूपमें (पद्मरूपमें) रूपित नहीं किया गया है,

अतः यह अवयवरूपक है। अवयवरूपकस्थलमें अवयवमात्रका रूपण किया जाता है, अवयवीको योंही छोड़ दिया जाता है, एकदेशविवर्ती रूपकमें अवयव या अवयवी किसी एकका रूपक छूटा रहता है, यही अन्तर है। नवीन आचार्यगण अवयवरूपककी जगह एकदेशविवर्ति रूपक ही मानते हैं ॥ ७२ ॥

वल्गितभ्रु गलद्घर्मजलमालोहितेक्षणम्।
विवृणोति मदावस्थामिदं वदनपङ्कजम् ॥ ७३ ॥

अवयवरूपकं निरूप्य सम्प्रत्यवयविरूपकमाह —**वल्गितभ्रु इति**। वल्गितभ्रु चलित-भ्रुकुटि, गलद्घर्मजलम् प्रस्रवत्स्वेदवारि, आलोहितेक्षणम् रक्तनयनम् इदं दृश्यमानम् वदनपङ्कजम् तव मुखरूपं कमलम् मदावस्थाम् मद्यपानजनिताम् विकृतिम् विवृणोति प्रकाशयति, भ्रूचापलस्वेदप्रवृत्तिरक्तनेत्रतादिका धर्मास्तस्या मदोपयोगं व्यञ्जयन्तीत्यर्थः ॥७३॥

हिन्दी—जिसमें भ्रुकुटियाँ चञ्चल हो रही हैं, पसीने की बूँदें टपक रही हैं, आँखें लाल हो रही हैं, ऐसा यह तुम्हारा वदनपङ्कज तुम्हारी मदावस्था—मद्योपयोगजनित विकृतिको प्रकटित करता है ॥ ७३ ॥

अविकृत्य मुखाङ्गानि मुखमेवारविन्दताम्।
आसीद्गमितमत्रेदमतोऽवयवि रूपकम् ॥ ७४ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**अविकृत्येति**। अत्र उक्तोदाहरणे मुखाङ्गानि भ्रुकुटिघर्म-जलनयनादीनि अवयवानि अविकृत्य तदवस्थान्येव स्थापयित्वा (उपमानाङ्गभ्रमरादिभि-रूपयित्वा) मुखम् अवयविभूतम् वदनम् एव अरविन्दताम् गमितम् कमलत्वेन रूपित-मासीदत इदमवयविरूपकम्। नवीनानां मते इदमप्येकदेशविवर्त्ति रूपकम् ॥ ७४ ॥

इस उदाहरण में मुखाङ्ग—भ्रुकुटि, स्वेदजल, रक्तनयन आदिका भ्रमर, पद्म, मधु आदिके साथ रूपण नहीं किया गया, केवल मुखको कमलके रूपमें रूपित कर दिया गया है अतः यहाँ पर अवयवी मुखका रूपण होनेसे अवयविरूपक होता है। नवीनोंके मतमें यहाँ भी एकदेशविवर्त्ति रूपक माना जायगा, निरङ्गरूपक तो इसमें नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस उदाहरणमें अवयवी मुखके अवयव भ्रू, स्वेद, नयन तो निर्दिष्ट हो हैं, कमलरूप आरोप्यमाणके अवयव भ्रमरादि का निर्देश नहीं किया गया है। निरङ्गरूपक होता तब तो मुखके अवयव भी नहीं निर्दिष्ट होते ॥ ७४ ॥

मदपाटलगण्डेन रक्तनेत्रोत्पलेन ते।
मुखेन मुग्धः सोऽप्येष जनो रागमयः कृतः ॥ ७५ ॥

अवयवरूपकस्य भेदानभिधातुमुपक्रममाण एकाङ्गरूपकमाह—**मदेति**। मदेन मद्योपयोगेन पाटलौ श्वेतरक्तौ गण्डौ कपोलदेशौ यत्र तादृशेन, एवं रक्तम् अरुणवर्णम् नेत्रमेवोत्पलं यत्र तेन ते तव मुखेन एषः मल्लक्षणो मुग्धः त्वत्सौन्दर्यमोहितो जनः रागमयः अनुरक्तः (लोहितश्च) कृतः। त्वदीयं मदविभ्रमं वीक्ष्य मम रागो नितरां प्रवृद्ध इत्यर्थः ॥ ७५ ॥

हिन्दी—मदपान करनेके कारण लाल कपोल, और कमलरूप रक्तनेत्रोंसे युक्त तुम्हारे मुखपर मोहित होकर यह आदमी (मैं) रागमय (लाल-अनुरक्त) हो गया, तुम्हारे मस्ती भरे चेहरेको देखकर मैं मोहित हो गया ॥ ७५ ॥

एकाङ्गरूपकं चैतदेवं द्विप्रभृतीन्यपि।
अङ्गानि रूपयन्त्यत्र योगायोगौ भिदाकरौ ॥ ७६ ॥

एकाङ्गेति। एतत् च पूर्वोक्तमुदाहरणम् एकाङ्गरूपकं नाम, यतोऽत्र 'रक्तनेत्रोत्पले-नेति' एकाङ्ग एव रूपणं कृतं नान्यत्र मदपाटलगण्डेनेत्यादौ। एवम् अनयैव दिशा द्विप्रभृतीनि अपि द्वित्रिचतुःपञ्चसङ्ख्यकानि अपि अङ्गानि (कवयः) रूपयन्ति, ततश्च द्व्यङ्गरूपकत्र्यङ्गरूपकचतुरङ्गरूपकादीनि बहूनि रूपकाणि भवन्ति। अस्मिन्नेकाङ्गरूपकेऽपि योगायोगौ युक्तायुक्तत्वे भिदाकरौ भेदकरौ भवतः। इदमेकाङ्गरूपकमपि युक्तरूपकायुक्त-रूपकभेदेन द्विधा भिद्यत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

हिन्दी—यह एकाङ्ग रूपकका उदाहरण हुआ, क्योंकि यहाँपर 'नेत्रोत्पल' मात्रमें रूपण किया गया है। इसी तरह द्व्यङ्ग, त्र्यङ्ग, चतुरङ्ग रूपक भी होते हैं। इनका भी युक्तरूपक और अयुक्त-रूपक नामसे भेद किया जाता है। इस तरहके भेदके कारण योग और अयोग होते हैं, यहाँ योगका अर्थ है आरोपणयोग, और अयोगका अर्थ है आरोपणायोग ॥ ७६ ॥

स्मितपुष्पोज्ज्वलं [1]लोलनेत्रभृङ्गमिदं मुखम्।
इति पुष्पद्विरेफाणां सङ्गत्या युक्तरूपकम् ॥ ७७ ॥

युक्तरूपकमयुक्तरूपकं चेति भेदद्वयं प्रति पूर्वकारिकायामिङ्गितं कृतं, सम्प्रति तयोर्युक्त-रूपकाख्यं प्रथमं भेदमुदाहरति—**स्मितेति।** स्मितम् ईषद्धसितमेव पुष्पं, तेन उज्ज्वलम् कान्तिमत्, लोले चञ्चले नेत्रे एव भृङ्गौ यत्र तादृशञ्च इदम् मुखम् अस्तीति शेषः। इति अत्र पुष्पाणां द्विरेफाणाञ्च क्रमशः स्मितेषु चलनेत्रेषु चारोप्यमाणाना सङ्गत्या परस्परसम्बन्धस्यौचित्येन इदं युक्तरूपकं नामालङ्कारः ॥ ७७ ॥

हिन्दी—फूलरूपी मुस्कुराहटसे कान्तिशाली और चञ्चलनेत्ररूप भ्रमरवाला यह मुख है, इस उदाहरणमें स्मितमें पुष्पत्व तथा नेत्रमें भ्रमरत्वका आरोप किया गया है, इसमें आरोप्यमाण पुष्प और भ्रमरका योग संगत है अतः इसे युक्तरूपक कहा जाता है ॥ ७७ ॥

इदमार्द्रस्मितज्योत्स्नं स्निग्धनेत्रोत्पलं मुखम्।
इति ज्योत्स्नोत्पलायोगादयुक्तं नाम रूपकम् ॥ ७८ ॥

क्रमप्राप्तमयुक्तरूपकमुदाहरति—**इदमिति।** आर्द्रं प्रमार्द्रं स्मितमेव ज्योत्स्ना चन्द्रिका यत्र तादृशम्, स्निग्धे स्नेहपूर्णे नेत्रे एव उत्पले कमले यत्र तादृशञ्च मुखम्। अस्तीति शेषः। अत्र ज्योत्स्नोत्पलयोरयोगाद्—आरोप्यमाणयोश्चन्द्रिकाकमलयोः परस्पर-विरोधितयाऽसम्बन्धात् अयुक्तरूपकं नामालङ्कार इति भावः ॥ ७८ ॥

हिन्दी—'प्रेमपूर्ण हँसीरूप चन्द्रिकासे युक्त एवं स्नेहयुक्त नेत्ररूप कमलसे अलङ्कृत यह तेरा मुख है' इस उदाहरणमें चन्द्रिका और कमलरूप आरोप्यमाण पदार्थोके परस्परविरोधी होनेके कारण योग नहीं होनेसे अयुक्तरूपक अलङ्कार है ॥ ७८ ॥

रूपणादङ्गिनोऽङ्गानां रूपणारूपणाश्रयात्।
रूपकं विषमं नाम ललितं जायते यथा ॥ ७९ ॥

---

[1] लोलभ्रमरनेत्रम्।

विषमरूपकं लक्षणमुखेन निरूपयति—**रूपणादिति**। अङ्गिनः प्रधानस्य वर्णनीयस्य रूपणात्, तथा अङ्गानां तदवयवादीनामप्रधानानाम् रूपणस्य अरूपणस्य चाश्रयात्, अङ्गानां मध्ये केषांचिद्रूपणात् केषाञ्चिदारूपणात् ललितं विचित्रतया सहृदयहृदयावर्जकमिदं विषमं नाम विषमरूपकाख्यं जायते इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

हिन्दी—जिस रूपकमें वर्णनीयतया उपात्त अङ्गी-प्रधान-का रूपण किया गया हो परन्तु अङ्ग-अप्रधान-अवयवोंमें से कुछका रूपण हो और कुछका रूपण न हो, तब रूपण और अरूपण दोनों प्रकारोंके आश्रयणके कारण ललित--अर्थात् सहृदयहृदयाकर्षक इस रूपकको विषमरूपक कहा जाता है ॥ ७९ ॥

मदरक्तकपोलेन मन्मथस्त्वन्मुखेन्दुना।
नर्त्तितभ्रूलतेनालं मर्दितुं भुवनत्रयम् ॥ ८० ॥

विषमरूपकमुदाहरति—**मदरक्तेति**। मदरक्तकपोलेन मद्यपानसञ्जातारुण्यशालिकपोलेन, नर्त्तितभ्रूलतेन चलितभ्रूलतेन त्वन्मुखेन्दुना त्वदीयमुखचन्द्रेण मन्मथः कन्दर्पः भुवनत्रयं मर्दितुं पराभवितुम् अलम् समर्थः। मदपानजनितारुण्यशालिकपोलभृता चलितभ्रुकुटिरूपलतेन तव मुखचन्द्रेण कन्दर्पो भुवनत्रयमपि जेतुमीश इत्यर्थः। अत्र अङ्गिनि मुखे चन्द्रत्वारोपः कृतः अङ्गेषु भ्रुवोर्लतात्वारोपोऽपि कृतः, परन्तु मदरक्तकपोलयोर्न कस्याप्यारोपः कृत इति अङ्गानां रूपणारूपणाश्रयात् इति लक्षणं समन्वेयम्। तदिदं विषमरूपकं नामालङ्कारः ॥ ८० ॥

हिन्दी—मदरक्त कपोलोंवाले, चञ्चल भ्रूलताशाली तुम्हारे मुखचन्द्रसे कन्दर्प तीनों लोकोंको मसल देने--जीत लेनेमें समर्थ हो सकता है। इस उदाहरणमें अङ्गी-प्रधान-मुखमें चन्द्रत्वका आरोप किया गया, अङ्गोंमें भी भ्रूमें लताका आरोप हुआ, परन्तु मदरक्त कपोलमें किसी वस्तुका आरोप नहीं किया गया है, अतः इसे विषमरूपक कहा जा सकता है ॥ ८० ॥

हरिपादः शिरोलग्नजह्नुकन्याजलांशुकः।
जयत्यसुरनिःशङ्कसुरानन्दोत्सवध्वजः ॥ ८१ ॥

सविशेषणरूपकं नाम रूपकभेदं निरूपयन्प्रथममुदाहरणमाह—**हरिपाद इति**। शिरसि अग्रभागे (पादस्य ध्वजस्य च) लग्ना संसक्ता या जह्नुकन्या गङ्गा तस्या जलम् एव अंशुकम् श्वेतपताका यत्र तादृशः, असुरेभ्यः निःशङ्काः गतभयाः ये सुराः तेषाम् आनन्दोत्सवस्य ध्वजः केतुरिव हरिपादः वामनस्य भगवतश्चरणो जयति। अत्र बलिनिग्रहेण देवा असुरेभ्यो निःशङ्का अजायन्त, ते च उत्सवं द्योतयितुं ध्वजमुत्क्षिक्षिपुः, स इव प्रतीयते स्म भगवतः पादो यत्र गङ्गा ध्वजपट इव भासते, गङ्गाया विष्णोः पादात्प्रसूतेर्धावल्याच्च ध्वजपटत्वारोप इति ध्येयम् ॥ ८१ ॥

हिन्दी—बलिके निगृहीत हो जानेपर असुरोंसे निःशङ्क देवोंके आनन्दोत्सव-ध्वजके समान प्रतीत होने वाले भगवान् वामनके चरणकी जय हो जिसके अग्रभागमें संसक्त गङ्गाका जल-ध्वजाग्रवर्त्ती वस्त्रकी तरह दीखता था ॥ ८१ ॥

विशेषणसमग्रस्य रूपं केतोर्यदीदृशम्।
[illegible] ॥ ८२ ॥

उदाहरणं सङ्गमय्य विशदयति—**विशेषणेति ।** विशेषणेन शिरोलग्नेति विशेषणेन समग्रस्य युक्तस्य केतोः यदीदृशं रूपम् सपताकध्वजरूपम् पादे भगवतश्चरणे तस्य सपताकध्वजस्य समर्पणात् विशेषणविशिष्टस्य पदार्थस्यारोपात् सविशेषणरूपकमेतत् ॥८२॥

हिन्दी—जिस विशेषणसे युक्त ध्वजका रूप बतलाया गया है वह पूर्ववर्त्ती विशेषण है, उसीका चरण पर आरोप हुआ है अतः यह सविशेषण रूपक है। तात्पर्य यह है कि पैरमें ध्वज-दण्डका आरोप है, उसमें वस्त्र भी होना चाहिये वह है गङ्गा, इस प्रकारसे विशेषणसमग्रध्वज-त्वका रूपण चरणमें किया गया है अतः यह सविशेषण रूपक है ॥ ८२ ॥

न[1] मीलयति पद्मानि न नभोऽप्यवगाहते ।
त्वन्मुखेन्दुर्ममासूनां हरणायैव कल्पते[2] ॥ ८३ ॥

विरुद्धरूपकमाह—त्वन्मुखेन्दुः तव वदनचन्द्रमाः पद्मानि कमलानि न मीलयति न सङ्कोचयति, नभः व्योम अपि न अवगाहते नाश्रयति, केवलं ममासूनां मदीयप्राणानां हरणाय कल्पते प्रवर्त्तते । वियोगावस्थायामधिककष्टप्रदानेन प्राणहरत्वोक्तिः ॥ ८३ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा ने कमलोंको सङ्कुचित करता है और न आकाशमें जाता है, केवल हमारे प्राणोंको हरनेमें उद्यत रहता है ॥ ८३ ॥

अक्रिया चन्द्रकार्याणामन्यकार्यस्य च क्रिया ।
अत्र सन्दर्श्यते[3] यस्माद्विरुद्धं नाम रूपकम् ॥ ८४ ॥

उदाहरणं विवृणोति—**अक्रियेति ।** चन्द्रकार्याणाम् चन्द्रमःसम्पाद्यकार्यतया प्रथितानाम् पद्मसङ्कोचनव्योमगमनादीनाम् अक्रिया अननुष्ठानम् , अन्यस्य चन्द्रातिरिक्तस्य चाण्डालादेः कस्यचित् कार्यस्य क्रिया अनुष्ठानम् , यस्मादत्रोदाहरणे सन्दर्श्यते निबध्यते, तस्मादिदं विरुद्धरूपकं नाम । रूपके उपमानाभिन्नतया रूपितस्योपमेयस्य (अत्र चन्द्राभिन्नतया रूपितस्य मुखस्य) तत्कार्यकरत्वमेवौचित्यसिद्धम् , परमत्र तद्विपरीतकार्यकरत्वादिदं विरुद्धरूपकम् इति भावः ॥ ८४ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें विरुद्धरूपक नामक अलङ्कार है—क्योंकि मुखरूप चन्द्रमा चन्द्रमाकार्य—कमलसङ्कोचन और आकाशाश्रयण नहीं करता है, वह तो अचन्द्रमा का—किसी चाण्डालादिका कार्य-प्राण लेना—करता है, अतः इसको विरुद्धकार्यकरतया विरुद्धरूपक कहा जाता है ॥ ८४ ॥

गाम्भीर्येण समुद्रोऽसि गौरवेणासि पर्वतः ।
कामदत्वाच्च लोकानामसि त्वं कल्पपादपः ॥ ८५ ॥

हेतुरूपकमाह—**गाम्भीर्येणेति ।** गाम्भीर्येण अगाधतया समुद्रोऽसि, गौरवेण सारवत्तया पर्वतोऽसि, लोकानां कामदत्वात् वाञ्छितफलदायित्वात् कल्पपादपः कल्पवृक्षः असि ॥ ८५ ॥

हिन्दी—महाराज, आप गाम्भीर्यके कारण समुद्र, गौरवके कारण पर्वत और लोगोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके कारण कल्पवृक्ष हैं ॥ ८५ ॥

गाम्भीर्यप्रमुखैरत्र हेतुभिः सागरो गिरिः ।
कल्पद्रुमश्च क्रियते तदिदं हेतुरूपकम् ॥ ८६ ॥

है। इसे आप व्यतिरेकालङ्कार नहीं मान सकते हैं, क्योंकि इसमें सादृश्यप्रतीति नहीं होती है, अपह्नुति भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि इसमें प्रस्तुतका निषेध नहीं हुआ करता है ॥ ९१ ॥

मुखेन्दुरपि ते चण्डि मां निर्दहति निर्दयम्।
भाग्यदोषान्ममैवेति तत्समाधानरूपकम् ॥ ९२ ॥

समाधानरूपकं नाम रूपकप्रकारमुपन्यस्यति—**मुखेन्दुरपीति**। हे चण्डि कोपने, ते तव मुखेन्दुरपि मुखचन्द्रोऽपि मां निर्दयम् अकरुणभावेन निर्दहति सन्तापयति, तत्र स्वयं समाधानमाह--ममैव भाग्यदोषादिति। तदित्थं स्वयं समाधानात्समाधानरूपकमेतत् ॥ ९२ ॥

हिन्दी—हे मानिनि, तुम्हारा मुख चन्द्र (होकर भी) मुझे निर्दयतापूर्वक सन्तापित किया करता है, इसमें मेरा अभाग्य ही कारण है, इसे समाधानरूपक कहते हैं, क्योंकि इसमें स्वयं समाधान किया गया है ॥ ९२ ॥

मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन् भ्रूलतानर्त्तकी तव।
लीलानृत्यं करोतीति रम्यं रूपकरूपकम् ॥ ९३ ॥

रूपकरूपकं नाम प्रभेदं निर्दिशति--**मुखपङ्कजेति**। मुखमेव पङ्कजं कमलं तदेव रङ्गः नृत्यशाला तत्र, तव भ्रूलतानर्तकी भ्रूरेव लता सा एव नर्त्तकी नृत्यकारिणी लीलानृत्यम् सविलासं नर्त्तनं करोतीति रम्यं रमणीयं रूपकरूपकं नामालङ्कारभेदः। समाख्याबीजं तु एकेन रूपितस्यान्येन रूपणं यथा मुखमत्र पङ्कजत्वेन रूपितं सदपि रङ्गत्वेन पुना रूप्यते, एवमेव भ्रूर्लतात्वेन रूपणं गताऽपि रङ्गत्वेन रूप्यत इति। इदं च रूपकं समास एव संभवति, वाक्ये तु एकस्मिन् वस्तुनि बहूनामारोपे हेतूपादाने सति पूर्वोक्तस्वरूपं हेतुरूपकम्, हेत्वनुपादाने मालारूपकम्। अत्र रम्यमिति लक्षणे निवेशात् यत्र रूपकरूपणे रम्यत्वं चमत्कारकत्वं नास्ति तत्र नायमलङ्कारः, यथा--'नारीबाहुलताव्यालीपरिरब्धः सुखी कुतः' अत्र बाहौ लतात्वं तत्र च व्यालीत्वमारोप्यमाणमपि न चमत्कारकमिति ॥ ९३ ॥

हिन्दी—तुम्हारे इस मुखकमलरूपी रङ्गस्थलपर भ्रूलतारूपी नर्त्तकी विलासनृत्य कर रही है, यह चमत्कारकारक होनेसे रूपकरूपक कहा जाता है। इस उदाहरणमें मुखका पङ्कजमें रूपण किया गया और फिर उसी मुखपङ्कजको रङ्गशालाका रूपक दिया गया है, एवं--भ्रूको लतारूपमें रूपित करके पुनः उसी भ्रूलताको नर्त्तकीका रूपक दिया गया है, अत इसको रूपकाश्रितरूपक होनेके कारण रूपक-रूपक कहते हैं। 'रम्यम्' यह विशेषण लक्षणमें कहा गया है अतः जहाँपर रूपकाश्रितरूपक होनेपर भी चमत्कार नहीं होगा, उसे रूपक-रूपक नहीं मानेंगे, जैसे--'नारीबाहुलताव्यालीपरिरब्धः सुखी कुतः' नारीके बाहुरूप लतास्वरूप सर्पिणीसे लिपटा हुआ जन सुखी कैसे हो सकता है, यहाँपर नारीबाहुको लतासे और उसे व्यालीसे रूपक दिया गया है परन्तु चमत्कार न होनेसे यह अलङ्कार नहीं है ॥ ९३ ॥

नैतन्मुखमिदं पद्मं न नेत्रे भ्रमराविमौ।
एतानि केसराण्येव नैता दन्तार्चिषस्तव ॥ ९४ ॥

तत्त्वापह्नवरूपकं विवृणोति—नैतदिति। एतत् दृश्यमानं तव मुखं न, इदं पद्मम् कमलम्, इमे नेत्रे न अपि तु इमौ भ्रमरौ, एताः दन्तार्चिषः दशनद्युतयः न, अपि तु केसराणि किञ्जल्का एव ॥ ९४ ॥

हिन्दी—यह तुम्हारा मुख नहीं है कमल है, ये तुम्हारी आँखें नहीं भ्रमर हैं, और ये तुम्हारे दाँतोंकी कान्ति नहीं हैं यह केसर हैं ॥ ९४ ॥

मुखादित्वं निवर्त्यैव पद्मादित्वेन रूपणात्।
उद्भावितगुणोत्कर्षं तत्त्वापह्नवरूपकम् ॥ ९५ ॥

मुखादित्वमिति। मुखनेत्रदन्तद्युतीनाम् वर्णनीयपदार्थानाम् मुखादित्वम् मुखत्व-नेत्रत्वदन्तद्युतित्वम् निवर्त्य प्रतिषिध्य एव पद्मादित्वेन पद्मत्वभ्रमरत्वकेसरत्वादिना रूपणात् आरोपस्य करणात् उद्भावितगुणोत्कर्षम् रूपकान्तरापेक्षया प्रकृष्टचमत्कार-प्रकाशकमिदम् तत्त्वापह्नवरूपकम्, तत्त्वस्य वस्तुधर्मस्य मुखत्वादेरपह्नवेन रूपणात्तत्त्वा-पह्नवरूपकमिति समाख्याकरणम्। 'शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नवः' इति कुवलया-नन्दे लक्षिताऽपह्नुतिर्नेयम्, तस्या धर्मनिह्नवविषयत्वात्, अत्र तु धर्मिणं मुखादिकं प्रति-षिध्य धर्म्यन्तरस्य मुखादिकस्यारोप इन्यवधेयम्। दर्पणकृतस्य 'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः' इति सामान्यतो (धर्मस्य धर्मिणो वा) प्रतिषेधपूर्वकारोपे अपह्नुतिं कथ-यन्ति, तन्मतेऽत्रापह्नुतिरेव। तन्मतं रूपकलक्षणमत्र न समन्वेति--'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे' इति लक्षणस्य तेनोक्तेः ॥ ९५ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें मुख, नेत्र, दन्तद्युतिरूप वर्णनीय पदार्थोंके मुखत्व-नेत्रत्व-दन्तद्युतित्व-रूप धर्मका प्रतिषेध करके पद्मत्व, भ्रमरत्व और कमलकिञ्जल्कत्वका आरोप किया गया है, अतः रूपकान्तरापेक्षया अधिक चमत्कारक होनेके कारण यह तत्त्वापह्नवरूपक कहा जाता है। तत्त्व वस्तुधर्म, मुखत्व आदिका अपह्नव करके रूपण किया गया है इसीसे इसका नाम तत्त्वापह्नव-रूपक रखा गया है। कुवलयानन्दकारके अपह्नुतिलक्षणके अनुसार धर्मापह्नवमें होने वाली अपह्नुति यह नहीं है क्योंकि यहाँ धर्मीका ही निषेध करके धर्म्यन्तरका रूपण किया गया है। साहित्यदर्पणके अनुसार यहाँ अपह्नुति ही है ॥ ९५ ॥

न पर्यन्तो विकल्पानां रूपकोपमयोरतः।
दिङ्मात्रं दर्शितं धीरैरनुक्तमनुमीयताम् ॥ ९६ ॥
(इति रूपकचक्रम्)

रूपकमुपसंहरति--**न पर्यन्त इति।** रूपकस्य उपमायाश्चेति रूपकोपमयोः विकल्पा-नाम् प्रकाराणाम् पर्यन्तः समाप्तिर्नास्ति, अतः समप्रभेदानां वर्णयितुमशक्यत्वात् दिङ्मात्रं दर्शितम्, धीरैः बुद्धिमद्भिः अनुक्तम् अपि ऊह्यताम् उन्नीयताम्। दर्शितोदाहरणद्वारा जागरितधियो विद्वांसः स्वयमेवानुक्तानपि प्रकारान् ऊहेरन्निति भावः ॥ ९६ ॥

हिन्दी—रूपक और उपमाके प्रभेदोंका अन्त नहीं है, अतः हमने यहाँपर दिग्दर्शनमात्र करा दिया है, साहित्यविद्याके मर्मज्ञ बुद्धिमान् लोग अनुक्त प्रकारोंका भी स्वयं ऊह कर लें, प्रदर्शित प्रकारसे कल्पना कर लें। रूपकके यहाँ कहे गये प्रभेदोंमें अन्तर्भूत न होने वाले कुछ प्रकार ये हो सकते हैं--

---

१. रपि।

अत्र श्यामला इति गुणवाचकपदस्य पूर्ववाक्य इव परतोऽपि चकारानुकृष्टतयाऽन्वयाद् गुणदीपकम् ॥ १०० ॥

हिन्दी—वर्षाकालिक जलदमालासे दिशायें श्यामल—काली—हो रही हैं, और कोमल नवीन घासोंसे धरती काली हो उठी है, यहाँ पूर्ववाक्यस्थ गुणवाचक श्यामलपद चकारानुकृष्ट होकर उत्तरवाक्यमें भी अन्वित होता है अतः इसे गुणदीपक कहते हैं ॥ १०० ॥

विष्णुना विक्रमस्थेन दानवानां विभूतयः।
क्वापि नीताः कुतोऽप्यासन्नानीता दैवतर्द्धयः ॥ १०१ ॥

द्रव्यदीपकमाह—विक्रमस्थेन बलिनिग्रहसमये त्रिपादविक्रमं प्रकटयता वामनावतारेण विष्णुना दानवानां बलिप्रमुखाणां विभूतयः सम्पदः क्वापि नीताः क्षणमात्रेणापहृताः, तथा दैवतर्द्धयः इन्द्रादीनां श्रियः कुतोऽपि आनीताः आसन्, अतर्कितमेव समुपनमिता इत्यर्थः। अत्रैकव्यक्तिवाचकतया द्रव्यवाचकस्य विष्णुपदस्य पूर्ववाक्यस्थस्यापि काकाक्षि-न्यायेनोत्तरवाक्येऽप्यन्वयात् द्रव्यदीपकम् ॥ १०१ ॥

हिन्दी—बलिनिग्रहकालमें त्रिपाद विक्रम प्रकट करनेवाले विष्णुने दानवोंकी समृद्धियोंको न जाने कहाँ भेज दिया, और न जाने कहाँ से उन्होंने देवगणकी वह सारी समृद्धियाँ ला दीं। यहाँपर एकव्यक्तिवाचकतया द्रव्यवाचक विष्णुपदका—जो पूर्ववाक्यस्थ है—उत्तर वाक्यमें भी अन्वय हुआ है, अतः यह द्रव्यदीपक कहा जाता है ॥ १०१ ॥

इत्यादिदीपकान्युक्तान्येवं मध्यान्तयोरपि।
वाक्ययोर्दर्शयिष्यामः कानिचित्तानि तद्यथा ॥ १०२ ॥

उक्तानि चत्वारि दीपकानि आदिदीपकानि, यतस्तेषां प्रथमवाक्ये उक्तानां पदानाम-ग्रिमवाक्येऽन्वयः, एवमेव मध्ये तेषां जात्यादिवाचकपदानामुपादाने सति परत्र सम्बन्धे मध्यदीपकानि, तथाऽन्ते तेषामुपादाने सति परत्र सम्बन्धे चान्तदीपकान्यपि सम्भवन्ति, कानिचित् कतिचित् तानि मध्यदीपकान्यन्तदीपकानि च दर्शयिष्याम इत्याशयः। तदेवं प्रोक्तानि चत्वार्युदाहरणान्यादिदीपकस्य मध्यदीपकस्यान्तदीपकस्य चाग्रे वक्ष्यन्त इत्यायातम् ॥ १०२ ॥

हिन्दी—आदिदीपकके उदाहरण बताये गये, इसी तरह मध्यदीपक और अन्तदीपक भी सम्भव हैं, उनके भी उदाहरण बताये जायेंगे। तात्पर्य यह है कि दीपकके चार उदाहरण जाति-क्रियागुणद्रव्य-भेदसे दिये गये, उन सभी उदाहरणोंमें प्रथमवाक्योपात्त पदोंका अग्रिम वाक्योंमें अन्वय हुआ है अतः वे सभी आदिदीपक नामक प्रभेदके हुए। इसी प्रकार जहाँ मध्यवाक्यस्थ जात्यादिवाचक पदका अन्यत्र अन्वय किया जायगा वह मध्यदीपक होगा, एवं अन्तवाक्यस्थ जात्यादिवाचक पदका पूर्वमें अन्वय होनेपर वह अन्तदीपक होगा, इनके उदाहरण भी यथासम्भव बताये जायेंगे ॥ १०२ ॥

नृत्यन्ति निचुलोत्सङ्गे गायन्ति च कलापिनः।
बध्नन्ति च पयोदेषु दृशो हर्षाश्रुगर्भिणीः ॥ १०३ ॥

मध्यगतं जातिदीपकमुदाहरति—नृत्यन्तीति। कलापिनो मयूराः निचुलोत्सङ्गे वेतसलताक्रोडदेशे नृत्यन्ति, गायन्ति, पयोदेषु स्वसुहृत्सु मेघेषु च तदागमनहृष्टतया हर्षाश्रुगर्भिणीर्दृशो बध्नन्ति सानन्दाश्रुपूर्णदृष्टिभिस्तं पश्यन्ति। अत्र कलापिन इति

मध्यवाक्यवर्त्ति पदं पूर्वत्र परत्र चान्वेतीति मध्यगतं जातिदीपकमिदम्। कलापिनो जातिपदत्वादिदं जातिदीपकं मध्यगतत्वाच्च तथेति भावः ॥ १०३ ॥

हिन्दी—वेतसकुञ्जमें मयूर नाच रहे हैं, गा रहे हैं और आनन्दाश्रुपूर्ण नयनोंसे मेघों की ओर देख रहे हैं। इस उदाहरणमें जातिवाचक कलापीपद मध्यगत है अतः इसे मध्यगत जातिदीपक कहा जाता है ॥ १०३ ॥

मन्दो गन्धवहः क्षारो वह्निरिन्दुश्च जायते।
चर्चाचन्दनपातश्च शस्त्रपातः प्रवासिनाम् ॥ १०४ ॥

क्रियागतं मध्यदीपकमुदाहरति—**मन्दो गन्धवह इति**। प्रवासिनां विदेशस्थितानां वियोगिनाम् मन्दो गन्धवहः मन्दानिलः क्षारः क्षते क्षारवद्व्यथकः, इन्दुः वह्निर्वह्निवत्सन्तापकः, चर्चाचन्दनपातः अङ्गचर्चार्थं सम्भृतस्य मलयजरसस्य सम्बन्धश्च शस्त्रपातः शस्त्रपातवत्कष्टकर इति। अत्र सर्ववाक्यान्वयिनः 'जायते' इति क्रियापदस्य मध्यगतत्वान्मध्यगतं क्रियादीपकमिदम् ॥ १०४ ॥

हिन्दी—वियोगियोंके लिये मन्दवायु क्षतमें क्षारकी तरह पीड़ाकर, चन्द्रमा आगकी तरह सन्तापक और शरीरमें लगानेके लिये लाया गया चन्दन शस्त्रप्रहारके समान लगता है। इसमें 'जायते' यह क्रियापद मध्यवाक्यगत है जिसका सर्वत्र अन्वय हुआ है, अतः यह मध्यगत क्रियादीपक हुआ।

आचार्य दण्डीने मध्यगत दीपकके चार भेदोंमें केवल दो भेदोंके ही उदाहरण लिखे हैं, मध्यगत गुणदीपक और मध्यगत द्रव्यदीपकके उदाहरण नहीं लिखे हैं।

प्रेमचन्द्र शर्माने इसी ग्रन्थकी टीकामें अनुक्त दोनों भेदोंके उदाहरण दिये है, उन्हें यहाँ उद्धृत किया जाता है।

मध्यगत गुणदीपक—

'तडिद्भिर्वारिवाहाणां योगः स्त्रीभिः प्रवासिनाम्। लताभिः पादपानां च समापाते घनागमे'। इस उदाहरणमें 'योगः' इस मध्यगत गुणवाचक शब्दका सर्वत्र अन्वय हुआ है, अतः यह मध्यगत गुणवाचकका उदाहरण है।

मध्यगत द्रव्यदीपक—

'मुहुर्विश्वं मंसृजति बिभर्त्ति च मुहुर्हरिः। मुहुश्च नाशं नयति बालक्रीडनकौतुकी' ॥

इसमे 'हरिः' यह द्रव्यवाचक शब्द मध्यगत होकर भी सर्वत्र अन्वित होता है अतः यह मध्यगत द्रव्यदीपक है ॥ १०४ ॥

जलं जलधरोद्गीर्णं कुलं गृहशिखण्डिनाम्।
चलं च तडितां दाम बलं कुसुमधन्वनः ॥ १०५ ॥

अन्तगतं जातिदीपकमुदाहरति—**जलमिति**। जलधरैः मेघैः उद्गीर्णं वान्तम् वृष्टमित्यर्थः जलम् गृहशिखण्डिनाम् प्रासादवर्त्तिमयूराणां कुलं समूहः, चलम् चपलम् तडितां विद्युतां दाम च एतत् त्रितयं कुसुमधन्वनः बलम् कामदेवस्य सैन्यम्। वर्षाजलप्रासादशिखरस्थमयूरकुलचपलादामभिरेव बलैः कामो विश्वं विजयत इत्यर्थः। अत्र बलपदं सैन्यपरं तच्च जातिवाचकं तस्यान्त्यवाक्यस्थस्य सर्वत्रान्वयादिदमन्तगतं जातिदीपकम् ॥ १०५ ॥

हिन्दी—मेघका जल, प्रासादशिखरस्थमयूरोंका दल और चञ्चल विद्युद्दाम—ये तीनों कामदेवके सैन्य हैं। इसमें अन्तगत बल शब्द जातिपरक होकर सर्वत्र अन्वय पाता है अतः यह अन्तगत जातिदीपक हुआ ॥ १०५ ॥

त्वया नीलोत्पलं कर्णे स्मरेणास्त्रं शरासने।
मयाऽपि मरणे चेतस्त्रयमेतत् समं कृतम् ॥ १०६ ॥

अन्तगतं क्रियादीपकमाह—**त्वयेति**। कस्यचिच्चाटुकारस्येयमुक्तिः, त्वया कर्णे नीलोत्पलम्, स्मरेण शरासने अस्त्रम्, मयापि मरणे चेतः, एतत् त्रयं समं युगपत कृतम्। अत्रान्त्यवाक्यस्थितेन कृतमिति क्रियावाचकपदेन इतरवाक्यसम्बन्धात अन्तगतमिदं क्रियादीपकम् ॥ १०६ ॥

हिन्दी—हे प्रिये, तुमने अपने कानमें नीलकमल, कामदेवने अपने धनुष पर बाण औ मैंने मरणमें मन एक ही साथ किया। इसमें अन्तिमवाक्यस्थ 'कृतम्' इस क्रियापदका सर्वत्र अन्व होता है अतः यह अन्तगत क्रियादीपक है।

यहाँ भी दण्डीने अन्तगत गुणदीपक और अन्तगत द्रव्यदीपकके उदाहरण नहीं दिये हैं, ज प्रेमचन्द्र शर्माकी टीकासे दिये जा रहे हैं—

अन्तगत गुणदीपक—

'इदमुज्जृम्भते बिम्बं भानोस्तापयितुं जगत्। ममैव हृदयं चण्डि मुख च तव लोहितम्' ॥

यहाँ अन्त्यवाक्यगत 'लोहित' इस गुणवाचक पदका अन्यत्र भी अन्वय हुआ है अतः य अन्तगत गुणदीपक है।

अन्तगत द्रव्यदीपक—

'सत्यं विश्वं सन्तपति सत्यं कर्षति वै रसान्। तमांसि तु निहन्तीति प्रार्थनीयोदयो रविः' ॥

इसमें अन्त्यवाक्यगत 'रविः' इस द्रव्यवाचकका सर्वत्र अन्वय हुआ है अतः यह अन्तगत द्रव्यदी पकका उदाहरण है ॥ १०६ ॥

शुक्लः श्वेतार्चिषो वृद्ध्यै पक्षः पञ्चशरस्य सः।
स च रागस्य रागोऽपि यूनां रत्युत्सवश्रियः ॥ १०७ ॥
इत्यादिदीपकत्वेऽपि पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी।
वाक्यमाला प्रयुक्तेति तन्मालादीपकं मतम् ॥ १०८ ॥

मालादीपकमाह—**शुक्ल इति**। शुक्लः पक्षो मासस्यादिमो धवलो दलः श्वेतार्चि चन्द्रस्य वृद्ध्यै परिपोषाय भवति, सः श्वेतार्चिः पञ्चशरस्य कामदेवस्य वृद्ध्यै भवति, पञ्चशरो रागस्य वनिताविषयासक्तेः वृद्ध्यै भवति, स च रागः यूनां तरुणानां रत्युत्सवश्रि बिलासलक्ष्म्या वृद्ध्यै भवति ॥ १०७ ॥

इत्यादीति। इति अत्रोदाहरणे आदिदीपकत्वे 'वृद्ध्यै' इति प्रथमवाक्यस्थस्य पद सकलवाक्यान्वयितयाऽऽदिदीपकलक्षणक्रान्तत्वे सत्यपि पूर्वपूर्वव्यपेक्षिणी स्वोपकारकत पूर्वपूर्ववाक्यमपेक्षमाणा वाक्यमाला वाक्यावलिः प्रयुक्तेति हेतोरिदं मालादीपकनाम ॥ १०

हिन्दी—शुक्लपक्ष चन्द्रमाकी वृद्धिके लिये होता है, चन्द्रमा कामदेवकी वृद्धिके लिये ह है, कामदेव स्त्रीविषयक आसक्तिके लिये होता है, और वह आसक्ति युवजनोंके रागरङ्गकी वृ

इस उदाहरणमें 'वृद्धयै' यह प्रथमवाक्यस्थ पद सभी वाक्योंमें अन्वित हुआ है अतः यह आदिदीपक है, तथापि इसमें पूर्वपूर्ववाक्यकी अपेक्षा करनेवाली वाक्यमाला प्रयुक्त हुई है, अतः इसे मालादीपक मानते हैं। यह मालादीपक—सभी वाक्योंमें अन्वित होनेवाला पद सापेक्ष वाक्यस्थित हो तभी होता है यह कोई खास आवश्यक बात नहीं है, अतएव काव्यप्रकाशकारने—

'संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम्।
कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं तेन त्वं भवता च कीर्त्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम्'॥
यह उदाहरण मालादीपकका दिया है, इस उदाहरणमें निरपेक्षवाक्यगत 'आसादितम्' इस क्रियापद के साथ सभी वाक्योंमें अन्वय कराया गया है, यदि सर्ववाक्यान्वयी पदका सापेक्षवाक्यस्थितत्व आवश्यक रहता, तब यह उदाहरण कैसे दिया जाता ?॥ १०८॥

अवलेपमनङ्गस्य वर्द्धयन्ति बलाहकाः।
कशयन्ति तु घर्मस्य मारुतोद्धूतशीकराः॥ १०९॥

विरुद्धार्थदीपकमाह—**अवलेपमिति**। बलाहकाः मेघाः अनङ्गस्य कामदेवस्य अवलेपं गर्वं वर्द्धयन्ति समेधयन्ति। मारुतोद्धूतशीकराः वायुनोत्क्षिप्ताः जलकणाः येषां तादृशाश्च ते बलाहकाः घर्मस्य ग्रीष्मस्य अवलेपं कशयन्ति कृशतां नयन्ति, दूरीकुर्वन्तीत्यर्थः॥ १०९॥

हिन्दी—यह मेघ कामदेवके गर्वको बढ़ाते हैं और हवासे जिनके जलकण ऊपर उड़ रहे हैं ऐसे यही मेघ ग्रीष्मके गर्वको घटा रहे हैं॥ १०९॥

अवलेपपदेनात्र बलाहकपदेन च।
क्रिये विरुद्धे संयुक्ते तद्विरुद्धार्थदीपकम्॥ ११०॥

अवलेपेति। अत्रोदाहरणे कर्मभूतेन अवलेपपदेन कर्तृभूतेन बलाहकपदेन च विरुद्धे क्रिये वर्द्धनकृशीकरणरूपे संयुक्ते समानाधिकरणे कृते तत् एतत् विरुद्धार्थदीपकम्। अयमाशयः—अत्रावलेपपदं कर्मभूतम्, तदर्थश्च बलाहकैरनङ्गसम्बन्धितया वृद्धिं नीयते, ग्रीष्मसम्बन्धितया च कृशत्वं नीयते, इत्यत्रैवावलेपे कर्मणि सम्बन्धिभेदमहिम्ना वृद्धिकृशत्वरूपयोर्विरुद्धयोः क्रिययोः समावेशेन, तथा चात्र बलाहकाः कर्त्तारः, तेऽनङ्गसम्बन्धितया गर्वस्य वृद्धिकर्त्तारः, ग्रीष्मसम्बन्धितया च तस्यैव कृशत्वकर्त्तार इत्येकत्र बलाहकेषु कर्तृषु विरुद्धयोर्वृद्धिकृशत्वक्रिययोः समावेशेन च विरुद्धार्थदीपकमिदम्॥ ११०॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें अवलेप कर्म है, उसमें अनङ्गसम्बन्ध होनेपर वृद्धिक्रिया की जाती है, और ग्रीष्मसम्बन्ध होनेपर कृशत्वक्रिया की जाती है, अतः एकमें विरुद्धक्रियायें होनेसे विरुद्धार्थदीपक है, एवं बलाहक कर्त्ता है, उसमें अनङ्गसम्बन्धितया गर्ववृद्धिक्रिया और ग्रीष्मसम्बन्धितया गर्वकृशत्वक्रिया कही गयी है अतः एक कर्त्ता बलाहकमें विरुद्धक्रियासमावेश होनेसे विरुद्धार्थदीपक हुआ। यह आदिदीपकप्रभेद है, क्योंकि आदिवाक्यस्थ अवलेप और बलाहकपद उत्तरवाक्यमें अन्वित हुआ है। इस उदाहरणमें—अवलेप गुणवाचक है और बलाहक जातिवाचक है अतः गुणवाचक और जातिवाचकका सङ्कर है॥ ११०॥

हरत्याभोगमाशानां गृह्णाति ज्योतिषां गणम्।
आदत्ते चाद्य मे प्राणानसौ जलधरावली॥ १११॥

एकार्थदीपकमुदाहरति—हरतीति। असौ जलधरावली मेघमाला आशानाम् दिशाम् आभोगम् हरति सङ्कोचयति, ज्योतिषां ग्रहाणां गणम् गृह्णाति तिरोदधाति, अथ मे मम (विरहदग्धस्य) प्राणान् आदत्ते विपादयति ॥ १११ ॥

हिन्दी—यह मेघमाला दिशाओंके विस्तारको सङ्कुचित करती है, ग्रहनक्षत्रोंको छिपाती है, और हमारे प्राणको हरती है। यहाँ 'हरति' 'गृह्णाति' 'आदत्ते' इन तीनों क्रियाओंसे 'लोप करना' रूप एक ही अर्थ प्रतीत होता है ॥ १११ ॥

अनेकशब्दोपादानात् क्रियैकैवात्र दीप्यते।
यतो जलधरावल्या तस्मादेकार्थदीपकम् ॥ ११२ ॥

अनेकेति। अत्र अस्मिन्नुदाहरणे यतः जलधरावल्या एका एव क्रिया लोपनरूपा अनेकेषाम् हरणग्रहणादानात्मनाम् उपादानात् दीप्यते उज्ज्वलीक्रियते नानाशब्दैरेकैव क्रिया प्रकाश्यते, अत इदमेकार्थदीपकं नाम। अनेकशब्दप्रतिपाद्यस्य एकार्थस्य दीपनात् एकार्थदीपकमिदमिति बोध्यम् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें अनेक शब्दों द्वारा एक ही लोपनरूप क्रिया प्रकाशित की गई है अतः इसे एकार्थदीपक कहते हैं।

अनेक क्रियाओंमें एक कारक हो—'अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्' तब जो दीपक प्रकाशकारने स्वीकार किया है वह इससे भिन्न ही है, क्योंकि उसमें एकार्थक अनेकक्रिया नहीं हुआ करती है, जैसे—

'स्विद्यति कूणति वेल्लति विचलति निमिषति विलोकयति तिर्यक्।
अन्तर्नन्दति चुम्बितुमिच्छति नवपरिणया वधूः शयने' ॥

यही एक कारककी अनेक क्रियावाले दीपकका उदाहरण काव्यप्रकाशमें दिया गया है, इसमें एकार्थक अनेक क्रिया नहीं है, प्रकृत एकार्थदीपकमें तो लोपनार्थक अनेक 'हरति गृह्णाति आदत्ते' क्रियायें हैं ॥ ११२ ॥

हृद्यगन्धवहास्तुङ्गास्तमालश्यामलत्विषः।
दिवि भ्रमन्ति जीमूता भुवि चैते मतङ्गजाः ॥ ११३ ॥

श्लिष्टार्थदीपकमाह—हृद्येति। दिवि आकाशे जीमूताः मेघाः भ्रमन्ति, कीदृशा मेघाः? हृद्यगन्धवहाः मनोरमपवनानुगताः, तुङ्गा उन्नताः, तमालश्यामलत्विषः तमालतरुकृष्णकान्तयः भुवि च एते मतङ्गजाः गजा भ्रमन्ति, कीदृशाः गजाः? हृद्यः घ्राणतर्पणो यो गन्धो दानवारिसौरभम् तद्वहाः तस्य धारिणः, तुङ्गा इत्यादि पूर्ववत् ॥ ११३ ॥

हिन्दी—मनोरम पवनसे प्रेरित, उन्नत तथा. तमालतरुश्यामल मेघ आकाशमें भ्रमण कर रहे हैं, और घ्राणतर्पण दानवारिसुगन्धिसे युक्त, उन्नत एवं तमालश्यामल दन्ती पृथ्वी पर घूम रहे हैं ॥ ११३ ॥

अत्र धर्मैरभिन्नानामभ्राणां दन्तिनां तथा।
भ्रमणेनैव सम्बन्ध इति श्लिष्टार्थदीपकम् ॥ ११४ ॥

अत्र धर्मैरिति। अत्र पूर्वोक्तोदाहरणे धर्मैः हृद्यगन्धवहत्वादिरूपैः अभिन्नानाम् एकशब्दवाच्यतया समानानाम् अभ्राणां तथा दन्तिनाम् भ्रमणेनैव भ्रमतिक्रियया एव सम्बन्ध इति श्लिष्टशब्दोपस्थापितसाधारणधर्मवतोर्जीमूतमतङ्गजयोः भ्रमन्तीति क्रियया दीपनादिदं श्लिष्टार्थदीपकम्। तत्र हृद्यगन्धवहा इति श्लिष्टमन्यच्च समं विशेषणम् ॥ ११४ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें हृद्यगन्धवहत्व, तुङ्गत्व तथा तमालश्यामलत्वरूप धर्मोंसे एकशब्द-प्रतिपाद्यत्वेन अभिन्न मेघ तथा दन्तिओंका भ्रमणरूप एक क्रिया में अन्वय हुआ है अतः इसे श्लिष्टार्थदीपक कहते हैं, क्योंकि श्लिष्टशब्दप्रतिपाद्य साधारण धर्मवाले मेघ तथा हस्तीका एकमें अन्वय हुआ है ॥ ११४ ॥

अनेनैव प्रकारेण शेषाणामपि दीपके ।
विकल्पानामवगतिर्विधातव्या विचक्षणैः ॥ ११५ ॥

(इति दीपकचक्रम्)

अनेनेति । अनेन पूर्वदर्शितप्रकारेण दीपके नामालङ्कारे शेषाणाम् अनुक्तानाम् अपि विकल्पानाम् प्रकाराणाम् अवगतिः ज्ञानम् विचक्षणैः सुधीभिः कर्त्तव्या । अत्रोक्तं भोजराजेन—

'अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरुभयावृत्तिरावली ।
संपुटं रशना माला चक्रवालं च तद्भिदाः' इति ॥ ११५ ॥

हिन्दी—इसी तरह दीपकके शेष प्रकारोंकी भी जानकारी सुधीगण कर लें । भोजराजने इस प्रसङ्गमें लिखा है :—

'अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरुभयावृत्तिरावली । संपुटं रशना माला चक्रवालं च तद्भिदाः' ॥

उनमें अर्थावृत्ति, पदावृत्ति और उभयावृत्तिको आचार्य दण्डीने आवृत्त्यलङ्कारके रूपमें अभी आगे स्वीकार किया है, आवलीका उदाहरण—

'त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च' ।

संपुटका उदाहरण—

'नवपल्लवेषु लोलति घूर्णति विटपेषु चलति शिखरेषु ।
स्थापयति स्तबकेषु चरणे वसन्तश्रीरशोकस्य' ॥

रशनादीपक और मालादीपक बताया जा चुका है, चक्रवाल चमत्कारी नहीं होता है ॥११५॥

अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरुभयावृत्तिरेव च ।
दीपकस्थान एवेष्टमलङ्कारत्रयं यथा ॥ ११६ ॥

आवृत्त्यलङ्कारं भेदकथनेनाह—**अर्थावृत्तिरिति** । दीपकस्थाने दीपकप्रसङ्ग एव अर्थावृत्तिः, पदावृत्तिः, उभयावृत्तिः च एतदलङ्कारत्रयम् विद्वद्भिरिष्टम् अभिमतम्, तत्रेदं बोध्यम्—दीपके पदस्यानुषङ्गः, अत्रत्वावृत्तिरेव । अत एव चास्य दीपकस्थानीयत्वम् ॥ ११६ ॥

हिन्दी—दीपकके स्थानमें अर्थावृत्ति, पदावृत्ति और उभयावृत्ति नामके तीन अलङ्कार कवियोंने माने हैं । दीपकमें पदका अनुषङ्ग होता है, इसमें आवृत्ति होती है ॥ ११६ ॥

विकसन्ति कदम्बानि स्फुटन्ति कुटजद्रुमाः ।
उन्मीलन्ति च कन्दल्यो दलन्ति ककुभानि च ॥ ११७ ॥

अर्थावृत्तिमुदाहरति—**विकसन्तीति** । कदम्बानि नीपकुसुमानि विकसन्ति । कुटजद्रुमाः स्फुटन्ति उद्भिन्ना भवन्ति । कन्दल्यः वर्षाकालभवाः पुष्पभेदाः उन्मीलन्ति विकसन्ति । ककुभानि अर्जुनकुसुमानि दलन्ति स्फुटन्ति । अत्र विकसन्ति, स्फुटन्ति, उन्मीलन्ति, दलन्ति इति चत्वार्यपि पदानि भिन्नरूपाण्यपि एकार्थानीति अर्थावृत्तिरियम् ॥ ११७ ॥

हिन्दी—कदम्ब विकसित हो रहे हैं, कुटजके फूल खिल रहे हैं, कन्दली फूल रही है और अर्जुनमें फूल निकल रहे हैं। यहाँपर एक ही अर्थमें भिन्नरूप चार पद प्रयुक्त हुए हैं, यह अर्थापत्ति है। यह वर्षाका वर्णन है, वर्षाके प्रसङ्गमें कालिदासने भी इन फूलोंके विकासका वर्णन किया है।

'नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढैः' 'आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्'।

'स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै' 'कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते'॥ ११७॥

उत्कण्ठयति मेघानां माला वृन्दं कलापिनाम्।
यूनां चोत्कण्ठयत्येष मानसं मकरध्वजः॥ ११८॥

पदावृत्तिमुदाहरति—**उत्कण्ठयतीति**। मेघानां माला जलधरावलिः कलापिनां मयूराणां वृन्दम् उत्कण्ठयति स्वदर्शनार्थमुद्ग्रीवं करोति, एषः मकरध्वजः कामश्च यूनां युवकानां मानसम् उत्कण्ठयति विलासोत्सुकं करोति। अत्र 'उत्कण्ठयति'पदस्य उभयत्र भिन्नार्थकत्वेन केवलं पदावृत्तिः॥ ११८॥

हिन्दी—मेघमाला मयूरोंके समूहको उत्कण्ठित करती है (मेघदर्शनार्थ उद्ग्रीव-उत्थित-ग्रीव-बनाती है), यह कामदेव युवकोंके मनको विलासोत्सुक बनाता है। इस पद्यमें उत्कण्ठयति पद एकाकार होने पर भी मयूरके साथ दूसरे अर्थमें और युवकोंके मनके साथ दूसरे अर्थमें है अतः पदावृत्ति है॥ ११८॥

जित्वा विश्वं भवानद्य विहरत्यवरोधनैः।
विहरत्यप्सरोभिस्ते रिपुवर्गो दिवं गतः॥ ११९॥
(इत्यावृत्तिचक्रम्)

उभयावृत्तिमुदाहरति—**जित्वेति**। अत्र मर्त्यलोके भवान् विश्वं संसारं जित्वा स्वायत्तीकृत्य अवरोधनैः स्वान्तःपुरस्थरमणीभिः विहरति क्रीडति ते तव रिपुवर्गः रणे भवता हतः सन् दिवं गतः अप्सरोभिः विहरति क्रीडति। अत्र विहरतीति पदस्य तदर्थस्य चावृत्तिरित्युभयावृत्तिः॥ ११९॥

हिन्दी—आप संसारको जीतकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे विहार करते हैं, और आपके शत्रु स्वर्ग जाकर (वीरगति प्राप्त कर) अप्सराओंसे विहार करते हैं, यहाँ 'विहरति' पदकी तथा उसके अर्थकी भी आवृत्ति होनेसे उभयावृत्ति है। इस पद्यमें विहरति पद दो बार आया है, तथापि पुनरुक्ति-कथित-पदता दोष नहीं है, क्योंकि वह उद्देश्यप्रतिनिर्देश्यभावातिरिक्तस्थलमें ही होता है, जैसे—'उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च' इसमें दोष नहीं होता, उसी तरह यहाँ भी वह दोष नहीं है॥ ११९॥

प्रतिषेधोक्तिराक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा।
अथास्य पुनराक्षेप्यभेदानन्त्यादनन्तता॥ १२०॥

आक्षेपालङ्कारं निरूपयति—**प्रतिषेधोक्तिरिति**। प्रतिषेधस्य निषेधस्य उक्तिः कथनमात्रम् (नतु वास्तविकः प्रतिषेधः) प्रतिषेधाभासः आक्षेपः आक्षेपालङ्कारः। इयश्च प्रतिषेधोक्तिः किमपि फलमभिसन्धायैव करिष्यते, तच्च फलं विशेषाभिधानरूपम्, प्रतिषेधोऽपि इष्टार्थस्यैव, तस्यैव प्रतिषेधे चमत्कारोदयसम्भवात्, तथा च विशेषाभिधानेच्छयेष्टस्यार्थस्य प्रतिषेधाभास आक्षेप इति लक्षणं फलति। स चायमाक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया

त्रैकालिकपदार्थसम्बन्धित्वेन त्रिधा, तथा च अतीताक्षेपो वर्त्तमानाक्षेपो भविष्यदाक्षेपश्चेति भेदत्रयं सिद्ध्यति, तदित्थं भेदत्रयविशिष्टस्याप्यस्याक्षेपस्य आक्षेप्यस्य निषेधविषयस्य धर्मधर्मिकार्यकारणादिरूपस्य आनन्त्यात् अनन्तता पर्यवस्यति ॥ १२० ॥

हिन्दी—विशेषाभिधानेच्छासे इष्टवस्तुके निषेधाभासको आक्षेप नामक अलङ्कार मानते हैं, यह तीन प्रकारका है क्योंकि निषेध तीनकालसम्बन्धिपदार्थोंका सम्भव है, अतः—अतीताक्षेप, वर्त्तमानाक्षेप और भविष्यदाक्षेप नामक तीन भेद सिद्ध हुए। इन तीन भेदोंके भी अनन्तभेद किये जा सकते हैं क्योंकि निषेध्यपदार्थ धर्मधर्मिकार्यकारणादिभेदसे अनन्त हो सकते हैं।

इस आक्षेपका लक्षण अग्निपुराणमें इस प्रकार कहा गया है—

'शब्देनार्थेन यत्रार्थः कृत्वा स्वयमुपार्जनम्। प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया ॥
तमाक्षेपं ब्रुवन्त्यत्र........................।'

इसमें भेदकी चर्चा नहीं है। काव्यप्रकाशकारका लक्षण भी इसी तरहका है—

'निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया। वक्ष्यमाणोक्तविषयः स आक्षेपो द्विधा मतः' ॥

काव्यप्रकाशकारने 'वक्ष्यमाणोक्तविषयः' कहकर अतीताक्षेप और भविष्यदाक्षेप नामके दो ही भेद माने हैं, दण्डीने एक वर्त्तमानाक्षेप भी माना है, इसके अतिरिक्त धर्मधर्मिकार्यकारणादि आक्षेप्योंकी अनन्ततासे अन्तहीन भेदराशिकी भी कल्पना की है, यह काव्यप्रकाशमें नहीं है॥१२०॥

अनङ्गः पञ्चभिः पौष्पैर्विश्वं व्यजयतेषुभिः।
इत्यसम्भाव्यमथवा विचित्रा वस्तुशक्तयः ॥ १२१ ॥
इत्यनङ्गजयायोगबुद्धिर्हेतुबलादिह।
प्रवृत्तैव यदाक्षिप्ता वृत्ताक्षेपः स ईदृशः ॥ १२२ ॥

आक्षेपालङ्कारस्यातीताक्षेपं नाम प्रथमं भेदमुदाहरति—**अनङ्ग इति**। अनङ्गः कामदेवः पौष्पैः पुष्पमयैः पञ्चभिः पञ्चसङ्ख्यकैरिषुभिः बाणैर्विश्वं समस्तं संसारं व्यजयत जितवान्, इत्यसम्भाव्यम् न सम्भवविषयः, अथवा वस्तुशक्तयः पदार्थानां कार्यसम्पादकसामर्थ्यानि विचित्राः अचिन्त्यवैभवाः। अत्रासम्भाव्यमित्यन्तेन कन्दर्पकर्त्तृकविश्वविजयानुपपत्तिः स्थिरीकृता, सा चाग्रे निषिद्धा ॥ १२१ ॥

लक्षणं सङ्गमयति—**इतीति**। इति अत्रोदाहरणे अनङ्गजयायोगबुद्धिः कामकर्त्तृकविश्वविजयासम्भवत्वज्ञानम् इह हेतुबलात् विचित्रा वस्तुशक्तय इति कारणप्रदर्शनात् प्रवृत्ता एव यत् आक्षिप्ता प्रतिषिद्धा, स ईदृशो वृत्ताक्षेप इति। अत्र कन्दर्पकर्त्तृकपुष्पमयबाणकरणकसकलसंसारकर्मकजयस्यासम्भाव्यताबुद्धिः प्रवृत्ता सती वस्तुमाहात्म्यघोषणया प्रतिषिध्यत इतीदृशोऽयं वृत्ताक्षेपो नामाक्षेपभेद इति भावः। अत्र प्रतिषेधो वाचकशब्दाभावात् प्रत्येय एव ॥ १२२ ॥

हिन्दी—अनङ्ग होकर भी कामदेवने फूलके बने हुए अपने केवल पाँच बाणोंसे ही इस विश्वको जीत लिया, यह असम्भव है, अथवा वस्तुकी शक्तियाँ अद्भुत हुआ करती हैं ॥ १२१ ॥

इस उदाहरणमें बिना अङ्गवाला कन्दर्प कर्त्ता है, फूलके बाण विजयके साधन हैं, यह सारा संसार लक्ष्य है, फिर भी उसने हरि-हर-विरञ्चिसमेत इस विश्वको जीत लिया, इस असम्भवतया प्रतीत वस्तुका प्रतिषेध वस्तुशक्तिकी विचित्रतारूप हेतु बताकर किया गया है, अतः यह वृत्ताक्षेप (अतीताक्षेप) नामक आक्षेपप्रभेद हुआ। इस उदाहरणमें प्रतिषेध व्यङ्ग्य होगा, क्योंकि वाचकशब्दका अभाव है ॥ १२२ ॥

कुतः कुवलयं कर्णे करोषि कलभाषिणि।
किमपाङ्गमपर्याप्तमस्मिन् कर्मणि मन्यसे ॥ १२३ ॥
स वर्त्तमानाक्षेपोऽयं कुर्वत्येवासितोत्पलम्।
कर्णे काचित् प्रियेणैवं चाटुकारेण रुध्यते ॥ १२४ ॥

वर्त्तमानाक्षेपमुदाहरति—**कुत इति**। हे कलभाषिणि, मधुरालापे, कुतः कस्मात् कारणात् कर्णे कुवलयं नीलकमलं करोषि? धारयसि? किम् त्वम् आत्मनः अपाङ्गम् नेत्रप्रान्तम् अस्मिन् कर्णशोभासम्पादनरूपे अपर्याप्तम् अशक्तं मन्यसे? कर्णायतलोचनायास्तवापाङ्गेनैव कर्णशोभासम्पादनसंभवे तव स्वकर्णे कुवलयधारणे प्रयोजनं नावधारयामीति भावः। अत्र कर्णे कुवलयधारणस्य क्रियमाणस्यैव कुत इत्यनेन प्रतिषेधः कृतः ॥ १२३ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**स इति**। यतः काचित् नायिका कर्णे असितोत्पलं कुवलयम् कुर्वती एव (न तु कृतवती न वा करिष्यन्ती) चाटुकारेण प्रियामनोऽनुकूलनाय मिष्टभाषिणा प्रियेण एवम् पूर्वोक्तरूपम् रुध्यते निषिद्धयते, अतश्चात्र वर्त्तमानकालिकस्य कुवलयधारणस्य निषेधात् वर्त्तमानाक्षेपोऽयम् ॥ १२४ ॥

हिन्दी—हे मधुरभाषिणि, तुम अपने कानोंमें नीलकमल क्यों धारण कर रही हो? क्या तुम अपने नेत्रप्रान्त (कटाक्ष) को इस कर्णशोभासम्पादनरूप कार्यमें अक्षम मानती हो? ॥ १२३ ॥

यहाँ पर नील कमलका धारण करती हुई कोई सुन्दरी ठकुरसुहाती बोलनेवाले प्रियतमके द्वारा नीलकमल धारण करनेसे रोकी जा रही है, इसमें वर्त्तमान कालमें होते हुए नीलकमलधारणरूप कार्यका प्रतिषेध किया गया है, अतः यह वर्त्तमानाक्षेप नामक आक्षेपप्रभेद हुआ ॥ १२४ ॥

सत्यं ब्रवीमि न त्वं मां द्रष्टुं वल्लभ लप्स्यसे।
अन्यचुम्बनसङ्क्रान्तलाक्षारक्तेन चक्षुषा ॥ १२५ ॥

भविष्यदाक्षेपमुदाहरति—**सत्यमिति**। हे वल्लभ प्रिय, अन्यस्याः मदतिरिक्ताया नायिकायाश्चुम्बनेन नेत्रचुम्बनव्यापारेण सङ्क्रान्तया लग्नया लाक्षया अधरलिप्तया रक्तेन अरुणीकृतेन चक्षुषा स्वनेत्रेण त्वं मां द्रष्टुं न लप्स्यसे प्राप्स्यसि, अन्यां नायिकां जुषमाणस्त्वं तत्कृते नयनचुम्बने तदधरलाक्षया रञ्जितनयनः सन् मदन्तिकमागत्य मां द्रष्टुं न शक्ष्यसि, एतत् सत्यं ब्रवीमि, न मृषा भाषे इत्यर्थः ॥ १२५ ॥

हिन्दी—हे प्रिय, मैं सत्य कहती हूँ, तुम दूसरी नायिकाके नेत्रचुम्बन करने पर उसके अधरलिप्त लाक्षाद्वारा रञ्जित हुए नेत्रोंसे मुझे देखनेका अवसर नहीं पा सकोगे, जभी मुझे पता होगा कि तुमने मुझसे दूसरी नायिकाके साथ सम्पर्क स्थापित किया है, तभी मैं तुमको अपने पास नहीं फटकने दूँगी ॥ १२५ ॥

सोऽयं भविष्यदाक्षेपः प्रागेवातिमनस्विनी।
कदाचिदपराधोऽस्य भावीत्येवमरुन्ध यत् ॥ १२६ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**सोऽयमिति**। अत्र अतिमनस्विनी सातिशयमानशालिनी काचित् नायिका कदाचित् अस्य नायकस्य अपराधः अन्यनायिकोपसरणलक्षणः भावी भविष्यति इति सम्भाव्य प्रागेव अपराधोत्पत्तेः प्रागेव अरुन्ध वारितवती, अतोऽयं भविष्यदाक्षेपः ॥ १२६ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें अतिमानिनी नायिकाने अपने प्रियको पहले ही मना कर दिया है जिससे वह दूसरी नायिकाके साथ सम्पर्कस्थापनारूप अपराध न कर सके, इसमें भविष्यमें किये जानेवाले अपराधका ही प्रतिषेध किया गया है, अतः यह भविष्यदाक्षेप है ॥ १२६ ॥

तव तन्वङ्गि मिथ्यैव रूढमङ्गेषु मार्दवम् ।
यदि सत्यं मृदून्येव किमकाण्डे रुजन्ति माम् ॥ १२७ ॥

एवमाक्षेपस्य सामान्यभेदत्रयमुदाहृत्य तदीयसूक्ष्मभेदानामानन्त्येनाशक्यनिरूपणत्वेऽपि शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं कतिपयभेदप्रदर्शनप्रवृत्त आचार्यो धर्माक्षेपमुदाहरति—**तवेति** । हे तन्वङ्गि कृशगात्रि, तव अङ्गेषु रूढं स्थितं (लोकैस्त्वदङ्गवर्त्तितया प्रसिद्धिं गमितम्) मार्दवं सौकुमार्यं मिथ्यैव असत्यभूतमेव, यदि सत्यं तर्हि तादृशानि मृदूनि एव तेऽङ्गानि अकाण्डे सहसा मां किं कुतो रुजन्ति व्यथयन्ति, सत्यमृदुत्वे व्यथकत्वायोगात्त्वदङ्गानां मार्दवं मृषेति भावः ॥ १२७ ॥

हिन्दी—हे कृशाङ्गि, तुम्हारे अङ्गोंकी प्रसिद्ध मृदुता मिथ्या है, यदि तुम्हारे ये अङ्ग यथार्थमें सुकुमार होते तो मुझे सहसा क्यों पीड़ित करते ? मृदु तो पीड़ा नहीं किया करते ॥ १२७ ॥

धर्माक्षेपोऽयमाक्षिप्तमङ्गनागात्रमार्दवम् ।
कामुकेन यदत्रैवं कर्मणा तद्विरोधिना ॥ १२८ ॥

उदाहरणं योजयति—**धर्माक्षेप इति** । यत् यतः अत्रोदाहरणे एवम् कौशलद्वारा कामुकेन तस्यां नायिकायामनुरक्तेन तद्विरोधिना मार्दवप्रतिकूलेन व्यथाकरणरूपेण कर्मणा अङ्गनायाः तस्या रमण्या गात्राणां मार्दवं सौकुमार्यम् आक्षिप्तं प्रतिषिद्धम्, तस्मादयं मार्दवरूपधर्मस्याक्षेपात् धर्माक्षेप इति ॥ १२८ ॥

हिन्दी—इस प्रकार इस उदाहरणमें कामुक नायकने अङ्गोंके सुकुमारताविरुद्ध व्यथाकरणरूप कर्मसे उस नायिकाके शरीरकी सुकुमारताका प्रतिषेध किया है, अतः यह धर्माक्षेप है, यहाँ पर नायिका-गात्रमार्दवरूप धर्मका आक्षेपप्रतिषेध हुआ है ॥ १२८ ॥

सुन्दरी सा[1] न[2] वेत्येष विवेकः केन[3] जायते ।
प्रभामात्रं हि तरलं दृश्यते न तदाश्रयः ॥ १२९ ॥

धर्म्याक्षेपमुदाहरति—**सुन्दरीति** । सा प्रभाकरनिमग्ना नवगम्यमानकरचरणाद्यवयवा सुन्दरी न वा विद्यते न वा इति एषः विवेकः निश्चयात्मकमेकतरकोटिज्ञानं केन जायते ? कथं भवति, यतः तरलं सर्वतः प्रसृमरतया दृष्टिविघातकम् प्रभामात्रं केवला प्रभा एव दृश्यते, तदाश्रयः तस्याः प्रभाया आधारः (तत्सुन्दरीशरीरम्) न दृश्यते ॥ १२९ ॥

हिन्दी—यह निश्चय कैसे किया जाय कि वह सुन्दरी नायिका है या नहीं ? केवल तरल प्रभा ही तो दीख रही है, उस प्रभाका आश्रय नायिकाशरीर तो दीख ही नहीं रहा है ॥ १२९ ॥

धर्म्याक्षेपोऽयमाक्षिप्तो धर्मी धर्मं प्रभाह्वयम् ।
अनुज्ञायैव[4] यद्रूप[5]मत्याश्चर्यं विवक्षता ॥ १३० ॥

उपपादयति—**धर्म्याक्षेपोऽयमिति** । अत्र अत्याश्चर्यं स्वप्रभया शरीरतिरोधायकं रूपं तन्नायिकासौन्दर्यं विवक्षता प्रतिपिपादयिषता नायकेन प्रभाह्वयं प्रभानामकं धर्मम्

---

१. वा । २. भवत्येवं । ३. कस्य । ४. अनुज्ञायेव । ५. तद्रूपम् ।

नायिकागुणम् अनुज्ञाय स्वीकृत्य एव यत् यतः धर्मी नायिकारूपः आक्षिप्तः प्रतिषिद्धस्तदयं धर्म्याक्षेपरूप आक्षेपभेदः ॥ १३० ॥

हिन्दी—यहाँ अत्यन्त आश्चर्यकर प्रभामात्रदृश्य रूपका प्रतिपादन करनेकी इच्छा रखनेवाला नायक नायिकाके प्रभारूप धर्मको स्वीकार करके नायिकारूप धर्मीका प्रतिषेध करता है अतः यह धर्म्याक्षेप है ॥ १३० ॥

चक्षुषी तव रज्येते स्फुरत्यधरपल्लवः[1]।
भ्रुवौ च भुग्ने[2] न तथाप्यदुष्टस्यास्ति ते भयम् ॥ १३१ ॥

कारणाक्षेपमाह—**चक्षुषी इति**। तव चक्षुषी नयने रज्येते कोपोदयाद्रक्तवर्णतां गच्छतः, अधरपल्लवः पल्लवोपमोष्ठः स्फुरति कोपेन कम्पते, भ्रुवौ भुग्ने कुटिलतां गते, तथाऽपि एवं सत्यपि अदुष्टस्य नायिकान्तरसम्पर्करूपापराधरहितस्य मे मम भयं न भवतीति शेषः ॥ १३१ ॥

हिन्दी—तेरी आँखें लाल हो रही हैं, तेरे अधरपल्लव स्फुरित-चपल हो रहे हैं, और तेरी भौंहें भी टेढ़ी हो रही हैं, फिर अपराधी न होनेके कारण मुझे भय नहीं हो रहा है, नायिकान्तर-सम्पर्करहित होनेसे मैं निर्भय हूँ ॥ १३१ ॥

स एष[3] कारणाक्षेपः प्रधानं कारणं भियः[4]।
स्वापराधो निषिद्धोऽत्र यत्प्रियेण पटीयसा ॥ १३२ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**स एष इति**। पटीयसा चतुरतमेन प्रियेण नायकेन भियः नायिकाऽपादानकस्य भयस्य प्रधानं कारणं स्वापराधो निषिद्धः—अदुष्टस्येति स्वविशेषण-द्वारा प्रतिषिद्धः अतः कारणाक्षेपोऽयम्। अत्र 'न भयम्' इति कथनेन भयरूपकार्यस्य प्रतिषेधादयं कार्याक्षेपोऽपि, तदनयोः कारणाक्षेपकार्याक्षेपयोरत्र सङ्करः ॥ १३२ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें चतुर नायकने भयके प्रधान कारण—नायिकान्तरसम्पर्कजन्य स्वा-पराधका प्रतिषेध कर दिया है अतः इसे कारणाक्षेप कहते हैं। कुछ लोग यहाँपर कार्य 'भय' के प्रतिषेध होनेसे कार्याक्षेप भी मानते हैं, उनके अनुसार यहाँ कारणाक्षेप और कार्याक्षेपका सङ्कर होगा। जो लोग इस तरहका सङ्कर मानते हैं, उनके मतमें शुद्ध कारणाक्षेपका उदाहरण निम्नलिखित है—

'अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः।
किंत्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः प्रियो नान्यतो
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम्' ॥

यहाँ उत्तरार्धद्योत्य पतिवशीकरणकके कारण वसनरुचिरत्वादिका प्रतिषेध किया गया है। प्रधान-कारणनिषेध कारणाक्षेपका विषय होता है, और अप्रधानकारणाभाव विभावनाका विषय होता है। यहाँपर भयके कारण रक्तनेत्रत्वादि शब्दतः कहे गये हैं विभाव्य नहीं हैं, अतः यहाँ विभावना नहीं है, क्योंकि—

'प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत्किञ्चित् कारणान्तरम्। यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना ॥'
विभावनाका यही लक्षण दण्डीने स्वीकार किया है ॥ १३२ ॥

दूरे प्रियतमः सोऽयमागतो जलदागमः।
दृष्टाश्च फुल्ला निचुला न मृता चास्मि किन्विदम् ॥ १३३ ॥

---

१. पल्लवम्। २. भुग्नौ। ३. एव। ४. ह्रियः

कार्याक्षेपमाह—**दूरे प्रियतम इति**। प्रियतमः दूरे विदेशेऽस्तीति शेषः, सोऽयं विरहिजनघातकतया प्रसिद्धो जलदागमः वर्षाकालः आगतः, फुल्लाः कुसुमिताः निचुलाः वेतसतरवः दृष्टाः प्रत्यक्षमवलोकिताश्च, एवं मरणसाधनानां पतिदूरत्ववर्षागमफुल्लनिचुलदर्शनानां जातत्वेऽपि न मृतास्मि जीवामि एव, किन्विदम्, कथमिदं जायते, आश्चर्यमिदमिति भावः ॥ १३३ ॥

हिन्दी—प्रियतम दूरदेशमें हैं, विरहिघातकतया प्रथित वर्षाकाल आ गया, विकसित वेतसतरु मैंने प्रत्यक्ष देखे, फिर भी मैं मरी नहीं, यह क्या बात है ? ॥ १३३ ॥

कार्याक्षेपः स कार्यस्य मरणस्य निवर्त्तनात्।
तत्कारणमुपन्यस्य दारुणं जलदागमम् ॥ १३४ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**कार्याक्षेप इति**। तस्य मरणस्य कारणं दारुणं विरहासह्यं जलदागमं तत्सहचरितं च पतिदूरत्वादिकम् उपन्यस्य अभिधाय, कार्यस्य मरणस्य निवर्त्तनात् प्रतिषेधात् सोऽयं कार्याक्षेपो नाम। अप्रसिद्धकारणोपन्यासे कार्याभावो विशेषोक्तिरिति ततोऽस्य भेदः ॥ १३४ ॥

हिन्दी—यहाँपर मरणके कारण—दारुण वर्षाकालके आनेके साथ पतिवियोगादि कहा गया, परन्तु मरणरूप कार्यका प्रतिषेध कर दिया गया, अतः यह कार्याक्षेप है। यहाँ विशेषोक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि दण्डीके अनुसार अप्रसिद्ध कारणके उपन्यस्त रहने पर भी कार्याभाव ही उसका निदान है ॥ १३४ ॥

न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति।
यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयात्र ते ॥ १३५ ॥[1][2]

अनुज्ञाक्षेपमुदाहरति—**न चिरमिति**। तव यात्रा विदेशगमनम् चिरं बहुकालपर्यन्तं मम तापाय वियोगजनितसन्तापप्रदानाय न भविष्यति, त्वद्विरहे झटित्येव मम प्राणात्यये सति मया कष्टानुभवो न करिष्यते, अतः यदि यास्यसि तर्हि त्वया यातव्यम् गन्तव्यम्, अत्र विषये ते तव आशङ्कया विरहे कथमियं स्थास्यतीति मद्विषयकचिन्तया अलम्, न किमपि चिन्तायाः प्रयोजनम्, त्वद्विरहे मम मरणस्यावश्यं भावित्वादिति भावः ॥ १३५ ॥

हिन्दी—तुम्हारी विदेशयात्रा चिरकालतक मेरे सन्तापका कारण नहीं बनी रह सकेगी, तुम्हारे वियोगमें मैं अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकूंगी, फ़िर सन्ताप होगा किसे ? अतः यदि तुमको जाना है तो जाओ, यहाँके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है ॥ १३५ ॥

इत्यनुज्ञामुखेनैव कान्तस्याक्षिप्यते गतिः।
मरणं सूचयन्त्येति सोऽनुज्ञाक्षेप उच्यते[3] ॥ १३६ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**इत्यनुज्ञेति**। इति अत्रोदाहरणे अनुज्ञामुखेन गमनानुमतिप्रदानविधयैव मरणं सूचयन्त्या तद्विरहेऽवश्यं भाविनं स्वप्राणात्ययं व्यञ्जयन्त्या नायिकया कान्तस्य गतिः विदेशयात्रा आक्षिप्यते प्रतिषिध्यतेऽतोऽनुज्ञाक्षेपोऽयम् ॥ १३६ ॥

---

१ गन्तव्यं। २ गासि। ३ ईरिता:।

हिन्दी—इस उदाहरणमें गमनानुज्ञाप्रदान करनेके द्वारा अपने मरणकी सूचना देनेवाली नायिकाने अपने कान्तकी यात्राका प्रतिषेध किया है अतः इसे अनुज्ञाक्षेप नामक आक्षेप मानते हैं। अनुज्ञाके द्वारा प्रतिषेध किया गया है, अतः यह अनुज्ञाक्षेप कहा गया है।

साहित्यदर्पणकारने इस तरहके प्रसङ्गमें विध्याभास नामक अलङ्कार माना है, और उसका लक्षण यह कहा है :—'अनिष्टस्य तथार्थस्य विध्याभासः परो मतः' ॥ १३६ ॥

धनञ्च बहुलभ्यं ते सुखं क्षेमं च वर्त्मनि।
न च मे प्राणसन्देहस्तथापि प्रिय मा स्म गाः ॥ १३७ ॥

प्रभुत्वाक्षेपमाह—**धनमिति**। अस्यां विदेशयात्रायाम् बहुधनं सम्पत्त्यादि ते तव लभ्यम् अत्र यात्रायां स्वकौशलेन त्वं बहुधनमर्जयिष्यसि, ते तव वर्त्मनि मार्गे सुखम् समयस्यानुकूलतया सौविध्यम्, क्षेमञ्च कुशलमपि, न च मे प्राणसन्देहः त्वद्वियोगकाले मम मरणम् इत्यपि न, सत्यपि कष्टे प्राणाः प्रयास्यन्त्येवेति नाशङ्कनीयम्, तथापि तव धनलाभस्य तथा सुखक्षेमयोर्दृढसम्भावनाविषयत्वे, मम प्राणसन्देहस्य चाशङ्कनीयत्वे सत्यपि हे प्रिय, मा स्म गाः न गच्छ, अत्र केवलं प्रेमप्रकर्षेण यात्रा निरुध्यते ॥ १३७ ॥

हिन्दी—इस यात्रामें आपको बहुत धन मिलेगा, रास्तेमें भी सब प्रकारका सुख तथा मङ्गल प्राप्त होता रहेगा, और इस प्रवासावधिके भीतर मेरे प्राणोंका संशय भी नहीं है, फिर भी हे प्रिय, तुम जाओ मत ॥ १३७ ॥

इत्याचक्षाणया[1] हेतून् प्रिययात्रानुबन्धिनः[2]।
प्रभुत्वेनैव रुद्धस्तत्[3] प्रभुत्वाक्षेप उच्यते ॥ १३८ ॥

उदाहरणं योजयति—**इत्याचक्षाणयेति**। इति प्रोक्तप्रकारेण प्रिययात्रानुरोधिनः नायकप्रवासौचित्यसमर्थकान् हेतून् धनलाभादीन् आचक्षाणया कथयन्त्या कान्तया प्रेमप्रभावोत्पन्नेन स्वाधीनपतिकत्वरूपेण प्रभुत्वेनैव कान्तो रुद्धो गमनान्निवारित इति तत् प्रभुत्वाक्षेपोऽयम् ॥ १३८ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें प्रियकी यात्राके औचित्यका समर्थन करनेवाले धनलाभ, सुख, कुशल, स्वप्राणसंशयविरह, इन सभी कारणोंको कह कर भी नायिकाने प्रेमजनित प्रभुत्वके द्वारा नायककी यात्राका प्रतिषेध कर दिया है, अतः यह प्रभुत्वाक्षेप कहा जाता है ॥ १३८ ॥

जीविताशा बलवती धनाशा दुर्बला मम।
गच्छ वा तिष्ठ वा कान्त स्वावस्था तु निवेदिता ॥ १३९ ॥

अनादराक्षेपमुदाहरति—**जीविताशेति**। हे कान्त, प्रियतम, मम जीविताशा त्वयि समीपस्थे सति जीवितुमिच्छा बलवती धनाशापेक्षया प्रबला, धनाशा त्वां विदेशे प्रस्थाप्य धनकामना दुर्बला जीवितापेक्षया न्यूना, अहं त्वया सह स्थित्वा जीवितुमिच्छामि, न च त्वया विरहय्य धनम्, अस्यां स्थितौ गच्छ वा तिष्ठ वा, मम न तत्र कोऽपि निर्बन्धः, केवलं स्वावस्था निजा स्थितिस्तु निवेदितोक्ता ॥ १३९ ॥

हिन्दी—मेरे हृदयमें आपके साथ रहकर जीते रहनेकी इच्छा बलवती है, धनकी आशा उतनी प्रबल नहीं है, आप चाहे जाँय या रहें, मैंने अपनी स्थिति बता दी। आपके रहने पर ही मैं जी सकती हूँ। और मैं जीना ही चाहती हूँ धन नहीं चाहती, यही मेरी मनोदशा है, इस स्थितिमें आप चाहें तो जा सकते हैं, चाहें तो रुक भी सकते हैं ॥ १३९ ॥

१. प्रत्याच। २. सरोधिनः। ३. तु।

असावनादराक्षेपो यदनादरवद्वचः ।
प्रियप्रयाणं रुन्धत्या प्रयुक्तमिह रक्तया ॥ १४० ॥

उदाहरणमुपपादयति—**असाविति** । इह अत्रोदाहरणे प्रियप्रयाणं नायकस्य विदेशप्रस्थानं रुन्धत्या प्रतिषेधन्त्या रक्तया प्रेमपरायणया नायिकया यत् यस्मात् अनादरवत् गच्छ वा तिष्ठ वा इति स्वौदासीन्यसूचकं वचनं प्रयुक्तम्, ततः असौ अनादराक्षेपो नाम ॥ १४० ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें नायककी यात्राका प्रतिषेध करनेवाली अनुरक्ता नायिकाने अनादरपूर्ण—जाइये या रहिये—ये अनादरयुक्त वचन कहे हैं, अतः इसे अनादराक्षेप कहा जाता है। अनादर द्वारा प्रतिषेध होनेसे अनादराक्षेप हुआ। अनादर यहाँ औदासीन्यस्वरूप है ॥ १४० ॥

गच्छ गच्छसि चेत् कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।
ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान् ॥ १४१ ॥

आशीर्वचनाक्षेपमुदाहरति—**गच्छेति** । हे कान्त, प्रियतम, गच्छसि चेत् त्वया गन्तव्यं चेत् तर्हि गच्छ, पन्थानः मार्गाः ते तुभ्यं शिवाः कल्याणप्रदाः सन्तु जायन्ताम् । यत्र भवान् गतः (भविष्यति) तत्रैव ममापि जन्म भूयात् । त्वयि गते मम त्वदायत्तजीविताया मरणमवश्यं भावि, मरणात्परतश्च पुनर्जन्मनः प्रसङ्गे यत्र भवदास्थितिस्तत्रैव जन्माशासे, येन भवद्दर्शनजन्या तृप्तिरासाद्येतेति भावः ॥ १४१ ॥

हिन्दी—हे कान्त, आप जाते हैं तो अवश्य जायँ, भगवान् आपके मार्गको कल्याणमय करें, मेरी भी यही इच्छा है कि (आपके चले जानेपर विरहकी असह्यतासे प्राणत्याग करनेके बाद) मेरा जन्म उसी स्थानपर हो जहाँ आप गये हों ॥ १४१ ॥

इत्याशीर्वचनाक्षेपो यदाशीर्वादवर्त्मना ।
स्वावस्थां सूचयन्त्यैव कान्तयात्रा निषिध्यते ॥ १४२ ॥

उक्तमुदाहरणं सङ्गमयति—**इतीति** । इति अत्रोदाहरणे कान्तया आशीर्वादवर्त्मना ममापि तत्रैव जन्म भूयाद्यत्र भवान् गतः स्यादिति स्वजन्माशंसापद्धत्या स्वावस्थाम् विरहे प्राणधारणस्याशक्यत्वं सूचयन्त्या एव कान्तयात्रा निषिध्यते इति आशीर्वचनाक्षेपोऽयम् ॥ १४२ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें नायिकाने आशीर्वादके रास्ते—मेरा भी जन्म वहीं हो जहाँ आप गये हों—इस इच्छाको व्यक्त करनेके द्वारा अपनी अवस्था-विरहमें प्राणधारण करनेकी अक्षमताको सूचित करके कान्तकी यात्राका प्रतिषेध किया है अतः यह आशीर्वचनाक्षेप है ॥ १४२ ॥

यदि सत्यैव यात्रा ते काप्यन्या मृग्यतां त्वया ।
अहमद्यैव रुद्धास्मि रन्ध्रापेक्षेण मृत्युना ॥ १४३ ॥
इत्येष परुषाक्षेपः परुषाक्षरपूर्वकम् ।
कान्तस्याक्षिप्यते यस्मात् प्रस्थानं प्रेमनिघ्नया ॥ १४४ ॥

परुषाक्षेपमुदाहरति—**यदीति** । यदि ते यात्रा सत्या एव यदि तव विदेशयात्रा निश्चिता तदा कापि अन्या त्वदीयवियोगेऽपि जीवितधारणक्षमा त्वया मृग्यताम् भार्या-

१. काप्यनुग्राह्यतां । २. रन्ध्रान्वेषेण ।

पदारोपायान्विष्यताम्, यतः अहम् अद्यैव त्वत्प्रस्थानरजन्यामेव रन्ध्रापेक्षेण छिद्रान्वेषिणा मृत्युना रुद्धास्मि प्रिये। त्वयि प्रस्थितमात्रे मम मरणस्यावश्यभावितया त्वया कापि परा स्त्री क्रियतां या त्वदीयं विरहं सोढुं क्षमेतेत्यर्थः ॥ १४३ ॥

उदाहरणमुपपादयति—इतीति। प्रेमनिघ्नया प्रेमाधीनया कान्तया यस्मात् परुषाक्षरपूर्वकम्—त्वया काप्यन्या मृग्यताम्—इति कठोरवचनकथनद्वारेण कान्तस्य प्रस्थानम् प्रवासगमनम् आक्षिप्यते, इत्येषः परुषाक्षेपो नाम ॥ १४४ ॥

हिन्दी—यदि आपका जाना निश्चित है तो आप किसी दूसरी स्त्रीका वरण करके ही विदेश जाइये (जो आपके वियोगमें जीती रह सके), मैं तो छिद्रान्वेषण करनेवाली मृत्युसे आज ही पकड़ ली गई, मरी ॥ १४३ ॥

इस उदाहरण में प्रेमपराधीना नायिकाने अपने प्रियतमकी विदेशयात्राका कठोर शब्द—जाना निश्चित हो तो दूसरी स्त्री करके जाइये—इस निर्मम भाषणके द्वारा प्रतिषेध करती है अतः इसे परुषाक्षेप कहा जाता है ॥ १४४ ॥

गन्ता चेद्गच्छ तूर्णं ते कर्णौ यान्ति पुरा रवाः।
आर्त्तबन्धुमुखोद्गीर्णाः[1] प्रयाणपरिपन्थिनः[2] ॥ १४५ ॥
साचिव्याक्षेप एवैष यदत्र प्रतिषिध्यते।
प्रियप्रयाणं साचिव्यं कुर्वत्येवा[3]तिरक्तया ॥ १४६ ॥

साचिव्याक्षेपं विवरीतुमुदाहरणमाह—गन्ता चेदिति। त्वं गन्ता चेत् अवश्यं प्रवासगामी चेत् तूर्णं शीघ्रं गच्छ प्रस्थानं कुरु, पुरा यावत् आर्त्तबन्धुमुखोद्गीर्णाः मन्मृत्युदुःखितबान्धवजनमुखनिर्गताः प्रयाणपरिपन्थिनः यात्राप्रतिबन्धकाः रवाः मन्मरणोपरान्तक्रन्दनध्वनयः कर्णौ यान्ति ते श्रुतिं प्रवेक्ष्यन्ति। यदि गन्तव्यमेव तर्हि शीघ्रं गच्छ यावन्मम मरणेन पीडितानां बान्धवानां क्रन्दनध्वनयस्तव कर्णं प्रविश्य यात्रां न प्रतिबध्नन्ति, तेषु श्रूयमाणेषु तव यात्रा विहता स्यादिति भावः ॥ १४५ ॥

नामकरणं योजयति—साचिव्येति। यत् यस्मात् अत्र उदाहरणेऽस्मिन् साचिव्यं कुर्वत्या तूर्णं गच्छेति कथनेन गमने सहायतां विरचयन्त्या इव अतिरक्तया सातिशयप्रेमपरायणया नायिकया प्रियप्रयाणं नायकस्य परदेशप्रस्थानं प्रतिषिध्यते भाविस्वमृत्युसूचनया निषिध्यते, तस्मादेषः साचिव्याक्षेपः सहायतापूर्वकनिषेधद्वारा साचिव्याक्षेपनामा प्रभेद इति ॥ १४६ ॥

हिन्दी—यदि आपको जाना है तो शीघ्र जाइये, जिससे हमारे मरने पर बान्धवोंके मुखोंसे निकलनेवाली रोदनध्वनि आपके कानोंमें पैठकर आपकी यात्राका प्रतिबन्ध नहीं कर सके ॥ १४५ ॥

इस उदाहरणमें नायिका नायकके जानेमें सहायता करती हुई-सी प्रतीत होती है, परन्तु वह भावि स्वमरणबोधनद्वारा वस्तुतः नायककी यात्राका प्रतिषेध कर रही है, अतः इसे साचिव्याक्षेप कहते हैं क्योंकि इसमें साचिव्य—सहायता करके ही प्रतिषेध किया गया है ॥१४६॥

गच्छेति वक्तुमिच्छामि मत्प्रियं त्वत्प्रियैषिणी[4]।
निर्गच्छति मुखाद्वाणी मा गा इति करोमि किम् ॥ १४७ ॥

---

१. जनोद्गीर्णाः। २. प्रतिपन्थिनः। ३. कुर्वन्त्यव। ४. त्वत्प्रियं मत्प्रिये।

यत्नाक्षेपः स यत्नस्य कृतस्यानिष्टवस्तुनि ।
विपरीतफलोत्पत्तेरानर्थक्योपदर्शनात्[1] ॥ १४८ ॥

यत्नाक्षेपमुदाहरति—**गच्छेतीति** । हे मत्प्रिय मम प्राणवल्लभ, त्वत्प्रियैषिणी त्वदीयप्रियं कामयमाना अहम् गच्छ इति वक्तुमिच्छामि त्वदीयं गमनमनुमन्तुमभिलषामि, परन्तु मुखात् मा गा इति निषेधपरा वाणी वाक् निर्गच्छति बहिर्याति । किं करोमि ? प्रयत्ने कृतेऽप्यसाफल्यादुपायरहितास्मि संवृत्तेति भावः ॥ १४७ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**यत्नाक्षेप इति** । अनिष्टवस्तुनि स्वानभिमतेऽपि गच्छेति वचनोच्चारणरूपे पदार्थे कृतस्य यत्नस्य स्वचेष्टायाः विपरीतफलोत्पत्तेः मा गाः इति वचनोच्चारणरूपान्यथाफलदर्शनात् आनर्थक्योपदर्शनात वैयर्थ्यप्रकाशनात् सोऽयं यत्नाक्षेपो नाम । अयमाशयः—अत्र नायिकया कान्तं प्रति गच्छेति वक्तुकामया मया तथा वक्तुमिष्यते, किन्तु तद्विपरीतं मा गा इत्येवोच्चार्यते इति स्वीयप्रयत्नस्य वैफल्यं विपरीतफलोत्पत्तिप्रकाशनविधया प्रकाश्यते, तत्र तया प्रियेच्छानुसरणयत्नः कृतस्तेन च विपरीतं फलं जनयता गमनं प्रियेष्टं प्रतिषिध्यते इति ॥ १४८ ॥

हिन्दी—हे मेरे प्रियतम, तुम्हारा प्रिय चाहनेवाली मैं यद्यपि 'जाओ' यही कहना चाहती हूँ, परन्तु मेरे मुखसे निकलती है 'नहीं जाओ' यह वाणी । मैं क्या करूँ, मैं यत्न करती हूँ कि 'जाओ' कहूँ, परन्तु उस यत्नके द्वारा मेरे मुखसे वाणी निकलती है कि 'मत जाओ' । इस स्थितिमें मैं क्या कर सकती हूं ॥ १४७ ॥

इस उदाहरणमें नायिका ने स्वानभिमत—'जाओ' इस शब्दको मुखसे निकालनेका प्रयास किया, परन्तु फल विपरीत हुआ—मुखसे निकला नहीं जाओ, उसे प्रयत्नमें विफलता मिली । इस तरह किये गये प्रयत्नसे नायककी प्रवासयात्राका प्रतिषेध हुआ है, अतः यह यत्नाक्षेप है ॥ १४८ ॥

[2]क्षणं दर्शनविघ्नाय पक्ष्मस्पन्दाय कुप्यतः ।
प्रेम्णः प्रयाणं त्वं[3] ब्रूहि मया तस्येष्टमिष्यते ॥ १४९ ॥
[4]सोऽयं परवशाक्षेपो यत्प्रेमपरतन्त्रया ।
तया निषिध्यते [5]यात्राऽन्यस्यार्थस्योपसूचनात् ॥ १५० ॥

परवशाक्षेपमुदाहरति—**क्षणमिति** । हे प्रिय, क्षणं स्वल्पकालम् दर्शनविघ्नाय त्वदवलोकनपरिपन्थिने पक्ष्मस्पन्दाय निमेषाय कुप्यतः निमेषमप्यसहमानस्य प्रेम्णः अनुरागस्य (समीपे) त्वं निजं प्रयाणं ब्रूहि निवेदय, मया तस्य प्रेम्णो यदिष्टं तदेवेष्यते । गन्तुकामेन त्वया त्वद्विलोकनविघ्नकारितया निमेषमप्यसहमानः प्रेमैव स्वयात्राविषये वक्तव्यः, मां तु वृथैवानुज्ञां याचसे, यतो मया तु तस्य प्रेम्णो यदिष्टं तदेवेष्यते, प्रेमपराधीनाया ममानुमतेर्याचनयाऽलमिति भावः ॥ १४९ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**सोऽयमिति** । यत् यस्मात् प्रेमपरतन्त्रया स्नेहवशीभूतया तया नायिकया अन्यस्य स्वापेक्षया भिन्नस्य अनुज्ञायाचनोपयुक्तस्यार्थस्य प्रेमरूपस्योपसूचनात् यात्रा कान्तस्य प्रस्थानं निषिध्यते सोऽयं परवशाक्षेपो नाम । अत्र स्वस्याः प्रेमपरवशां प्रदर्श्य नायिकया कान्तयात्रा प्रतिषिद्धेति परवशाक्षेपोऽयमिति भावः ॥ १५० ॥

---

१. सचनात् । २. क्षणदर्शन । ३. तै । ४. अयं । ५. यात्रेत्यस्यार्थ ।

हिन्दी—हे प्रिय, आप जानेके सम्बन्धमें मेरे उस प्रेमसे ही अनुमति मांगिये जो क्षणभरके लिये आपके दर्शनमें विघ्न उत्पन्न करने वाले निमेषपर भी कुपित होता रहता है, मैं तो उस प्रेमके इष्टको ही पसन्द करूंगी। मैं प्रेमपराधीन हूँ, मेरी अनुमति कोई वस्तु नहीं है, आप प्रेमसे ही अनुज्ञा मांगें ॥ १४९ ॥

इस उदाहरणमें प्रेमपरतन्त्र उस नायिकाने स्वभिन्न प्रेमसे अनुज्ञा मांगनेको कहा, अन्य-स्वभिन्न-प्रेमरूप अर्थको अनुज्ञायाचनपात्रत्वेनोपयुक्त बताया, इस तरह अपनी परवशता दिखाकर नायककी यात्राका निषेध किया, इसे परवशाक्षेप कहते हैं ॥ १५० ॥

सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम।
[1]यदक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहर्त्ता[2] मां न पश्यति ॥ १५१ ॥
दुष्करं जीवनोपायमुपन्यस्योपरुध्यते।
पत्युः प्रस्थानमित्याहुरुपायाक्षेपमीदृशम् ॥ १५२ ॥

उपायाक्षेपमुदाहरति—**सहिष्य इति**। हे नाथ, (अहम्) विरहं त्वद्वियोगं सहिष्ये, तदर्थम् मम अदृश्याञ्जनम् अदृश्यतासम्पादकं कज्जलम् (यदक्तनेत्रो नान्यैर्दृश्यते) देहि, यदक्तनेत्रां येन अदृश्याञ्जनेनाञ्जितनयनां मां प्रहर्त्ता उत्पीडनकरः कन्दर्पो न पश्यति न वीक्षते ॥ १५१ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**दुष्करमिति**। ईदृशं दुष्करं कठिनम् जीवनस्य नायिकाजीवनधारणस्य उपायम् अदृश्याञ्जनप्रदानम् उपन्यस्य कथयित्वा पत्युः प्रस्थानं यात्रा उपरुध्यते, सति गमनस्यावश्यकत्वे सिद्धाञ्जनं मह्यं प्रदाय प्रस्थेयमिति कठिनं यात्रोपायमभिधायोपायस्यासाध्यतया यात्रा निषिध्यत इत्ययमुपायाक्षेप इति कवय आहुः ॥ १५२ ॥

हिन्दी—हे नाथ, मैं आपका विरह सह लूंगी परन्तु आप मुझे अदृश्याञ्जन देते जाइये, जिस अञ्जनको आँखोंमें लगानेके बाद प्रहार करनेवाला कामदेव मुझे नहीं देख सकेगा।

अदृश्याञ्जन एक प्रकार का मन्त्रसाधित कज्जल होता है उसे जो अपनी आँखोंमें लगा लेता है उसे दूसरे नहीं देख पाते हैं। इस अदृश्याञ्जन की गणना अष्टसिद्धियोंमें की जाती हैं, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने सत्यहरिश्चन्द्रमें—अञ्जन, गुटिका, पादुका, धातुसिद्धि वेताल,………मोहिसिद्ध इहिकाल' में इसीकी गणना की है ॥ १५१ ॥

इस उदाहरणमें अदृश्याञ्जन-प्रदानरूप अतिकठिन जीवनोपाय बताकर प्रियतम की यात्राका प्रतिषेध किया गया है, इस तरहके आक्षेपको उपायाक्षेप कहते हैं ॥ १५२ ॥

प्रवृत्तैव प्रयामीति वाणी वल्लभ ते मुखात्।
अयताऽपि त्वयेदानीं मन्दप्रेम्णा ममास्ति किम् ॥ १५३ ॥
रोषाक्षेपोऽयमुद्रिक्तस्नेहनिर्यन्त्रि[3]तात्मना ।
संरब्धया प्रियारब्धं प्रयाणं यन्निषिध्यते[4] ॥ १५४ ॥

रोषाक्षेपमुदाहरति—**प्रवृत्तैवेति**। हे वल्लभ, ते तव मुखात् प्रयामि गच्छामि इति वाणी एतादृशमरुन्तुदम् वचनम् प्रवृत्ता एव, निर्गता एव, अतीवाश्चर्यजनकमेतद्यत्त्वं मां वल्लभां मन्यमानोऽपि प्रयामीति प्राणहरं वचनमुदचारयः इति। इदानीम्—अयता केनापि प्रतिबन्धेन अगच्छता अपि मन्दप्रेम्णा प्रयामीति कथनानुमितानुरागशैथिल्येन त्वया मम

१. यदक्तनेत्रां। २. प्रहर्तुं। ३. यन्त्रणा। ४. निवार्यते।

किम् (प्रयोजनम्) अस्ति । शिथिले प्रेमणि प्रमापिते गच्छामीति कथनेन, त्वं तिष्ठ गच्छ वा, नास्ति मम कोऽपि विशेष इत्यर्थः ॥ १५३ ॥

सङ्गमयति–रोषाक्षेपोऽयमिति । उद्रिक्तः परां काष्ठामारूढो यः स्नेहस्तेन नियन्त्रितः प्रियगमनवृत्तश्रवणे सति विह्वलीकृत आत्मा यस्यास्तया संरब्धया कुपितया नायिकया प्रियारब्धं नायकेन क्रियमाणं प्रयाणं विदेशगमनम् यत् यस्मात् निषिध्यते तदयम् रोषाक्षेपो नाम । रोषेणाक्षेपो रोषाक्षेपः । अत्र व्यङ्ग्य एव प्रतिषेधो बोध्यः ॥ १५४ ॥

हिन्दी—हे वल्लभ, जब तुम्हारे मुखसे 'जाता हूँ' यह बात निकल ही गई, तब अब तुम जाओ या ठहरो, तुम्हारे प्रेममें तो शिथिलता आ ही गई है (जिसका प्रमाण यही है कि तुम 'जाता हूँ' यह शब्द कह सके, यदि प्रेममें शिथिलता नहीं आई रहती तो तुम ऐसा कह ही नहीं सकते थे), फिर तुमसे मुझे क्या प्रयोजन है, नहीं जानेपर भी तुमसे मुझे क्या मतलब रह गया ॥ १५३ ॥

इस उदाहरणने अतिप्रगाढ़ प्रेमसे विह्वलहृदय होकर कुपित हो गई है, और अपने कोपसे अब मुझे तुमसे–शिथिलस्नेह तुमसे–क्या प्रयोजन है, यह कहलानेवाले क्रोधसे प्रियके प्रस्थानको रोका है—प्रतिषिद्ध कर दिया है, अतः यह रोषाक्षेप है ॥ १५४ ॥

मुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणादेव मूर्च्छिता ।
बुद्ध्वा वक्ति प्रियं[1] दृष्ट्वा किं चिरेणागतो भवान् ॥ १५५ ॥
इति तत्कालसंभूतमूर्च्छयाऽऽक्षिप्यते गतिः ।
कान्तस्य कातराक्ष्या यन्मूर्च्छाक्षेपः स ईदृशः ॥ १५६ ॥

मूर्च्छाक्षेपमुदाहरति—**मुग्धेति** । मुग्धा सुन्दरी नायिका कान्तस्य स्वप्रियतमस्य यात्रोक्तिश्रवणात् प्रयाणसूचकवचनाकर्णनात् एव (प्रयाणात् प्राक् तदुक्तिश्रवणमात्रात्) मूर्च्छिता अचेतनतां गता, (कृतेषु बन्धुभिर्व्यजनपवनजलप्रोक्षणादिषु) बुद्ध्वा मूर्च्छापगमे संज्ञां लब्ध्वा प्रियं च (तत्रस्थितं) दृष्ट्वा किं भवान् चिरेणागत इति वक्ति प्रियं पृच्छति ॥ १५५ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**इति तत्कालेति** । इति एवं प्रकारेण तत्कालसंभूतमूर्च्छया प्रियप्रयाणोक्तिश्रवणसमकालोत्पन्नमोहेन (करणेन) कातराक्ष्या अधीरलोचनया तया सुन्दर्या (कर्तृभूतया) कान्तस्य गतिः आक्षिप्यते प्रतिषिध्यते, तदयं मूर्च्छया गतेराक्षेपान्मूर्च्छाक्षेपो नामालङ्कारः ॥ १५६ ॥

हिन्दी—प्रियतमकी यात्राकी बात सुनते ही वह भोली नायिका मूर्च्छित हो गई, (उसका प्रियतम नहीं जा सका, उपचार करने पर जब) वह चेतनामें आई, तब उसने अपने प्रियतमसे पूछा कि आप बड़ी देरसे आये हैं या अभी आ रहे हैं, आपको आये कितना समय हुआ ॥ १५५ ॥

इस उदाहरणमें कातरनयना वह भोली नायिका प्रियतमके जानेकी बात सुनते ही मूर्च्छित होकर प्रियतमके गमनका प्रतिषेध सद्यःसञ्जात स्वमूर्च्छा द्वारा करती है अतः इसे मूर्च्छाक्षेप कहा जाता है ॥ १५६ ॥

नाघ्रातं न कृतं कर्णे स्त्रीभिर्मधुनि नार्पितम् ।
[2]त्वद्द्विषां दीर्घिकास्वेव विशीर्णं नीलमुत्पलम् ॥ १५७ ॥

---

१. प्रियाश्लिष्टा । २. तद्विषां ।

असावनुक्रोशाक्षेपः[1] सानुक्रोशमिवोत्पले ।
व्यावर्त्य कर्म तद्योग्यं शोच्यावस्थोपदर्शनात्[2] ॥ १५८ ॥

सानुक्रोशाक्षेपमाह—नाघ्रातमिति । त्वद्द्विषां त्वदरीणां स्त्रीभिः नीलमुत्पलम् नीलकमलं नाघ्रातम्, न कर्णे कृतं कर्णालङ्कारतां गमितम्, न मधुनि मद्येऽर्पितं सुगन्धवर्द्धनाय न्यस्तम्, एवम् तद् नीलोत्पलम् दीर्घिकास्वेव वापीष्वेव विशीर्णम् कालपरिणामात् क्षयं गतम् । इदं राजस्तुतिपरं पद्यम् । तत्र च कविना वर्णनीयस्य राज्ञो दीर्घिकाविकसितनीलोत्पलव्यर्थजीर्णतावर्णनेन तद्रिपुस्त्रीणां वैधव्यं व्यञ्जितं, वनगमनं वा, उभयथापि नीलोत्पलानुपयोगसम्भवात् ॥ १५७ ॥

उपपत्तिं विशदयति—असाविति । उत्पले नीलकमले सानुक्रोशं दयापूर्वकम्—अनुपयुक्तस्य तस्य शोच्यताप्रकाशनपूर्वकम्—तद्योग्यं नीलकमलार्हं कर्म स्त्रीजनकर्तृकाघ्राणकर्णभूषणीकरणमद्यन्यसनादि व्यावर्त्य प्रतिषिध्य शोच्यावस्थोपदर्शनात् वृथा विशीर्णत्वरूपावस्थावर्णनात् असौ पूर्वदर्शितोदाहरणोऽनुक्रोशाक्षेपो नाम । अनुक्रोशपूर्वकम् नाघ्रातमित्यादि निषेधदर्शनादनुक्रोशाक्षेप इति संज्ञा ॥ १५८ ॥

हिन्दी—आपके शत्रुओंकी वापीमें (बावलीमें) खिलनेवाले नीलकमलको आपकी शत्रुस्त्रियोंने न सूंघा, न कानोंमें अलङ्काररूपमें धारण किया और न मद्यको सुवासित करनेके लिए उसमें ही डाला, वह नीलकमल उस वापीमें कालक्रमसे यों ही विशीर्ण हो गया, झड़ गया ॥ १५७ ॥

इसे अनुक्रोशाक्षेप कहा गया है, क्योंकि नीलकमलका कोई उपयोग नहीं हुआ, इसलिये उसकी दयनीयावस्था बताकर उसके योग्य कार्य आघ्राण, अलङ्काररूपमें कर्णन्यसन और मद्यसुवासनार्थं मद्यमें स्थापन का प्रतिषेध किया गया है । अनुक्रोश—दयाके द्वारा आक्षेपप्रतिषेध हुआ अतः इसे अनुक्रोशाक्षेप कहा गया ॥ १५८ ॥

अमृतात्मनि पद्मानां द्वेष्टरि स्निग्धतारके ।
मुखेन्दौ तव सत्यस्मिन्नपरेण किमिन्दुना ॥ १५९ ॥
इति मुख्येन्दुराक्षिप्तो गुणान् गौणेन्दुवर्त्तिनः ।
तत्समान् दर्शयित्वेह श्लिष्टाक्षेपस्तथाविधः[3] ॥ १६० ॥

श्लिष्टाक्षेपमुदाहरति—अमृतात्मनीति । अमृतात्मनि परमाह्लादकतयाऽमृतस्वरूपे पद्मानां कमलानां द्वेष्टरि सौन्दर्यातिशयकृतेन द्वेषेण शत्रौ, स्निग्धतारके स्निग्धाक्षिकनीनिकाशालिनि अस्मिन् पुरोवर्त्तिनि तव मुखेन्दौ मुखरूपे चन्द्रे सति विद्यमाने अपरेण आकाशगतेन इन्दुना किम् ? नास्ति किमपि प्रयोजनम् ? अत्र पूर्वोक्तानि मुखेन्दुविशेषणानि अमृतात्मनीत्यादीनि चन्द्रेऽपि विभक्तिविपरिणामेन योज्यानि, तत्रामृतात्मनि इत्यस्यामृतमय इति, पद्मानां द्वेष्टरि सङ्कोचनपरे, स्निग्धतारके इत्यस्य चानुकूलतारारूपभार्ये इत्यर्थः ॥ १५९ ॥

उदाहरणं विवृणोति—इतीति । इह अत्रोदाहरणं इति अनेन प्रकारेण गौणेन्दुवर्त्तिनो मुखरूपचन्द्रे स्थितान् गुणान् अमृतात्मत्वादीन् तत्समान् मुख्येन्दुगुणसदृशान् दर्शयित्वा प्रकाश्य श्लिष्टविशेषणद्वारा प्रकल्प्य मुख्येन्दुराकाशस्थश्चन्द्र आक्षिप्तः वैयर्थ्येन प्रतिषिद्ध इति श्लिष्टाक्षेपोऽयम् । श्लिष्टपदन्यासेन आक्षेपः श्लिष्टाक्षेप इति नामकरणबीजम् ॥ १६० ॥

---

१. सानुक्रोशोयमाक्षेपः । २. पवर्णनात् । ३. विधिः ।

हिन्दी—अमृतसमान स्वादुरस, कमलके द्वेषी, चिकनी कनीनिकाओंसे युक्त इस मुखचन्द्रके रहते अन्य आकाशस्थ चन्द्रमाकी क्या आवश्यकता है, आकाशस्थ चन्द्रमामें भी अमृतमयता, पद्मसङ्कोचकत्व, स्नेहशील तारारूप स्त्रीसे युक्तत्व रूप तीनों विशेषण विभक्तिविपरिणामसे लगाये जा सकते हैं ॥ १५९ ॥

इस उदाहरणमें गौणचन्द्र-मुखचन्द्रमें रहने वाले अमृतात्मत्व, पद्मद्वेष्टृत्व, स्निग्धतारकत्व रूप धर्मोंको मुख्यचन्द्रवर्ति धर्म समान बताकर-श्लिष्ट विशेषणोपन्यास द्वारा दोनों चन्द्रोंके धर्ममें समानताकी कल्पना करके-मुख्यचन्द्रमाका कैमर्थ्येन प्रतिषेध किया गया है, किंप्रयोजनं कहकर आक्षेप हुआ है, अतः यह श्लिष्टाक्षेप है ॥ १६० ॥

अर्थो न संभृतः कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता ।
न तपः सञ्चितं किञ्चिद्गतं च सकलं वयः ॥ १६१ ॥
असावनुशयाक्षेपो यस्मादनुशयोत्तरम् ।
अर्थार्जनादेर्व्यावृत्तिर्दर्शितेह[1] गतायुषा ॥ १६२ ॥

अनुशयाक्षेपं विवृणोति—**अर्थो नेति** । कश्चित् सुवर्णादिरर्थो न संभृतो न संचितः, काचित् विद्या पदवाक्यप्रमाणाद्यन्यतमशास्त्रज्ञानम् न अर्जिता, किञ्चित् तपः कृच्छ्रसान्तपनादिकम् न सञ्चितम् नानुष्ठितम्, सकलञ्च वयः जीवनं गतम् ॥ १६१ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**असाविति** । यस्मात् इह अत्रोदाहरणे अनुशयोत्तरं पश्चात्तापादनन्तरम् गतायुषा वृद्धेन केनचित् अर्थार्जनादेः घनविद्यातपस्सञ्चयप्रभृतेः व्यावृत्तिः स्वीयाऽकृतकार्यता दर्शिता व्यञ्जिता, अतोऽसावनुशयाक्षेपो नाम । अनुशयपूर्वक आक्षेपोऽनुशयाक्षेप इति संज्ञारहस्यम् ॥ १६२ ॥

हिन्दी—न कुछ धन एकत्र किया, न विद्याध्ययन कर सका और न कुछ तपस्या ही की । इस प्रकार मेरी सारी जिन्दगी व्यर्थ चली गई ॥ १६१ ॥

यह अनुशयाक्षेप नामक अलङ्कार है क्योंकि इस पद्यमें बूढ़ा आदमी पश्चात्ताप करनेके बाद धनादि-सञ्चयका प्रतिषेध करता है । अनुशयपूर्वक आक्षेप अनुशयाक्षेप है यही इस नामसे व्यक्त होता है ॥ १६२ ॥

किमयं शरदम्भोदः किं वा हंसकदम्बकम् ।
रुतं नूपुरसंवादि श्रूयते तन्न तोयदः ॥ १६३ ॥
इत्ययं संशयाक्षेपः संशयो यन्निवर्त्यते[2] ।
धर्मेण हंससुलभेनास्पृष्टघनजातिना ॥ १६४ ॥

संशयाक्षेपमाह—**किमयमिति** । अयं वियति दृश्यमानः शरदम्भोदः शरत्कालिकः स्वच्छो मेघः किम् ? किंवा अथवा हंसकदम्बकम् हंससमूहः ? (यतः) नूपुरसंवादि नूपुरशब्दसदृशम् रुतं शब्दः श्रूयते, तत् ततोऽयं तोयदो मेघो न भवति । पारिशेष्यादयं हंससमूह एव, तस्यैव तादृशशब्दयुतत्वादिति भावः ॥ १६३ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**इतीति** । इति उक्तरूपोऽयं संशयाक्षेपो नाम, यतोऽत्र अस्पृष्टघनजातिना मेघसामान्यमस्पृशता तदसंबद्धेन हंससुलभेन हंसेषु प्रतीतेन धर्मेण नूपुरसंवादिरुतेन संशयो मेघोऽयं हंसनिवहो वेत्येवंरूपः सन्देहः निवर्त्यते दूरीक्रियते,

१. दर्शितेयं । २. निवार्यते ।

संशयस्यैकतरकोटिनिर्णयावधिजीवितत्वात्, नूपुरशब्देन हंसत्वनिर्णये संशयनिवृत्तेरवश्यंभावादिति भावः ॥ १६४ ॥

हिन्दी—क्या यह शरद् समयका मेघ है या मानससे लौटने वाला हंससमूह है? नूपुरके शब्दसे मिलता-जुलता सा शब्द सुनाई पड़ रहा है, अतः यह मेघ नहीं है ॥ १६३ ॥

यह संशयाक्षेप कहा जाता है क्योंकि इसमें मेघजातिके साथ कभी नहीं देखा जानेवाला और हंसजातिमें देखा जाने वाला नूपुरशब्दसदृश शब्द संशयको निवृत्त कर देता है ॥ १६४ ॥

चित्रमाक्रान्तविश्वोऽपि विक्रमस्ते न तृप्यति[1]।
कदा वा दृश्यते तृप्तिरुदीर्णस्य हविर्भुजः ॥ १६५ ॥
अयमर्थान्तराक्षेपः प्रक्रान्तो यन्निवार्यते[2]।
विस्मयोऽर्थान्तरस्येह दर्शनात्तत्सधर्मणः ॥ १६६ ॥

अर्थान्तराक्षेपमुपस्थापयति—**चित्रमिति**। आक्रान्तविश्वः वशीकृतसकलसंसारः अपि ते तव विक्रमः न तृप्यति न सन्तुष्यति इति चित्रम् आश्चर्यम्। वा अथवा उदीर्णस्य दीप्तस्य हविर्भुजो वह्नेः कदा तृप्तिः दृश्यते न कदापि वह्नेस्तृप्तिस्तथैव तव पराक्रमस्यापीति भावः ॥ १६५ ॥

उदाहरणं योजयति—**अयमिति**। इह पूर्वोक्तोदाहरणे तत्सधर्मणः विक्रमसमानस्य अर्थान्तरस्य उदीर्णहविर्भुजः दर्शनात् उपस्थापनात् प्रक्रान्तो विस्मयः यत् निवार्यते, अतोऽयमर्थान्तराक्षेपो नाम ॥ १६६ ॥

हिन्दी—सारे संसारको आक्रान्त करके भी आपका पराक्रम तृप्त नहीं हो रहा है, अथवा क्या उद्दीप्त वह्निकी तृप्ति भी कहीं देखी गई है ॥ १६५ ॥

यह अर्थान्तराक्षेप कहा जाता है क्योंकि इसमें पराक्रमके समान तेजस्वितारूप धर्मसे युक्त प्रदीप्त पावकरूप अर्थान्तरका उपस्थापन करके प्रकृत विस्मयका आक्षेप—प्रतिषेध किया गया है ॥ १६६ ॥

न स्तूयसे[3] नरेन्द्र त्वं ददासीति कदाचन।
स्वमेव मत्वा गृह्णन्ति यतस्त्वद्धनमर्थिनः ॥ १६७ ॥
इत्येवमादिराक्षेपो हेत्वाक्षेप इति स्मृतः।
अनयैव दिशाऽन्योऽ[4]पि विकल्पः शक्य ऊहितुम् ॥ १६८ ॥

(इत्याक्षेपचक्रम्)

हेत्वाक्षेपमुपन्यस्यति—**न स्तूयस इति**। हे नरेन्द्र, राजन्, त्वं ददासीति कृत्वा कदाचन कदाचिदपि न स्तूयसे न प्रशस्यसे, यतः अर्थिनो याचकास्तव धनं स्वं निजस्वत्वास्पदम् एव मत्वा ज्ञात्वा गृह्णन्ति। एवञ्च स्वं धनं गृह्णतां कुतः स्तुतिप्रवृत्तिरिति भावः ॥ १६७ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**इत्येवमिति**। इति एवमादिः एतत्सदृशः आक्षेपः हेत्वाक्षेपः, प्रस्तुतस्य नरेन्द्रस्तवस्य 'स्वमेव मत्वा गृह्णन्ति त्वद्धनमर्थिनः' इति हेतुमुपन्यस्य आक्षेपात्। पूर्वोक्ते कारणाक्षेपे कारणस्याक्षेपः, अत्र तु कारणेन प्रस्तुतस्यार्थान्तरस्या-

---

१. शाम्यति। २. निवर्त्यते। ३. श्रूयसे। ४. अन्योऽपि विकल्पाः शक्यमूहितुम्।

क्षेप इति द्वयोर्भेदः। अनया पूर्वदर्शितया एव दिशा पद्यस्याऽन्योपि विकल्पः आक्षेपालङ्कारप्रभेदः (बुद्धिमद्भिरूहितुं शक्यः) ॥ १६८ ॥

हिन्दी—हे नरेन्द्र, आपकी प्रशंसा दान देते रहने पर भी इसलिये नहीं की जाती है कि याचकवृन्द आपके धनको अपना ही धन मानकर लेते हैं। आपके धनमें याचकों को स्वत्व मालूम पड़ता है, अतः आपके द्वारा दान दिये जाने पर भी आपकी स्तुति नहीं की जाती है ॥ १६७ ॥

इस तरहके आक्षेप हेत्वाक्षेप कहे जाते हैं, क्योंकि इसमें प्रस्तुत नरेन्द्रस्तवका 'याचकवृन्द आपके धनको अपना धन समझके ले जाते हैं' यह हेतु बताकर प्रतिषेध—आक्षेप किया गया है। इसी प्रकार आक्षेपालङ्कारके अन्य प्रभेदोंका भी बुद्धिमान् जन स्वयम् ऊह कर लेंगे ॥ १६८ ॥

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ॥ १६९ ॥

क्रमप्राप्तमर्थान्तरन्यासं नामालङ्कारं लक्षयति—ज्ञेय इति। किञ्चन किमपि वस्तु प्रकृतम् प्रस्तुत्य उपन्यस्य, तस्य प्रस्तुतस्य साधने सोपपत्तिकतयोपपादने समर्थस्य (असंभाव्यतया सन्दिह्यमानस्य प्रकृतार्थस्य सोपपत्तिकतयोपपादने कुशलस्य) अन्यस्य अप्रकृतस्य यः न्यासः निवेशः सोऽयमर्थान्तरन्यासो नामालङ्कारः। कस्यापि प्रस्तुतस्य वस्तुनः पूर्वमुपन्यासे कृते (तस्यासम्भाव्यतायां तर्कितायां) तत्साधनसमर्थस्याप्रस्तुतस्य वस्तुन उपन्यास एवार्थान्तरन्यास इति भावः ॥ १६९ ॥

हिन्दी—किसी प्रस्तुत वस्तुका उपन्यास करके (उसकी अनुपपद्यमानताकी सम्भावना होने पर) उस प्रस्तुत अर्थके साधन—उपपादनमें समर्थ अप्रस्तुत वस्तुके उपन्यासको ही अर्थान्तरन्यास नामक अलङ्कार जानना चाहिये। इस मूल लक्षणमें 'किञ्चन प्रकृतं वस्तु प्रस्तुत्य अन्यस्य अप्रकृतस्य वस्तुन उपन्यासः' ऐसा अन्वय किया जाता है, जिससे यह ध्वनि निकल सकती है कि प्रस्तुतका पूर्वमें उपन्यास हो और अप्रस्तुतका बादमें, तभी अर्थान्तरन्यास होगा, परन्तु यह बात नहीं है, अप्रस्तुतका भी पूर्वोपन्यास और प्रस्तुतका पश्चादुपन्यास होने पर आचार्योंने अर्थान्तरन्यास माना है, जैसे—

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥'

यह सन्ध्यावर्णन है, उत्तरवाक्यार्थ ही प्रस्तुत है, पूर्ववाक्यार्थ उसके समर्थनके लिये है, वह अप्रस्तुत है। यदि प्रस्तुतका पूर्वनिर्देश अवश्यापेक्षित होता तब इसमें अर्थान्तरन्यास कैसे माना जाता। इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वमें या आगे, कहीं भी रहनेवाले प्रस्तुतके समर्थनके लिए अप्रस्तुतके उपन्यासको अर्थान्तरन्यास कहा जायगा। समर्थ्य-समर्थकभावमें अर्थान्तरन्यासवादी काव्यप्रकाशकारने समर्थ्य और समर्थक वाक्यार्थोंमें सामान्य-विशेषभाव आवश्यक माना है। उनके अनुसार कार्यकारणभावस्थलमें काव्यलिङ्ग होता है।

दण्डीने काव्यलिङ्ग अलङ्कार नहीं माना है, फलतः वह दोनों स्थलोंमें अर्थान्तरन्यास ही मानते हैं।

इस प्रसङ्गको और स्पष्ट करते हुए काव्यप्रकाशकारने हेतुके तीन प्रभेद स्वीकार किये हैं।—ज्ञापक, निष्पादक और समर्थक। ज्ञापक हेतु रहने पर अनुमानालङ्कार होता है, निष्पादक हेतु रहनेपर काव्यलिङ्ग और समर्थक हेतुस्थलमें अर्थान्तरन्यास। इस प्रकार असाङ्कर्य प्रतिपादित किया गया है।

उद्योतकारने लिखा है कि अनुपपद्यमानतया संभाव्यमान अर्थके उपपादनार्थ अर्थान्तरके न्यासको अर्थान्तरन्यास कहा जाता है। दृष्टान्तमें सामान्यका सामान्यसे और विशेषका विशेषसे

समर्थन होता है, इसमें सामान्यका विशेषसे या विशेषका सामान्यसे, यही दोनोंमें अन्तर है। अनुमानमें व्याप्त्यादि कही जाती है, यहाँ पर उसकी आवश्यकता नहीं होती है।

इसके लक्षणमें प्रायः सभी आचार्य सिद्धान्ततः एकमत हैं, परन्तु उदाहरण-भेद-प्रदर्शनमें मतभेद है। काव्यप्रकाशकार ने केवल चार भेद स्वीकार किये हैं। साहित्यदर्पणकार आठ भेद मानते हैं, इस मतभेदका कारण स्पष्ट है, काव्यप्रकाशकार कार्यकारणभावस्थलमें अर्थान्तरन्यास मानते ही नहीं हैं, फलतः ४ भेद कम होगा ही। साहित्यदर्पणकार कार्य-कारणभावमें भी अर्थान्तरन्यास मानते हैं, अतः आठ भेद कहे हैं॥ १६९॥

विश्वव्यापी विशेषस्थः श्लेषाविद्धो विरोधवान्।
अयुक्तकारी युक्तात्मा युक्तायुक्तो विपर्ययः ॥१७०॥
इत्येवमादयो भेदाः प्रयोगेष्वस्य[1] लक्षिताः।
उदाहरणमालैषां रूपव्यक्त्यै[2] निदर्श्यते[3] ॥ १७१॥

सामान्यतो लक्षितस्यार्थान्तरन्यासालङ्कारस्य समर्थकार्थभेदेन संभविनो भेदान् निर्दिशति—**विश्वव्यापीति**। विश्वव्यापी सर्वत्रसंभवी, विशेषस्थः क्वचन वस्तुविशेषे एव विद्यमानः, श्लेषाविद्धः—श्लेषो वस्तुसाम्यं तेनाविद्धो युक्तः—अविरुद्धार्थसमर्थकेन समर्थित इत्यर्थः। विरोधवान् प्रकृतविरोधी, अयुक्तकारी प्रकृत्यैवानुचितकरणशीलः, युक्तात्मा औचित्ययुक्तः, युक्तायुक्तः युक्तोऽप्ययुक्तकारी, विपर्ययः एतद्विरुद्धोऽयुक्तोऽपि युक्तकारी॥ १७०॥

इत्येवमिति। इत्येवमादयः इत्यादयः अस्य समर्थकार्थस्य (अर्थान्तरन्यासप्रभेदकरस्य) भेदाः प्रयोगेषु महाकविप्रयोगेषु लक्षिताः प्रतीताः। एषाम् समर्थकार्थानाम् रूपव्यक्त्यै स्वरूपस्फुटतायै उदाहरणमाला उदाहरणततिः निदर्श्यते॥ १७१॥

हिन्दी—इन दो श्लोकोंमें अर्थान्तरन्यासके प्रभेदोंके आधारभूत समर्थक अर्थोंके भेद गिनाये गये हैं। प्रथम श्लोकमें उनके नाम हैं, जैसे—विश्वव्यापी अर्थात् सर्वत्रसंभवी, विशेषस्थ—किसी खास वस्तुमें होनेवाला, श्लेषाविद्ध—अविरुद्धार्थ—समर्थकसे युक्त, विरोधवान्—प्रकृतविरोधी, अयुक्तकारी—प्रकृत्या अनुचितकारी, युक्तात्मा—औचित्ययुक्त, युक्तायुक्त—युक्त होकर भी अयुक्तकारी, विपर्यय-अयुक्त होकर भी युक्तकारी॥ १७०॥

इस तरहके समर्थक अर्थके प्रकार (जिनके आधारपर अर्थान्तरन्यासके भेद किये जा सकते हैं) महाकविप्रयोगमें लक्षित होते हैं, उनके स्वरूपको स्फुट करनेके लिये उदाहरणमाला प्रस्तुत की जा रही है॥ १७१॥

भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसावपि।
पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केन लङ्घ्यते॥ १७२॥

अर्थान्तरन्यासप्रभेदेषु प्रथमं विश्वव्यापिनमुदाहरति—**भगवन्ताविति**। भगवन्तौ सर्वसामर्थ्यशालिनौ जगन्नेत्रे सकलपदार्थप्रकाशकतया जगतः संसारस्य नयनस्थानीयौ सूर्याचन्द्रमसौ सूर्यश्चन्द्रश्चापि (का कथाऽन्येषाम्?) अस्तं गच्छत एव नियमेनास्तौ भवत इत्यधुनापि क्रमः, अस्यार्थस्यासंभाव्यतामाशङ्क्य निराकरोति—**नियतिरिति**। नियतिः दैवं केन लङ्घ्यते अतिक्रम्यते। विश्वव्यापी नामायमर्थान्तरप्रभेदः, समर्थकार्थस्य

---

१. विलक्षेषु। २. रूपव्यक्तौ। ३. निगद्यते।

विश्वव्यापित्वात्, तेन चतुर्थपादार्थेन सामान्येन पादत्रयगतो विशेषार्थोऽत्र समर्थितो बोध्यः ॥ १७२ ॥

हिन्दी—सकलसामर्थ्यशाली, संसारकी आँखोंके समान ये सूर्य और चन्द्रमा भी अस्त होते ही हैं, देखिये, भाग्यका अतिक्रम कौन कर सकता है !

इस उदाहरणमें विशेषभूत आद्यपादत्रयार्थका सामान्यभूत चतुर्थपादार्थसे समर्थन किया गया है, इस समर्थनके बिना वह पादत्रयार्थ असंभव-सा लगता। इसमें चतुर्थपादोक्त समर्थक अर्थ विश्वव्यापी है—भाग्यका अनुलङ्घनीयत्व ब्रह्मासे लेकर पिपीलिकापर्यन्त समान है, अतः इसे विश्वव्यापी अर्थान्तरन्यास कहा गया है ॥ १७२ ॥

पयोमुचः परीतापं हरन्त्येव[1] शरीरिणाम् ।
नन्वात्मलाभो महतां परदुःखोपशान्तये ॥ १७३ ॥

विशेषस्थमर्थान्तरन्यासमाह—**पयोमुच इति** । पयोमुचः मेघाः शरीरिणां स्थावर-जङ्गमात्मकानां प्राणिनाम् परीतापम् तपर्त्तुप्रभवं सन्तापं हरन्त्येव अपनयन्त्येव, उक्तमर्थमुपपत्त्या द्रढयति—**नन्विति** । महताम् आत्मलाभः जन्मग्रहणम् परेषां दुःखस्य उपशान्तये प्रशमनाय, ननु निश्चितमिदम् । अत्र समर्थकार्थे महतामित्युक्तेर्न साधारणप्राणिनां किन्तु महतामेवेति विशेषस्थता, उत्तरवाक्यार्थेन सामान्येन पूर्ववाक्यार्थस्य विशेषस्य समर्थनाद् विशेषस्थो नामायमर्थान्तरन्यासप्रभेदः ॥ १७३ ॥

मेघ स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके ग्रीष्मकृत सन्तापको अवश्य ही दूर करता है, बड़ोंका जन्म ही दूसरोंके सन्तापको दूर करनेके लिये हुआ करता है। इस उदाहरणमें विशेषभूत प्रथम वाक्यार्थका सामान्यभूत द्वितीय वाक्यार्थसे समर्थन किया गया है, और समर्थकार्थ विशेषस्थ है क्योंकि उसमें 'महताम्' कहा है। अतः यह विशेषस्थ नामक अर्थान्तरन्यासका दूसरा प्रभेद हुआ है ॥१७३॥

उत्पादयति लोकस्य प्रीतिं मलयमारुतः ।
ननु दाक्षिण्यसम्पन्नः[2] सर्वस्य भवति[3] प्रियः ॥ १७४ ॥

श्लेषाविद्धं नामार्थान्तरन्यासमुदाहरति—**उत्पादयतीति** । मलयमारुतः मलयाचलप्रवृत्तः पवनः लोकस्य समस्तस्य संसारस्य प्रीतिम् आनन्दम् उत्पादयति करोति, उक्तमर्थमुपपादयति—**नन्विति** । ननु निश्चयेन दाक्षिण्यसम्पन्नः कौशलपूर्णः सर्वस्य प्रियो भवति, अयमपि मलयानिलो दाक्षिण्येन दक्षिणदिगुद्भवत्वेन सम्पन्न इति युक्तैवास्य लोकप्रीतिजनकता । दाक्षिण्यपदं श्लिष्टम्, तेन श्लेषमूलकतयोत्तरवाक्यार्थेन पूर्ववाक्यार्थस्य समर्थनात् श्लेषाविद्धो नामायमर्थान्तरन्यासप्रभेदः ॥ १७४ ॥

हिन्दी—'मलयानिल लोगोंके आनन्दको उत्पन्न करता है, दाक्षिण्यसम्पन्न आदमी सबका प्रिय होता है, यह निश्चित है।' यहाँ पर 'दाक्षिण्यसम्पन्न' शब्दके श्लेषमूलक दो अर्थ माने गये हैं, एक—कौशलयुक्त, दूसरा—दक्षिणदिशामें उत्पन्न, इसी श्लेषको आश्रित करके उत्तरवाक्यार्थ पूर्ववाक्यार्थका समर्थक होता है, अतः इसे श्लेषाविद्ध अर्थान्तरन्यास कहते हैं ॥ १७४ ॥

जगदानन्दयत्येष[4] मलिनोऽपि निशाकरः ।
अनुगृह्णाति हि परान् सदोषोऽपि द्विजेश्वरः ॥ १७५ ॥

विरोधवन्तमर्थान्तरन्यासमुदाहरति—**जगदेति** । एषः प्रत्यक्षदृश्यः मलिनः कलङ्कयुतः अपि (सदोषश्चेति ध्वन्यते) निशाकरः चन्द्रः जगत् आनन्दयति प्रमोदयति,

१. हरन्त्येते । २. दक्षिण । ३. आवहति प्रियम् । ४. आह्लादयति ।

उक्तमर्थं समर्थयति—अनुगृह्णातीति । सदोषः स्वयं दोषयुक्तोऽपि अभिमानवारोऽपि द्विजेश्वरः ब्राह्मणश्रेष्ठः परान् अन्यान् अनुगृह्णाति उपदेशादिना रक्षते । अत्र निशाकरस्यापि द्विजराजत्वेन द्विजेश्वरानुग्रहरूपेण सामान्येन विशेषस्य सदोषचन्द्रकृतजगदाह्लादनस्य समर्थनं क्रियते, तच्च समर्थनं सदोषत्वानुग्राहकत्वयोर्विरुद्धधर्मयोः सामानाधिकरण्याद्विरोधयुक्तमिति विरोधवदर्थान्तरन्यासोऽयम् ॥ १७५ ॥

हिन्दी—यह सकलङ्क चन्द्रमा जगत्को आनन्दित करता है, दोषपूर्ण होने पर भी द्विजराज अन्योंको अनुगृहीत करता ही है। द्विजेश्वर-ब्राह्मणश्रेष्ठ, चन्द्रमा भी। यहाँ सामान्य द्विजेश्वरसे सदोष रहने पर भी अन्योपकाररूप सामान्य द्वारा विशेष—चन्द्रकृत जगदाह्लादन—का समर्थन किया गया है। इसमें समर्थक वाक्य सदोषत्व और अनुग्राहकत्वरूप विरुद्ध धर्मोंसे युक्त है अतः इसे विरोधवान् अर्थान्तरन्यास कहते हैं ॥ १७५ ॥

मधुपानकलात् कण्ठान्निर्गतोऽप्यलिनां ध्वनिः ।
कटुर्भवति कर्णस्य कामिनां पापमीदृशम् ॥ १७६ ॥

अयुक्तकारिणमर्थान्तरन्यासमुदाहरति—**मधुपानेति** । मधुपानेन मकरन्दास्वादनेन कलात् मधुरतां गतात् अलीनां भ्रमराणां कण्ठात् (जातावेकवचनम्) निर्गतोऽपि ध्वनिः शब्दः कामिनाम् विरहिकामुकानाम् कर्णस्य (अत्रापि जातावेकवचनम्) कटुः व्यथको भवति, तदेतत् सामान्येन समर्थयति—**पापमिति** । पापम् विषयासक्तत्वम् ईदृशं सुखदवस्तु प्रत्यासत्तावपि दुःखदं भवतीति भावः । अत्र पापस्य दुःखप्रदत्वरूपसामान्यार्थेन भ्रमररुतस्य दुःखदत्वरूपविशेषार्थस्य समर्थनात् समर्थकार्थस्य कटुत्वरूपायुक्तसंपादनाच्चायुक्तकार्ययमर्थान्तरन्यासः ॥ १७६ ॥

हिन्दी—मधुपान करनेसे मधुरताको प्राप्त करने वाले भ्रमरकण्ठोंसे भी निकलती हुई ध्वनि विरही कामियों को कर्णकटु लगा करती है क्योंकि पाप (विषयासंक्तत्व) ऐसा ही हुआ करता है।

यहाँ पर पापका दुःखप्रदत्वरूप सामान्यसे भ्रमरध्वनिके दुःखप्रदत्वरूप विशेषका समर्थन हुआ है और समर्थकार्थ-कटुत्वरूप उपयुक्त अर्थका संपादन करता है, इसे अयुक्तकारी अर्थान्तरन्यास कहा जाता है ॥ १७६ ॥

अयं मम दहत्यङ्गमम्भोजदलसंस्तरः ।
हुताशनप्रतिनिधिर्दाहात्मा ननु युज्यते ॥ १७७ ॥

युक्तात्मनामानमर्थान्तरन्यासमुदाहरति—**अयमिति** । अयम् मयाऽभ्युप्यमाणोऽम्भोजदलसंस्तरः कमलपत्रनिर्मितं शयनीयम् मम वियोगिनः अङ्गम् शरीरावयवम् दहति स्वस्पर्शेन सन्तापयति—ननु शीतलतया प्रथितानां कमलदलानां सन्तापकत्वं कथमित्यनुपपत्तिं निराकरोति—**हुताशनेति** । हुताशनप्रतिनिधिः उज्ज्वलरक्ताकारतया वह्नेः प्रतिकृतिभूतः अम्भोजदलसंस्तरः दाहात्मा दाहकत्वस्वभावयुक्त इति युज्यते उचितमेव । यो यत्प्रतिनिधिस्स तत्कार्यकारीति लोकप्रसिद्ध्याऽग्निप्रतिनिधेः कमलदलसंस्तरस्य युक्तमेव सन्तापकत्वमिति भावः । अत्र हुताशनप्रतिनिधित्वरूपसामान्यार्थेन तत्प्रतिनिधिविशेषस्याम्भोजदलसंस्तरस्याङ्गदाहकत्वे युक्तत्वं समर्थ्यत इति हुताशनप्रतिनिधेर्दाहकत्वस्य युक्ततया युक्तात्माऽयमर्थान्तरन्यासः ॥ १७७ ॥

हिन्दी—कमलपुष्पकी पङ्खुड़ियोंसे निर्मित यह शयनीय मुझे सन्तापित करता है, श्वेत-रक्तकान्तिशाली अत एव आगके प्रतिनिधिसमान लगने वाले इस कमल-शयनीयका दाहप्रदत्व उचित ही है।

यहाँ पर अग्निप्रतिनिधिसामान्यके दाहकत्वसे अग्निप्रतिनिधिविशेष कमलदलसंस्तरका दाहकत्व समर्थित हुआ है, और अग्निप्रतिनिधिका दाहकत्व उचित ही है, अतः यह युक्तकारी अर्थान्तरन्यास हुआ ॥ १७७ ॥

क्षिणोतु कामं शीतांशुः किं वसन्तो दुनोति माम्।
मलिनाचरितं कर्म सुरभेर्नन्वसाम्प्रतम् ॥ १७८ ॥

युक्तायुक्तं नामार्थान्तरन्यासप्रभेदमाह—**क्षिणोत्विति**। शीतांशुश्चन्द्रमाः (मां) कामं यथेच्छम् क्षिणोतु पीडयतु, (तस्य कलङ्कितया युक्तं परपीडनम्), वसन्तो मधुमासः किं कथं मां दुनोति सन्तापयति, तथाहि सुरभेः वसन्तस्य (विख्यातनामधेयस्य च तस्य) मलिनाचरितं कलङ्किलोकानुष्ठितं परपीडनरूपं कर्म असाम्प्रतम् अयुक्तं ननु। 'मधौ कामदुघायाञ्च विख्याते सुरभिर्द्वयोः' इति नानार्थरत्नावली। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनं स्पष्टम्। अत्रोत्कृष्टस्य सुरभेरपकृष्टकर्माचरणे युक्तेनायुक्ताचरणमिति युक्तायुक्तनामायमर्थान्तरन्यासः ॥ १७८ ॥

हिन्दी—भले ही शीतांशु (कलङ्की होनेके कारण) मुझे पीड़ित किया करे, वसन्त मुझे क्यों सताता है, कलङ्की द्वारा किया जाने वाला सन्तापनरूप कार्य सुरभि वसन्त (ख्यातनामा) के लिये उपयुक्त नहीं है। वसन्त सुरभि—ख्यातनामा है, उसके लिये चन्द्रमा-कलङ्की द्वारा किया गया कार्य उचित नहीं कहा जा सकता।

यहाँ सामान्यसे विशेषका समर्थन और उत्कृष्ट सुरभिका अपकृष्ट सन्तापनरूप युक्तका अयुक्ताचरण है, अतः युक्तायुक्त नामक अर्थान्तरन्यास हुआ ॥ १७८ ॥

कुमुदान्यपि दाहाय[1] किमयं[2] कमलाकरः।
नहीन्दुगृह्येषूग्रेषु सूर्यगृह्यो मृदुर्भवेत् ॥ १७९ ॥
(इत्यर्थान्तरन्यासचक्रम्)

विपर्ययनामार्थान्तरन्यासमुदाहरति—**कुमुदानीति**। कुमुदानि चन्द्रकरविकासीनि (शीतकरविकासितया शीतत्वेन संभावनीयानि) अपि दाहाय (मम) सन्तापाय भवन्ति, तदा अयं कमलाकरः पद्मवनम् (सूर्यविकासितयाऽवश्यंभाविसन्तापकत्वस्वभावः) किम् किमु वक्तव्य इत्यर्थः। उक्तमर्थं द्रढयति—इन्दुगृह्येषु चन्द्रपक्षीयेषु कुमुदेषु उग्रेषु सन्तापकेषु सत्सु सूर्यगृह्यः सूर्यपक्षगतः कमलाकरः मृदुः शीतलः नहि भवेत्। शीतलतया संभाव्यमानानां कुमुदानां सन्तापकत्वे उग्रत्वेन संभावितस्य कमलाकरस्योचितमेव सन्तापकत्वमित्याशयः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थने समर्थ्यवाक्ये कुमुदेऽयुक्तकारिता, कमले च युक्तकारिता इति युक्तायुक्तनामायमर्थान्तरन्यासः ॥ १७९ ॥

हिन्दी—कुमुद भी जब मुझे सन्ताप देते हैं तब कमलोंकी क्या बात है, वह तो सन्ताप देंगे ही, (शीतकर) चन्द्रमाके पक्षवाले कुमुद जब उग्र—सन्तापकर हो रहे हैं तब (उष्णकर) सूर्यके पक्षवाले क्यों शीतल होने लगे ? यहाँ कुमुदमें अयुक्तकारिता और कमलमें युक्तकारिता का वर्णन है अतः यह युक्तायुक्तकारी अर्थान्तरन्यास है।

---

१. तापाय। २. किमङ्ग।

यहाँ ध्यान देना चाहिये कि जितने अर्थान्तरन्यासके उदाहरण दिये गये हैं वह सभी साधर्म्यके उदाहरण हैं, वैधर्म्यका अर्थान्तरन्यास निम्नलिखित है—

'वक्षोजकुम्भनिवहाद्वनिताजनानां ग्रीष्मर्तुना विनिहितं ग्रहराजपुत्री।
तापं पितुः स्वमहरत् तरलोर्मिहस्तैरन्यं न याति हि विभूतिरपत्यभाजाम् ॥'

यहाँ सामान्यभूत—'सन्तानयुक्त जनकी सम्पत्ति दूसरोंके पास नहीं जाती है'—इस अर्थसे 'यमुनाने अपने पिता सूर्यकी तापरूप सम्पत्ति ले ली' यह समर्थित होता है, यहाँ समर्थक अर्थ निषेधमुख है, अतः यह वैधर्म्येण अर्थान्तरन्यास है ॥ १८९ ॥

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
तत्र यद्भेदकथनं व्यतिरेकः स कथ्यते[1] ॥ १८० ॥

शब्दोपात्ते इति। द्वयोर्वस्तुनोः उपमानोपमेययोः सादृश्ये शब्दोपात्ते वाचके वादिशब्देन प्रतिपादिते तुल्यादिशब्दप्रयोगे सति लक्षणया प्रतीते, पूर्वापरपर्यालोचनया वा प्रतीते सति, तत्र सादृश्ये यद्भेदनकथनं केनचिद्धर्मविशेषेणोपमानादुपमेयस्योत्कर्षाय भेदप्रतिपादनं स व्यतिरेकः तन्नामालङ्कार इति लक्षणम्। स चायं व्यतिरेकः उपमेयोत्कर्षोपमानापकर्षयोर्द्वयोरुपादानात् द्वयोरेकस्य वानुपादानात् चतुर्विधः। उपमानोपमेययोर्भेदकथनञ्च क्वचिन्नञादिभिः, क्वचिद्विरुद्धधर्मोपादानमात्रेण, क्वचिच्च तात्पर्यपर्यालोचनया भवति, तत्सर्वमपि प्रदर्शयिष्यमाणोदाहरणप्रसङ्गे स्फुटीभविष्यति ॥ १८० ॥

हिन्दी—जहाँ पर उपमान और उपमेय का सादृश्य इवादि वाचकशब्दप्रयोगके होनेसे शब्दतः कथित हो, अथवा तुल्यादिशब्दप्रयोग होनेसे लक्षणाद्वारा प्रतीत हो, या पूर्वापर पर्यालोचनासे प्रतीत हो, वहाँ यदि भेद कहा जाय—किसी धर्मविशेषसे उपमानापेक्षया उपमेयका उत्कर्ष बतानेके लिये अन्तर कहा जाय तब व्यतिरेक नामक अलङ्कार होता है। यह व्यतिरेक चार प्रकार का होता है। १—उपमानका अपकर्ष और उपमेयका उत्कर्ष दोनोंके उपादानमें। २—उपमानके अपकर्षमात्रोपादानमें। ३—उपमेयके उत्कर्षमात्रोपादानमें। ४—उभयानुपादानमें।

रुय्यक प्रभृति कुछ आचार्य उपमेयके अपकर्ष-कथनमें भी व्यतिरेक अलङ्कार स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं :—

'क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिवर्द्धते नित्यम्।
विरम प्रसीद सुन्दरि, यौवनमनिवर्त्ति यातं तु ॥'

यहाँ पर उपमेयभूत यौवनका उपमानभूत चन्द्रापेक्षया—चले जाने पर फिर नहीं लौटनारूप अपकर्ष बताया गया है। आचार्य दण्डीको यह व्यतिरेक स्वीकार्य नहीं था, इसीलिये इस तरहका उदाहरण नहीं दिया। मम्मटने भी उपमानापेक्षया उपमेयकी उत्कृष्टतामें ही व्यतिरेक माना है, अपकृष्टतामें नहीं।

'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः;' व्यतिरेक आधिक्यम् (काव्यप्रकाश)। सर्वाधिक चमत्कार तब उत्पन्न होता है जब हम देखते हैं कि मम्मटने उपमेयापकर्षप्रतिपादनमें व्यतिरेकालङ्कारवादी रुय्यकके ही उपमेयापकर्षव्यतिरेकोदाहरण—'क्षीणः क्षीणोऽपि शशी' इसी श्लोकको उपमेयाधिक्यका उदाहरण सिद्ध किया है, उनका वक्तव्य यों है :—

'क्षीणः क्षीणोऽपि' इत्यादावुपमानस्योपमेयादाधिक्यमिति केनचिदुक्तं, तदयुक्तमत्र यौवनगतास्थैर्याधिक्यं हि विवक्षितम्'।

---

१. उच्यते।

ध्यान देनेकी बात है कि रुय्यकप्रभृतिने यौवनकी अस्थिरताको अपकर्ष-न्यूनता समझा है और उसी अनिर्वाप्तता-अस्थिरताको मम्मटने उसकी अधिकता मानी है, यह तो विवक्षा है—'यौवनगतास्थैर्याधिक्यं हि विवक्षितम्' यहाँ जगन्नाथने भी मम्मटका साथ दिया है। व्यतिरेकमें स्पष्टतया भेदकथन अपेक्षित है, अतएव—'मुखमिव चन्द्रः' इस प्रतीपोदाहरणमें मुखमें उपमानीकरणप्रयुक्त आधिक्यके गम्यमान होनेपर भी व्यतिरेक नहीं माना जाता है, वहाँ खासकरके भेदबोधक कोई शब्द नहीं है, यही इन दोनों अलङ्कारोंमें अन्तर समझना चाहिये ॥ १८० ॥

धैर्यलावण्यगाम्भीर्यप्रमुखैस्त्वमुदन्वतः ।
गुणैस्तुल्योऽसि[2] भेदस्तु वपुषैवेदृशेन ते ॥ १८१ ॥

व्यतिरेकमुदाहरति—**धैर्येति** । धैर्यं धृतिः अचाञ्चल्यं च, लावण्यं सौन्दर्यं लवणमयत्वं च, गाम्भीर्यम् गूढाभिप्रायशालित्वं दुरवगाहत्वं च, एतत्प्रमुखैः एतदादिभिः गुणैः त्वम् उदन्वतः समुद्रस्य तुल्यः समानोऽसि, भेदस्तु पार्थक्यं तु ईदृशेन मनोहरकरचरणादिशालिना वपुषा एव । धैर्यं गाम्भीर्यं लावण्यं च यद्यपि तव सागरे च तुल्यं परं तव वपुर्मनोहरं तन्न तथा समुद्रस्येति वपुर्मात्रकृतं पार्थक्यमिति भावः ॥ १८१ ॥

हिन्दी—धीरता, लावण्य और गम्भीरता आदि गुणोंमें आप सागरके समान ही हैं, यदि भेद है तो केवल आपके इस प्रत्यक्षदृश्य शरीरमें ही। यहाँ पर धैर्य—समुद्रमें धीरता और वर्णनीय राजामें अचञ्चलता, लावण्य—राजामें सौन्दर्य और सागरमें खारापन, गम्भीरता-राजामें गूढाशयत्व और सागरमें अगाधता यह श्लेषसे समझा जाता है ॥ १८१ ॥

इत्येकव्यतिरेकोऽयं धर्मेणैकत्रवर्त्तिना ।
प्रतीतिविषयप्राप्तेर्भेदस्योभयवर्त्तिनः ॥ १८२ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**इत्येकेति** । एकत्र उपमेयमात्रे वर्त्तिना स्थितेन धर्मेण सुन्दरवपुःशालित्वेन उभयवर्त्तिनः उपमानोपमेयावगाहिनः (प्रतियोगित्वानुयोगित्वाभ्यामुभयस्पृशः) भेदस्य वैधर्म्यस्य प्रतीतिविषयप्राप्तेः प्रतीयमानत्वात् हेतोः अयम् पूर्वोक्तस्वरूपः एकव्यतिरेकः । अयमाशयः—अत्रोदाहरणे एकत्रोपमेये स्थितेन सुन्दरवपुष्ट्वेन धर्मेण उपमानोपमेययोर्द्वयोरपि भेदः प्रतीतिमवगाहत इत्ययमेकव्यतिरेको नामालङ्कार इति ॥१८२॥

हिन्दी—उक्त उदाहरणमें उपमेयभूत राजामात्रमें वर्त्तमान सुन्दरशरीरशालित्वरूप धर्मसे उपमान सागर और उपमेय राजाका भेद प्रतीत होता है, अतः इसे एकव्यतिरेक नामक व्यतिरेक-प्रभेद कहा जाता है ॥ १८२ ॥

अभिन्नवेलौ गम्भीरावम्बुराशिर्भवानपि ।
असावञ्जनसङ्काशस्त्वं तु चामीकरद्युतिः[4] ॥ १८३ ॥

उभयव्यतिरेकमुदाहरति—**अभिन्नेति** । अम्बुराशिः सागरः भवांश्च उभौ द्वौ अपि अभिन्नवेलौ सागरोऽप्यनतिक्रान्ततीरः भवानपि अनुल्लङ्घितमर्यादः, उभावपि गम्भीरौ—सागरोऽगाधः भवानपि गूढाभिप्रायः, तदित्थं सत्यपि युवयोः साम्ये अम्बुराशिः नीलाभजलत्वादञ्जनसङ्काशः कज्जलमलिनः, त्वं पुनश्चामीकरद्युतिः सुवर्णवर्णः ॥ १८३ ॥

हिन्दी—आप दोनों—सागर और आप गम्भीर हैं (सागर अगाध है आप गूढाभिप्राय हैं), आप दोनों ही अभिन्नवेल हैं (सागरने वेला—तटका अतिक्रमण नहीं किया है आपने वेला—

माहात्म्य । २. तुल्योपि । ३. प्रतीत । ४. च्छविः

मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं किया है)। इस प्रकार दोनों समान हैं परन्तु भेद यह है कि आप सुवर्ण-वर्ण हैं और सागर नीलजलशाली होनेसे अञ्जनपुञ्ज-सा है ॥ १८३ ॥

उभयव्यतिरेकोऽयमुभयोर्भेदकौ गुणौ ।
कार्ष्ण्यं पिशङ्गता चोभौ यत् पृथग्दर्शिताविह ॥ १८४ ॥

उभयेति । अयम् उदाहृतः उभयव्यतिरेको नाम, यत् यस्मात् इह उभयोः उपमानोपमेययोः भेदकौ इतरव्यावर्तकौ गुणौ उभौ कार्ष्ण्यं पिशङ्गता च कृष्णत्वपीतवर्णत्वरूपौ पृथक् दर्शितौ ॥ १८४ ॥

हिन्दी—यह उभयव्यतिरेक है क्योंकि इसमें उपमान और उपमेय—समुद्र और वर्णनीय राजा दोनोंके भेदक गुण क्रमशः कालापन और पिशङ्गता अलग-अलग बताये गये हैं ॥ १८४ ॥

त्वं समुद्रश्च दुर्वारौ महासत्त्वौ सतेजसौ ।
अयं तु युवयोर्भेदः स जडात्मा पटुर्भवान् ॥ १८५ ॥
स एव श्लेषरूपत्वात् सश्लेष इति गृह्यताम् ।
साक्षेपश्च सहेतुश्च दर्श्यते तदपि द्वयम् ॥ १८६ ॥

सश्लेषव्यतिरेकमाह—**त्वं समुद्रश्चेति ।** त्वं समुद्रश्च दुर्वारौ, त्वं दुर्वारो रोद्धुमशक्यः अपराजेयः, समुद्रश्च दुर्वाः दुष्टमनास्वाद्यं वाः वारि यस्य तादृशः, त्वं महासत्त्वः सामर्थ्यातिशययुक्तः, समुद्रश्च महद्भिः सत्त्वैस्तिमिङ्गिलप्रभृतिभिर्युतः, त्वं सतेजाः तेजस्वी, समुद्रश्च तेजसा वडवानलेन सहितः, तदेवमुभावपि समानौ, अयं तु युवयोर्भेदः पार्थक्यं यत् सः सागरो जडात्मा जलमयः, भवान् पटुः चतुरः, अन्यधर्माणां श्लिष्टपदोपस्थापितानां साम्येऽपि जडात्मत्वपाटवाभ्यां भेदः ॥ १८५ ॥

स एव इति । स एवः उपरिदर्शितो व्यतिरेकः श्लेषरूपत्वात् जडात्मा पटुः इति श्लिष्टपदेन वैधर्म्यप्रकाशनात् सश्लेषो नाम व्यतिरेकप्रभेद इति गृह्यताम् ज्ञायताम् ।

अन्यदपि भेदद्वयमाह—**साक्षेप इति ।** आक्षेपो विरुद्धधर्मोपन्यासेन सादृश्यप्रतिषेधः, सहेतुः—हेतुः पञ्चम्यन्तपदरूपस्तत्कृतः, तदपि साक्षेपसहेतुरूपं भेदद्वयं दर्श्यत उदाह्रियते ॥ १८६ ॥

हिन्दी—आप और सागर दोनों दुर्वार—अपराजेय एवं खारे पानीसे युक्त, महासत्त्व—अतिबलशाली एवं बड़े-बड़े प्राणियोंसे पूर्ण, सतेजस—तेजस्वी एवं बड़वानलरूप तेजसे युक्त हैं, आप दोनोंमें-समुद्र और आपमें—भेद इतना ही है कि वह सागर जड़ात्मा-जलमय (मूर्ख) है, आप पटु—चतुर हैं ॥ १८५ ॥

यह श्लेषव्यतिरेक है क्योंकि इसमें 'स जडात्मा पटुर्भवान्' इससे श्लेषद्वारा वैधर्म्यप्रतिपादन किया गया है। साधारण धर्मवाचक दुर्वारादिपदमें श्लेष है इसने इसे श्लेषव्यतिरेक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन विशेषणोंसे तो सादृश्यबोध होता है, वैधर्म्यप्रतिपादनमें उनका कुछ उपयोग नहीं होता। इस वैधर्म्यचमत्कृतिप्रधान व्यतिरेकालङ्कारमें वैधर्म्यसूचक विशेषणोंके श्लिष्ट होनेपर ही श्लेषव्यतिरेक मानना उचित है; यदि साधर्म्योपपादक विशेषणोंमें श्लेष होनेपर भी श्लेषव्यतिरेक मानने लगेंगे तब तो सभी व्यतिरेकप्रभेदोंको श्लेषव्यतिरेक कहना पड़ेगा। इस प्रकार श्लेषव्यतिरेकका उदाहरण दिया गया। साक्षेप और सहेतु व्यतिरेकोंके भी उदाहरण दिये जा रहे हैं। साक्षेप-

१. पृथक्त्वेन दर्शितौ। २. इयता। ३. एव। ४. दृश्यते।

व्यतिरेक वह है जिसमें आक्षेप-विरुद्धधर्मोपन्याससे सादृश्यप्रतिषेध होता हो और सहेतुव्यतिरेक वह है जिसमें पञ्चम्यन्त पदरूप हेतुसे वैधर्म्यप्रकाश कराके सादृश्यप्रतिषेध होता हो ॥ १८६ ॥

स्थितिमानपि धीरोऽपि रत्नानामाकरोऽपि सन्।
तव कक्षां न यात्येव मलिनो मकरालयः ॥ १८७ ॥

साक्षेपव्यतिरेकमुदाहरति—स्थितिमान् अनुज्झितमर्यादः अपि, धीरः प्रशान्तः अपि, रत्नानाम् मणीनाम् आकरः उत्पत्तिस्थानम् सन्नपि भवन्नपि मकरालयः सागरः मलिनः नीलजलतया श्याम इति हेतोः तव कक्षाम् तुलनां नैव याति। अत्रोपमानभूतसमुद्रगतेन मालिन्यरूपधर्मेण नृपसादृश्याक्षेपः, तेन नृपस्योत्कर्ष इति साक्षेपव्यतिरेकोऽयम् ॥ १८७ ॥

हिन्दी—मकरालय स्थितिमान्-मर्यादायुक्त है, धीर—प्रशान्त है, रत्नोंकी खान है, फिरभी मलिन—नीलाभजलयुक्त होनेसे आपकी तुलना नहीं कर सकता है, यहाँ पर उपमानभूत समुद्रगत मालिन्यरूप धर्मसे नृपसादृश्यप्रतिषेध होता है और उससे नृपका उत्कर्ष सिद्ध होता है, अतः इसे साक्षेप—सप्रतिषेध—व्यतिरेक कहा गया है ॥ १८७ ॥

वहन्नपि महीं कृत्स्नां सशैलद्वीपसागराम्।
भर्तृभावाद्भुजङ्गानां शेषस्त्वत्तो निकृष्यते ॥ १८८ ॥

सहेतुव्यतिरेकमुदाहरति—**वहन्नपीति**। शैलैः पर्वतैः द्वीपैः जम्बूद्वीपादिपदाभिलप्यैः भूखण्डैः सागरैः समुद्रैश्च सहिताम् सशैलद्वीपसागराम् कृत्स्नाम् सकलां महीं पृथिवीं वहन् शिरसा धारयन्नपि शेषः शेषनागः त्वत्तः त्वदपेक्षया निकृष्यते अपकृष्टः सिद्ध्यति, तत्र हेतुमाह—**भर्तृभावादिति**। भुजङ्गानां सर्पाणां जाराणाञ्च भर्तृभावात् स्वामित्वात् इति। शेषः सर्वथा त्वत्सादृश्यार्हः सन्नपि भुजङ्गनायकत्वात् त्वदपेक्षया निकृष्टत्वं यातीत्यर्थः। अत्र पञ्चम्यन्तहेतूपस्थाप्यस्य धर्मस्य भुजङ्गपतित्व(जारपतित्व)रूपस्योपमानापकर्षहेतुत्वात् हेतुव्यतिरेकोऽयम् ॥ १८८ ॥

हिन्दी—पर्वत, द्वीप एवं समुद्रोंसे सहित इस समस्त पृथ्वीका वहन करता हुआ भी शेषनाग आपसे निकृष्ट है क्योंकि वह भुजङ्गों (सर्पों, जारों) का नायक है, इसमें पञ्चम्यन्त पदसे उपस्थापित जारपतित्वरूप हेतु उपमानके अपकर्षको बताता है, अतः इसे हेतुव्यतिरेक कहते हैं ॥ १८८ ॥

शब्दोपादानसादृश्यव्यतिरेकोऽयमीदृशः।
प्रतीयमानसादृश्योऽप्यस्ति सोऽप्यभिधीयते[२] ॥ १८९ ॥

शब्दोपादानेति। व्यतिरेकलक्षणनिरूपणावसरे—'शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये' इत्युक्तं, तेन शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेकः प्रतीयमानसादृश्यव्यतिरेकश्चेति व्यतिरेकस्य भेदद्वयं पुरः स्फुरति, तयोः अयमीदृशः सम्प्रति यावदुदाहृतः शब्दोपादानसादृश्यः शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेकः, स चोक्त एव, प्रतीयमानसादृश्यव्यतिरेको नाम प्रभेदोऽपि अस्ति, सोऽप्यभिधीयतेऽनुपदमेवोच्यते इत्यर्थः ॥ १८९ ॥

हिन्दी—व्यतिरेकके लक्षणमें कहा था कि जहाँपर शब्दोपात्तसादृश्य या प्रतीतसादृश्य रहनेपर भेदकथन हो उसे व्यतिरेक कहते हैं, फलतः शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेक, प्रतीयमान-

१. कक्ष्यां। २. अनुविधीय।

सादृश्यव्यतिरेक यह दो व्यतिरेकभेद हुए, उनमें शब्दोपात्तसादृश्यव्यतिरेक इस तरहका है (जो कहा गया), प्रतीयमान सादृश्यव्यतिरेकके उदाहरणादि बताये जा रहे हैं ॥ १८९ ॥

त्वन्मुखं कमलं चेति द्वयोरप्यनयोर्भिदा ।
कमलं जलसंरोहि त्वन्मुखं त्वदुपाश्रयम् ॥ १९० ॥

प्रतीयमानसादृश्यव्यतिरेकमुदाहरति—**त्वन्मुखमिति** । त्वन्मुखं कमलं चेति अनयोर्द्वयोरपि भिदा भेदः अयमेव यत्—कमलं जलसंरोहि पानीयप्रभवम् , त्वन्मुखं त्वदुपाश्रयम् त्वदाधारम् । अत्र जलं कमलस्याधारः मुखस्य च त्वम् इति विभिन्नाधारतया कविप्रसिद्धिगतं कमलमुखयोः सादृश्यं निरस्यते, समानधर्मानुपादानात् प्रतीयमानमत्र सादृश्यमिति बोध्यम् ॥ १९० ॥

हिन्दी—तुम्हारे मुख तथा कमलमें केवल यही अन्तर है कि तुम्हारे मुखके आश्रय तुम हो, और कमल पानीमें पैदा हुआ है, उसका आश्रय पानी है। यहाँपर आश्रयभेद बताकर मुख तथा कमलके सादृश्यका प्रतिषेध किया गया है। समान धर्मके अनुपादानसे इसे प्रतीयमान सादृश्य कहा गया है ॥ १९० ॥

अभ्रूविलासमस्पृष्टमदरागं मृगेक्षणम् ।
इदं तु नयनद्वन्द्वं तव तद्गुणभूषितम् ॥ १९१ ॥

प्रतीयमानसादृश्यव्यतिरेकस्यापरमुदाहरणमाह—**अभ्रूविलासमिति** । मृगेक्षणम् हरिणनेत्रम् अभ्रूविलासम् भ्रूविलासानभिज्ञम्, अस्पृष्टमदरागं मदिरापानोपजातरक्तिमरहितञ्च, तव त्विदं पुरो दृश्यमानं नयनद्वन्द्वम् तद्गुणभूषितम् ताभ्यां भ्रूविलासमदरागनामकाभ्यां गुणाभ्यां भूषितं युक्तम् अस्तीति शेषः ।

पूर्वोदाहरणे समानधर्मानुपादानमत्र तु विरुद्धधर्मोपादानमिति भेदः ॥ १९१ ॥

हिन्दी—हरिणोंके नयन भ्रूविलाससे अपरिचित तथा मदिरापानोपजात रक्ततासे रहित हुआ करते हैं- परन्तु आपकी यह आँखें उन गुणोंसे—भ्रूविलासपरिचय और मदिरापानजन्य रक्ततासे भूषित हैं ॥ १९१ ॥

पूर्वस्मिन् भेदमात्रोक्तिरस्मिन्नाधिक्यदर्शनम् ।
सदृशव्यतिरेकश्च पुनरन्यः प्रदर्श्यते ॥ १९२ ॥

उदाहरणद्वयदानमुपपादयति—**पूर्वस्मिन्निति** । पूर्वस्मिन् प्रथममुदाहृते—'त्वन्मुखं कमलञ्च' त्याद्युदाहरणे भेदमात्रोक्तिः उपमानोपमेययोः कमलमुखयोर्भेदकस्याधारभिन्नतारूपस्य धर्ममात्रस्योक्तिः, नतु उत्कर्षस्यापकर्षस्य वोक्तिः, अस्मिन्ननन्तरोक्ते तूदाहरणे-'अभ्रूविलास'मित्यत्र आधिक्यस्योपमानोपमेययोर्निकर्षोत्कर्षरूपस्य दर्शनम्, अत्रेदं बोध्यम्, भेदो द्विधा भवति—विरुद्धधर्माध्यासेन कारणभेदेन च, तत्र पूर्वोदाहरणे कारणभेदकृतो भेदः, अत्र च विरुद्धधर्माध्यास इति । अन्यश्च प्रोक्तद्वितयविलक्षणः सदृशव्यतिरेकः प्रदर्श्यते उदाह्रियते ॥ १९२ ॥

हिन्दी—'त्वन्मुखं कमलं च' इस प्रथम उदाहरणमें भेदमात्र—उपमान-उपमेयभूत कमल और मुखमें भेद करने वाले आधारभेद रूप धर्ममात्रकी उक्ति है, उत्कर्षापकर्षकी उक्ति नहीं है,

'अभ्रूविलासम्' इस उदाहरणमें आधिक्य—उपमान-उपमेयके निकृष्टत्व-उत्कृष्टत्वका कथन है। यहाँ यह जानना है कि भेदके दो प्रकार भगवान् शङ्कराचार्यने बताये हैं—विरुद्धधर्माध्यास और कारणभेद, उनमें पूर्वोदाहरणमें कारणभेदकृत भेद है, और इस दूसरेमें विरुद्धधर्माध्यासकृत भेद है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये आचार्य दण्डीने प्रतीयमान सादृश्यव्यतिरेकके दो उदाहरण दिये हैं॥ १९२॥

त्वन्मुखं पुण्डरीकं च फुल्ले सुरभिगन्धिनी।
भ्रमद्भ्रमरमम्भोजं[1] लोलनेत्रं मुखं तु[2] ते॥ १९३॥

सदृशव्यतिरेकश्च पुनरन्यः प्रदर्श्यत इति प्रतिज्ञातं, तत्र शाब्दं सदृशव्यतिरेकमुदाहरति—**त्वन्मुखमिति**। त्वन्मुखं कमलञ्च फुल्ले विकसिते, एकत्र विकासः स्मितशोभिताऽन्यत्र दलविदलनम्, तथा सुरभिगन्धिनी घ्राणतर्पणगन्धयुते। अत्र फुल्लत्वसुरभिगन्धित्वयोः साधारण्येन सादृश्यं शाब्दम्। व्यतिरेकमाह—**भ्रमदिति**। अम्भोजं कमलम् भ्रमद्भ्रमरम्, ते तव मुखं तु लोलनेत्रं विलासचपलनयनयुतम्। अत्र सदृशाभ्यामेव भ्रमरनयनाभ्यां मुखकमलयोर्व्यतिरेकः प्रकाश्यते इति सदृशव्यतिरेकोऽयम्॥ १९३॥

हिन्दी—तुम्हारा मुख और कमल विकसित तथा सुगन्धिपूर्ण हैं, अन्तर इतना ही है कि तुम्हारा मुख चञ्चल नयनयुक्त है और कमल चपलभ्रमरयुक्त है। इसमें फुल्लत्व सुरभिगन्धत्व मुख तथा कमलमें समान हैं अतः सादृश्य शाब्द है। यहाँ समानभूत भ्रमर नयनसे ही कमल और मुखमें भेद किया गया है इसीसे इसे सदृशव्यतिरेक कहा गया है॥ १९३॥

चन्द्रोऽयमम्बरोत्तंसो हंसोऽयं तोयभूषणम्।
नभो नक्षत्रमालादमुत्फुल्लकुमुदं[3] पयः॥ १९४॥

आर्थं सदृशव्यतिरेकमुदाहरति—**चन्द्रोऽयमिति**। अयं चन्द्रः अम्बरोत्तंसः आकाशभूषणम्, अयं हंसः तोयभूषणम् जलाशयशोभासम्पादकः। इदं नभो व्योम नक्षत्रमालि तारागणमण्डितम् इदं पयः उत्फुल्लकुमुदं विकसितकुसुमसनाथम्। अत्र चन्द्रहंसयोराकाशपयसोश्चोपमानोपमेयभूतयोः सादृश्यमार्थमिति सदृशव्यतिरेकोऽयमार्थः॥ १९४॥

हिन्दी—यह चन्द्रमा आकाशका अलङ्कार है, यह हंस जलाशयका भूषण है। आकाश तारागणसे मण्डित है और जल विकसित कुमुदपुष्पसे भूषित है। इस उदाहरणमें हंस चन्द्रमा और जलआकाशरूप उपमेय और उपमानका सादृश्य आर्थ है अतः यह आर्थ सदृशव्यतिरेक हुआ॥१९४॥

प्रतीयमानशौक्ल्यादिसाम्ययोर्वियदम्भसोः।
कृतः प्रतीतशुद्धयोश्च भेदोऽस्मिंश्चन्द्रहंसयोः[4]॥ १९५॥

पूर्वोक्तमुदाहरणद्वयं स्पष्टयति—**प्रतीयमानेति**। अत्र 'चन्द्रोऽय'मित्यादिपूर्वश्लोके प्रतीयमानम् वाचकशब्दाभावेन वर्णनानुरोधवशात् कथञ्चिदुन्नीयमानम् शौक्ल्यादि शुक्लत्वनिर्मलत्वादि तेन साम्यं ययोस्तादृशयोर्वियदम्भसोः, प्रतीतशुद्धयोः ख्यातधावल्ययोश्चन्द्रहंसयोश्च भेदः कृतः प्रथमस्थले अम्बरतोयाभ्याम्, अपरत्र च नक्षत्रकुमुदाभ्यां सादृश्यनिषेधः कृतः॥ १९५॥

हिन्दी—'चन्द्रोऽयमम्बरोत्तंसः' इस पूर्वोक्त उदाहरणमें आकाश-जलका, एवं चन्द्र-हंसका व्यतिरेक है, उसमें आकाश-जलका साम्य शुक्लत्व निर्मलत्वादि शब्दप्रतिपाद्य नहीं है कल्पनीय

---

१. लोलदृष्टि। २. च। ३. इदमुत्कुमुदं। ४. सौक्ष्म्यादि। ५. हंसचन्द्रयोः।

है, किन्तु चन्द्रमा और हंसका साम्य प्रतीत है—धवलतया साम्य सर्वविदित है। इन दोनों स्थानोंमें प्रथममें अम्बर-तोयसे और द्वितीय में नक्षत्र-कुमुदसे सादृश्यनिषेध हुआ है, उनका सादृश्य स्फुट है अतः यह सदृशव्यतिरेक ही है॥ १९५॥

पूर्वत्र शब्दवत् साम्यमुभयत्रापि भेदकम्।
भृङ्गनेत्रादितुल्यं तत् सदृशव्यतिरेकता॥ १९६॥

पूर्वत्र 'त्वन्मुखं पुण्डरीकं च' इति पूर्वोक्तोदाहरणे शब्दवत् समानधर्मवाचकशब्दोपस्थापितं साम्यं फुल्लत्वादि अस्ति।

उभयत्र शब्दोपात्तप्रतीयमानसादृश्योदाहरणद्वये—भेदकं वैधर्म्यप्रतिपादकम् भृङ्गनेत्रादि (अम्बरतोयनक्षत्रकुमुदानि चादिपदबोध्यानि) तुल्यम् समानम् (भिन्नशब्दप्रतिपादनेन भिन्नत्वावभासेऽपि वस्तुत एकस्वरूपम्) तत् अस्य उदाहरणद्वयस्यापि सदृशव्यतिरेकता बोध्या॥ १९६॥

हिन्दी—'त्वन्मुखं पुण्डरीकं च' इस पूर्वोक्त उदाहरणमें साम्य फुल्लत्वादि शब्दवत् समानधर्मवाचक शब्दोपस्थापित है।

शब्दोपात्त सादृश्यव्यतिरेक और प्रतीयमान सादृश्यव्यतिरेक नामक प्रभेदोंके पूर्वोक्त दोनों उदाहरणोंमें भेदक—वैधर्म्यप्रतिपादक भृङ्गनेत्र अम्बरतोय नक्षत्रकुमुद समान हैं—भिन्नशब्दद्वारा कहे जानेपर भिन्न भले लगते हों किन्तु उनमें समता ही है, अतः दोनों ही उदाहरणोंमें सदृशव्यतिरेक है॥ १९६॥

अरत्नालोकसंहार्यमहार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥ १९६॥
सजातिव्यतिरेकोऽयं तमोजातेरिदन्तमः।
दृष्टिरोधितया तुल्यं भिन्नमन्यैरदर्शि यत्॥ १९८॥

(इति व्यतिरेकचक्रम्)

सजातिव्यतिरेकमाह—**अरत्नालोकेति**। रत्नालोकैः मणिकिरणैः संहार्यम् अपनेयं न भवतीत्यरत्नालोकसंहार्यम्, सूर्यरश्मिभिः सूर्यकिरणैः (अपि) अहार्यम् अविनाश्यम्, यूनां युवजनानाम् दृष्टिरोधकरं कर्तव्यदर्शनशक्तिहरम् यौवनप्रभवं तमो भवतीति शेषः, यौवनोत्पन्नेन तमसा अन्धकारेण मोहेन युवानो विवेकविधुराः क्रियन्ते, तेषां च तत्तमो न रत्नप्रभाभिर्दूरीकर्तुं शक्यं न सूर्यरश्मिभिरपनेयं भवतीति भावः। अत्र यौवनतमोऽन्धकारयोर्दृष्टिरोधकत्वं साम्यम्। तच्च शाब्दम्। उपमेयमात्रगतं रत्नकिरणाद्यनाश्यत्वं च भेदकम्॥ १९७॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**सजातिव्यतिरेक इति**। यतः दृष्टिरोधितया दृक्शक्तिप्रतिबन्धकतया इदं यौवनप्रभवं तमः तमोजातेः तुल्यम् समम्, तत् तमः अन्यैररत्नालोकसंहार्यत्वादिभिर्धर्मैः भिन्नम् उत्कर्षवत् अदर्शि निबद्धमतोऽयं सजातिव्यतिरेको नाम॥१९८॥

हिन्दी—युवकोंकी सदसद्विवेक बुद्धिरूप दृष्टिको हर लेनेवाला यौवनमें प्रकट होनेवाला तम मोह-अन्धकार न रत्नकी प्रभासे दूर होता है, न सूर्यकी किरणोंसे नष्ट होता है॥ १९७॥

---

१. अवार्यं। २. स्वजाति।

दृक्शक्तिप्रतिबन्धकतया यह यौवनप्रभव तम तमोजाति के समान है, उसे ही अस्त्नालोक संहार्यत्वादि धर्मोंसे उत्कृष्ट दिखलाया गया है, अतः यह संजातिव्यतिरेक है ॥ १९८ ॥

प्रसिद्धिहेतुव्यावृत्त्या यत् किञ्चित् कारणान्तरम् ।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना ॥ १९९ ॥

क्रमप्राप्तं विभावनालङ्कारं लक्षयति—**प्रसिद्धेति** । प्रसिद्धस्य लोकविदितस्य हेतोः कारणस्य व्यावृत्त्या अभावप्रदर्शनेन यत्किञ्चित् किमपि कविकल्पितं कारणान्तरं विभाव्यं फलान्यथानुपपत्त्या मन्तव्यं तत्, स्वाभाविकत्वं कस्यापि कारणस्याननुसन्धाने सति कार्यस्य स्वभावसिद्धत्वं वा विभाव्यं सा विभावना नामालङ्कारः ॥ १९९ ॥

हिन्दी—जहाँ पर प्रसिद्ध कारणका अभाव बताकर कुछ कविकल्पित कारणका अनुसन्धान किया जाय, अथवा किसी भी कारणके नहीं ज्ञायमान होनेसे कार्यके स्वाभाविकत्वका अन्दाज किया जाय, उसे विभावना नामक अलङ्कार कहा जाता है। प्रसिद्ध हेतुके अभावको बताकर अप्रसिद्ध कविकल्पित कारणान्तर अथवा सर्वथा कारणाभावमें कार्यके स्वाभाविकत्व की भावना ही विभावना है, इस तरहकी परिभाषामें विभावना पदका भी सामञ्जस्य रहता है। काव्यप्रकाशकार तथा उनके अनुयायियोंने—'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' यह लक्षण कहा है, इस तरहके लक्षणमें विभावना पदका सामञ्जस्य नहीं है ॥ १९९ ॥

अपीतक्षीबकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् ।
अप्रसादितशुद्धाम्बु जगदासीन्मनोहरम् ॥ २०० ॥

कारणान्तरविभावनामाह—**अपीतेति** । अपीताः अकृतमद्यपाना अपि क्षीबाः मत्ताः कादम्बा हंसा यत्र तादृशम्, असंमृष्टम् अप्रक्षालितम् अपि अमलम् निरभ्रतया स्वच्छम् अम्बरम् यत्र तादृशम्, अपि च अप्रसादितम् कतकादिनिर्मलीकरणद्रव्यद्वारा अशोधितम् अपि शुद्धम् अम्बु जलं यत्र तादृशम् जगत् मनोहरम् आसीत् । अत्र कादम्बक्षीबत्वाम्बरामलत्वजलप्रसादितत्वानां मद्यपानसम्मार्जनप्रसादनानि प्रसिद्धानि कारणानि, तानि नञा व्यावर्त्तितानि, तेषामभावेऽपि तादृशफलोत्पत्तिः किमपि कारणमपेक्षतेव, तद्विभावनाय शरद्रूपं कारणान्तरं कल्पयति विभावयति, तच्च विभाव्यमानं शरद्रूपं कारणमप्रार्थमेव शब्दानिवेदितत्वात् ॥ २०० ॥

हिन्दी—जिसमें विना मद्यपान किये ही हंसगण मत्त हो रहे हैं, जिसमें बिना साफ किये ही आकाश स्वच्छ हो रहा है और जिसमें निर्मली आदि साफ करनेवाली वस्तुयें डालकर स्वच्छ नहीं करने पर भी पानी शुद्ध हो रहा है, ऐसा (शरत्कालिक) जगत् मनोहर हो रहा था।

इस उदाहरणमें मत्तता, निर्मलता और शुद्धताके कारण मद्यपान, संमार्जन और प्रसादनके अभावमें भी उन कार्योंकी उत्पत्ति होती है, कार्य कारण तो होना चाहिये, अतः शरत् रूप कारण की विभावना-कल्पना की जाती है, यही कारण है कि इसे विभावनाऽलंकार कहा जाता है ॥२००॥

अनञ्जितासिता दृष्टिर्भ्रूरनावर्जिता नता ।
[1]अरञ्जितोऽरुणश्चायमधरस्तव सुन्दरि ॥ २०१ ॥

उदाहरणान्तरमाह—**अनञ्जितेति** । हे सुन्दरि, तव दृष्टिः अनञ्जिता अनाकलितकज्जला अपि असिता श्यामा, तव भ्रूः अनावर्जिता अनाकृष्टा अपि नता वक्रीभूता,

---

१. अरञ्जितारुणः ।

तव अयम् अधरश्च अरञ्जितः रञ्जनद्रव्येणारक्तीकृतोऽपि अरुणः रक्तकान्तिः, सर्वत्रास्तीति-पदमध्याहृत्यान्वयः । अत्रासितत्वनतत्वरूपाणि कार्याणि अञ्जनावर्जनरञ्जनस्वरूपैः प्रसिद्धैः हेतुभिर्विना दर्शितानि, स्वाभाविकत्वं व्यञ्जयन्ति ॥ २०१ ॥

हिन्दी—हे सुन्दरि, काजल नहीं लगानेपर भी तुम्हारी आँखें काली हैं, आकृष्ट नहीं होने पर भी तुम्हारी भ्रुकुटियाँ नत हैं और बिना रंगे भी यह तुम्हारा अधर रक्तवर्ण है।

इस उदाहरणमें कालापन, नतत्व और लालीके प्रसिद्ध कारण अंजन लगाना, आकृष्ट करना और रंगना निषिद्ध कर दिये गये हैं, इससे उन कार्योंकी स्वाभाविकता विभावित होती है। इसको स्वाभाविक विभावना कहते हैं।

विभावनाके लक्षणमें दण्डीने-'कारणान्तरं स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यते' कहा है, तदनुसार ही उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं, 'अपीतक्षीब' यह कारणान्तर विभावनाका उदाहरण है और 'अनञ्जितासिता' यह स्वाभाविक विभावनाका उदाहरण है ॥ २०१ ॥

यदपीतादिजन्य[1] स्यात् क्षीबत्वाद्यन्यहेतुजम् ।
अहेतुकं च तस्येह विवक्षेत्यविरुद्धता ॥ २०२ ॥

विभावनाया उदाहरणद्वयं प्रदर्शितं, सम्प्रति तत्सङ्गतिमाह—**यदपीतेति** । पूर्वोदाहरणे 'अपीतक्षीबकादम्बम्' इत्यत्र अपीतादिजन्यम् पानाद्यजन्यम् क्षीबत्वादि अन्यहेतुजम् शरत्कालरूपकारणान्तरजन्यम्, द्वितीयोदाहरणे 'अनञ्जितासिता' इत्यत्र अञ्जनाद्यजन्यम् असितत्वादि अहेतुकं स्वभावजम्, एवमुदाहरणद्वये तस्य अन्यहेतुजत्वस्य अहेतुकत्वस्य च विवक्षा, अतः अविरुद्धता विरोधाभावः । अयं भावः अत्रोभयत्रापि विभावनोदाहरणतयोपस्थापिते पद्ये अपाने मत्तता अनञ्जनेऽसितत्वमुच्यते, न चेदं सम्भवति मत्तारूपं कार्यं प्रति पानस्याऽसितत्वरूपं च कार्यं प्रति कज्जलाकलनस्य च कारणत्वेनाभ्युपगतेः, कारणाभावे कार्यं कथमिव जायते, तथा सति सर्वत्र सर्ववस्तुप्रसङ्गः, इमामेवाशङ्कां मनसिकृत्याचार्यः परिहारमाहात्र । पूर्वोदाहरणे क्षीबत्वं पानाजन्यमपि शरत्कालजन्यमिति कारणान्तरं विभाव्यत एव, परत्र चोदाहरणेऽहेतुकत्वेनोच्यमानं स्वभावजमिति विभाव्यते, तथा च स्वभाव एव तत्र कारणमिति द्वयोरपि स्थलयोः कारणजन्यमेव कार्यं न तद्विरुद्धमिति नास्ति कोऽपि सिद्धान्तविरोध इति ॥ २०२ ॥

हिन्दी—विभावनाके दो उदाहरण दिये गये हैं, उनके विषयमें यह शङ्का की जाती है कि 'अपीतक्षीबकादम्बम्' इसमें अपीतादिजन्य-पानाद्यजन्य क्षीवता कैसे होगी, क्योंकि कारणके बिना कार्य कैसे होगा? इसका उत्तर यह है कि पानरूप प्रसिद्ध हेतुका निषेध करके भी उसे अन्यहेतुक शरत् रूप कारणान्तरजन्य कहा जाता है, इस अवस्थामें वह बिना कारणका कार्य कैसे हुआ। जो कारण दूसरे लोग कहते हैं कवि उसका प्रतिषेध करके चमत्कारी कारणोपन्यास करता है, वह वैसा ही कहना चाहता है, फिर इसमें अकारणे कार्यरूप शास्त्रसिद्धान्तका विरोध कहाँ है? दूसरे उदाहरणमें 'अनञ्जिताऽसिता दृष्टिः' में असितत्वके कारण अंजनका प्रतिषेध करके असितत्वको अहेतुक कहा है, अहेतुक—स्वाभाविक। यहाँ का असितत्वरूप कार्य कारणके बिना ही नहीं हो गया है, वह स्वभाव रूप अलौकिक कारणसे जन्य बताया गया है, अतः यहाँ भी कारणाभावशाली शङ्का नहीं उठती, 'अपीतादिजन्यम् यत् क्षीबत्वादि (तत्) अन्यहेतुजं

---

१. पीत्यादि जन्म।

स्यात् अहेतुक च स्यात्, तस्य (अन्यहेतुजत्वस्य अहेतुकत्वस्य च) इह विवक्षा, इति अविरुद्धता' इस तरह अन्वय करके अर्थ करना चाहिये ॥ २०२ ॥

वक्त्रं निसर्गसुरभि वपुरव्याजसुन्दरम्[1] ।
अकारणरिपुश्चन्द्रो निर्निमित्तासुहृत्[2] स्मरः ॥ २०३ ॥
निसर्गादिपदैरत्र हेतुः साक्षान्निवर्तितः ।
उक्तं च सुरभित्वादि[3] फलं तत्सा[4] विभावना ॥ २०४ ॥

(इति विभावनाचक्रम्)

शाब्दं स्वाभाविकं विभावनाभेदमुदाहरति—**वक्त्रमिति** । वक्त्रं मुखं निसर्गसुरभि स्वाभाविकसौरभशालि, वपुः शरीरम् अव्याजसुन्दरम् निष्कपटरमणीयम्, चन्द्रः अकारणरिपुः अहेतुकः शत्रुः, स्मरः निर्निमित्तासुहृत् अकारणशत्रुः अस्तीति शेषः ॥ २०३ ॥

उदाहरणं योजयति—**निसर्गादीति** । अत्र प्रदर्शितोदाहरणे निसर्गादिपदैः निसर्गाव्याजाकारणनिर्निमित्तशब्दैः हेतुः तत्र तत्र कारणतया मताः हेतवः कर्पूरभूषाधारणमात्सर्यादयः साक्षान्निवर्त्तितः स्फुटं प्रतिषिद्धः, तत्सम्पाद्यं च सौरभसौन्दर्यशत्रुत्वादिकमुक्तम्, तत् तस्मादियं विभावना ॥ २०४ ॥

हिन्दी—मुख स्वभावतः सुगन्धियुक्त है (कर्पूरधारणसे सुगन्धित नहीं है). शरीर अकृत्रिम सौन्दर्ययुक्त है (भूषण धारण करके सुन्दर नहीं हुआ है), चन्द्रमा स्वाभाविक शत्रु है (किसी कारणसे शत्रुता नहीं हुई है), इसी तरह कामदेव भी बिना कारणके शत्रु हो रहा है ॥ २०३ ॥

इस उदाहरणमें निसर्ग, अव्याज, अकारण और निर्निमित्त शब्दोंसे सौरभ, सौन्दर्य और शत्रुताके कारणोंका, कर्पूरधारण, भूषणग्रहण, मत्सरिता आदिका, व्यावर्त्तन कर दिया गया है परन्तु उनके कार्य सौरभ, सौन्दर्य और शत्रुतादि कहे गये हैं अतः यहाँ विभावना है। इसमें स्वाभाविकत्व शाब्द है, पहले वाले 'अनञ्जितासिता' इसमें स्वाभाविकत्व अर्थबललभ्य है, इसी भेदको स्पष्ट करने के लिए यह पुनः उदाहरण दिया गया है ॥ २०४ ॥

वस्तु किञ्चिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ।
उक्तिः[5] संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते ॥ २०५ ॥

क्रमप्राप्तां समासोक्तिं लक्षयति—**वस्तु किञ्चिदिति** । किञ्चित् प्रस्तुतमप्रस्तुतं वा वस्तु अभिप्रेत्य विनैव वाग्व्यापारं प्रतिपादयितुमभिलष्य तत्तुल्यस्य प्रतिपादयितुमभिलषितेन वस्तुना सदृशस्य कस्यचित् वस्तुनः प्रस्तुतस्य अप्रस्तुतस्य वा वस्तुनः उक्तिः समासोक्तिः, तादृशनामकरणे कारणं निर्दिशति—**संक्षेपरूपत्वादिति** । एकस्याभिधानेन द्वयोरभिधानं संक्षेपः, संक्षेपः समास इति चानर्थान्तरम् । तथा च प्रस्तुताप्रस्तुतयोरन्यतरस्य प्रयोगेण तदन्यस्य प्रतीतिः समासोक्तिरिति लक्षणं फलितम् ।

एकस्य प्रस्तुताप्रस्तुतयोरन्यतरस्य शब्देनाभिधानेऽन्यस्य जायमानोऽशाब्दो बोधश्चमत्कारविशेषं जनयति, तदेवास्या अलङ्कारतायां निदानम् ॥ २०५ ॥

हिन्दी—किसी प्रस्तुत या अप्रस्तुत वस्तुकी अभिलाषा करके, बिना शब्दव्यापारके ही कहनेकी इच्छाका विषय बनाकर, तत्सदृश कथनीयतया अभिलषितार्थसमान किसी प्रस्तुत वा अप्रस्तुतकी उक्तिको समासोक्ति नामक अलङ्कार कहते हैं, इसमें संक्षेपेण उक्ति रहती है—अर्थात् एकके कथनसे दो समझे जाते हैं अतः इसे समासोक्ति नामसे व्यवहृत किया जाता है। एक

---

१. रत्यन्त । २. सुहृत् स मे । ३. सुरभीत्यादि । ४. तस्मात् । ५. संक्षिप्त ।

वाक्यमें—प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनोंमें से एकके कथनसे तदन्यकी प्रतीतिको समासोक्ति कहते हैं। एक अर्थके शब्दप्रतिपादित रहने पर दूसरा अर्थ यदि प्रतीत होता है तो एक प्रकारका वैचित्र्य उत्पन्न होता है, वही वैचित्र्य इस अलङ्कारका बीज है।

समासोक्ति प्राचीन अलङ्कारोंमेंसे है, भामहने इसका लक्षण कहा है :—

'प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानविशेषणैः।
अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिः ॥' (काव्यालङ्कारसारसंग्रह २. १०.)

इसका अभिप्राय यह है कि समान विशेषणके सामर्थ्यसे प्रकृतपरक वाक्यद्वारा अप्रकृत अर्थके अभिधानको समासोक्ति कहा जाता है।

राजानक रुय्यकने अलङ्कारसर्वस्वमें—

'विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः।'

ऐसा लक्षण कहा है, इसी लक्षणके पदचिह्नोंपर चलकर मम्मटने कहा है :—

'परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः'

मम्मटने स्पष्ट कर दिया है कि विशेषणसाम्यमें ही समासोक्तिका जीवन निहित है, विशेष्य-साम्यकी अपेक्षा नहीं की जाती है।

भोजराजने कुछ दूसरा ही लक्षण प्रस्तुत किया है :—

'यत्रोपमानादेवैतत् उपमेयं प्रतीयते। अतिप्रसिद्धेस्तामाहुः समासोक्तिं मनीषिणः ॥'

साहित्यदर्पणकारने—

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः। व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ॥'

यह लक्षण कहकर समासोक्तिका क्षेत्र बढ़ा दिया है ॥ २०५ ॥

पिबन्मधु यथाकामं भ्रमरः फुल्लपङ्कजे।
अप्यसन्नद्धसौरभ्यं पश्य चुम्बति कुड्मलम् ॥ २०६ ॥

समासोक्तिमुदाहरति—**पिबन्निति**। भ्रमरः फुल्लपङ्कजे विकसिते कमले यथाकामं यथेच्छं मधु पुष्परसं पिबन् असन्नद्धसौरभ्यं कालप्रतीक्षयाऽनुरजातसुगन्धम् कुड्मलम् कलिकां चुम्बति, इति पश्य। वाक्यार्थः कर्म ॥ २०६ ॥

हिन्दी—विकसित कमलमें यथारुचि मकरन्द पान करनेवाला यह भ्रमर कालकी प्रतीक्षासे अनुत्पन्नगन्ध इस कलीको चूम रहा है। इस बातको देखिये ॥ २०६ ॥

इति प्रौढाङ्गनाबद्धरतिलीलस्य रागिणः।
कस्याञ्चिदिह बालायामिच्छावृत्तिर्विभाव्यते ॥ २०७ ॥

उदाहरणं योजयति—**इतीति**। इति अत्रोदाहरणे प्रौढाङ्गनाबद्धरतिलीलस्य प्रौढ-वनितानुरक्तस्य कस्यचित् रागिणः कामिनः कस्यांचित् बालायाम् अज्ञातयौवनायाम् इच्छावृत्तिः सुरताभिलाषोदयो विभाव्यते प्रतीयते। अत्राप्रस्तुतभ्रमरवृत्तान्तेन प्रौढाङ्गना-रतिशालिनः कामुकस्य बालासुरतासक्तिस्समासोक्त्या प्रतीयते। अत्र कार्यसाम्यं प्रत्यायनबीजम् ॥ २०७ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें प्रौढ़वनिताके साथ यथेच्छ रतिक्रीड़ा करते हुए किसी कामुककी अज्ञातयौवना किसी बालवनिताके साथ सुरतकी इच्छा प्रतीत होती है। यहाँ पर अप्रस्तुत भ्रमर वृत्तान्तसे अप्रस्तुत नायकवृत्तान्तकी प्रतीति होती है। यह कार्य साम्यमूलक समासोक्ति है ॥२०७॥

विशेष्यमात्रभिन्नापि तुल्याकारविशेषणा।
अस्त्यसावपराप्यस्ति भिन्नाभिन्नविशेषणा ॥ २०८ ॥

समासोक्तेः प्रभेदं विशदयति—**विशेष्येति**। तुल्याकारविशेषणाश्लेषादिना प्रस्तुताप्रस्तुतोभयगामिविशेषणा विशेष्यमात्रभिन्ना श्लेषाभावेन यत्र विशेष्यमात्रं नोभयपर्यवसायि किन्त्वेकार्थबोधकं तादृशी, असौ एतादृशी समासोक्तिरस्ति, अपरापि भिन्नाभिन्नविशेषणा यत्रांशे न श्लेषस्तत्र भिन्नविशेषणा यत्र च श्लेषस्तत्राभिन्नविशेषणा, तदुभयोरेकत्र समावेशे भिन्नाभिन्नविशेषणाऽपि समासोक्तिरस्ति। अयमाशयः—समासोक्तेर्भेदद्वयमस्ति, एकः—यत्र विशेषणानि श्लेषेणोभयार्थबोधकानि केवलं विशेष्यं न श्लिष्टमिति तदेकार्थम्। अन्यश्च यत्र कतिचनविशेषणानि श्लेषेणाभिन्नानि, कतिचिच्च श्लेषाभावेन भिन्नानि। तदिदं भेदद्वयमपि पुर उदाहरणप्रसङ्गे स्फुटीभविष्यति ॥ २०८ ॥

हिन्दी—समासोक्तिके दो प्रकार हैं, एक वह जिसमें विशेष्यवाचक पद अश्लिष्यमाण होता है अतएव विशेष्यभिन्न एकार्थवाचक होता है और विशेषणवाचक पदोंमें श्लेषके होनेसे विशेषणतुल्याकार उभयार्थक हों, दूसरा प्रभेद वह होता है जिसमें कुछ विशेषण तो श्लेष नहीं होनेसे भिन्न होते हैं और कुछ विशेषण श्लिष्टपदोपस्थाप्य होनेसे अभिन्न होते हैं। इनमें प्रथम प्रभेद विशेष्यमात्रभिन्ना और दूसरा प्रभेद भिन्नाभिन्नविशेषणा कहलाती है।

इन प्रभेदोंमें श्लेषशब्दसे शब्दश्लेष और अर्थश्लेष दोनों तरहके श्लेष लिये जाते हैं, शब्दश्लेषमूलक विशेष्यमात्रभिन्ना तुल्याकारविशेषणा समासोक्ति का उदाहरण दण्डीने स्वयं दिया है, अर्थश्लेषमूलक तुल्याकारविशेषणा समासोक्तिका उदाहरण यह है—

'विलिखति कुचावुच्चैर्गाढं करोति कचग्रहं लिखति ललिते वक्त्रे पत्रावलीमसमञ्जसाम्।
क्षितिप खदिरः श्रोणीबिम्बाद्विकर्षति चांशुकं मरुभुवि हठान्नश्यन्तीनां तवारिमृगीदृशाम् ॥'

यहाँ पर कुचविलेखन, कचग्रहण आदि पदोंमें अर्थश्लेष द्वारा ही खदिर वृक्ष तथा हठ नायक दोनों में साधारण्य होता है, इसमें उन्हीं साधारण विशेषणोंसे हठ नायककी प्रतीति होती है।

यह तुल्याकार विशेषणत्व औपम्यगर्भत्वमें और सारूप्यमें भी होता है, उनमें औपम्यगर्भका उदाहरण यह है—

'दन्तप्रभापुष्पचिता पाणिपल्लवशोभिनी। केशपाशालिवृन्देन सुवेशा हरिणेक्षणा ॥'

यहां पर नायिकावृत्तान्तसे लताकी परिस्फूर्त्ति हुई है, अतः समासोक्ति है। नायिकापक्षमें 'दन्तप्रभापुष्पाणीव' इत्यादि उपमितसमास होगा, और लतापक्षमें 'दन्तप्रभासदृशैः पुष्पैश्चिता' इस तरह समास किया जायगा।

सारूप्यमें उदाहरण है :—

'पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति' ॥

यहाँ पर सारूप्य द्वारा वनसे कुटुम्बियों की प्रतीति होती है ॥ २०८ ॥

रूढमूलः फलभरैः पुष्णन्ननिशमर्थिनः।
सान्द्रच्छायो महावृक्षः सोऽयमासादितो मया ॥ २०९ ॥

तुल्याकारविशेषणां समासोक्तिमाह—**रूढमूल इति**। रूढं प्रवृद्धं मूलं शिफा मूलधनञ्च यस्य तादृशः, फलभरैः नानाविधैः फलैः तथा वाञ्छितार्थलाभैः अनिशं सदा अर्थिनः याचकान् पुष्णन् योजयन्, सान्द्रच्छायः घनच्छायः प्रसन्नकान्तिश्च सोऽयं महावृक्षो मयाऽऽसादितो लब्धः। अत्र सर्वाण्यपि विशेषणानि श्लिष्टतया तुल्याकाराणि वृक्षमहापुरुषोभयगामीनि, केवलं महावृक्ष इति विशेष्यपदमेकार्थम्। अत्र वृक्षोक्त्या महापुरुषस्य प्रतीतिरिति समासोक्तिः ॥ २०९ ॥

हिन्दी—जिसका मूल (जड़) बढ़ा हुआ है और जिसका मूलधन बहुत बढ़ा हुआ है, फलराशिसे और वाञ्छितार्थलाभसे जो याचककोंकी तृप्ति करता है, जिसकी छाया बड़ी घनी है, और जिसकी वदनकान्ति प्रसन्न है, ऐसे महावृक्षको (महापुरुषको) मैंने प्राप्त कर लिया है। इसमें महावृक्षोक्तिसे महापुरुषकी प्रतीति है अतः यहाँ समासोक्ति अलङ्कार हुआ, उसमें भी यहाँ सभी विशेषण श्लिष्ट हैं अतः वृक्ष पुरुष दोनोंमें अन्वित होते हैं, केवल विशेष्य भिन्न है अश्लिष्ट है, अतः इस भेदको विशेष्यमात्रभिन्ना तुल्याकारविशेषणा समासोक्ति कहते हैं ॥ २०९ ॥

अनल्पविटपाभोगः फलपुष्पसमृद्धिमान् ।
[1]सोच्छ्रायः स्थैर्यवान् दैवादेष लब्धो मया द्रुमः ॥ २१० ॥

भिन्नाभिन्नविशेषणां समासोक्तिमुदाहरति—**अनल्पेति**। अनल्पः अधिको विटपानाम् शाखानाम् आभोगो विस्तारो यस्य तादृशः फलपुष्पसमृद्धिमान् फलैः पुष्पैश्च पूर्णः, सोच्छ्रायः महोन्नतः स्थैर्यवान् दृढमूलश्च एषः महाद्रुमो मया दैवात् लब्धः। अत्र वृक्षस्य चत्वारि विशेषणानि, तेषु द्वे केवलं वृक्षगते इति भिन्ने, अन्तिमे च द्वे विशेषणे सोच्छ्रायः स्थैर्यवानिति च, उच्छ्रायो विभूतिमत्त्वं स्थैर्यवान् दृढनिश्चय इत्यर्थेन महापुरुषेऽपि योजयितुं शक्येते, तेनेमे अभिन्ने एवम् भिन्नाभिन्नविशेषणा समासोक्तिरियम् ॥ २१० ॥

हिन्दी—जिसकी शाखाओंका विस्तार बहुत बड़ा है, जो फलपुष्पसे समृद्ध है, जो बहुत ऊँचा है, जिसकी जड़ दृढ़ है, ऐसे वृक्षको मैंने भाग्यवश प्राप्त कर लिया है। यहाँ पर वृक्षसे किसी महापुरुष की प्रतीति होती है, अतः यह समासोक्ति है। इस उदाहरणमें वृक्षके चार विशेषण हैं, जिनमें पहले दो विशेषण श्लेषासम्पृक्त होनेके कारण भिन्न हैं, सोच्छ्राय और स्थैर्यवान् यह दो विशेषण श्लिष्ट हैं, महापुरुषपक्षमें इनका अर्थ उन्नतियुक्त तथा दृढ़निश्चय यह किया जाता है, अतः ये दोनों विशेषण अभिन्न हुए, इस प्रकारसे यह उदाहरण भिन्नाभिन्नविशेषण समासोक्ति का हुआ ॥ २१० ॥

उभयत्र पुमान् कश्चिद् वृक्षत्वेनोपवर्णितः ।
सर्वे साधारणा धर्माः पूर्वत्रान्यत्र तु द्वयम् ॥ २११ ॥

उदाहरणद्वयगतं विशेषमाह—**उभयत्रेति**। अनन्तरोक्तं उदाहरणद्वये उभयत्र कश्चित् पुमान् वृक्षत्वेनोपवर्णितः वृक्षोपमानतया निर्दिष्टः, तयोः पूर्वत्र प्रथमे सर्वे रूढमूलत्वादयो धर्माः साधारणाः श्लिष्टतयोभयान्वयिनः, अन्यत्र द्वितीय उदाहरणे तु (चतुर्षु विशेषणेषु) द्वयम् अन्तिमविशेषणद्वितयम् साधारणम् उभयनिष्ठम् अत एव च प्रथमस्य तुल्याकारविशेषणतया चरमस्य च भिन्नाभिन्नविशेषणतया व्यपदेशः ॥२११॥

हिन्दी—ऊपर बताये गये दोनों उदाहरणोंमें—'दृढमूलः' इत्यादि तथा 'अनल्पविटपाभोगः' इत्यादिमें—किसी महापुरुषको वृक्षत्वेन स्तुत किया गया है, वृक्षका वर्णन करके किसी महापुरुषकी प्रतीति कराई गई है, यह दोनों समासोक्तिके उदाहरण हैं। इनमें पहले 'दृढमूलः' इत्यादि उदाहरणमें सभी विशेषण समान हैं। अर्थात् श्लिष्टतया वृक्ष और महापुरुष दोनों में अन्वित होते हैं, दूसरे उदाहरण—'अनल्पविटपाभोगः' में कथित चार विशेषणोंमें से केवल दो ही—'सोच्छ्रायः', 'स्थैर्यवान्' विशेषण श्लिष्ट होनेसे उभयान्वयी हैं। यही कारण है कि पहला उदाहरण तुल्याकारविशेषण समासोक्ति का है, और दूसरा उदाहरण भिन्नाभिन्नविशेषणा समासोक्ति का ॥ २११ ॥

---

१. सुच्छायः ।

निवृत्तव्यालसंसर्गो निसर्गमधुराशयः ।
अयमम्भोनिधिः कष्टं कालेन परिशुष्यति'[1] ॥ २१२ ॥
इत्यपूर्वसमासोक्तिः पूर्वधर्मनिवर्त्तनात् ।
समुद्रेण[2] समानस्य पुंसो व्यापत्तिसूचनात् ॥ २१३ ॥
(इति समासोक्तिचक्रम्)

अपूर्वसमासोक्तिमुदाहरति—**निवृत्तेति** । निवृत्तः दूरीभूतः व्यालानां सर्पाणां संसर्गः सम्बन्धो यत्र तादृशः (सागरः) खलानां संसर्ग इति च प्रतीयमाने पुरुषेऽर्थः, निसर्गमधुराणां जलानामाशयः आधारः (सागरः) निसर्गमधुरचित्तवृत्तिश्च पुरुषः । एतादृशः अयम् (अद्भुततयाऽपूर्वः) अम्भोनिधिः सागरः कालेन समयक्रमेण (यमेन च) परिशुष्यति नाशं गमिष्यति । कष्टं दुःखप्रदमिदम् । अत्र सागरेणोक्तेन कश्चन महान्पुरुषः प्रत्याय्यते ॥ २१२ ॥

उदाहरणं योजयति—**इतीति** । इति सेयमुदाहृता समासोक्तिः अपूर्वसमासोक्तिर्नाम, तत्र हेतुमाह—पूर्वधर्मनिवर्त्तनादित्यादिना । पूर्वयोः संसारे समुद्रवर्त्तितया प्रसिद्धयोः व्यालसंसर्गक्षारजलत्वयोः निवर्त्तनात् व्यालासंसृष्टत्वमधुराशयत्वोक्त्या समुद्रे प्रसिद्धधर्मविरुद्धधर्मयोर्निवेशनात् , निवृत्तव्यालत्वादिगुणैः समुद्रेण समानस्य पुंसो व्यापत्तिसूचनात् नाशस्य बोधनादियमपूर्वसमासोक्तिः ॥ २१३ ॥

हिन्दी—जो साँपोंके संसर्गसे रहित है, या दुर्जनसंसर्गसे रहित है, जिसमें स्वभावतः मधुररसवाले जल भरे हैं, या जिसकी मनोवृत्ति कोमल है, ऐसा वह जलनिधि (सत्पुरुष) कालके प्रभावसे (मृत्युसे) सूख जायगा (नष्ट हो जायगा) ॥ २१२ ॥

यह अपूर्वसमासोक्तिका उदाहरण है क्योंकि इसमें संसारप्रसिद्ध सागरधर्म सर्पयुक्तत्व और क्षारजलत्वका तिरस्कार करके (अपूर्वधर्मका आरोप करके) समुद्रसे समता रखनेवाले सत्पुरुषके नाशकी प्रतीति कराई गई है ॥ २१३ ॥

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी[3] ।
असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा[4] यथा ॥ २१४ ॥

अतिशयोक्तिं लक्षयति—**विवक्षेति** । विशेषस्य प्रस्तुतवस्तुगतस्योत्कर्षस्य लोकसीमातिवर्त्तिनी लौकिकमर्यादातिक्रान्ता अद्भुतवर्णनानुगता विवक्षा—विवक्षया वर्णना सातिशयोक्तिर्नाम । प्रस्तुतस्य विशेषस्यातिबलं वर्णनमतिशयोक्तिरित्यर्थः । सा चेयमतिशयोक्तिरलङ्कारोत्तमा, वैचित्र्यमूलकेष्वलङ्कारेषु अतिवेलवर्णनमेव प्रायशो बीजभूतं तदेवात्र प्रधानमिति युज्यतेऽतिशयोक्तेरलङ्कारोत्तमत्वमिति बोध्यम् ॥ २१४ ॥

हिन्दी—प्रस्तुत वस्तुको असाधारणरूपसे बढ़ा-चढ़ाकर कहना ही अतिशयोक्ति नामका अलङ्कार है। वह सभी अलङ्कारोंमें श्रेष्ठ है, क्योंकि वैचित्र्यमूलक अलङ्कारोंमें जो विचित्रता रहा करती है वह बढ़ाकर कहनेसे ही, उसीकी प्रधानता उसमें रहती है। प्रस्तुत वस्तुका उत्कर्षवर्णन अभेदाध्यवसानादि कतिपय रूपमें किया जा सकता है, उन्हीं स्फुटमार्गोंको आधार बनाकर अर्वाचीन आचार्योंने अभेदाध्यवसानको प्राधान्येन अतिशयोक्ति स्वरूप ही मान लिया है।

अतिशयोक्तिमें प्रस्तुत वस्तुका लोकसीमातिक्रान्तरूपमें वर्णन किया जाता है, अतः दशविध गुणोंमें अन्यतम कान्तिगुणका तो अभाव अतिशयोक्तियुक्त काव्यमें अवश्यमेव हो जायेगा, क्योंकि

१. परिशुष्यते । २. द्रे तत्समा । ३. वर्तिनः । ४. रोत्तमो ।

कान्तिगुणके लक्षणमें—'कान्तं सर्वजगत् कान्तं लौकिकार्थानतिक्रमात्' कहा है, वह आशङ्का यहाँ उठाई जा सकती है, इसका उत्तर दो प्रकारसे दिया जायगा, एक तो यह कि कान्तिनामक गुणका स्थान—वार्ताभिधानादि सीमित है अतः अतिशयोक्तिवाले काव्यमें उसके नहीं रहनेसे भी कोई क्षति नहीं होगी, दूसरा उत्तर यह है कि कान्तिगुण धर्मीके यथार्थ वर्णनकी अपेक्षा करता है, अतिशयोक्तिमें विशेष अर्थात् धर्मविशेषका ही अलौकिक रूपमें वर्णन किया जायगा, फलतः अतिशयोक्तिसे कान्तिगुणमें कुछ बाधा नहीं हो सकेगी।

अतिशयोक्तिका लक्षण अग्निपुराण में इस प्रकार कहा गया है :—

'लोकसीमातिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्त्तनम्। भवेदतिशयः·········॥'

भामहने काव्यालङ्कार नामक अपने ग्रन्थमें अतिशयोक्तिका यह लक्षण दिया है :—

'निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्। मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया बुधाः॥'

वामनने—'संभाव्यधर्मतदुत्कर्षकल्पनातिशयोक्तिः' यह लक्षण कहा है। दण्डीने जो लक्षण कहा है वह प्रकृत ही है, इन सभी लक्षणोंमें एक ही बात है, सभी आचार्य वर्णनीय वस्तुको बढ़ा-चढ़ा कर कहने को ही अतिशयोक्ति मानते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि दण्डीके कालतक अतिशयोक्तिका लक्षण बहुत स्थूल रहा है, आगे आकर इस विषयमें क्रमशः परिष्कार हुआ है।

'निमित्ततो वचो यत्तु' इस भामहके लक्षणमें थोड़ा और जोड़ कर उद्भटने अतिशयोक्तिके लक्षण का थोड़ा परिष्कार किया, उनका लक्षण है :—

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्। मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया बुधाः॥
भेदेऽनन्यत्वमन्यत्र नानात्वं यदि बध्यते। तथाऽसंभाव्यमानार्थनिबन्धेऽतिशयोक्तिगीः॥
कार्यकारणयोर्यत्र पौर्वापर्यविपर्ययात्। आशुभावं समालम्ब्य बध्यते सोऽपि पूर्ववत्॥'

मुझे मालूम पड़ता है कि इसमें बताई गई दिशा ही काव्यप्रकाशकारकी अतिशयोक्तिपरिभाषाकी प्रवर्त्तिका बनी है। उनकी परिभाषामें 'निगीर्याध्यवसानम्' वाली बात अपनी है, जिसे अनन्तरोत्पन्न सभी आचार्य स्वीकार करते आये हैं, औरों की तो बात जाने दीजिये, पण्डितराजने भी—

'विषयिणा विषयस्य निगरणमतिशयः, तस्योक्तिरतिशयोक्तिः' कह कर काव्यप्रकाशका ही मत स्वीकार किया है॥ २१४॥

मल्लिकामालभारिण्यः[1] सर्वाङ्गीणार्द्र[2]चन्दनाः।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः॥ २१५॥

अतिशयोक्तिमुदाहरति—**मल्लिकेति**। मल्लिकापुष्पाणां माधवीकुसुमानां मालाः बिभ्रतीति मल्लिकामालभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः सर्वाङ्गलिप्तमलयजद्रवाः क्षौमवत्यः सितवसना अभिसारिण्यः कान्तमभिसरन्त्योऽङ्गनाः ज्योत्स्नायां न लक्ष्यन्ते पृथक्तया न ज्ञायन्ते। अत्र ज्योत्स्नायाः श्वेतत्वं मल्लिकापुष्पाद्यभिन्नतया वर्ण्यमानं समधिकश्वेततया प्रतीयत इत्यतिशयोक्तिः॥ २१५॥

हिन्दी—माधवीपुष्पकी माला धारण करनेवाली एवं सर्वाङ्गमें चन्दन लेप करनेवाली धवलवसनपरिधाना अभिसारिकायें चाँदनी रातमें लक्षित नहीं होती हैं।

यहाँ पर चाँदनीका ही वर्णन करना है, चाँदनीकी श्वेतता मल्लिकाकुसुमचन्दनादिकी श्वेतता से मिलती-जुलती है ऐसा कहनेसे चांदनीकी प्रशंसा होती है।

१. मल्लिकामाल्यधारिण्यः। २. क्षेणार्द्र।

काव्यप्रकाशकारादि नवीन आचार्योंने ऐसे स्थलमें एक स्वतन्त्र मीलित नामक अलङ्कार स्वीकार किया है, जिसका लक्षण यह कहा है :—

'समेन लक्ष्मणा वस्तु वस्तुना यन्निगूह्यते । निजेनागन्तुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम्' ॥२१५॥

चन्द्रातपस्य बाहुल्यमुक्तमुत्कर्षवत्तया ।
संशयातिशयादीनां व्यक्त्यै[1] किञ्चिन्निदर्श्यते ॥ २१६ ॥

उदाहरणं योजयति—**चन्द्रातपस्येति** । अत्रोदाहरणे चन्द्रातपस्य चन्द्रिकायाः बाहुल्यम् समधिकं धावल्यम् । उत्कर्षवत्तया मल्लिकादिधावल्याभेदेन समधिकतया उक्तम्, अतः इदमतिशयोक्त्युदाहरणम् । भेदान्तरं दर्शयितुमाह—**संशयातिशयादीनामिति** । संशयातिशयादीनां संशयातिशयोक्तिनिर्णयातिशयोक्तिप्रभृत्यतिशयोक्तिप्रकाराणां व्यक्त्यै स्फुटप्रतिपत्तये किञ्चित् स्वल्पं निदर्श्यते उदाह्रियते ॥ २१६ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें चन्द्रिकाकी धवलता मल्लिकाकुसुमाभिन्नतया अतिधवल रूपमें वर्णित हुई है, अतः यह अतिशयोक्ति है। इसके बाद संशयातिशयोक्ति आदि प्रभेदोंको स्पष्ट करनेके लिये कुछ उदाहरण दिये जायेंगे ॥ २१६ ॥

स्तनयोर्जघनस्यापि मध्ये मध्यं[2] प्रिये तव ।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवर्त्तते ॥ २१७ ॥

संशयातिशयोक्तिमुदाहरति—**स्तनयोरिति** । हे प्रिये, तव स्तनयोः जघनस्य अपि मध्ये अन्तराले तव मध्यं कटिदेशः अस्ति नास्ति वा इति मे संदेहः संशयः अद्यापि चिरसहवासे जातेऽपि न निवर्त्तते नापैति । अत्र संशयेन मध्यस्यातिकृशत्वं वर्ण्यत इति संशयातिशयोक्तिरियम् ॥ २१७ ॥

हिन्दी—हे प्रिये, तुम्हारे, इन तुङ्गोन्नत स्तनों और चक्राकारविशाल जघनके बीचमें तुम्हारा मध्य-कमर है या नहीं यह मेरा सन्देह आज भी दूर नहीं हो सका है।

इसमें संशयद्वारा मध्यका कृशतातिशय वर्णित हुआ है, यह संशयातिशयोक्ति है ॥ २१७ ॥

निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनि ।
अन्यथानुपपत्त्यैव[3] पयोधरभरस्थिते[4]ः ॥ २१८ ॥

निर्णयातिशयोक्तिमाह—हे नितम्बिनि प्रशस्तनितम्बे, पयोधरभरस्य कुचविस्तारस्य स्थितिः सत्ता तस्याः अन्यथानुपपत्त्या निरालम्बनस्थित्यनुपपत्त्या एव तव मध्यम् अस्तीति निर्णेतुं शक्यम् । तव मध्यमतिकृशतयाऽस्ति नास्ति वेति संदेहे पयोधरभरस्यान्यथानुपपत्तिरेव संशयापासिका, यदि मध्यं न स्यात्तदा कुचभरः क्वावतिष्ठेतातोऽस्ति मध्यम् इति निर्णीयते इत्याशयः । अत्र पयोधरभरान्यथानुपपत्त्या मध्यं कल्प्यते, तेन तस्यातिकृशत्वं वर्ण्यत इति ॥ २१८ ॥

हिन्दी—हे नितम्बिनि, तुम्हारा मध्यदेश है इसका निश्चय इसीसे होता है कि तुम्हारे कुचविस्तार है, यदि मध्यदेश नहीं रहता तो यह कुचभार कहाँ रहते ? इसी अन्यथानुपपत्तिसे मध्यदेशकी कल्पना होती है। यह निर्णयातिशयोक्ति है, क्योंकि मध्य की स्थितिका निर्णय जिस प्रकारसे अवतीर्ण हुआ है वह कृशतातिशयका बोधक है ॥ २१८ ॥

अहो विशालं भूपाल भुवन[5]त्रितयोदरम् ।
माति मातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते ॥ २१९ ॥

१. व्यक्तौ । २. मध्यमस्तीति । ३. नोपपद्येत । ४. स्थितिः । ५. भवन ।

आश्रयाधिक्येऽतिशयोक्तिमुदाहरति—**अहो विशालमिति**। हे भूपाल, राजन्, भुवनत्रितयोदरम् त्रिभुवनमध्यम् विशालम् महत्, अहो आश्चर्यम्! अस्य भुवनत्रयोदरस्य विशालत्वमाश्चर्यजनकम् इत्यर्थः। आश्चर्यकारणमाह—**यदिति**। यत् यस्मात् अत्र त्रिभुवनोदरे मातुम् समावेष्टुम् अशक्यः अयोग्यः अपि ते यशोराशिः कीर्त्तिभरः माति समाविशति। अत्राश्रयस्य त्रिभुवनोदरस्य विशालताप्रतिपादनेन तत्राश्रितस्य यशोराशेराधिक्यवर्णनात् आश्रयाधिक्यातिशयोक्तिरियम् ॥ २१९ ॥

हिन्दी—हे भूपाल, यह त्रिभुवनोदर अतिविशाल है, इसकी विशालता आश्चर्यजनक है, क्योंकि इस त्रिभुवनोदरमें तुम्हारा यश भी समाविष्ट हो गया है जो कहीं भी समाविष्ट नहीं हो सका था।

इस उदाहरणमें त्रिभुवनोदर रूप आश्रयके आधिक्यसे आश्रित यशोराशिका आधिक्य वर्णित होता है, अतः यह आश्रयाधिक्यातिशयोक्ति है।

नवीन आचार्यगण इसे अधिक अलङ्कार मानते हैं, उसका लक्षण उन लोगोंने इस प्रकार कहा है :—

'महतो यन्महीयांसावाश्रिताश्रययोः क्रमात्। आश्रयाश्रयिणौ स्यातां तनुत्वेऽप्यधिकं तु तत्' ॥२१९॥

अलङ्कारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ॥ २२० ॥
(इत्यतिशयोक्तिचक्रम्)

वागीशमहिताम् बृहस्पतिनाप्यादृताम् परमश्रेष्ठाम् इमाम् वर्णितस्वरूपाम् अतिशयाह्वयाम् उक्तिम् अतिशयोक्तिम् अलङ्कारान्तराणाम् अन्येषां विविधालङ्काराणाम् अपि परायणम् परममाश्रयम् आहुः, यथोक्तं भामहेन—

'इत्येवमादिरुदिता गुणातिशययोगतः। सर्वैवातिशयोक्तिस्तु तर्कयेत्तां यथागमम्' ॥ २२० ॥

हिन्दी—बृहस्पतिके द्वारा प्रशंसित परमश्रेष्ठ यह अतिशयोक्ति अन्यान्य विविध अलङ्कारों का भी आश्रय होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि शब्दार्थवैचित्र्य ही अलङ्कार है, वह वैचित्र्य अतिशयोक्त्यधीन है, अतः सभी अलङ्कारोंमें सामान्यतः अतिशयोक्ति रहती है, परन्तु तत्तद्वैचित्र्यविशेषके कारण भिन्न-भिन्न नामसे व्यवहार होता है। जहाँ पर दूसरे प्रकारकी विचित्रता नहीं रहती है वहाँ अतिशयोक्ति होती है। इसी सिद्धान्तको हृदयमें रख कर कहा गया है :—

'कस्याप्यतिशयस्योक्तिरित्यन्वर्थविचारणात्। प्रायेगामी अलङ्कारा भिन्ना नातिशयोक्तितः' ॥२२०॥

अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां विदुर्यथा ॥ २२१ ॥

उत्प्रेक्षां लक्षयति—**अन्यथैवेति**। चेतनस्य मनुष्यादेः अचेतनस्य तर्वादेर्वा अन्यथा स्वभावनिष्पन्नतया स्थिता वर्त्तमाना गुणक्रियास्वरूपा वृत्तिः अन्यथा स्वरूपमपहाय भिन्नरूपेण यत्र उत्प्रेक्ष्यते उत्कटकोटिकसंभावनाविषयीक्रियते, बुधास्तामुत्प्रेक्षां नामालङ्कारं विदुः। अयमाशयः—यत्र प्रस्तुतस्य चेतनस्याचेतनस्य वा स्वाभाविकी स्थितिरप्रस्तुतान्यथाभावेन संभाव्यते सोत्प्रेक्षा। प्रकाशकारादयः—'संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत्' इति लक्षयन्ति। तत्रोत्कटैककोटिकः संशयः संभावनपदार्थः, तत्रापि उत्कटा कोटिरप्रस्तुत-

१. मप्याहुरेकं। २. यत्तु

स्यैव भवति, सा चाप्रस्तुतद्वारा प्रस्तुतस्य निगरणेन, तच्च द्विधा, क्वचित् प्रस्तुतस्यानुपादानेन, क्वचिच्च तस्य तिरस्कारेण भवति, तदुक्तम्—

'विषयस्यानुपादानेऽप्युपादानेऽपि सूरयः।
अधःकरणमात्रेण निगीर्णत्वं प्रचक्षते॥' इति॥ २२१॥

हिन्दी—वर्णनीय चेतन अथवा अचेतन वस्तुकी स्वाभाविक स्थितिको यदि अप्रस्तुत वस्तुके रूपमें संभावित किया जाय तब उत्प्रेक्षाऽलङ्कार होता है। यदि उपमेयमें उपमानकी संभावना की जाय तब उत्प्रेक्षा होती है, यही आशय हुआ।

यहाँ संभावना शब्दसे उत्कटैककोटिक संशय विवक्षित है। अप्रस्तुतकी ओर यदि अधिक झुकाव हो तो ऐसी संभावनामें उत्प्रेक्षा होती है। संभावनापेक्षित संशयकी उत्कटैककोटिकता दो प्रकारसे होती है, विषयमें—उपमेयके अनुपादानमें, और उपमेयके उपादीयमान होने पर भी उपमानद्वारा तिरस्करणमें। यह संशय आहार्य ही होता है, अतः भ्रमस्थलमें उत्प्रेक्षा नहीं होती। रूपकालङ्कारमें निश्चय ही होता है संशय नहीं, अतः वहां उत्प्रेक्षा नहीं कही जा सकती है। संदेहालङ्कारमें समकोटिक संशय होता है उत्प्रेक्षामें उत्कटैककोटिक। नवीन आचार्योंने उत्प्रेक्षालंकारलक्षण-प्रभेदादि इस प्रकार कहे हैं—

'भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता॥
वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः। जातिर्गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि॥
तदष्टधापि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः। गुणक्रियास्वरूपत्वान्निमित्तस्य पुनश्च ताः॥
द्वात्रिंशद्विधतां यान्ति.........।'

भामहने उत्प्रेक्षाके भेदमें चुप्पी लगा रखी थी, उन्हींके पदचिह्नों पर चलनेवाले काव्यप्रकाशकारने भी उत्प्रेक्षाके भेद नहीं किये हैं। उद्भटने—'भावाभावाभिमानतः' वाले भेदोंको माना है, अलङ्कारसर्वस्वकारने तो बहुतसे प्रभेद बताकर अन्तमें इसे अन्तहीन भेदवाली कहा है। वास्तविक दृष्टिमें इसके प्रभेदोंका कथन आवश्यक था, मौनधारणको अन्धानुकरण कहा जा सकता है॥ २२१॥

**मध्यन्दिनार्कसन्तप्तः सरसीं गाहते गजः।
मन्ये मार्त्तण्डगृह्याणि पद्मान्युद्धर्त्तुमुद्यतः॥ २२२॥
स्नातुं पातुं बिसान्यत्तुं करिणी जलगाहनम्।
तद्वैरनिष्क्रयायेति कविनोत्प्रेक्ष्य वर्ण्यते॥ २२३॥**

चेतनगतामुत्प्रेक्षामुदाहरति— **मध्यन्दिनेति**। मध्यन्दिनार्कसन्तप्तः मध्याह्नसूर्यकिरणजनितसन्तापः गजः सरसीं जलाशयं गाहते अवतरति, मन्ये मार्त्तण्डगृह्याणि सूर्यपक्षपातीनि पद्मानि उद्धर्त्तुम् उन्मूलयितुम् उद्यत इव। अत्र चेतनस्य गजस्य स्नानपानाद्यर्थं सरसीमज्जनं सूर्यस्य सन्तापकारित्वेन शत्रुभूततया तत्पक्षपातिकमलोन्मूलनहेतुतयोत्प्रेक्ष्यते। केचित्त्वत्र प्रत्यनीकालङ्कारलक्षणं योजयन्ति, तद्यथा—

'प्रत्यनीकमशक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि। तदीयस्य तिरस्कारस्तस्यैवोत्कर्षसाधकः॥'

वस्तुतस्तु—यत्र तत्पक्षापकारो वास्तवतया कविना विवक्ष्यते तत्रैव प्रत्यनीकालङ्कारः, अत्र तु संभावनामात्रमिति नास्ति तत्संभावनेति विभावनीयम्॥ २२२॥

उदाहरणमुपपादयति— **स्नातुमिति**। स्नातुम् स्नानं कर्त्तुम्, पातुम् जलपानेन तृषं शमयितुम्, बिसानि कमलनालानि अत्तुम् भक्षयितुम् (करिणा क्रियमाणम्) करिणो

१. मार्ताण्ड। २. न्याहर्तुम्। ३. उत्सुकः।

जलगाहनम् जलेऽवतरणं तस्य वैरम् सूर्ये स्वशत्रुत्वं तस्य निष्क्रयाय प्रतिशोधनाय, इति एवम् कविना उत्प्रेक्ष्य संभाव्य वर्ण्यते। मध्यन्दिने सूर्यकरसन्तप्तस्य करिणः स्नानाद्युद्दिश्य कृतमपि जलावगाहनं सन्तापकसूर्यपक्षगतकमलोन्मूलनहेतुतया संभाव्यत इति भवत्युत्प्रेक्षा-लक्षणसंगतिः ॥ २२३ ॥

हिन्दी—दोपहरके सूर्यकी किरणोंसे सन्तापित गज पानीमें प्रवेश करता है, ऐसा लगता है मानों वह अपने सन्तापक सूर्यके पक्षपाती (सूर्य कमलका मित्र माना जाता है) कमलोंको उखाड़नेके लिये ही जलमें प्रवेश कर रहा हो ॥ २२२ ॥

इस उदाहरणमें नहाने, पानी पीने या कमलनाल-भक्षणके लिये हाथी द्वारा किया गया जला-वगाहन सूर्यपक्षगत कमलोन्मूलनहेतुतया संभावित करके वर्णित हुआ है, अतः इसे उत्प्रेक्षा मान सकते हैं। यहाँ पर चेतन गजगत वृत्तिको—स्वाभाविक जलावगाहनको अन्य रूपमें—स्वसन्तापक शत्रुभूत सूर्यपक्षगामी कमलकुलोन्मूलनार्थत्वरूपमें संभावित किया गया है, अतः यह उत्प्रेक्षा है, इसमें उत्प्रेक्षाके सभी अङ्ग हैं, उत्प्रेक्षाविषय—जलावगाहन, उसका कारण मध्यन्दिनार्क सन्ताप, उत्प्रेक्षावाचक—मन्येशब्द, अन्यथा संभावना—सूर्यपक्षीय कमलोन्मूलनहेतुत्वेन संभा-वना ॥ २२३ ॥

कर्णस्य भूषणमिदं ममायाति विरोधिनः[1]।
इति कर्णोत्पलं प्रायस्तव दृष्ट्या विलङ्घ्यते ॥ २२४ ॥
अपाङ्गभागपातिन्या दृष्टेरंशुभिरुत्पलम्।
[2]स्पृश्यते वा न [3]वेत्येवं कविनोत्प्रेक्ष्य वर्ण्यते ॥ २२५ ॥

अचेतनगतोत्प्रेक्षामुदाहरति—**कर्णस्येति**। तव दृष्ट्या नयनेन (कर्तृपदम्) मम दृष्ट्याः आयतेः दैर्घ्यविस्तारस्य विरोधिनः बाधकस्य कर्णस्य इदम् उत्पलं भूषणमिति संभाव्यैव प्रायः कर्णोत्पलं विलङ्घ्यते निजांशुभिः प्रताड्यते। यद्ययं कर्णो नाभविष्यत्तदा मदीयो विस्तारोऽधिकोऽभविष्यदिति स्वीयविस्तारविरोधितया कर्णा मतः, तस्यैव चेदमुत्पलमलङ्करणमिति संभाव्यैव तव दृष्टिः स्वप्रभयोत्पलं ताडयतीति भावः ॥ २२४ ॥

उदाहरणं योजयति—**अपाङ्गभागेति**। अपाङ्गभागपातिन्याः 'गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गावधि' इत्युक्ततया नेत्रप्रान्तमात्रे प्रसरणशीलायाः दृष्टेः नयनस्य अंशुभिः नीलाभकिरणैः उत्पलम् कर्णाभरणीभूतं स्पृश्यते वा न वा स्पृश्यते (स्पर्शमात्रमपि मनाक्संभावना-दूरगतम्) इति एवम् अस्यामेव स्थितौ तदीयदृगंशुभिः उत्पलस्य पराभवः कल्पनयोत्प्रेक्ष्यत इति भवति लक्षणसङ्गतिः। पूर्वोदाहरणे चेतनस्य गजस्य जलावगाहनक्रियोत्प्रेक्षाविषयी-कृताऽत्र तु अचेतनस्य नयनगुणः (श्यामत्वं) कविनोत्प्रेक्षाविषयीकृत इति ॥ २२५ ॥

हिन्दी—तुम्हारे नयन, यह उत्पल हमारे विस्तारको रोकने वाले इन कानोंके भूषण हैं, यही समझ कर (स्वशत्रूपकारकतया वैरी मान कर) अपनी श्यामल प्रभासे इन उत्पलोंको अभिभूत किया करते हैं ॥ २२४ ॥

इस उदाहरणमें नेत्रप्रान्तमें फैलने वाली आँखोंकी श्यामलता उत्पलको छूती है या नहीं छूती है, परन्तु कविने उसी श्यामलतासे उत्पलका अभिभव वर्णन किया है, इस उदाहरणमें अचेतन नयननिष्ठ श्यामत्व गुणका उत्पलाभिभव कर्तृतया उत्प्रेक्षित किया गया है। यहाँ प्रायः शब्द उत्प्रेक्षावाचक है ॥ २२५ ॥

---

१. निरोधिनः। २. स्पृश्येत। ३. न वेवं तु।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
[1]इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् ॥ २२६ ॥

मन्ये शंके ध्रुवं प्राय इत्यादयः शब्दा उत्प्रेक्षावाचकाः, इवशब्द उपमावाचकः, इति प्रवादमाधारीकृत्य प्ररूढं लिम्पतीवेत्यादिश्लोके उपमैवालङ्कार इति मतं दूषयितुमाह—**लिम्पतीवेति** । वर्षासमयकृष्णप्रदोषवर्णनप्रसङ्गे मृच्छकटिकनाटके पद्यं विद्यते—

'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः । असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥'
तदेवात्र विवेचनाय प्रक्रान्तम् । तमः अङ्गानि लिम्पतीव, नभः अञ्जनं कज्जलं वर्षतीव, इति इदं पद्यार्धमपि भूयिष्ठं प्राचुर्येण उत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् उत्प्रेक्षाया लक्षणेन युक्तम् । तथाहि अत्र तमसो व्यापनरूपो धर्मो लेपनेन संभावितः, तस्यैव चाधःप्रसरणरूपो धर्मः नभःकर्तृकाञ्जनवर्षणरूपतयोत्प्रेक्षितः । उभयत्रापि विषयस्य संभावनाधिकरणस्यानुपादानं समानम् । अत्रत्य इवशब्दः सम्भावनार्थकः, दूरस्थोऽयं देवदत्त इव भातीत्यत्रेवशब्दवत् । तथाचोत्प्रेक्षालक्षणाक्रान्ततयात्रोत्प्रेक्षैव, नोपमेति ॥ २२६ ॥

हिन्दी—कुछ प्राचीन आचार्य ऐसा विचार रखते थे कि मन्ये, शङ्के, ध्रुवं, प्रायः—इन शब्दोंके रहनेपर उत्प्रेक्षालङ्कार होता है, और इव शब्दके रहनेपर उपमालङ्कार होता है, इसी स्वसिद्धान्तके अनुसार 'लिम्पतीव' इस श्लोकमें उपमा ही मानते हैं, उनके मतका खण्डन करनेके लिये यहाँ से उपक्रम किया गया है।

इस श्लोकमें वर्षाकालके कृष्णपक्षीय प्रदोषकालका वर्णन है। यहाँ पर अन्धकारके फैलनेको अङ्गलेपन रूपमें संभावित किया जाता है और अन्धकारके अधःप्रसरणको आकाश द्वारा किये गये अंजनवर्षणके रूपमें संभावित किया जाता है। इस उदाहरणमें अधिकांशमें उत्प्रेक्षाका लक्षण संगत होता है। अतः इस पद्यार्धमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार ही है, उपमालङ्कार नहीं। इसी तरह—

'पिनष्टीव तरङ्गाग्रैरुदधिः फेनचन्दनम् । तदादाय करैरिन्दुर्लिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥'
इस पद्यमें भी उत्प्रेक्षालङ्कार ही मानना चाहिये।

कुछ अन्य आचार्य इसे सादृश्यमूलक उत्प्रेक्षा मानते हैं, परन्तु दण्डीने तो यहाँ स्पष्ट उत्प्रेक्षा स्वीकार की है ॥ २२६ ॥

केषाञ्चिदुपमाभ्रान्तिरिवश्रुत्येह जायते ।
नोपमानं तिङन्तेनेत्यतिक्रम्याप्तभाषितम् ॥ २२७ ॥

पूर्वकारिकया स्वसिद्धान्त उक्तः, सम्प्रति प्रतिपक्षमतं खण्डयति—**केषाञ्चिदिति** । केषाञ्चित् परेषाम् आचार्याणाम् इह अत्रोदाहृते पद्यार्धे उपमाभ्रान्तिः उपमैवेति संदेह इवश्रुत्या इवशब्ददर्शनेन जायते, तथाविधा भ्रान्तिश्च निर्मूलेति पूर्वार्द्धभागार्थः । तत्र बाधकमाह—**नोपमानमिति** । तिङन्तेन तिङन्तशब्दप्रतिपाद्येन न उपमानम् न उपमानबोध इति आप्तभाषितम् अनुल्लङ्घनीयवचनस्याचार्यस्य पतञ्जलेर्भाषितम् वचनमतिक्रम्य उल्लङ्घ्य जातत्वादेवैतादृशं ज्ञानं भ्रम इति । भाष्यकृता 'न तिङन्तेनोपमानमस्ती'-

१. इतः प्राक् निम्नपद्यं क्वचिद् दृश्यते—
'असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ।
पिनष्टीव तरङ्गाग्रैरुदधिः फेनचन्दनम् । तदादाय करैरिन्दुर्लिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥'

त्युक्तम् , तस्यायमाशयः—तिङन्तप्रतिपाद्यस्य साध्यत्वमिति शास्त्रविदः स्वीकुर्वन्ति, तथा च स्मर्यते—'असत्त्वभूतो भावश्च तिङ्पदैरभिधीयते' इति । सिद्धस्यैव चोपमानत्वमिति च सर्वसम्मतम् , यदुक्तम्—

'सिद्धमेव समानार्थमुपमानं विधीयते । तिङन्तार्थस्तु साध्यत्वादुपमानं न जायते ॥' इति ।

एवञ्च तिङन्तप्रतिपाद्यस्य लेपनादेरुपमानत्वायोगान्नास्ति कथमप्यत्रोपमा, 'किन्तु तत्र संभावनार्थक इवशब्दः' इति पूर्वोक्तभाष्यव्याख्यास्थितकैयटग्रन्थानुसारेण तत्रोत्प्रेक्षैव युक्तेति ॥ २२७ ॥

हिन्दी—इस कारिकामें दण्डीने प्रतिपक्षीके मतका खण्डन किया है, जो लोग यहाँ पर उपमालङ्कार मानते हैं उनका कहना है कि इसमें—'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' इत्यादि पूर्वोक्त पद्यमें इव शब्द है, अतः यहाँ उपमा होगी, उन्हें यह नहीं मालूम है कि ऐसा कहना परमाप्त पतंजलिकी आज्ञाका उल्लंघन करना है, पतंजलिने—'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' इस सूत्रके भाष्यमें स्पष्ट कहा है कि—'न तिङन्तेनोपमानमस्ति'। इस भाष्यपङ्क्तिका अभिप्राय यह है कि तिङन्तपदोपस्थाप्य सिद्धावस्थापन्न नहीं होता है, वह साध्यस्वरूप रहता है अतः वह उपमान नहीं हो सकता है, क्योंकि—

'सिद्धमेव समानार्थमुपमानं विधीयते । तिङन्तार्थस्तु साध्यत्वादुपमानं न जायते ॥'

अतः यदि इसमें उपमा अलङ्कार माना जाय तो यह बात आप्तभाषित-भाष्यवचनके विरुद्ध होगी, अतः यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार ही मानना चाहिये।

जो लोग पूर्वोक्त उदाहरणमें उपमा मानते हैं उनका तर्क यही है कि इस पद्यमें इव शब्द है, इव शब्द सादृश्यवाचक है अतः यहाँ उपमा है, इस तर्कका भी उत्तर पूर्वोक्त भाष्य ग्रन्थकी व्याख्यामें कैयट ने दे दिया है, उन्होंने कहा है कि—'किन्तु तत्र संभावनार्थक इवशब्दः' संभावनार्थक इव शब्द मानने पर तो उपमाकी बात ही उठ जाती है। तिङन्तके साथ उच्चरित होनेवाला इव शब्द संभावनार्थक ही हुआ करता है सादृश्यार्थक नहीं होता है, फलतः यहाँ उपमाकी संभावना नहीं है ॥ २२७ ॥

उपमानोपमेयत्वं तुल्यधर्मव्यपेक्षया ।
लिम्पतेस्तमसश्चासौ धर्मः कोऽत्र[1] समीक्ष्यते ॥ २२८ ॥

पूर्वोक्तपद्ये उपमालङ्कारानङ्गीकारे उपोद्वलकान्तरमाह—**उपमानोपमेयत्वमिति ।** सादृश्यप्रतियोगि उपमानम् , सादृश्यानुयोगि चोपमेयम् , तयोर्भाव उपमानोपमेयत्वं तुल्यधर्मव्यपेक्षया समानधर्ममपेक्ष्य भवति, सम्बन्धकस्य समानधर्मस्याभावे न भवत्युपमानोपमेयभावः, स चात्र न संभवति, तदाह—**लिम्पतेरिति ।** लिम्पतीति तिङन्तार्थस्य तमसश्च असौ समानः धर्मः कः समीक्ष्यते ? उभयानुगतस्य कस्यापि समानधर्मस्याप्रतीतौ तदालम्बनस्य तयोर्लिम्पत्यर्थतमसोरुपमानोपमेयत्वस्याशक्यकल्पनकत्वेऽनुपपन्नैवात्रोपमेति भावः ॥२२८॥

हिन्दी—'लिम्पतीव' इत्यादि पूर्वोक्त उदाहरणमें उपमा नहीं हो सकती है, क्योंकि उपमानोपमेयभावमें समान धर्मकी अपेक्षा होती है, विना समान धर्मके उपमान और उपमेयका सादृश्य किस प्रकार नियत किया जायगा ? फलतः उपमान और उपमेयमें समानधर्मका होना आवश्यक है, वह यहाँ क्या होगा ? लिम्पतिरूप तिङतार्थलेपनक्रिया और तममें क्या समान धर्म हो सकता है, उभयानुगत समान धर्म कुछ है नहीं, अतः यहाँ उपमानोपमेयभावकी कल्पना निरी भ्रान्ति है।

१. को नु ।

यदि लेपनमेवेष्टं लिम्पतिर्नाम कोऽपरः।
स एव धर्मो धर्मी 'चेत्यनुन्मत्तो न भाषते ॥ २२९ ॥

पूर्वपक्षी यदि लेपनमेव समानं धर्ममातिष्ठेत, तदा संभवत्युपमानोपमेयभावः, तत्रापत्तिमाह— यदीति। यदि लेपनम् एव तमोलिम्पत्यर्थयोः समानधर्मतया स्वीक्रियते, तदा लिम्पतिपदार्थस्य लेपनस्य धर्मतया ग्रहणे तदाश्रयः को धर्मी मन्येत ? लिम्पतिपदस्य 'भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानी'ति यास्कसिद्धान्तेन लेपनमेवार्थः, तच्च धर्मतयाऽऽस्थितं, तद्भिन्नः कोऽस्ति लिम्पतिपदार्थो यो धर्मितया स्वीकृतः स्यात् ? स एवैको लिम्पतिपदार्थो धर्मो धर्मी चोभयं भविष्यतीति कथनं तून्मत्तजल्पितमेवेति न शक्यतेऽत्रोपमा निरूपयितुमिति भावः। नच यथात्मात्मानं जानातीत्यत्र एक एवात्मपदार्थः कर्तृत्वं कर्मत्वं चोभयं जुषते तथाऽत्रापि लिम्पतिपदार्थो धर्मो धर्मी च स्यादिति वाच्यम्, तत्र भिन्नपदोपस्थापितयोरात्मनोः समानत्वेऽपि कर्तृत्वकर्मत्वे कथञ्चिद् भवितुमर्हतः, अत्र त्वेकेन लिम्पतिपदेन समुपस्थापितस्य लेपनस्य धर्मत्वधर्मित्वयोरभ्युपगन्तुमशक्यत्वादिति ॥ २२९ ॥

हिन्दी—यदि पूर्वपक्षी यह कहें कि लेपन ही समान धर्म मान लिया जाय, तो इसका उत्तर यह है कि 'लिम्पति' इस तिङन्तका अर्थ ही तो लेपन है, यहाँ पर उसीको उपमान बनाया जायगा तब उपमा प्रतिष्ठित की जायगी, इस अवस्थामें लिम्पति पदार्थ तो उपमानरूप धर्मी होगा, उसे आप धर्म किस तरह बना सकेंगे, धर्म-धर्मी एक नहीं होते, दोनों को एक मानना उन्मत्तता है। लिम्पति तिङन्त है, 'भावप्रधानमाख्यातम्' इस वैयाकरणाभिमत सिद्धान्तके अनुसार उसका अर्थ है लेपन, उसीको उपमान मानकर आप उपमा मानने चले हैं, और उसी लेपनको आप समान धर्म भी कहते हैं, एक ही वस्तुको धर्म और धर्मी दोनों बनाना चाहते हैं यह तो सनक है। यहाँ पूर्वपक्षी यदि यह कहें कि जिस प्रकार 'आत्मा आत्मानं जानाति' इस वाक्यमें एक ही आत्माको कर्त्ता और कर्म दोनों माना जाता है उसी तरह एक ही लेपनको धर्म और धर्मी दोनों मान लेंगे, इसका उत्तर यह है कि 'आत्मा आत्मानं जानाति' इसमें विभिन्नपदोपस्थाप्य आत्मद्वयमें एकको कर्म और एकको कर्त्ता माना जा सकता है, परन्तु यहाँ तो एक ही लिम्पति पदसे एकमात्र लेपन अर्थ प्रतीत होता है, उसे कैसे धर्म और धर्मी दोनों रूपमें स्वीकार किया जायगा ॥ २२९ ॥

कर्ता यद्युपमानं स्यान्न्यग्भूतोऽसौ क्रियापदे।
स्वक्रियासाधनव्यग्रो नालमन्यदपेक्षितुम् ॥ २३० ॥

उपायान्तरमुद्भाव्य दूषयति—**कर्त्ता यदीति**। तिङर्थस्य कर्तुरुपमानत्वं, कर्तृगतस्य लेपनव्यापारस्य च साधारणधर्मत्वमेवमुपमा भवितुमर्हतीति शङ्का, तदुत्तरमाह—यदि तिङुपस्थाप्यस्याश्रयस्य कर्त्तुरुपमानत्वं कल्प्यते तदाऽसौ कर्त्ता क्रियापदे लिम्पति-क्रियापदेन विशेष्यतया प्रतिपाद्ये व्यापारे न्यग्भूतः विशेषणतयाऽन्वितोऽसौ कर्त्ता (यतः) स्वक्रियासाधनव्यग्रः स्वव्यापारस्य विशेष्यतया बोधाय उपसर्जनतामापन्नः अन्यत् अपेक्षितुम् पदार्थान्तरविशेष्यकबोधे प्रकारीभवितुम् न अलम् न समर्थः। अयमाशयः—अत्रेयमाशङ्का—न तिङन्तेनोपमानमस्तीति भाष्यात् लेपनस्योपमानत्वं न संभवतीति स्वी-

१. चेत्युन्मत्तोपि।

कारेऽपि लिम्पतीति तिङर्थस्य कर्त्तृरुपमानत्वमस्तु, तथा च लिम्पतिकर्त्तृसदृशतमःकर्त्तृकं व्यापनमिति शक्यते उपमां समर्थयितुमिति, एतदुत्तरमिदं यत्—अत्र वैयाकरणमतानुसारेण तिङन्तपदार्थव्यापाराश्रयस्य कर्त्तृर्धातुप्रतिपाद्ये व्यापारे विशेषणतयाऽन्वयो भवति, अतोऽसौ क्रियापदे तिङन्तोपस्थाप्ये व्यापारे न्यग्भूतो विशेषणतां गतः, ततश्च स्वक्रियासाधनव्यग्रः स्वक्रियायाः स्वनिष्ठविशेषणतानिरूपितविशेष्यताशालिन्याः क्रियायाः व्यापारस्य साधने विशेष्यतया बोधे व्यग्रः प्रकारीभूतोऽसौ कर्त्ता अन्यत् पदार्थान्तरम् अपेक्षितुम् स्वप्रकारकान्वयबोधे विशेष्यतयाऽवलम्बितुम् न अलम्, लेपनव्यापारे विशेषणतया अन्वितस्य कर्त्तुरुपमानसम्बन्धेन परत्रान्वयो न संभवति, तदुक्तं नागेशभट्टैः—'एकत्र विशेषणत्वेन गृहीतशक्तिकस्य ज्ञातस्य वा अपरत्र विशेषणत्वायोगः, अत एव राज्ञः पुरुषोऽश्वश्चेतिवत् राजपुरुषोश्वश्चेति ने'ति ॥ २३० ॥

हिन्दी—'लिम्पतीव' इत्यादि पूर्वोक्त पद्यार्थमें उपमा माननेवाले यदि यह आशङ्का करें कि तिङर्थ कर्त्ताको ही उपमान माना जाय, और धात्वर्थ लेपनको समान धर्म स्वीकार करें, तब तो लिम्पतिकर्त्तृसदृश तमःकर्त्तृक लेपन (व्यापन) इस तरहकी उपमाके होनेमें कुछ दोष नहीं है, इसका उत्तर यह है कि तिङर्थव्यापाराश्रय कर्त्ता धात्वर्थव्यापारमें विशेषणतया अन्वित है, वह कर्त्ता स्वविशेष्यव्यापारको प्राधान्येन बोधित करने के लिये अपनेको विशेषण बना चुका है, अतः उसका उपमानसंबन्धसे (सादृश्यसे) दूसरे पदार्थमें अन्वय करना सङ्गत नहीं होगा, क्योंकि एक जगह जो विशेषणतया गृहीतशक्तिक अथवा ज्ञात रहता है उसका दूसरेके साथ विशेषणतया अन्वय नहीं हो सकता है। मञ्जूषामें नागेशने लिखा है—'एकत्र विशेषणत्वेन गृहीतशक्तिकस्य ज्ञातस्य वा अपरत्र विशेषणत्वायोगः, अतएव राज्ञः पुरुषोऽश्वश्चेतिवद् राजपुरुषोऽश्वश्चेति न'। फलतः तिङर्थ कर्त्ता जब धात्वर्थव्यापारमें विशेषणतया अन्वित है तब आप उसे सादृश्यसंबन्धसे तम आदि अन्यपदार्थमें अन्वित नहीं कर सकते हैं, इस हालतमें उपमा कैसे होगी ॥ २३० ॥

यो लिम्पत्यमुना तुल्यं तम इत्यपि [1]शंसतः।
अङ्क्तीति न सम्बद्धं सोऽपि[2] मृग्यः समो गुणः ॥ २३१ ॥

वैयाकरणमतानुकूलप्रक्रियायामुपमासंभवो निराकृतः, सम्प्रति नैयायिकमतेऽपि तदसंभवत्वं व्यवस्थापयति—**यो लिम्पतीति**। यो लिम्पति अमुना तुल्यं तमः—'लेपनकर्तृसदृश तम' इत्यपि एवमपि शंसतः कथयतः प्रथमान्तमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारे लिम्पतिपदस्य लेपनकर्त्ता—लेपनानुकूलकृतिमानित्यर्थे, लेपनकर्त्तृसदृशं तमः इति स्वीकर्तुर्नैयायिकानुगस्य अपि मते अङ्क्तीति पदं सम्बद्धं न भवति, उपमेयगतलेपने नान्वेति, तेनाञ्जकर्मकलेपनं समानधर्मो भवितुं नार्हतीति समः साधारणो धर्मः मृग्यः अन्वेषणीय एव। एवञ्चाङ्क्तीत्यस्य असंबन्धेन, तत्कृतेन च साधारणधर्मानुपलम्भेन नास्त्युपमासंभव इति भावः ॥ २३१ ॥

हिन्दी—व्यापारमुख्यविशेष्यक बोधवादी वैयाकरणोंके मतानुसार 'लिम्पतीव' इस पद्यार्थमें उपमा नहीं हो सकती है, इतनी ही बात नहीं है, प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यक बोधवादी नैयायिकोंके मतमें भी यहाँ उपमा नहीं बनती है क्योंकि 'जो लेपनका कर्त्ता है उसके समान अन्धकार' लेपनकर्तृसदृशतम इस प्रकारके अन्वयबोधमें उपमाकी आशा रखनेवाले नैयायिकानुगामियोंको भी—

१. शंसिनः। २. सम्बद्धः, सम्बन्धः।

'अङ्गानि' यह असंबद्ध रहता है, 'अङ्गानि' इस पदका उपमेयगत लेपनमें अन्वय नहीं हो पाता है, और इस स्थितिमें अङ्गकर्मक लेपन समान धर्म नहीं होने पाता है, समान धर्म अन्वेषणीय ही रह जाता है, इस स्थितिमें उपमा कैसे मानी जायेगी ? ॥ २३१ ॥

यथेन्दुरिव ते वक्त्रमिति कान्तिः प्रतीयते।
न तथा लिम्पतेर्लेपादन्यदत्र प्रतीयते ॥ २३२ ॥

ननु साधारणगुणासंम्भवे मास्तु पूर्णोपमा, लुप्तोपमा तु साधारणधर्मविरहेऽपि संभवदात्मकमेति शङ्कां निराकरोति—**यथेन्दुरिवेति**। यथा 'इन्दुरिव ते वक्त्रम्' इत्युपमायां साधारणधर्मतया कान्तिः प्रतीयते वाचकशब्दविरहेऽपि कान्तिमत्तया प्रसिद्धस्येन्दोरुपमानत्वाद् गम्यते, तथा अत्र लिम्पतेः उपमानसमर्पकात् लिम्पतिपदात् लेपात् स्ववाच्याद्विलेपनव्यापारात् अन्यत् औपम्यनिर्वाहकं साधारणं धर्मान्तरम् न प्रतीयते, लेपनं तूपमानमेव, लिम्पत्यन्तर्गतत्वात्। अतो नात्र लुप्तोपमाया अपि संभव इति भावः ॥

हिन्दी—पूर्वपक्ष किया जा सकता है कि जिस प्रकार 'इन्दुरिव ते वक्त्रम्' तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान है—इस वाक्यमें साधारणधर्मवाचक शब्दके अभावमें भी उपमान चन्द्र सादृश्यसे कान्तिको साधारणधर्म समझ लिया जाता है, अतः लुप्तोपमा होती है, उसी तरह 'लिम्पतीव' इस उदाहरणमें भी साधारणधर्मके नहीं रहने पर भी लुप्तोपमा—धर्मलुप्तोपमा मानने में क्या बाधा है ? इसका उत्तर यह दिया जा रहा है कि यहाँ पर 'लिम्पति' पदसे लेपनरूप अर्थके अतिरिक्त कुछ साधारण धर्म प्रतीत नहीं होता है, (प्रतीयमान साधारण धर्मके विरहमें) लुप्तोपमा भी कैसे मानी जा सकती है। तात्पर्य यह है कि लुप्तोपमाका वह विषय है जहाँ उपमान और उपमेयका सादृश्य शब्दानुक्त होनेपर भी लोकप्रसिद्धतया प्रतीतिविषय हो जाता है, जैसे 'तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान है' इस वाक्यमें उपमानभूत चन्द्रमा कान्तिमत्त्वया प्रसिद्ध है, उसके सादृश्यसे कान्तिरूपसाधारणधर्म अनुक्त होनेपर भी प्रतीत हो जाता है, परन्तु यहाँकी स्थिति भिन्न है, यहाँ तो लेपनकर्तारूप उपमान और तमरूप उपमेयमें कोई साधारणधर्म प्रतीत नहीं होता है, अतः यहाँ लुप्तोपमा भी नहीं मानी जा सकती है ॥ २३२ ॥

तदुपश्लेषणार्थोऽयं लिम्पतिर्ध्वान्तकर्तृकः।
अङ्गकर्मा च पुंसैवमुत्प्रेक्ष्यत इतीष्यताम् ॥ २३३ ॥

तदिति। तत् तस्मात् उपश्लेषणार्थः व्यापनवाचकः अयं लिम्पतिः लिप्धात्वर्थो लेपनम् ध्वान्तकर्तृकः तमसा सकर्तृकः, तथा च अङ्गकर्मा अङ्गकर्मकश्च, ध्वान्तकर्तृकमङ्गकर्मकं च लेपनम् व्यापनत्वेन रूपेण पुंसा कविनिबद्धेन वक्त्रा एवम् व्यापनरूपेण उत्प्रेक्ष्यत इति इष्यताम् मन्यताम्। इत्थञ्च व्यापनं विषयो लेपनञ्च विषयीति उत्प्रेक्षैवात्र शक्यसंभवा, नोपमेति ॥ २३३ ॥

हिन्दी—यहाँ पर लिम्पतिका अर्थ उपश्लेषण-व्यापन है, तम उसका कर्ता है और अङ्ग उसका कर्म, उसी व्यापनार्थक लिम्पतिकी लेपन रूपमें उत्प्रेक्षा की जाती है। प्रस्तुत अर्थको विषय और संभाव्यमान अर्थको (अप्रस्तुतार्थको) विषयी माना जाता है, प्रकृत उदाहरणमें तमःकर्तृक अङ्गव्यापन उत्प्रेक्षाका विषय है, उसी तरहका लेपन संभाव्यमान होनेके कारण विषयी है, वही उत्प्रेक्षा का बीज है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, काव्यप्रकाशकारने भी इसे उत्प्रेक्षा का ही

१. लिम्पतौ।

उदाहरण माना है, समन्वयके लिये जो विवरण दिया है उससे दण्डीका मत अच्छी तरह समर्थित हो जाता है। विवरण यों है:—

'अत्र व्यापनादि लेपनादिरूपतया संभावितम्।'

व्यापनको विषय और लेपनको विषयी मान कर ही उत्प्रेक्षा सिद्ध की जाती है ॥ २३४ ॥

मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ॥ २३४ ॥

(इत्युत्प्रेक्षाचक्रम्)

उत्प्रेक्षावाचकशब्दान् संगृह्णन्नुपसंहरति-**मन्ये शङ्के इति**। एषां निर्दिष्टानां शब्दानां प्रयोगे सति वाच्योत्प्रेक्षा, तदभावे तु गम्येति बोध्यम् ॥ २३४ ॥

हिन्दी—मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः आदि शब्दोंसे उत्प्रेक्षाकी प्रतीति होती है, और इव शब्दसे भी उसकी प्रतीति होती है। यद्यपि इव शब्द प्रधानतया उपमावाचक है, परन्तु वह संभावनावाचक भी है, इसीलिये उसकी गणना उत्प्रेक्षावाचकोंमें की जा रही है। यहाँ के आदि शब्दसे तर्कयामि, जाने, उत्प्रेक्षे, संभावयामि और एतदर्थक अन्यान्य क्रियाओंका ग्रहण समझना चाहिये। यहाँ कहे गये मन्ये शङ्के वगैरहके उदाहरण काव्योंमें अतिसुलभ हैं, अतः यहाँ नहीं दिये गये ॥ २३४ ॥

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्।
कारकज्ञापकौ हेतू तौ[१] चानेकविधौ यथा ॥ २३५ ॥

क्रमप्राप्तान् हेतुसूक्ष्मलेशालङ्काराँल्लक्षयति—**हेतुश्चेति**। अमी त्रयोऽप्यलङ्काराः वाचामुत्तमभूषणम् अतिरमणीयतासंपादकम्, अत एव चावश्यमलङ्कारतया स्वीकरणीयाः। एतच्च भामहमतमपासितुमुक्तम्। तथाहि भामहेनः—

'हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः। समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः ॥'

इति ब्रुवता चमत्कृतिशून्यत्वेनालङ्कारत्रयमपीदं न स्वीकृतम्, आचार्यदण्डी तु वाचामुत्तमभूषणमिति कथयँस्तत्र चमत्कृतिमनुमन्यमानस्तानलङ्कारानङ्गीकरोति। तत्र प्रथमोक्तस्य हेतोः प्रभेदान् दिदर्शयिषुराह—**कारकज्ञापकाविति**। अत्र भेदमात्रमभिधीयते, लक्षणं तु नाम गतार्थम्। हेतुर्द्विविधः—कारको ज्ञापकश्च। अग्निर्धूमस्य कारको हेतुः धूमश्चाग्नेर्ज्ञापको हेतुः। तौ चेमौ कारकज्ञापकौ अनेकविधौ प्रवृत्तिनिवृत्त्यादिभेदेन भिन्नत्वात् ॥ २३५ ॥

हिन्दी—भामहने हेतु, सूक्ष्म, लेश-इन तीन अलङ्कारोंके विषयमें कह दिया है कि इनमें चमत्कार नहीं होता है अतः इन्हें अलङ्कारके रूपमें नहीं स्वीकार करना चाहिये, उसीके विरोधमें—'हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्' कहा गया है। दण्डीके कथनका लक्ष्य यह है कि इनमें अलङ्कार होने की योग्यता है, इनसे अर्थकी अलङ्कृति होती है, फलतः इनमें चमत्कार है, तब इनको अलङ्कार मानना ही चाहिये।

इस कारिकामें दण्डीने हेतु अलङ्कारका लक्षण नहीं कहा है, केवल भेद बताना प्रारम्भ कर दिया है, जिसका अभिप्राय यह है कि हेतु अपने नामसे ही अपना लक्षण कह रहा है। अग्निपुराणमें हेतुका लक्षण यह है:—

'सिषाधयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः।'

भोजराजने हेतुका लक्षण यह कहा है:—'क्रियायाः कारणं हेतुः।'

१. च नैक।

शास्त्रीय हेतु दो प्रकारके होते हैं—कारक और ज्ञापक, स्वतः कार्यको निष्पन्न करनेवाला कारक हेतु है और दूसरों द्वारा निष्पादित वस्तुको बोधित करानेवाला ज्ञापक हेतु है। कारक हेतुका उदाहरण—अग्नि धूमका कारक हेतु है। ज्ञापक हेतु—धूम अग्निका ज्ञापक हेतु है। यह हेतु और प्रकारसे बहुविध हो जाता है।

आचार्य दण्डी इसी हेतुमें काव्यलिङ्ग, अनुमान, कार्यकारणमूलक अर्थान्तरन्यास—इन नामोंसे व्यवहृत अलङ्कारोंका अन्तर्भाव कर लेते हैं, अत एव दण्डीने इनके अलगसे लक्षणादि नहीं किये हैं॥ २३५॥

अयमान्दोलितप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः।
उत्पादयति सर्वस्य[1] प्रीतिं मलयमारुतः[2]॥ २३६॥

कारकहेतुमुदाहरति—**अयमिति**। आन्दोलिताः स्पृष्टाश्चालिताश्च प्रौढानां चन्दनद्रुमाणां पल्लवा येन तादृशोऽयं मलयमारुतः सर्वस्य प्रीतिमुत्पादयति जनयति, अत्र वायुविशेषणं तस्य सुगन्धत्वादिगुणद्योतनार्थं, तेन च प्रीतिजननसामर्थ्यं द्योत्यम्। अतोऽत्र चमत्कारकहेतूपन्यासात् हेतुर्नामालङ्कारः॥ २३६॥

हिन्दी—विशाल चन्दनद्रुमके पत्तोंको हिलानेवाली यह मलयवायु सबके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न कर रही है। इस उदाहरणमें प्रीतिजनन का हेतु—चन्दनपल्लवान्दोलनजात सुगन्धत्वादि बड़े चमत्कारकरूपमें निबद्ध किया गया है, अतः यहाँ हेतु अलङ्कार है॥ २३६॥

प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य रूपस्यात्रोपबृंहणम्।
अलङ्कारतयोद्दिष्टं निवृत्तावपि तत्समम्॥ २३७॥

उक्त उदाहरणेऽलङ्कारं प्रसञ्जयति—**प्रीत्युत्पादनेति**। अत्र उक्तश्लोके प्रीत्युत्पादनयोग्यस्य परमानन्दजननसमर्थस्य चन्दनद्रुमपल्लवान्दोलनजन्यसौरभसमृद्धत्वस्य रूपस्य वायुस्वरूपस्य उपबृंहणम् वैचित्र्यजनकोपन्यासोऽस्ति, तेनात्र वैचित्र्यकृतमलङ्कारत्वमिष्टम्, एवमेव निवृत्तावपि। तदाह—निवृत्तावपि। अयमाशयः—उत्पादने हेतुरिव निवृत्तावपि संभवति हेतुः, तत्रापि वैचित्र्ये सत्यलङ्कारत्वं मन्तव्यमेवेति भावः॥ २३७

हिन्दी—उक्त उदाहरणमें प्रीत्युत्पादनयोग्यवायु का रूप चमत्कारक रूपमें कहा गया है, अतः हेतुका चमत्कारजनकरूपमें उपन्यास होनेसे यह हेत्वलङ्कार है। इसमें क्रियाकी उत्पत्तिका हेतु वर्णित है, इसी तरह क्रियाकी निवृत्तिमें हेतुके वर्णनमें भी चमत्कार होने से यह हेतु अलङ्कार होगा, जिसका वर्णन अगले उदाहरणमें किया जायगा॥ २३७॥

चन्दनारण्यमाधूय स्पृष्ट्वा मलयनिर्झरान्।
पथिकानामभावाय पवनोऽयमुपस्थितः॥ २३८॥

निवृत्तौ हेत्वलङ्कारमुदाहरति—**चन्दनेति**। चन्दनारण्यम् चन्दनवनम् आधूय कम्पयित्वा मलयनिर्झरान् मलयाचलपातिपयःप्रवाहान् स्पृष्ट्वा च अयं पवनः पथिकानाम् विरहिपान्थानाम् अभावाय विनाशाय उपस्थितः आयातः। अत्र पथिकवधरूपनिवृत्तिं प्रति वायोः कारणत्वमुपन्यस्यत इति हेतुर्नामालङ्कारः॥ २३८॥

हिन्दी—चन्दनवनका कम्पन करके और मलयपर्वतसे गिरनेवाले झरनोंको छूकर यह वायु विरही पान्थोंके अभावके लिये उपस्थित हुआ है। इस उदाहरणमें पथिकवधरूप निवृत्तिके लिये वायुकी उपस्थितिरूप चमत्कारी हेतुका निर्देश किया गया है, अतः हेत्वलङ्कार है॥ २३८॥

---

१. लोकस्य। २. दक्षिण।

अभावसाधनायालमेवंभूतो हि मारुतः।
विरहज्वरसंभूतमनोज्ञारोचके जने ॥ २३९ ॥

यथा कस्यापि पदार्थस्य भावसाधने हेतुर्युज्यते, तथैवाभावसाधनेऽपि, तत्रायमान्दोलितप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः इत्यत्र प्रीतिरूपस्य वस्तुनो भावसाधनहेतुरुक्तः, अत्रोदाहरणे अभावसाधनहेतुरुक्तः, तदेव सङ्गमय्य बोधयति—**अभावेति**। एवंभूतः चन्दनवनसम्पर्केण सुरभिर्निर्झरस्पर्शेन च शीतलोऽयं मारुतः पवनः विरहज्वरेण वियोगकृततापेन सम्भूतं जातं मनोज्ञारोचकं शीतलसुरभिवातादिमनोहरवस्तुविषयद्वेषो यस्य तादृशे—वियोगखिन्नतया तादृशेऽपि पवने खिद्यमाने जने अभावसाधनाय तदपायं कर्तुम् अलं समर्थः। एतेन वायुना पान्था व्यापाद्यन्ते इत्यर्थः। अत्राभावसाधने चमत्कारकहेतूपन्यासो विशदीकृतो बोध्यः ॥ २३९ ॥

हिन्दी—चन्दनारण्यको कँपाकर और मलयाचलपाती निर्झरको छूकर आनेवाली वायु विरहसन्तापसे खिन्न होकर रमणीय वस्तुपर द्वेष रखनेवाले वियोगीजनके अभावके लिये समर्थ है, यहाँ इतना जानना आवश्यक है जिस प्रकार भावकार्य प्रति ललितकारणोपन्यासमें हेतु अलङ्कार होता है, उसी प्रकारसे अभावकार्य—निवृत्तिमें ललितकारणोपन्यासमें भी होता है। यह उदाहरण निवृत्तिविषयक हेतुका है ॥ २३९ ॥

निर्वर्त्ये च विकार्ये च हेतुत्वं तदपेक्षया।
प्राप्ये तु कर्मणि प्रायः क्रियापेक्षैव हेतुता ॥ २४० ॥

प्रायो हेतवो द्विविधाः क्रियार्थसम्पादकाः, कर्मार्थसम्पादकाश्च, तत्र क्रियार्थसम्पादकेषु कारकज्ञापकभेदेन हेतूनां प्रकारद्वयम्, तत्रापि कारकहेतूनां प्रकारद्वितयं भवति, उत्पत्तिनिवृत्तिविषयभेदात्, तयोरुदाहरणमुक्तम्, सम्प्रति कर्मार्थसम्पादकहेतूनामुदाहरणानि दर्शयितुमाह—**निर्वर्त्ये इति**। कर्म त्रिविधं, निर्वर्त्यं विकार्यं प्राप्यञ्च, तत्राद्ययोर्द्वयोस्तदपेक्षया हेतुत्वं भवति, निर्वर्त्यविकार्यकर्मसम्पादनाय हेतुत्वं भवति, प्राप्ये तु कर्मणि प्रायो भूयसा क्रियाऽपेक्षा एव हेतुता क्रियामात्रमेव तत्र हेतुसाध्यमिति। निर्वर्त्ये विकार्ये च कर्मणि हेतवो निर्वर्त्यविकार्यरूपे कर्मभूते वस्तुनी निष्पादयन्ति, प्राप्ये तु क्रियामात्रं जनयन्ति न वस्तुरूपं किमपि। तदुक्तम्—'क्रियाकृतविशेषाणां सिद्धिर्यत्र न दृश्यते। दर्शनादनुमानाद्वा तत् प्राप्यमिति कथ्यते ॥' इति।

यदसज्जायते पूर्वं जन्मना यत्प्रकाशते।
तन्निर्वर्त्यं विकार्यं च द्वेधा कर्म व्यवस्थितम् ॥
प्रकृत्युच्छेदसंभूतं किञ्चित् काष्ठादिभस्मवत्।
किञ्चिद् गुणान्तरोत्पत्त्या सुवर्णादिविकारवत् ॥ इति च।

निर्वर्त्यं कर्म यथा—कटं करोति, वस्त्रं वयति। अत्र पूर्वमसतः कटवस्त्रादेर्जन्म। विकार्यं द्विविधम्, प्रकृत्युच्छेदकं प्रकृतौ गुणान्तराधायकं च। उच्छेदकं यथा—काष्ठं भस्म करोति। गुणान्तराधायकं यथा—सुवर्णं कुण्डलं करोति।

१. संताप। २. मदनाम्यातुरे जने।

एतत्प्रकारद्वयभिन्नं प्राप्यं कर्म, यथा ग्रामं गच्छति, सूर्यं पश्यति। तथा च निर्वर्त्य-विकार्ययोः पूर्वावस्थातो विशेषदर्शनादन्यहेत्वपेक्षा भवति, प्राप्यस्थले तु केवलक्रिया-मात्रापेक्षा ॥ २४० ॥

हिन्दी—हेतु दो प्रकारके हैं, क्रियार्थसम्पादक और कर्मार्थसम्पादक। क्रियार्थसम्पादक हेतु कारक-ज्ञापक-भेदसे दो प्रकार का होता है, उनमें भी कारक हेतुके उत्पत्ति-निवृत्तिरूप विषय-भेदसे दो प्रकार् होंगे, उनका उदाहरण दिया जा चुका है। अब कर्मार्थसम्पादक हेतुओंके उदाहरण दिये जायेंगे।

कर्मके तीन प्रभेद हैं—निर्वर्त्त्य, विकार्य और प्राप्य। निर्वर्त्त्य कर्म वह है जो पहले नहीं था, अभी क्रियाओं द्वारा निष्पन्न होता हो, जैसे—'कटं करोति', 'वस्त्रं वयति' यहाँ पर कट और वस्त्र पहले नहीं होते, तत्काल क्रिया से बनते हैं।

विकार्य कर्म दो प्रकारका होता है:—एक वह जो प्रकृतिके नाशसे बनता हो, जैसे—'काष्ठं भस्म करोति', यहाँ पर काष्ठरूप प्रकृतिके नाशसे ही भस्मरूप कर्म उत्पन्न होता है। दूसरा वह जो प्रकृतिमें गुणान्तरकी उत्पत्तिसे हो, जैसे 'सुवर्णं कुण्डलं करोति'। यहाँ पर प्रकृति सुवर्णमें गुणान्तर वर्त्तुलत्वादिके उत्पन्न होनेसे कुण्डल रूप कर्म बनता है।

प्राप्य कर्म वह है जिसमें क्रियाकृत विशेषका ज्ञान देखने या अनुमान करनेसे न हो सके, जैसे 'ग्रामं गच्छति' 'सूर्यं पश्यति', यहाँ पर ग्राम और सूर्य रूप कर्ममें गमन और दर्शन क्रियासे कुछ विशेष नहीं होता है।

इस प्रकारसे निर्वर्त्त्य और विकार्य कर्मोंमें पूर्वावस्थासे विशेष होता है अतः हेत्वन्तरकी अपेक्षा होती है, इसीलिये तदपेक्षहेतुत्व-अर्थात् वस्त्वपेक्षहेतुत्व हुआ करता है, प्राप्य कर्ममें कुछ विशेष नहीं होता, अतः वहाँ क्रियापेक्षहेतुत्व हुआ करता है ॥ २४० ॥

हेतुर्निर्वर्त्तनीयस्य दर्शितः शेषयोर्द्वयोः।
दत्त्वोदाहरणद्वन्द्वं ज्ञापको वर्णयिष्यते ॥ २४१ ॥

हेतुरिति। निर्वर्त्तनीयस्य कर्मणः निर्वर्त्यकर्मणः हेतुः दर्शितः 'अयमान्दोलितप्रौढ-चन्दनद्रुमपल्लवः' इत्युदाहरणे विशदीकृतः, शेषयोर्द्वयोः विकार्यप्राप्ययोः उदाहरणद्वयं दत्त्वा प्रदर्श्य ज्ञापको हेतुर्वर्णयिष्यते ॥ २४१ ॥

हिन्दी—कर्म तीन प्रकारके माने गये हैं निर्वर्त्त्य, विकार्य और प्राप्य। तदनुसार कारकहेतु तीन प्रकार का होगा। उनमें कारकहेतुप्रभेदभूत निर्वर्त्यकर्मविषयक हेत्वलङ्कारका उदाहरण-'अयमा-न्दोलितप्रौढचन्दनद्रुमपल्लवः' यह दिया जा चुका है, बचे हुए विकार्य और प्राप्य कर्मद्वयविषयक दो प्रकारके हेत्वलङ्कारका उदाहरण बता दिया जायगा—इस प्रकार कारक हेतुका प्रकरण समाप्त कर दिया जायगा, अनन्तर ज्ञापक हेतुके उदाहरण दिये जायेंगे ॥ २४१ ॥

उत्प्रवालान्यरण्यानि वाप्यः संफुल्लपङ्कजाः।
चन्द्रः पूर्णश्च कामेन पान्थदृष्टेर्विषं कृतम् ॥ २४२ ॥

विकार्यहेतुमुदाहरति—**उत्प्रवालानिति।** उत्प्रवालानि उद्गतनूतनकिसलयानि अर-ण्यानि वनानि, संफुल्लपङ्कजाः विकसितकमलाः वाप्यः, पूर्णः सम्पूर्णमण्डलश्चन्द्रश्च कामेन पान्थदृष्टेः पथिकजननयनस्य विषं कृतम् विषरूपेण परिणमितम्। अत्रारण्यादिषु विषरूप-विकारत्वमारोपितम् ॥ २४२ ॥

---

१. कालेन। २. दृष्टिविषं।

नवकिसलययुक्त कानन, विकसित कमलवाले तालाब, एवं सम्पूर्णमण्डल चन्द्रमाको कामदेवने पथिकोंकी दृष्टिके लिये विषरूपमें परिणत कर दिया है। यहाँ नवकिसलययुत काननादिमें विषरूप विकारत्व आरोपित हुआ है, अतः यह विकार्यविषयक हेतुका उदाहरण हुआ ॥ २४२ ॥

मानयोग्यां करोमीति प्रियस्थानस्थितां सखीम् ।
बाला भ्रूभङ्गजिह्माक्षी पश्यति स्फुरिताधरा ॥ २४३ ॥

प्राप्यहेतुमुदाहरति—**मानयोग्यामिति**। मानयोग्याम् मानस्याभ्यासम् करोमि इति विचार्य प्रियस्थानस्थिताम् प्रियतमत्वेन कल्पिताम् सखीं वयस्याम्—बाला अप्रौढा अप्राप्तमानशिक्षा वनिता भ्रूभङ्गजिह्माक्षी भ्रुकुटिकुटिलनेत्रा स्फुरिताधरा चलदोष्ठपुटा च सती पश्यति निरीक्षते। अत्र पश्यतिक्रियया सखी न निष्पाद्यते न वा विक्रियते इति सखी प्राप्यकर्म। तद्विषयकदर्शनक्रियापेक्षयैव बालाया हेतुत्वमिति प्राप्यहेतुगतोऽयं हेत्वलङ्कारः ॥ २४३ ॥

हिन्दी—किसी बाल वनिताने मान करनेका अभ्यास करती है ऐसा विचार करके अपनी सखीको प्रियतमके रूपमें मान लिया है, और उसकी ओर भ्रुकुटि, वक्रनेत्र तथा स्फुरिताधर होकर देख रही है। इस उदाहरणमें सखीरूप कर्म प्राप्य है क्योंकि उसमें क्रियाकृत विशेषका सर्वथा अभाव है, यहाँ बाला केवल सखीविषयक दर्शनक्रिया करनेके कारण हेतु है, इसे प्राप्यकर्मविषयक हेत्वलङ्कार मानना चाहिये ॥ २४३ ॥

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः ।
इतीदमपि साध्वेव कालावस्थानिवेदने ॥ २४४ ॥

सम्प्रति ज्ञापकहेतुमुदाहरति—**गतोऽस्तमिति**। अर्कः अस्तंगतः, इन्दुश्चन्द्रो भाति प्रकाशते, पक्षिणः वासाय निवासस्थानमुद्दिश्य यान्ति प्रतिष्ठन्ति। इति इदम् अपि कालावस्थायाः सायंकालिकस्थितेर्निवेदने ज्ञापने साधु एव चमत्कारजनकं भवत्येव। तथा चात्र ज्ञापकहेत्वलङ्कार इत्युक्तं भवति ॥ २४४ ॥

हिन्दी—सूर्य अस्त हो गये, चन्द्रमा प्रकाशित हो रहे हैं, पक्षिगण निवासस्थानकी ओर चल रहे हैं, यह वर्णन समयकी स्थिति-सायंकालका ज्ञापन कराता है, अतः यह ज्ञापक हेतुका उदाहरण हुआ। 'सम्प्रति सन्ध्यासमय है' ऐसा कहने से चमत्कार नहीं होता है, परन्तु 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुः' इत्यादि वाक्य कहनेसे चमत्कारिक रूपमें समयकी सूचना होती है, अतः इसे ज्ञापक-हेत्वलङ्कारका उदाहरण माना गया है ॥ २४४ ॥

अवध्यैरिन्दुपादानामसाध्यैश्चन्दनाम्भसाम् ।
देहोष्मभिः सुबोधं ते सखि कामातुरं मनः ॥ २४५ ॥

ज्ञाप्यस्य शब्देनोपादाने ज्ञापकहेतुमाह—**अवध्यैरिति**। हे सखि, इन्दुपादानाम् चन्द्रकिरणानाम् अवध्यैः अविनाशनीयैः (शमयितुमशक्यैः) चन्दनाम्भसाम् मलयजरसानाम् असाध्यैः अनपनेयैः (दूरीकर्तुमशक्यैः) देहोष्मभिः शरीरसन्तापैः ते तव कामातुरं मदनपीडितं मनः सुबोधम् सुज्ञेयम्। हे सखि, चन्द्रकरैरप्यशम्यैश्चन्दनरसैश्चाप्यनपनेयैः शरीरसन्तापैस्तव मनसो मदनपीडितत्वं सुखावगम्यमित्यर्थः। अत्र ज्ञाप्यं मनसः कामातुरत्वं तच्च देहोष्मभिर्ज्ञायते ॥ २४५ ॥

---

१. स्थाने स्थितां। २. अवन्ध्यैः। ३. म्भसा।

हे सखि, चन्द्रमाकी किरणों से भी नहीं मिटनेवाली और चन्दनद्रवसे भी नहीं शान्त होनेवाली यह तुम्हारे शरीरकी गर्मी तुम्हारे हृदयका कामातुरत्व सुखसे बता रही है, यहाँ ज्ञापक हेतु है देहकी गर्मी और उससे ज्ञाप्य है हृदयका कामातुरत्व। यहाँ ज्ञाप्य हृदयका कामातुरत्व शब्दोपात्त है। यह ज्ञापकहेत्वलङ्कारका स्पष्ट उदाहरण है ॥ २४५ ॥

इति लक्ष्याः प्रयोगेषु रम्या[1] ज्ञापकहेतवः।
अभावहेतवः केचिद् व्याह्रियन्ते[2] मनोहराः ॥ २४६ ॥

भावहेतुमुपसंहरति—**इतीति**। इति एवम् प्रयोगेषु कविकृतनिबन्धेषु रम्याः हृदयङ्गमाः ज्ञापकहेतवः लक्ष्याः ज्ञातव्याः। तदेवं भावहेतवो निरुक्ताः। सम्प्रति केचित् कतिपये मनोहराः अभावहेतवो व्याह्रियन्ते अभिधीयन्ते। अभावश्च चतुर्विधः प्रसिद्ध एवेति तन्मूलकस्यास्याभावहेत्वलङ्कारस्यापि चातुर्विध्यं स्वतःसिद्धं ज्ञातव्यम् ॥ २४६ ॥

हिन्दी—इस प्रकारसे मनको भले लगनेवाले ज्ञापक हेतुको कवियोंके निबन्धोंमें समझ लेना चाहिये। (इस प्रकार यह भावहेतुका प्रकरण समाप्त हुआ) अब कुछ अभावहेतुके उदाहरण बताये जा रहे हैं ॥ २४६ ॥

अनभ्यासेन विद्यानामसंसर्गेण धीमताम्।
अनिग्रहेण चाक्षाणां जायते व्यसनं नृणाम् ॥ २४७ ॥

अभावहेतुनुदाहरिष्यन्प्रथमं प्रागभावहेतुमाह—**अनभ्यासेति**। विद्यानाम् ज्ञानसाधनान्वीक्षिक्यादिशास्त्राणाम् अनभ्यासेन अपरिशीलनेन, धीमताम् पण्डितानाम् असंसर्गेण, अक्षाणाम् इन्द्रियाणाम् च अनिग्रहेण असंयमेन नृणाम् व्यसनं दुष्कर्मरतिर्जायते। अत्र विद्यादीनां यावत्प्रागमस्तावद् व्यसनं भवतीति विद्यादिप्रागभावस्य व्यसनहेतुतोक्त्या हेत्वलङ्कारः ॥ २४७ ॥

हिन्दी—आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रोंके अनभ्याससे, पण्डितोंके असंसर्गसे, एवम् इन्द्रियोंके असंयमसे मनुष्योंमें व्यसन पैदा होते हैं। यहाँ पर व्यसनकी उत्पत्तिमें विद्याभ्यास, पण्डितसंसर्ग, एवम् इन्द्रियके संयमका प्रागभाव कारणरूपमें निर्दिष्ट हुआ है, अतः यह प्रागभावहेत्वलङ्कार हुआ। मनुस्मृतिमें अठारह व्यसन लिखे गये हैं—

मृगयाक्षो दिवास्वापः परीवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥२४७॥

गतः कामकथोन्मादो गलितो यौवनज्वरः।
क्षतो[3] मोहश्च्युता तृष्णा कृतं पुण्याश्रमे मनः ॥ २४८ ॥

प्रध्वंसाभावहेतुमुदाहरति—**गत इति**। कामकथा रतिविलासचर्चा तत्र यः उन्मादः व्यासङ्गः सः गतः निवृत्तः, यौवनज्वरः युवावस्थाजन्योष्मा गलितः दूरीभूतः। मोहः धनगृहस्त्रीपुत्रादि ममताबुद्धिः क्षतो नष्टः, तृष्णा विषयस्पृहा च्युता लुप्ता, अतः पुण्याश्रमे संन्यासे मनः कृतम् निश्चयः कृतः। अत्रोन्मादादीनां प्रध्वंसाभाव एव चतुर्थाश्रमस्वीकारे हेतुत्वेनोक्त इत्ययं प्रध्वंसाभावहेत्वलङ्कारः ॥ २४८ ॥

हिन्दी—हमारे हृदयसे कामकथाकी आसक्ति जाती रही, जवानीकी गर्मी भी उतर गई, मोह नष्ट हो गया, विषयस्पृहा निकल गई, मैंने अब संन्यासरूप पुण्याश्रममें प्रवेश करनेका

१. सम्यक्। २. क्रियन्ते। ३. हतः।

निश्चय कर लिया है। इस उदाहरणमें कामकथोन्मादादिके प्रध्वंसाभावको पुण्याश्रमप्रवेशके प्रति कारण बताया गया है, अतः यह प्रध्वंसाभावहेत्वलङ्कार हुआ ॥ २४८ ॥

वनान्यमूनि न गृहाण्येता नद्यो न योषितः ।
मृगा इमे न दायादास्तन्मे नन्दति मानसम् ॥ २४९ ॥

अन्योन्याभावहेतुमुदाहरति—**वनान्यमूनीति**। अमूनि चित्तशान्तिजनकानि वनानि आश्रमकाननानि, गृहाणि चित्तोद्वेगकराणि गृहाणि न, एताः स्वच्छसलिलतया मनःप्रसादकराः नद्यः योषितः मनश्चपलतासंपादिकाः स्त्रियो न, इमे मृगाः मधुरवृत्तयो हरिणाः, दायादाः मत्सरग्रस्ताः सम्बन्धिजनाः न, तत् तस्मात् (अत्र वने) मे मम विरक्तस्य मानसं नन्दति सन्तोषमनुभवति । अत्र वनगृहादीनामन्योन्याभावेन मनस्तोषोपपादनादन्योन्याभावहेतुरलङ्कारः ॥ २४९ ॥

हिन्दी—यह वन है (जहाँ चित्तको शान्ति मिलती है) चित्तको उद्विग्न कर देने वाला घर नहीं है, यह (स्वच्छप्रवाहा मनोहर) नदियाँ हैं (हृदयको चञ्चल कर देने वाली) स्त्रियाँ नहीं हैं, और यह (सरल) मृग हैं (मत्सरसे भरे) दायाद नहीं हैं, इससे मेरा हृदय यहाँ तुष्ट होता है। इस उदाहरणमें वन गृहका अन्योन्याभाव (भेद-अन्तर) मनस्तुष्टिके प्रति कारणतया कहा गया है अतः यह अन्योन्याभावहेत्वलङ्कार हुआ ॥ २४९ ॥

अत्यन्तमसदार्याणामनालोचितचेष्टितम् ।
अतस्तेषां विवर्धन्ते[1] सततं सर्वसम्पदः ॥ २५० ॥

अत्यन्ताभावहेतूदाहरणमाह—**अत्यन्तमसदिति**। आर्याणां सत्पुरुषाणाम् अनालोचितचेष्टितम् अविमृश्यकारित्वम् अत्यन्तम् असत् सर्वथा न भवति, सन्तो हि कदाचिदपि विना विचारेण न प्रवर्त्तन्ते इत्यर्थः। अतः अविचार्यकारिताया नितान्तविरहादेव तेषाम् सर्वसम्पदः सर्वविधा समृद्धयः सततं सर्वदा विवर्धन्ते अधिकीभवन्ति, अत्राविमृश्यकारिताया अत्यन्ताभावस्य संपद्वृद्धिं प्रति कारणत्वोक्त्या अत्यन्ताभावहेत्वलङ्कारः ॥ २५० ॥

हिन्दी—आर्यजनोंमें अविमृश्यकारिताका नितान्त अभाव होता है, अतः आर्यजनोंकी सब तरहकी समृद्धियाँ सर्वदा बढ़ती रहती हैं। इस उदाहरणमें आर्यजनोंकी समृद्धिमें अविमृश्यकारिताका अत्यन्ताभाव कारणतया कहा गया है, अतः यह अत्यन्ताभावहेतु नामक अलङ्कार हुआ ॥ २५० ॥

उद्यानसहकाराणामनुद्भिन्ना न मञ्जरी ।
देयः पथिकनारीणां सतिलः सलिलाञ्जलिः ॥ २५१ ॥

इतः पूर्वं भावप्रतियोगिकानां चतुर्णामभावानां हेतुत्वे हेत्वलङ्कारा उदाहृताः, सम्प्रत्यभावप्रतियोगिकाभावस्य हेतुत्वे हेत्वलङ्कारमुदाहरति—**उद्यानेति**। उद्यानसहकाराणां गृहसंलग्नवाटिकावस्थितताम्रवृक्षाणां मञ्जरी अनुद्भिन्ना अविकसिता न विकासं गतेत्यर्थः, एवं सति पथिकनारीणां पान्थस्त्रीणाम् वियोगिनीनाम् सतिलः सलिलाञ्जलिः मरणोत्तरकालदेयस्तिलतोयाञ्जलिः देयः। पथिकस्त्रीणां मरणमुपस्थितं यतः सहकारमञ्जर्यो नाविकसिता इत्यर्थः। अत्र मञ्जरीणामनुद्भेदाभावस्य मरणं प्रति हेतुत्योपन्यासादभावाभावहेत्वलङ्कारः ॥ २५१ ॥

---

१. विवर्तन्ते ।

हिन्दी—इससे पहले चार उदाहरणों द्वारा भावप्रतियोगिक अभावके हेतुत्वमें हेत्वलङ्कारका प्रसङ्ग स्पष्ट किया गया है, अब अभावप्रतियोगिक अभावस्थलमें हेत्वलङ्कारका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। उद्यानस्थित आम्रवृक्षोंकी मञ्जरियाँ अविकसित नहीं रह गई हैं, पथिकजनोंकी (वियोगिनी) स्त्रियोंको मरणोत्तरकालिक तिलतोयाञ्जलि देना ही है। अर्थात् इन विकसित आम्रमञ्जरियोंकी उद्दीपकतासे पथिकस्त्रियोंका मरण अवश्यंभावी है।

इस उदाहरणमें अविकसितत्वाभाव (विकासाभावके अभाव) को पथिकस्त्रीमरणमें कारणतया प्रकाशित किया गया है अतः यह अभावप्रतियोगिक अभावस्थलीय हेतु है। यहाँ अनुद्भेद = उद्भेद-प्रागभाव, तदभाव=प्रागभावाभावस्वरूप पड़ता है। इसी तरह प्रध्वंसाभावाभाव, अन्योन्याभावा. भाव, अत्यन्ताभावाभाव में हेत्वलङ्कारके उदाहरण संभव हैं, जैसे—प्रध्वंसाभावाभाव में—

'पीनश्रोणि गभीरनाभि निभृतं मध्ये भृशोच्चस्तनं
पायाद्वः परिरब्धमब्धिदुहितुः कान्तेन कान्तं वपुः।
स्वावासानुपघातनिर्वृतमनास्तत्कालमीलद्दृशे
यस्मै सोऽच्युतनाभिपद्मवसतिर्वेधाः शिवं ध्यायति ॥'

इसमें विष्णुनाभिपङ्कजस्वरूप स्वावासके उपघाताभावको ब्रह्माके मनकी निर्वृतिके प्रति कारण-तया कहा गया है, उपघाताभाव—प्रध्वंसाभावाभावस्वरूप होगा, अतः यह प्रध्वंसाभावाभाव-स्थलीय हेतुका उदाहरण है।

अन्योन्याभावाभावमें—

'अवनिरुदकं तेजो वायुर्नभः शशिभास्करौ पुरुष इति यत् केचिद् भिन्ना वदन्ति तनूस्तव।
तदनघ वचोवैचित्रीभिर्निरावरणस्य ते विदधति पयःपूरोन्मीलन्मृषामिहिरोपमाम् ॥'

इसमें भिन्न पदसे अन्योन्याभावका उपन्यास करके 'निरावरणस्य' 'मृषा' इन पदों द्वारा उसका निषेध कराया गया है, अतः वही अन्योन्याभावाभाव 'मिहिरोपमा' का समर्थन करता है, यही अन्योन्याभावाभावरूप हेतु अलङ्कार है।

अत्यन्ताभावाभावमें—

'न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥'

इसमें 'न विद्यते' इसके द्वारा प्रतिभाका अत्यन्ताभाव बताया गया, उसीका 'कमप्यनुग्रहम्' कहकर प्रतिषेध कर दिया गया, यही अत्यन्ताभावाभाव है, वही सरस्वतीकी उपासनाके कर्त्तव्यत्व-रूप कार्यका हेतु बताया गया है, अतः अत्यन्ताभावाभावहेतुनामक अलङ्कार हुआ ॥ २५१ ॥

प्रागभावादिरूपस्य हेतुत्वमिह वस्तुनः।
भावाभावस्वरूपस्य कार्यस्योत्पादनं प्रति ॥ २५२ ॥

अभावहेतुमुपसंहरति—**प्रागभावादीति**। इह अत्र प्रकरणे प्रागभावादिरूपस्य प्रागभावप्रध्वंसाभावात्यन्ताभावान्योन्याभावस्वरूपस्य वस्तुनः भावाभावस्वरूपस्य कार्य-स्योत्पादनं प्रति हेतुत्वम्, अर्थात् एषामन्यतमोऽभावः क्वचिद् भावकार्यं प्रति क्वचि-द्भावकार्यं प्रति हेतुतया वर्णितो भवतीत्यर्थः। तत्र भावरूपकार्यं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासो यथा—'अनभ्यासेन विद्यानाम्' इति पूर्वोक्ते। अत्र विद्याध्ययनप्रागभावस्य व्यसनरूप-भावकार्यं प्रति हेतुत्वं वर्णितम्। अभावरूपकार्यं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासो यथा—'उद्यान-

१. स्वभावस्य।

सहकाराणाम्' इत्यत्र। तत्र हि—आम्रमञ्जरीविकासाभावाभावस्य पथिकवधूनामभावे कारणत्वेनोपादानम् ॥ २५२ ॥

हिन्दी—यहाँ पर प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभावरूप अभावचतुष्टय कहीं पर भावकार्यके प्रति कारणत्वेन प्रदर्शित होते हैं, और कहीं पर अभावकार्यके प्रति कारणत्वेन प्रदर्शित होते हैं, जैसे—'अनभ्यासेन विद्यानाम्' इस पूर्वोक्त उदाहरणमें विद्याध्ययन-प्रागभावको व्यसनरूप भावकार्यका कारण कहा गया है। इसी तरह—'उद्यानसहकाराणाम्' इस उदाहरणमें आम्रमञ्जरी विकासाभावाभावको पथिकवधुओंके मरण—अभावरूप कार्यका कारण कहा गया है ॥ २५२ ॥

दूरकार्यस्तत्सहजः कार्यानन्तरजस्तथा।
अयुक्तयुक्तकार्यौ चेत्यसङ्ख्याश्चित्रहेतवः ॥ २५३ ॥
तेऽमी प्रयोगमार्गेषु गौणवृत्तिव्यपाश्रयाः।
अत्यन्तसुन्दरा दृष्टास्तदुदाहृतयो यथा ॥ २५४ ॥

सम्प्रतियावत्कारकज्ञापकहेतू निरूपितौ, अथेदानीं चित्रहेतुप्रभेदान्दर्शयितुमाह—**दूरकार्य इति**। दूरे कार्यं यस्य स दूरकार्यः, तत्सहजः तेन कार्येण सहजातः, कार्यादनन्तरं जातः कार्यानन्तरजः, अयुक्तं कार्यं यस्य सः अयुक्तकार्यः, तथा युक्तं कार्यं यस्य सः युक्तकार्यः, इति एवम् असंख्याः अगणनीयाः बहुविधा इत्यर्थः, चित्रहेतवः चित्राख्य-हेतुप्रभेदा जायन्ते। चित्राख्योऽयं हेतुः परिगणितो हेतुप्रभेदपरिगणने भोजराजेन-'क्रियायाः कारणं हेतुः कारको ज्ञापकस्तथा। अभावश्चित्रहेतुश्च चतुर्विध इहेष्यते' इति।

ननु कार्याद्विदूरस्य, सहजस्य, तदनन्तरजस्य वा हेतोर्हेतुत्वमेव न सिद्धयति, कार्यापेक्षया हेतोः सन्निकृष्टत्वस्य पूर्ववर्त्तित्वस्य चावश्यकत्वादिति शङ्कामपनुदति—**तेऽमी इति**। तेऽमी पूर्वोक्ताः दूरकार्यादयो हेतवः गौणवृत्तिव्यपाश्रयाः सारोपगौणलक्षणाऽऽलम्बनाः प्रयोगमार्गेषु कविजननिबन्धेषु अत्यन्तसुन्दरा दृष्टाः, अतः तदुदाहरणानि वक्ष्यन्ते। चित्रहेतवो महाकविनिबन्धे सारोपलक्षणां निमित्तीकृत्य चमत्कारकरा दृष्टा अतस्तेषामुदाहरणानि प्रक्रम्यन्त इत्यर्थः ॥ २५३-२५४ ॥

हिन्दी—अभीतक कारकज्ञापक हेतुओंका निरूपण किया जाता रहा है, अब चित्रहेतुका निरूपण किया जायगा। चित्रहेतुके बहुत प्रभेद हैं—दूरकार्य, तत्सहज, कार्यानन्तरज, अयुक्त कार्य एवं युक्त कार्य।

भोजराजने—चित्रहेतुका नाम हेतुप्रभेदोंमें लिया है, यह उसीका प्रपञ्च है।

यहाँ शङ्का की जा सकती है कि कार्य और कारणमें सन्निकृष्टत्व एवं कार्यापेक्षया कारणका पहले रहना व्यवस्थित है, फिर यह दूरकार्य, तत्सहज, कार्यानन्तरज आदि प्रभेद कैसे हो सकते हैं ?

इसका उत्तर इस कारिकामें दिया जायगा। यह चित्रप्रभेद दूरकार्य आदि सारोपलक्षणा-का अवलम्बन करके बनते हैं और महाकवियोंके निबन्धोंमें बड़े चमत्कारक बनते हैं, अतः इनका उदाहरण दिया जायगा। इन्हें सारोपगौणलक्षणासे जीवन मिलता है, उसमें कहीं कार्यमें गौणलक्षणा हुई रहती है जैसे—'प्रागेव हरिणाक्षीणामुदीर्णो रागसागरः' यहाँ सागरका आरोप राग में हुआ है। राग चन्द्रोदयका कार्य है। कहीं पर कार्य और कारण दोनोंमें आरोप होता है, जैसे—'राज्ञां हस्तारविन्दानि' ॥ २५३-२५४ ॥

१. अयुक्तो युक्तकारी। २. गौणमार्गव्यपाश्रयात्।

त्वदपाङ्गाह्वयं जैत्रमनङ्गास्त्रं यदङ्गने।
मुक्तं तदन्यतस्तेन सोऽप्यहं मनसि क्षतः॥ २५५॥

दूरकार्यं हेतुमुदाहरति—**त्वदपाङ्गेति**। हे **अङ्गने** प्रशस्तगात्रि, त्वदपाङ्गाह्वयम् त्वदपाङ्गसंज्ञकम् जैत्रम् विजयसाधनम् यत् अनङ्गास्त्रम् कामदेवस्यास्त्रम्, तत् त्वया अन्यतः मद्भिन्नं जनमुद्दिश्य मुक्तम्, तेन त्वदपाङ्गरूपमदनास्त्रेण सः लक्ष्यीकृतो जनः अहम् अलक्ष्यीकृतो मल्लक्षणश्च जनः मनसि क्षतः आहतः। अत्र अपाङ्गेऽस्त्रत्वारोपः, तस्य चास्त्रस्य लक्ष्यवेधरूपं कार्यं सन्निहितम्, अलक्ष्यवेधरूपञ्च विदूरम्, इति दूरकार्यस्य भवतीदमुदाहरणम्। इदञ्च देशदूरत्वे उदाहरणम्॥ २५५॥

हिन्दी—हे सर्वावयवानवद्ये, तुम्हारा जो यह अपाङ्गरूप कामदेवका विजयकारी अस्त्र है, उसे तुमने किसी अन्यको लक्ष्य करके चलाया, परन्तु उस अस्त्रसे लक्ष्यभूत वह जन तथा मैं भी मनमें आहत हो गया।

इस उदाहरणमें अस्त्रका लक्ष्यवेधरूप कार्य समीपस्थ है, और अलक्ष्यवेधरूप कार्य दूर है, अतः यह दूरकार्यहेतुका उदाहरण हुआ। इसमें दैशिकदूरता है, इसी प्रकारसे कालिकदूरतामें उदाहरण दिया जा सकता है, यथा—

'अनश्नुवानेन युगोपमानमलब्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन।
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः॥'

उस राजकुमारके हाथने युगकी उपमा नहीं पाई, धनुष चलानेका अभ्यास नहीं किया, तलवारकी मूठ नहीं पकड़ी, फिर भी उससे पृथ्वी सुरक्षित रही। यहाँ पर यौवनकार्य पृथ्वीरक्षण बाल्यमें ही किया गया है, अतः कालिकदूरकार्यहेतुका यह उदाहरण है॥ २५५॥

आविर्भवति नारीणां वयः पर्यस्तशैशवम्।
सहैव विविधैः पुंसामङ्गजोन्मादविभ्रमैः॥ २५६॥

सहजहेतुमुदाहरति—**आविर्भवतीति**। नारीणां पर्यस्तशैशवम् दूरीकृतबाल्यम् वयः यौवनम् पुंसाम् कामिजनानाम् विविधैः नानाप्रकारकैः अङ्गजोन्मादविभ्रमैः कामकृतमनोविकारविलासैः सहैव आविर्भवति प्रकटति, नारीणां यौवनं पुंसां कामकृतमनोविकारैः सहैवोदयते इत्यर्थः। अत्र मनोविकारो यौवनस्य कार्यं, तत्स्वकारणेन यौवनेन सहैव जायमानत्वेन वर्णितमिति सहजहेतोरुदाहरणमिदम्॥ २५६॥

हिन्दी—नारियोंकी बाल्यावस्थाको दूर भगानेवाली युवावस्था कामिजनोंके कामजनित मनोविकारोंके साथ ही प्रकट होती है।

इस उदाहरणमें युवावस्था कारण है और कामजनित मनोविकार कार्य है; कार्यसे कारणको पहले होना चाहिये, परन्तु आशुभाविताकी अभिव्यक्तिके लिये दोनोंको एक साथ प्रकट कराया गया है, यह सहजहेतुका उदाहरण हुआ, क्योंकि कार्य और कारण एक साथ हुये हैं॥ २५६॥

पश्चात् पर्यस्य किरणानुदीर्णं चन्द्रमण्डलम्।
प्रागेव हरिणाक्षीणामुदीर्णो रागसागरः॥ २५७॥

कार्यानन्तरजं हेतुमुदाहरति—**पश्चादिति**। किरणान् मयूखान् पर्यस्य समन्ततः प्रसार्य चन्द्रमण्डलं पश्चात् (रागसागरोदीरणानन्तरम्) उदीर्णम् उदितम्, हरिणाक्षीणाम्

१. मङ्गलास्त्रं। २. सोस्म्यहं।

रागसागरः प्रागेवोदीर्णः वनितानां कामाभिलाषरूपस्समुद्रः पूर्वमेव उच्छलितः। अत्र समुद्रोच्छलनस्य कारणत्वेन प्रसिद्धश्चन्द्रोदयः, स हि पूर्वमपेक्ष्यते, परन्तु पश्चाद्भावित्वेन वर्णित इति कार्यान्तरजहेतूदाहरणमिदम् ॥ २५७ ॥

हिन्दी—किरणोंको फैलाकरके चन्द्रमण्डल पीछे उदित हुआ, उससे पहले ही कामिनियोंके हृदयमें कामाभिलाषाका समुद्र लहराने लगा था।

चन्द्रमाका उदय रागोद्दीपक है। उदयरूप कारणसे पूर्व ही रागसागर लहराने लगा, यह कार्यानन्तरजहेतु है ॥ २५७ ॥

राज्ञां हस्तारविन्दानि कुड्मलीकुरुते कुतः।
देव त्वच्चरणद्वन्द्वरागबालातपः स्पृशन् ॥ २५८ ॥

अयुक्तकार्यं नाम हेतुमुदाहरति—**राज्ञामिति**। देव, राजन्, त्वच्चरणद्वन्द्वस्य त्वदीयचरणयुगलस्य रागः रक्तिमा एव बालातपः प्रभातकालिकसूर्यरश्मिः, स्पृशन् स्पर्शं कुर्वन् सन् राज्ञां हस्ता एव अरविन्दानि कमलानि कुतः कुड्मलीकुरुते मुकुलयति। बालातपस्पर्शो हि कमलानां विकासाय भवति, न सङ्कोचाय, अत्रारविन्दसङ्कोचकत्वं प्रतिपाद्यमानं बालातपस्यायुक्तमिति अयुक्तकार्यो हेतुः। हस्तकमलानां मुकुलीभावश्च प्रणामाय भवतीति बोध्यम् ॥ २५८ ॥

हिन्दी—देव, आपके चरणयुगलकी रक्ततारूप बालातप स्पर्श करके अन्य राजोंके हाथरूप कमलको मुकुलित क्यों कर देता है? बालातपस्पर्शसे कमल विकसित होते हैं, मुकुलित नहीं, यहाँपर प्रणामके लिए मुकुलीभावका वर्णन किया गया है, यह अयुक्तकार्यहेतु है ॥ २५८ ॥

पाणिपद्मानि भूपानां सङ्कोचयितुमीशते।
त्वत्पादनखचन्द्राणामर्चिषः कुन्दनिर्मलाः ॥ २५९ ॥

युक्तकार्यहेतुमुदाहरति—**पाणिपद्मानीति**। त्वत्पादनखचन्द्राणाम् त्वदीयचरणनखविधूनाम् कुन्दनिर्मलाः कुन्दकुसुमस्वच्छा अर्चिषः कान्तयः भूपानां प्रत्यर्थिराजानाम् पाणिपद्मानि करकमलानि सङ्कोचयितुं प्रणामाञ्जलिविधापनद्वारा मुकुलीकर्तुम् ईशते समर्था भवन्ति। अत्र चन्द्रार्चिषां कमलसंकोचकत्वं युक्तमिति युक्तकार्यहेतूदाहरणमिदम् ॥२५९॥

हिन्दी—आपके चरणनखरूप विधुकी कुन्दपुष्पके सदृश स्वच्छ कान्तियाँ अन्यान्य राजगणके पाणिकमलको संकुचित करनेमें समर्थ हैं। आपके चरणोंमें सभी प्रणाम करते हैं, प्रणाम करनेसे हाथ संकुचित होते हैं। यहाँ चन्द्रकिरणोंका कमलसंकोचकत्व युक्त है, अतः यह युक्तकार्यहेतुका उदाहरण हुआ ॥ २५९ ॥

इति हेतु-विकल्पानां[2] दर्शिता गतिरीदृशी।
(इति हेतुचक्रम्)

उपसंहरति—**इतीति**। इतिः समाप्तिसूचनाय। ईदृशी एवंप्रकारा हेतुविकल्पानां हेत्वलङ्कारप्रभेदानां गतिः पद्धतिः दर्शिता उदाहरणादिना प्रकाशिता।

हिन्दी—इस प्रकारसे हेत्वलङ्कारके प्रभेदोंका दर्शन करा दिया गया।

---

१. रविबाला। २. विकल्पस्य।

इङ्गिताकारलक्ष्योऽर्थः सौक्ष्म्यात् सूक्ष्म इति स्मृतः ॥२६०॥
कदा नौ सङ्गमो भावीत्याकीर्णे वक्तुमक्षमम् ।
अवेत्य[1] कान्तमबला लीलापद्मं न्यमीलयत् ॥ २६१ ॥
पद्मसंमीलमादत्र[2] सूचितो निशि सङ्गमः ।
आश्वासयितुमिच्छन्त्या प्रियमङ्गजपीडितम् ॥ २६२ ॥

सूक्ष्मालङ्कारं लक्षयति—**इङ्गिताकारेति** । इङ्गितं स्वाभिप्रायसूचकः शरीरचेष्टाविशेषः, आकारो हृदयाभिलाषसूचक आकारविशेषः, ताभ्यां लक्ष्यः साधारणजनदुर्ज्ञेयोऽपि सूक्ष्मबुद्धिजनवेद्योऽर्थः प्रतिपाद्यविषयः सौक्ष्म्यात् अतिनिगूढत्वात् सूक्ष्मो नामालङ्कारः स्मृतः, तथा च यत्र इङ्गिताकाराभ्यां सूक्ष्मबुद्धिमात्रज्ञेयमर्थवर्णनं क्रियते, स सूक्ष्मालङ्कार इति पर्यवस्यति । सोऽयं सूक्ष्मो द्विधा, इङ्गितेन सूक्ष्मार्थाभिधाने एकः आकारेण सूक्ष्मार्थाभिधाने च द्वितीयः ॥ २६० ॥

तत्रेङ्गितेन सूक्ष्मार्थाभिधानं नाम सूक्ष्ममुदाहरति—**कदा नाविति** । कस्मिन्समये नौ आवयोः संगमो भावी भविता इति आकीर्णे जनाकुले स्थाने वक्तुम् अक्षमम् प्रष्टुमपारयन्तम् कान्तम् अवेत्य अबला कामिनी लीलापद्मं करधृतं क्रीडाकमलं न्यमीलयत् संकोचितवती, कान्तेन लोकाकुले स्थाने वाचाऽपृष्टमपि संगमकालं तदीयमुखच्छायया पृष्टमिवाकलय्य बाला तमवेत्य करस्थं लीलाकमलं समकोचयत् , तेन च तस्याः इङ्गितेन चतुरः कान्तः सन्ध्यां सङ्गमकालमवगतवान् , इति भवति सूक्ष्मालङ्कारः ॥२६१॥

उदाहरणमुपपादयति—**पद्मसंमीलनादिति** । अत्र पूर्वोक्तोदाहरणे अङ्गजपीडितम् कामसन्तप्तम् प्रियम् आश्वासयितुम् इच्छन्त्या बालया पद्मसम्मीलनात् करधृतक्रीडाकमलसङ्कोचनात् निशि सङ्गमो (भावीति) सूचितः । अत्र कमलनिमीलनरूपेणेङ्गितेन निशि भावी सङ्गमः प्रियाय सूक्ष्मतया सूचित इति सूक्ष्मालङ्कारसमन्वयः ॥ २६२ ॥

हिन्दी—इङ्गित-इशारा, (शरीरचेष्टाविशेष) एवम् आकार से यदि सूक्ष्म—साधारणतया अज्ञेय अर्थका ज्ञान हो, तो इसे सूक्ष्म नामक अलङ्कार कहते हैं । वह दो प्रकारका है—१-इङ्गितसे सूक्ष्मार्थाभिधानमें और २-आकारसे सूक्ष्मार्थाभिधानमें ।

काव्यप्रकाशकारने सूक्ष्मालङ्कारका स्वरूप दूसरा ही कहा है—

'कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते । धर्मेण केनचिद्यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते ॥'

आकार अथवा इङ्गित द्वारा किसी प्रकारसे लक्षित किये गये सूक्ष्म अर्थको यदि किसी असाधारण धर्मके द्वारा दूसरोंपर प्रकट कर दिया जाय तब सूक्ष्म होता है ।

काव्यप्रकाशके लक्षणमें दण्डीके लक्षणसे इतनी विशेषता है कि उनके मत में पहले स्वयं सूक्ष्म अर्थको किसी तरह जानकर उसीको दूसरों पर किसी प्रकार प्रकाशित किया जाता है, दण्डीने सूक्ष्मतया अभिधानको ही सूक्ष्म कहा है ॥ २६० ॥

लोगोंसे परिपूर्ण सदनमें कान्त अपनी प्रेयसीसे मिलनका समय पूछनेमें असमर्थ हो रहा है, परन्तु वह मिलनके समयको जाननेके लिये व्यग्र है, यह देखकर उस कामिनीने क्रीडाके लिये हाथमें रखे गये कमलको मुकुलित कर दिया ॥ २६१ ॥

इस उदाहरणमें मदनबाणविह्वल पतिदेवको धीरज देनेके लिये उस कामिनीने कमलसङ्कोचन-

---

१. अवेक्ष्य । २. पद्मस्य मीलनात् ।

रूप इङ्गितके द्वारा रात्रिमें हमारा मिलन होगा यह बात सूचित कर दी। यहाँ कमलनिमीलन-रूप इङ्गितसे मिलनसमय सूक्ष्मतया कहा गया है अतः यह सूक्ष्मका पहला भेद हुआ ॥ २६२ ॥

मदर्पितदृशस्तस्या गीतगोष्ठ्यामवर्धत ।
उद्दामरागतरला छाया कापि मुखाम्बुजे ॥ २६३ ॥
इत्यनुद्भिन्नरूपत्वाद्रत्युत्सवमनोरथः ।
अनुल्लङ्घ्यैव सूक्ष्मत्वमभूदत्र व्यवस्थितः ॥ २६४ ॥

(इति सूक्ष्मचक्रम्)

आकारलक्ष्यं सूक्ष्ममुदाहरति—**मदर्पितेति** । गीतगोष्ठ्यां गीतपरिषदि मदर्पित-दृशो मयि निहितनयनायास्तस्याः नायिकाया मुखाम्बुजे कमलसमे मुखे उद्दामरागतरला अतिप्रवृद्धरत्यभिलाषविकस्वरा कापि अनिर्वचनीया छाया अवर्द्धत कान्तिः प्रकटीभूता। अत्र मुखच्छायावैलक्षण्यरूपाकारविशेषेण नायिकायाः रत्युत्सवेच्छा सूक्ष्मतया सूचितेति सूक्ष्मालङ्कारः ॥ २६३ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**इत्थनुद्भिन्नेति** । इति अत्रोदाहरणे (छाययैव प्रकटीकृतः) रत्युत्सवमनोरथः कामक्रीडाविषयकोऽभिलाषः अनुद्भिन्नरूपत्वात् स्फुटतयाऽप्रतीयमानत्वात् सूक्ष्मत्वम् अनुल्लङ्घ्य अपरित्यज्य एव व्यवस्थितः वर्णितोऽभूत् , अतः सूक्ष्मालङ्कारोऽयम् यतोऽत्र स्फुटमप्रतीयमानो रत्युत्सवाभिलाषः छायया सूक्ष्मतया बोधितोऽत्रातः सूक्ष्मा-लङ्कार इति भावः ॥ २६४ ॥

हिन्दी—सङ्गीतगोष्ठीमें हमारे मुखकी ओर आँखें डालनेवाली उस कामिनीके मुखपर प्रवृद्ध-रतिकामनासे प्रस्फुट कुछ अद्भुतसी कान्ति बढ़ आई। मुझे देखकर उसकी कान्ति कुछ अद्भुत रक्ताभ हो गई ॥ २६३ ॥

इस उदाहरणमें (छायामात्रसे) स्पष्ट नहीं प्रतीयमान होनेवाला रत्युत्सवाभिलाष सूक्ष्मत्वका परित्याग बिना किये ही वर्णित हुआ है, यद्यपि वह सूक्ष्म बना ही है, फिर भी उसकी प्रतीति मुखच्छाया-वैलक्षण्यसे हो जाती है, अतः यह सूक्ष्मका उदाहरण है ॥ २६४ ॥

लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम् ।
उदाहरण एवास्य रूपमाविर्भविष्यति ॥ २६५ ॥

आदावलङ्कारनिर्देशे क्रियमाणे यो लवनाम्नाऽभिहितस्तं लेशं लक्षयति—**लेश इति** । लेशेन स्वल्पभावेन निर्भिन्नस्य प्रकटतां गतस्य वस्तुनः कस्यापि रहस्यवस्तुविशेषस्य यद्रूपं स्वरूपं तस्य निगूहनम् प्रच्छादनम्—यद्गोप्यवस्तु कुतोऽपि हेतोः प्रकटीभूतकल्पम् तद्रूपस्यान्यथाप्रथनं—लेशो नामालङ्कारः । केचित्तु लेशेन व्याजेन वस्तुरूपनिगूहनं लेश इति व्याख्यां कुर्वन्ति । तथा च कारणान्तरोत्पन्नस्यांशतः प्रकटीभूतस्य च वस्तुनः कारणान्तरोत्पन्नत्वकथनद्वाराऽऽच्छादनं लेश इति फलितम् । अस्य लेशस्य रूपं चमत्कार-कत्वम् उदाहरण एव आविर्भविष्यति, एतेन चमत्कारविरहितत्वाल्लेशस्य नालङ्कारत्वमिति कथनं खण्डितम् ॥ २६५ ॥

---

१. त्वदर्पित । २. काचित । ३. इत्यसम्भिन्न । ४. वाक्यस्य ।

हिन्दी—लेश नामक अलङ्कार तब होता है यदि कुछ-कुछ प्रकट होते हुए वस्तुरूपको चतुरतासे छिपा लिया जाय। इसका चमत्कारक रूप उदाहरण में प्रकट होगा। किसी रहस्य वस्तुके खुलते-खुलते गोपनको ही लेश अलङ्कार कहा जाता है, वह खुलना दो प्रकारसे होता है—रोमाञ्चादि गात्रविकारसे और असावधानतासे।

नवीन आचार्योंने इसकी जगहपर व्याजोक्ति नामक अलङ्कार कहा है। उनकी व्याजोक्तिका लक्षण है—'व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्'। अप्पय्य दीक्षितने जो छेकापह्नुतिनामक अलङ्कार कहा है, वह भी लेशालङ्कारमें ही अन्तर्भूत माना जाना चाहिये ॥ २६५ ॥

राजकन्यानुरक्तं मां रोमोद्भेदेन रक्षकाः।
[1]अवगच्छेयुराज्ञातमहो शीतानिलं[2] वनम् ॥ २६६ ॥

लेशालङ्कारमुदाहरति—**राजेति**। रक्षकाः राजान्तःपुरयामिका रोमोद्भेदेन रोमाञ्चदर्शनेन मां राजकन्यानुरक्तम् नृपकन्याकामुकम् अवगच्छेयुः जानीयुः—आः स्मृतौ गोपनो यः, अहो आश्चर्ये, वनं शीतानिलम् अतिशीतलवातयुतम्। तथा चायं दृश्यमानो रोमाञ्चः शीतवातसम्पर्ककृत एवेति जानन्तो रक्षका मां न दोषिणं मन्येरन्निति निगूहनोपायोऽस्तीति भावः। अत्र शीतानिलसंपर्केण रोमोद्गमस्य समर्थनादनुरागनिगूहनं कृतमिति लेशः। प्रकाशीभवद्वस्तुगोपनं द्विधा क्रियते, अनिष्टसंभावनया लज्जया वा। तत्रानिष्टसंभावनया कृतमत्र निगूहनं, लज्जया निगूहनस्योदाहरणमनुपदमेव वक्ष्यति ॥ २६६ ॥

हिन्दी—मेरे शरीरमें रोमाञ्च देखकर कहीं अन्तःपुरके रक्षकगण मुझे राजपुत्रीपर आसक्त न समझ लें ? आह ! समझ गया, इस वनकी हवा आश्चर्यजनक रूपमें शीतल है ॥

इस उदाहरणमें राजकन्यानुरागसे होनेवाले रोमाञ्चको शीतवातसंसर्गकृत कह कर छिपा दिया गया है, यह लेश है।

दो कारणोंसे किसी प्रकट होने वाले अर्थका निगूहन किया जाता है—अनिष्टकी आशङ्कासे या लज्जासे। यहाँ पर राजदण्डरूप अनिष्टकी आशङ्कासे निगूहनका उदाहरण दिया गया है, लज्जासे निगूहनका उदाहरण अगले श्लोकमें दिया जायगा ॥ २६६ ॥

आनन्दाश्रु प्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम्।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन कम्पितम् ॥ २६७ ॥

लज्जया निगूहनमुदाहरति—**आनन्देति**। कन्यकां विवाहमण्डपे समायातां कन्याम् दृष्ट्वा एव मे मम आनन्दाश्रु कथं प्रवृत्तम्। कन्यादर्शनेनानन्दाश्रुप्रवृत्तिर्लज्जाहेतुरिति निगूहति—**अक्षीति**। वातोद्धूतेन पवनचालितेन पुष्परजसा कुसुमपरागेण मे मम अक्षि दूषितम्। अत्र कन्यादर्शनजातस्यानन्दाश्रुणः पुष्परजोदूषिताक्षिजातत्वप्रतिपादनेन निगूहनं कृतं वेदितव्यम् ॥ २६७ ॥

हिन्दी—विवाहमण्डपमें आती हुई कन्याको देखते ही मेरी आँखमें आनन्दाश्रु क्यों उमड़ आए, आः, मेरी आँखमें पवनसे चालित पुष्पपराग आ पड़ा है, उसीसे यह अश्रु निकल आये हैं।

इस उदाहरणमें कन्यादर्शनजात आनन्दाश्रुका स्वीकार लज्जाजनक होता, अतः उसे पवनचालित पुष्परजसे दूषितनेत्रजात बताकर छिपाया गया है ॥ २६७ ॥

[3]इत्येवमादिस्थानेऽयमलङ्कारोऽतिशोभते।
लेशमेके विदुर्निन्दां स्तुतिं वा लेशतः कृताम् ॥ २६८ ॥

१. आव। २. शीतानिलम्वनम्। ३. इत्येवमादौ।

प्रोक्तस्वरूपं लेशमुपसंहरति—इत्येवमादीति। इत्येवमादिस्थाने एतादृशोदाहरणस्थेऽयं लेशालङ्कारोऽतिशोभते चमत्कारातिशयं जनयति, एतेन चमत्कारविरहान्नायमलङ्कार इत्यपास्तम्। लेशस्य प्रकारान्तरमाह—लेशमिति। एके विद्वांसः लेशतः कृतां निन्दां स्तुतिं वा लेशमाहुः। तथा च स्तुतिमिषेण निन्दास्थले निन्दामिषेण वा स्तुतिस्थले लेशालङ्कार इति फलति। व्याजस्तुतिर्नाम नवीनस्वीकृतालङ्कारोऽप्यत्रैव गतार्थो बोध्यः॥ २६८॥

हिन्दी—इस तरहके उदाहरणोंमें यह लेशालङ्कार अति चमत्कारक रूपमें प्रतीत होता है, (अतः यह शङ्का समाहित हो जाती है कि चमत्कारशून्यतया इसे अलङ्कार नहीं माना जाना चाहिये) इस प्रकार लेशका एक प्रकार उपसंहृत होता है। लेशका एक दूसरा भी प्रकार है, वह यह है कि स्तुतिके व्याजसे निन्दा और निन्दाके व्याजसे स्तुतिस्थलमें लेश होता है। दण्डीने व्याजस्तुतिनामक पृथक् अलङ्कार नहीं माना है, मालूम पड़ता है इसी लेशप्रकारमें उसके लक्ष्यको अन्तर्भूत होते देख कर ही ऐसा किया गया॥ २६८॥

युवैष गुणवान् राजा योग्यस्ते पतिरूर्जितः।
रणोत्सवे मनः सक्तं यस्य कामोत्सवादपि॥ २६९॥
वीर्योत्कर्षस्तुतिर्निन्दैवास्मिन् भावनिवृत्तये[1]।
कन्यायाः कल्पते भोगान्निर्विविक्षोर्निरन्तरम्[2]॥ २७०॥

स्तुतिव्याजेन निन्दात्मकं लेशालङ्कारमुदाहरति—युवेति। स्वयंवरागतां राजसुतां प्रति तत्सख्या उक्तिरियम्, एषः राजा युवा, गुणवान्, ऊर्जितः ओजस्वी, ते योग्यः अनुरूपः पतिः, यस्यास्य राज्ञः मनः कामोत्सवात् सुरतप्रसङ्गाद् अपि रणोत्सवे युद्धे सक्तम्, यो रतिमहोत्सवापेक्षयापि युद्धे समधिकं रमते सोऽयं राजा तव योग्यः पतिरित्यर्थः। अत्रातिवीरोऽयं व्रियतामिति प्रशंसया सदायुद्धासक्ततया त्वत्सुरताभिलाषपूरणाक्षमोऽयं न ते योग्य इति निन्दाप्रतीत्या लेशालङ्कारः॥ २६९॥

उदाहरणं विवृणोति—वीर्योत्कर्षेति। अस्मिन्नुदाहृतश्लोके निरन्तरं भोगान् निर्विविक्षोः सततभोगाभिलाषिण्याः कन्यायाः भावनिवृत्तये तद्राजविषयकाभिलाषप्रशमाय कल्पते (इति) वीर्योत्कर्षस्तुतिः सख्या क्रियमाणा तस्य राज्ञः सततयुद्धरतिप्रशंसा निन्दा एव, अतश्च स्तुतिव्याजेन निन्दात्माऽयं लेशालङ्कार इति भावः॥ २७०॥

हिन्दी—यह राजा युवा है, गुणवान् एवं तेजस्वी है, इसका मन कामोत्सवसे भी अधिक रणोत्सव में लगता है। यह स्तुतिव्याजेन निन्दारूप लेशका उदाहरण है। यह श्लोक स्वयंवरमें आई हुई राजकन्यासे उसकी सखी कह रही है, इसमें यद्यपि राजाकी वीरतासे प्रशंसा की गई है, परन्तु सततयुद्धरत होनेसे वह सुरतसुखदाता नहीं हो सकेगा, अतः वह राजकन्याके अयोग्य है यह निन्दा अभिव्यक्त हो जाती है॥ २६९॥

इस उदाहरण श्लोकमें वीर्योत्कर्षद्वारा की गई राजाकी प्रशंसा निन्दामें परिणत हो जाती है क्योंकि—सुरताभिलाषिणी राजकन्याके भाव-अभिलाष की निवृत्ति हो जाती है, उसी गुणके कारण राजकुमारी उससे अपरक्त हो जाती है॥ २७०॥

चपलो निर्दयश्चासौ जनः किं तेन मे सखि।
आगःप्रमार्जनायैव चाटवो येन शिक्षिताः॥ २७१॥

---

१. निवर्त्तने। २. निरन्तरान्।

दोषाभासो गुणः कोऽपि दर्शितश्चाटुकारिता ।
मानं सखिजनोद्दिष्टं कर्तुं रागादशक्तया ॥ २७२ ॥
(इति लेशचक्रम्)

निन्दाव्याजेन स्तुत्यात्मकं लेशमुदाहरति—**चपल इति** । हे सखि, असौ अनः मम प्रियतमः चपलः स्वभावतश्चञ्चलः, निर्दयश्च परपीडानभिज्ञश्च येन मम प्रियतमेन आगःप्रमार्जनाय एव स्वापराधक्षालनाय एव चाटवः प्रियालापाः शिक्षिता अभ्यस्ताः, अतः तेन भवतीभिरवश्यावलम्बनीयतयोपदिष्टेन मानेन में किं नास्ति किमपि प्रयोननम् । यद्यपि मम प्रियश्चञ्चलो निर्दयश्चाप्यस्ति, तथापि कृतापराधे तस्मिन्नहं यावन्मानं कर्तु-मिच्छामि तावदेव स्वभ्यस्तचाटुतयाऽसौ मां प्रसादयति, तद्भवत्या क्रियमाणोऽयं मानो-पदेशो वृथेति भावः ॥ २७१ ॥

उदाहरणं योजयति—**दोषाभास इति** । रागात् प्रियस्नेहात् सखीजनोद्दिष्टं सख्यो-पदिष्टं मानं प्रणयकोपं कर्तुम् अशक्तया अक्षमया नायिकया चाटुकारिता नाम गुणः स्त्रीजनप्रियो नायकधर्मः दोषाभासः दर्शितः दोषरूपतयोक्तः, एवञ्चात्र निन्दाव्याजेन स्तुति-रूपो लेश इति बोध्यम् ॥ २७२ ॥

हिन्दी—हे सखि, मेरा प्रियतम चञ्चल है, निर्दय भी है, जिसने अपने अपराधोंके मार्जनके लिये हि चाटुकारिताका अभ्यास कर लिया है, मुझे तुम्हारे द्वारा किये गये इस मानोपदेशका क्या प्रयोजन हैं। अर्थात् यद्यपि मेरी प्रियतम चञ्चल निर्दय है, फिर भी उसके द्वारा अपराध किये जानेपर जब मैं मान करनेको सोचती हूँ तभी वह चाटुकारिताके सहारे मरे हृदयको चुरा लेता है, अतः मुझे इस मानके उपदेशसे क्या प्रयोजन है ॥ २७१ ॥

इस उदाहरणमें प्रेमवश मान करनेमें असमर्थ उस नायिकाने प्रियतमके चाटुकारित्व गुणको दोषके रूपमें दिखलाया है, अतः यह निन्दाव्याजसे स्तुतिरूप लेशालङ्कार है ॥ २७२ ॥

उद्दिष्टानां पदार्थानामनूद्देशो[3] यथाक्रमम् ।
यथासङ्ख्यमिति प्रोक्तं संख्यानं क्रम इत्यपि ॥ २७३ ॥

'हेतुः सूक्ष्मो लवः क्रमः' इति प्रागलङ्कारोद्देशे प्रोक्तम्, तदवसरप्राप्तं क्रमालङ्कारं निरूपयति—**उद्दिष्टानामिति** । उद्दिष्टानां पूर्वं कथितानां पदार्थानाम् यथाक्रमम् तेनैव क्रमेण (येन पौर्वापर्यक्रमेण पूर्वमुक्ताः) अनूद्देशः पश्चादाख्यानम् (पश्चादुक्तैः पदार्थैः सहान्वयः) क्रमो नाम अलङ्कारः, एतस्यैवालङ्कारस्य यथासंख्यपदेन संख्यानपदेन च प्राचां ग्रन्थेष्वभिधानम् , तदुक्तं भामहेन—

'यथासंख्यमथोत्प्रेक्षामलङ्कारद्वयं विदुः । संख्यानमिति मेधावी नोत्प्रेक्षाऽभिहिता क्वचित् ॥'

काव्यप्रकाशकारोऽपि यथासंख्यनाम्ना क्रममेव लक्षयति—'यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमि-काणां समन्वयः ॥' २७३ ॥

हिन्दी—उद्दिष्ट-पहले कहे गये पदार्थोंका क्रमशः यदि आगे कहे गये पदार्थोंमें समन्वय हो, जिस पौर्वापर्य क्रमसे पहले कहे गये हों उसी क्रमसे यदि आगे कहे गये पदार्थोंमें अन्वय किया जाय तो क्रम नामक अलङ्कार होता है। क्रमको केवल इतनेसे ही अलङ्कार माना गया है कि यहाँ पहले और पीछे वर्णन किये गये पदार्थोंमें यथाक्रम संबन्ध होनेसे एक प्रकारका वैचित्र्य—

१. गुणायैव । २. निर्दिष्टानां । ३. अनुदेशो ।

चमत्कार प्रतीत होता है, नहीं तो यहाँ पदार्थोंमें कुछ उपमानोपमेयभाव, कार्यकारणभाव, या समर्थ्यसमर्थकभाव आदि नहीं रहता है। प्राचीन आचार्यों ने इसे यथासंख्य और संख्यान नामसे व्यवहृत किया है, उद्भट ने यथासंख्यकी जो परिभाषा की है वह स्वरूप स्पष्ट कर देती है—

'भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम्। क्रमशो योऽनुनिर्देशो यथासंख्यं तदुच्यते' ॥ २७३ ॥

ध्रुवं ते चोरिता तन्वि स्मितेक्षणमुखद्युतिः।
स्नातुमम्भःप्रविष्टायाः कुमुदोत्पलपङ्कजैः ॥ २७४ ॥

(इति क्रमः)

क्रमालङ्कारमुदाहरति—**ध्रुवमिति**। हे तन्वि, कृशाङ्गि, स्नातुम् अम्भःप्रविष्टायाः जलगतायाः ते तव स्मितेक्षणमुखद्युतिः हसितनयनवदनच्छविः कुमुदोत्पलपङ्कजैः ध्रुवम् निश्चयेन चोरिता अपहृता। अत्र स्मितेक्षणमुखानि येन पौर्वापर्येण प्रागुद्दिष्टानि तेनैव क्रमेणाग्रे कुमुदोत्पलपङ्कजैरनुयन्ति, तथा च स्मितस्य द्युतिः कुमुदेन चोरिता, ईक्षणद्युतिः उत्पलेन चोरिता, मुखस्य च द्युतिः पङ्कजेन चोरितेत्यभीष्टान्वयः सिद्धयति। अत्र कुमुदानां श्वेतातया, नीलकमलानां नीलतया, पङ्कजानां च रक्ततयेत्थमुक्तम् ॥ २७४ ॥

हिन्दी—हे कृशाङ्गि, स्नान करनेके लिये जब तुमने पानीमें प्रवेश किया था, तब तुम्हारी मुस्कान, नयन, और वदनकी कान्तिको निश्चय इन उत्पल, नीलकमल, पङ्कजोंने अपहृत कर लिया। इसमें स्मित, नयन, वदन जिस पौर्वापर्यक्रमसे पहले कहे गये, उसी क्रमसे उनका अन्वय कुमुद, नीलकमल, पङ्कजके साथ होता है ॥ २७४ ॥

प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम्।
ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम् ॥ २७५ ॥

क्रमप्राप्तम् प्रेयोरसवदूर्जस्विनामकमलङ्कारत्रयं लक्षयति—**प्रेय इति**। प्रियतरम् भावाभिव्यक्त्या श्रोतुः प्रीत्यतिशयजनकं वक्तुर्वा प्रीतिविशेषकरम् आख्यानं प्रेयो नामालङ्कारः, अतिशयेन प्रियं प्रेयः, भावाश्च देवादिविषया रतिर्विभावानुभावाभ्यां प्राधान्येन व्यञ्जितो निर्वेदादिः, तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः, भावः प्रोक्तः' इति। अञ्जित इत्यस्य प्राधान्येनाभिव्यक्त इत्यर्थः। एवञ्चोक्तिवैशिष्ट्यमहिम्ना व्यज्यमाना देवादिविषया रतिरन्ये वा प्राधान्येनाभिव्यज्यमाना निर्वेदादयो भावा वाच्योपस्कारकत्वमुपयान्ति तत्र प्रेयोऽलङ्कार इति लक्षणं बोध्यम्।

एवमेव रसेन रत्यादिस्थायिभावरूपेण पेशलं रमणीयमाख्यानं रसवदलङ्कारः, तथा रूढः अभिव्यक्तोऽहङ्कारो गर्वो यत्र तादृशमाख्यानमूर्जस्वि चेति रसवदूर्जस्विनोर्लक्षणं विवक्षितं बोध्यम्।

तत्त्रयम्—प्रेयोरसवदूर्जस्विरूपमलङ्कारत्रितयं च युक्तोत्कर्षम् वाच्यशोभाकरत्वरूपोत्कर्षशालि, तेन तत्त्रयस्यालङ्कारत्वं स्वीकरणीयमेव, वाच्यशोभाकरत्वस्यैवालङ्कारतानियामकत्वात् ॥ २७५ ॥

हिन्दी—प्रियतर-भावकी अभिव्यक्ति होनेसे श्रोता तथा वक्ताकी प्रीति करनेवाले आख्यान—उक्तिविशेषको प्रेयःनामक अलङ्कार मानते हैं। देवादिविषयक रति तथा प्राधान्येन वर्णित व्यभिचारीभावको ही भाव नामसे कहा जाता है। सारांश यह कि उक्तिवैशिष्ट्यके द्वारा व्यज्यमान देवादिविषयक रति या प्राधान्ये अभिव्यञ्जित निर्वेदादि भाव यदि वाच्यार्थकी शोभा बढ़ावें तो प्रेयः नामक अलङ्कार होगा।

इसी प्रकार रस-रत्यादिस्थायिभाव —रूपसे रमणीय आख्यानको रसवत्, और रूढाहङ्कार-गर्वद्योतक आख्यानको ऊर्जस्वि अलङ्कार माना जाता है।

यह तीनों प्रेयः, रसवत् , ऊर्जस्वि युक्तोत्कर्ष अर्थात् वाच्यशोभाकरत्वरूप उत्कर्षसे युक्त हैं, अतः इन तीनों को अलङ्कार माना जाता है—क्योंकि वाच्यशोभाकरत्वको दण्डीने अलङ्कारत्वका बीज स्वीकार किया है—

'वाच्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।'

'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः भावः प्रोक्तः' इस प्रामाणिक उक्तिके अनुसार भाव बहुत बड़ी संख्यामें हैं, क्योंकि व्यभिचारीभाव बहुत है, रस पदसे रस्यमानमात्र–अर्थात् रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता इन सभीका ग्रहण होता है। इन सभी भावोंमें देवादिविषयक रतिभावस्थलमें प्रेयः अलङ्कार होगा, गर्वाख्य भावस्थलमें ऊर्जस्वि अलङ्कार होगा, और अवशिष्ट भाव तथा रसाभासादि स्थलमें रसवत् अलङ्कार होगा।

जहाँ अन्य आचार्यगण अप्रधान रसमें ही रसवत् अलङ्कार मानते हैं, प्रधान रसको अलङ्कार्य कहते हैं—'प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः। काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरिति मे मतिः' (ध्वन्यालोक), वहाँ दण्डी प्रधान अप्रधान उभयरूपमें अभिव्यज्यमान रसादिको अलङ्कार मानते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार शब्दार्थरूप काव्यकी शोभा दोनों प्रकारके रससे बढ़ती है।

रसके स्वरूप और भेदोंको अन्यत्र देखें। वह एक अलग विषय है॥ २७५॥

अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते।
कालेनैषा भवेत् प्रीतिस्तवैवागमनात् पुनः॥ २७६॥

प्रेयोनामालङ्कारमुदाहरति—**अद्येति**। हे गोविन्द, अद्य त्वयि गृहागते मदीयं गृहमागते सति मम विदुरस्य या प्रीतिः, जाता, कालेन पुनः समयान्तरेण तवैव (नान्यस्य कस्यापि) पुनरागमनात् एषा प्रीतिः भवेत् (संभाव्यते) भगवन्तमद्य गृहागतं दृष्ट्वाऽहं यमानन्दमनुविन्दामि, तमानन्दं पुनर्भवति गृहागते सत्येव लब्धाहं, नान्यतः कुतोपि सज्जनान्तरागमनादिति वदतो विदुरस्य भगवद्विषयकरतिभावो वाच्यभङ्ग्या सहृदयांश्चमत्करोतीति प्रेयोनामालङ्कार उपपन्नः॥ २७६॥

हिन्दी—हे गोविन्द, आज आप जब हमारे घर पर पधारे हैं तब जो आनन्द मुझे हो रहा है, वह आनन्द कालान्तरमें फिर आप ही आनेकी कृपा करें तो संभव है, दूसरे किसी महात्माके आनेसे उस आनन्दकी उपलब्धि मुझे संभव नहीं है।

यहाँ भगवद्विषयक विदुरका रतिभाव वाच्यभङ्गीसे अभिव्यक्त होता है, अतः यह प्रेयः का उदाहरण है।

इस उदाहरणश्लोकको महाभारतका निम्नलिखित श्लोक अपनी छायासे अनुप्राणित कर रहा है।

'या प्रीतिः पुण्डरीकाक्ष तवागमनकारणात्। सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम्'॥२७६॥

इत्याह युक्तं[2] विदुरो नान्यतस्तादृशी धृतिः।
भक्तिमात्रसमाराध्यः सुप्रीतश्च ततो हरिः॥ २७७॥

उदाहरणं योजयति—**इत्याहेति**। इति यथोक्तरूपम् वचनं विदुरो युक्तम् सत्यम् आह (यतस्तस्य) अन्यतः कुतोऽपि महात्मान्तरात् तादृशी भगवदागमनजतत्प्रीति-

१. नैषा काले। २. वाक्यं।

सदृशी धृतिः सन्तोषः (प्रीतिः) न । ततश्च विदुरेण तथाकथनात् भक्तिमात्रसमाराध्यः हरिः सुप्रीतः प्रसन्नोऽभवदिति शेषः ॥ २७७ ॥

हिन्दी—विदुरने भगवान्से पूर्वोक्त वचन ठीक ही कहा था, उनको किसी भी दूसरेके आनेसे वह प्रीति नहीं होती, जो भगवान्के आनेसे हुई । उनकी उक्तिसे भक्तिका परिचय प्राप्त करके भगवान् प्रसन्न हुए, क्योंकि वह भक्तिसे समाराध्य हैं, भक्तिशून्य उपचारोंसे उन्हें सन्तुष्टि नहीं हुआ करती ॥ २७७ ॥

सोमः सूर्यो मरुद्भूमिर्व्योम होतानलो जलम् ।
इति रूपाण्यतिक्रम्य त्वां द्रष्टुं देव के वयम् ॥ २७८ ॥

प्रेयोऽलङ्कारस्योदाहरणान्तरमाह—**सोम इति** । सोमः चन्द्रः, सूर्यः, मरुत् वायुः, भूमिः पृथ्वी, व्योम आकाशम् , होता आत्मा यजमानः, अनलः तेजः, जलम् , इति अष्टौ रूपाणि तव स्वरूपाणि अतिक्रम्य निस्तीर्य त्वां द्रष्टुं वयं के ? पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताऽम्बरेण होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजस्तव दर्शनमासु मूर्तिष्वेव शक्यक्रियम् , ता मूर्तीरतिक्रम्य तव प्रत्यक्षदर्शनं मादृशामशक्यं, तदपि जातमिति तवानुग्रहातिशय इति भावः ॥ २७८ ॥

हिन्दी—चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पृथ्वी, आकाश, यजमान, अनल और जल इन आठ रूपों को टपकर आपको देखनेमें हम कौन होते हैं, हमें इन मूर्तियोंमें ही आपके दर्शनका अवसर मिल सकता है, इसके ऊपर जाकर आपके प्रत्यक्ष दर्शनका सौभाग्य हमारे लिये दुर्लभ है, आपने जो मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, वह आपका अनुग्रह है ॥ २७८ ॥

इति साक्षात्कृते देवे राज्ञो[1] यद्रातवर्मणः[2] ।
प्रीतिप्रकाशनं तच्च प्रेय [3]इत्यवगम्यताम् ॥ २७९ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**इतीति** । इति प्रोक्तोदाहरणे देवे महेश्वरे साक्षात्कृते प्रत्यक्ष-दृष्टे सति रातवर्मणः तदाख्यस्य राज्ञः यत् प्रीतिप्रकाशनम् महेश्वरविषयकरतिसूचनं तच्च प्रेय इति अवगम्यताम् ज्ञायताम् ॥ २७९ ॥

हिन्दी—इस उदाहरणमें रातवर्मा नामक नृपतिने महेश्वरका साक्षात्कार करके जो महेश्वर-विषयक रतिभाव व्यक्त किया है, वह भी प्रेयः अलङ्कार है ।

यहाँ आचार्य दण्डीने प्रेयः अलङ्कारके दो उदाहरण दिये हैं । एक विदुरकी उक्ति, दूसरी रातवर्माकी उक्ति । उनमें पहले उदाहरणमें श्रोताकी प्रीतिका और दूसरेमें वक्ताकी प्रीतिका आख्यान प्रियतर है, इसीलिये प्रेयः अलङ्कार होता है ।

सर्ववादिसिद्ध भावकी परिभाषा—'रतिर्देवादिविषया भावः' है परन्तु उदाहरणके अनुरोधसे ऐसा मानना पड़ेगा कि 'देवमात्रविषया रति' ही दण्डीको भावतया स्वीकार्य थी । बहुसंमत-मतानुसार देवविषयक भाव, मुनिविषयक नृपविषयक भाव, सबका उदाहरण देना चाहिये, देखिये—

मुनिविषयक रतिभाव, यथा—

'हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥'

---

१. राज्ञोभूद् । २. राजवर्मणः । ३. इत्यनु ।

राजविषयक रतिभाव, यथा—

'अत्युच्चाः परितः स्फुरन्ति गिरयः स्फारास्तथाम्भोधय-
स्तानेतानपि बिभ्रती किमपि न क्लान्तासि तुभ्यं नमः।
आश्चर्येण मुहुर्मुहुः स्तुतिमिमां प्रस्तौमि यावद्भुव-
स्तावद्बिभ्रदिमां स्मृतस्तव भुजो वाचस्ततो मुद्रिताः' ॥ २७९ ॥

'मृतेति प्रेत्य सङ्गन्तुं यथामे मरणं मतम्[1]।
[3]सैवावन्ती मया लब्धा कथमत्रैव जन्मनि ॥ २८० ॥

रसवदलङ्कारोदाहरणानि दिदर्शयिषू रसेषु प्राधान्यात् शृङ्गारमुदाहरति—**मृतेतीति।** वासवदत्ताया दाहप्रवादमाकर्ण्य समतिशयं दुःखमनुभूय पुनस्तां प्राप्य नितान्तमानन्दतो वत्सराजोदयनस्येयमुक्तिः। मृता अग्निदाहात्पञ्चत्वं प्राप्ता इति हेतोः यथा वासवदत्तया सह—प्रेत्य स्वयमपि मृत्वा—सङ्गन्तुम् मिलितुम् मे मम मरणं मतम् अभीष्टम् (यां वासवदत्तां मृतां मत्वा तया सह सङ्गन्तुमहं स्वमरणं प्रार्थये), सैव आवन्ती अवन्तिराजपुत्री वासवदत्ता कथम् अत्रैव जन्मनि मया लब्धा। अत्र संभोगशृङ्गारो रसः ॥ २८० ॥

हिन्दी—रसवत् अलङ्कारके उदाहरणप्रसङ्गमें रसराज शृङ्गारका उदाहरण दे रहे हैं। वासवदत्ताके जल जानेकी बात सुनकर अत्यन्त कष्टका अनुभव करनेके बाद पुनः वासवदत्ताको उसी रूपमें प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित होनेवाले वत्सराज उदयनकी यह उक्ति है, उदयनने कहा कि—जिस वासवदत्ताको मरी हुई सुनकर उससे मिलनेके लिए मैं अपने प्राण छोड़ना चाह रहा था, वही अवन्तिराजतनया वासवदत्ता इसी जन्ममें विना प्राणत्याग किये ही मुझे किस प्रकार मिल गई ! यह संभोगशृङ्गार है ॥ २८० ॥

प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः शृङ्गारतां गता।
रूपबाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः ॥ २८१ ॥

प्राक् पूर्वोदाहृते प्रेयोऽलङ्कारोदाहरणद्वये प्रीतिः दर्शिता, संप्रयोगशून्या रतिः प्रीतिः सा हि प्रेयोऽलङ्कारस्य विषयः, संप्रयोगशून्या विभावाद्यपरिपुष्टा, रतिः प्रीतिशब्दवाच्या, तत्र प्रेयोऽलङ्कार उदाहृत इत्यर्थः। सेयं रतिः विभावादिपरिपुष्टा रतिरत्र रसवदुदाहरणभूते पद्येऽस्मिन् रूपबाहुल्ययोगेन शृङ्गारतां गता स्वरूपस्य विभावादिकृतपरिपोषेण शृङ्गाररसत्वं प्राप्ता तत् तस्मात् इदं पूर्वोक्तं वचः रसवत् रसवदलङ्कारशालीत्यर्थः ॥२८१॥

हिन्दी—इस रसवत् अलङ्कारके उदाहरणसे पूर्व प्रेयः नामक अलङ्कारके दो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें प्रीतिका प्रतिपादन हुआ है, संप्रयोगशून्य अर्थात् विभावादिकृत परिपोषसे रहित रतिको प्रीति कहते हैं, वही प्रीति उन दोनों उदाहरणोंमें दिखलाई गई है, इस उदाहरणमें रति विभावादिपरिपुष्ट होनेसे शृङ्गाररस बन गई है, अतः यह रसवत्का विषय है। इस उदाहरणमें उदयननिष्ठ रतिकी वासवदत्तारूप विभाव, तदुक्त मधुरवचनादि अनुभाव और हर्ष विस्मयादि व्यभिचारिभावोंसे पुष्टि हो गई है, अतः वह रति रसरूप—शृङ्गाररसत्वको प्राप्त हो गई है, इसीलिये यह रसवत् है ॥ २८१ ॥

निगृह्य केशेष्वाकृष्टा कृष्णा येनाग्रतो मम।
सोऽयं दुःशासनः पापो लब्धः किं जीवति क्षणम् ॥ २८२ ॥

---

१. मृतेमिप्रेत्य सङ्गन्तु। २. वृतम्। ३. सेयावन्ती। ४. दुष्टः।

इत्यारुह्य परां कोटिं क्रोधो [1]रौद्रात्मतां गतः।
भीमस्य पश्यतः शत्रुमित्येतद्रसवद्वचः॥ २८३॥

रौद्ररसवदुदाहरति—निगृह्येति। येन दुःशासनेन मम भीमस्य अग्रतः पश्यन्तं मामगणयित्वा कृष्णा द्रौपदी केशेषु निगृह्य धृत्वा आकृष्टा नीता, सोऽयं पापो दुराचारी दुःशासनः (मया) लब्धः प्राप्तः किं क्षणम् अल्पकालमपि जीवति, तादृशदुष्कर्मकारिणं दुःशासनं दृष्टमात्रमेव हन्यामिति भावः॥ २८२॥

उपपत्तिमाह—इत्यारुह्येति। इति दर्शितदिशा परां कोटिम् आरुह्य विभावादिभिः परिपुष्टतया प्रकर्षम् आसाद्य (भीमनिष्ठः स्थायिभावः कोपः) शत्रुं कृतापकारं दुःशासनं पश्यतो भीमस्य क्रोधः रौद्रात्मतां गतः रौद्ररसस्वरूपत्वं प्राप्त इतीदं वचो रसवत्, अत्र क्रोधो नाम—'प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः क्रोध उच्यते' इति लक्षितः। इह हि दुःशासन आलम्बनविभावः, कृष्णाकेशकर्षणस्मरणमुद्दीपनविभावः, पाप इति निन्दावचनमनुभावः, गर्वादयो व्यभिचारिभावा इति रससामग्री॥ २८३॥

हिन्दी—जिस दुःशासनने मेरे सामने मेरी कुछ भी परवाह नहीं करके द्रौपदीको केश पकड़ कर घसीटा, उस पापी दुशासनको यदि पा लूँ तो क्षण भर भी जिन्दा न छोड़ूँ। क्या वह मेरे सामने आने पर क्षण भर भी जिन्दा रह सकता है?॥ २८२॥

इस उदाहरण-श्लोकमें पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ भीमका कोप विभावादिसे पुष्ट होकर रौद्र रसका रूप प्राप्त कर लेता है, अतः यह रसवत् अलङ्कार है। यहाँ पर क्रोध स्थायीभाव, कृष्णा-केशाकर्षी दुःशासन आलम्बनविभाव, उसके द्वारा किये गये द्रौपदीके केशाकर्षण आदि दुर्व्यवहारका स्मरण उद्दीपनविभाव, 'पापः' यह निन्दावचन अनुभाव एवं गर्वादि व्यभिचारिभाव हैं॥ २८३॥

अजित्वा सार्णवामुर्वीमनिष्ट्वा विविधैर्मखैः।
अदत्त्वा चार्थमर्थिभ्यो भवेयं पार्थिवः कथम्॥ २८४॥
इत्युत्साहः प्रकृष्टात्मा तिष्ठन् वीररसात्मना।
रसवत्त्वं [2]गिरामासां [1]समर्थयितुमीश्वरः॥ २८५॥

वीररसवदुदाहरति—अजित्वेति। सार्णवाम् सागरपर्यन्ताम् उर्वीम् पृथिवीम् अजित्वा अवशीकृत्य, विविधैः नानाप्रकारकैः राजसूयादिभिर्मखैः यज्ञैः अनिष्ट्वा यज्ञमकृत्वा, अर्थिभ्यो याचकेभ्यश्च अर्थम् धनम् तदर्थितम् अदत्त्वा कथं पार्थिवो राजा भवेयम्। राज्ञा भूर्वशीकार्या, यज्ञाः करणीयाः, याचकाश्च पूर्णमनोरथाः सम्पादनीयाः, तदेतत्त्रयमपि राजकृत्यमकृत्वा कथमहं राजा स्यामिति भावः॥ २८४॥

उदाहरणं योजयति—इत्युत्साह इति। इति पूर्वोक्तप्रकारकः उत्साहः युद्धधर्मदानविषयकः स्थेयान् संरम्भः प्रकृष्टात्मा विभावादिपरिपुष्टस्वरूपः सन् वीररसात्मना आसां गिराम् वाचाम् रसवत्त्वं समर्थयितुम् उपपादयितुम् ईश्वरः शक्तः। अत्र युद्धे विजेतव्याः शत्रवः, धर्मे यज्ञाः, दाने याचकाः आलम्बनविभावाः, साहाय्यान्वेषणादयः आक्षिप्यमाणा अनुभावाः, हर्षधृतिस्मृत्यादयो व्यभिचारिणः, एभिरभिव्यक्तो वीररसस्थाय्युत्साहो रसरूपतां प्रपन्नासां गिरां रसवदलङ्कारयुक्ततां समर्थयितुं क्षम इति भावः॥ २८५॥

२. गिरं तासां। १. समर्प।

हिन्दी—जब तक इस समुद्ररशना पृथ्वीको अधिकार में न कर लिया, जाय, नानाप्रकारके यज्ञोंसे देवोंकी आराधना न की जाय और याचकोंको भरपूर धन न दे दिया जाय, तब तक मैं राजा कैसे होऊँगा, मेरे राजत्वका यही लक्ष्य है कि सारी पृथ्वी पर अधिकार हो, नानाविध यज्ञ किये जाँय और याचकोंको पूर्ण धन दिया जाय ॥ २८४ ॥

इस उदाहरणमें पूर्ववर्णित उत्साह—पृथ्वीवशीकरण, यज्ञकरण, दानविषयक उत्साह प्रकृष्टात्मा-विभावादिपरिपोषित होकर वीररसरूपमें अवस्थित हो इस वाणीका रसवत्त्व समर्थित करता है। इसमें—विजेतव्य, यज्ञ, याचक यह तीन आलम्बनविभाव हैं, प्रतीयमान होनेवाले सहाया-न्वेषणादि अनुभाव हैं, हर्ष-धृति-स्मृतिप्रभृति व्यभिचारिभाव हैं, इनसे अभिव्यक्त होनेवाला उत्साह-रूप स्थायिभाव वीररसके रूपमें इस वाक्यको रसवत् बनाता है ॥ २८५ ॥

यस्याः कुसुमशय्यापि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी ।
साऽधिशेते कथं तन्वी[1] हुताशनवतीं चिताम् ॥ २८६ ॥
इति कारुण्यमुद्रिक्तमलङ्कारतया स्मृतम् ।
[2]तथापरेऽपि बीभत्सहास्याद्भुतभयानकाः ॥ २८७ ॥

करुणरसवदुदाहरति—**यस्या इति** । यस्याः कोमलाङ्ग्याः कुसुमशय्या पुष्पनिर्मितं शयनीयम् अपि रुजाकरी पीडाप्रदायिनी (भवति स्म) सा तन्वी सुकुमारशरीरा हुताशनवतीम् दीप्तपावकाम् चिताम् कथम् अधिशेते आरोहति ? कुसुमशयनेऽपि दूयमान-वपुषोऽतिसुकुमार्या नार्या ज्वलदग्निचितारोहणं नितान्तकष्टकरमिति भावः ॥ २८६ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**इतीति** । इति एवंप्रकारकं कारुण्यम्—प्रियतमामरणजन्मा शोकः स्थायी भावः उद्रिक्तम् विभावादिपरिपोषितं सत् अलङ्कारतया रसवदलङ्कारत्वेन स्मृतम् । अत्र मृता रमणी आलम्बनम् , स्मर्यमाणाः कुसुमशयनादयः उद्दीपनविभावाः, करुणवचनमनुभावः, चिन्तादयः प्रतीयमाना व्यभिचारिण इतीयता साधननिवहेन पुष्टः शोकाख्यः स्थायी करुणरसवतां प्राप्नोतीति भावः । अथ रसान्तरप्रस्तावमाह—**तथाऽपरे-पीति** ॥ २८७ ॥

हिन्दी—जिस सुकुमार शरीरवाली मेरी प्रियतमाके लिए फूलकी बनी शय्या भी कष्टदायक हुआ करती थी, वही कृशाङ्गी मेरी प्रियतमा इस धधकती हुई चितापर किस प्रकार आरूढ़ होगी, फूलकी शय्यापर कष्ट पानेवाली सुकुमारी के लिए यह जलती हुई चिता किस प्रकार सह्य होगी ॥ २८६ ॥

इसमें वर्णित नायकनिष्ठ प्रियतमाविपत्तिजन्मा शोक उद्रिक्त—विभावादिपोषित होनेसे करुणरसवदलङ्कार हो गया है। यहाँ मरी हुई सुकुमारी आलम्बन, स्मर्यमाण कुसुमशयनादि उद्दीपन, करुणवचन अनुभाव, एवं प्रतीयमान चिन्तादि व्यभिचारी मिलकर करुणरस हो जाते हैं, जिससे यह रसवत् होता है। इसी प्रकार बीभत्स, हास्य, अद्भुत एवं भयानक रसोंके भी उदाहरण दिये जायेंगे ॥ २८७ ॥

पायं पायं तवारीणां शोणितं पाणिसम्पुटैः ।
कौणपाः सह नृत्यन्ति कबन्धैरन्त्रभूषणाः ॥ २८८ ॥

बीभत्सरसवदुदाहरति—**पायं पायमिति** । अन्त्राणि पुरीततः भूषणानि अलङ्करणानि येषां तादृशाः कौणपाः राक्षसाः कबन्धैः शिरोरहितकलेवरैः सह तवारीणां हतानां तव

१. देवी । २. अथापरे ।

शत्रूणां शोणितं रक्तं पाणिसम्पुटैः हस्तपुटकैः पायं पायं पीत्वा पीत्वा नृत्यन्ति आनन्देन क्रीडन्ति। अत्र जुगुप्सा स्थायिभावः, कौणपा आलम्बनानि, प्रतीयमानानि निष्ठीवनच्छर्दनानि अनुभावाः, मोहापस्मारादयो व्यभिचारिभावास्तैश्च परिपुष्टा जुगुप्सा बीभत्सरसत्वं प्राप्नोति ॥ २८८ ॥

हिन्दी—आँतोंकी मालायें धारण करने वाले राक्षसगण बिना सिरके कबन्धोंके साथ आपके शत्रुओंके शोणित पाणिपुटसे पी पी कर नाच रहे हैं। यहाँ जुगुप्सा स्थायी भाव है, राक्षस आदि आलम्बनविभाव, प्रतीयमान निष्ठीवनच्छर्दनादि उद्दीपनविभाव, एवं मोहापस्मारादि व्यभिचारिभाव हैं, इन्हींसे परिपुष्ट जुगुप्सा बीभत्सरस हो जाती है। यही रसवत् अलङ्कार होता है।

वस्तुतः यहाँ बीभत्सराज राजविषयक रतिभावका अङ्ग है, अतः प्रेयः अलङ्कार होना चाहिये। इस प्रकार यहाँ प्रेयः और रसवत् का सङ्कर है ॥ २८८ ॥

इदमम्लानमानाया[1] लग्नं स्तनतटे तव।
छाद्यतामुत्तरीयेण नवं[2] नखपदं सखि ॥ २८९ ॥

हास्यरसवदुदाहरति—**इदमिति**। हे सखि, अम्लानमानायाः अखण्डितमानायाः अस्माकं पुनःपुनरनुरोधेनापि अपरित्यक्तमानायाः तव स्तनतटे लग्नम् सञ्जातम् इदं (प्रत्यग्रं नतु प्राचीनम्) नवम् नखपदम् नखाघातचिह्नम् उत्तरीयेण छाद्यताम् आव्रियताम्। काचिन्नायिका सखीभिरनुरुध्यमानापि मानं न त्यजति, परं नायकसमीपं गत्वा स्वयं स्वाङ्गमर्पयति, तदीयनखचिह्नं दृष्ट्वा सखी परिहसतीह तदेव वर्णितम्। अत्र हासः स्थायिभावः, तादृशी मिथ्यामानवती नायिका आलम्बनविभावः, नखक्षतवीक्षणमनुभावः, तादृशानि सोल्लुण्ठनानि वचनानि चोद्दीपनानि, अवहित्थादयो व्यभिचारिणः, एतैः पोषितोऽयं हासो हास्यरसतां प्राप्नोतीति भवति रसवत् ॥ २८९ ॥

हिन्दी—किसी नायिकाने सखियोंके अनुरोध करनेसे अपने मानका परित्याग नहीं किया, अपने मान पर अड़ी ही रही, परन्तु गुप्तरूपसे नायकके साथ संभोग कर आई, उसीके नख, क्षतादि रतिचिह्नोंको देख कर सखियाँ परिहास कर रही हैं। सखियाँ कहती हैं कि तुम्हारा मान तो नहीं मिटा है, फिर भी तुम्हारे स्तन पर यह नखक्षत—नया नया नखाघातचिह्न—दीख रहा है, इसे चादरसे आवृत कर लो। यदि इस नखक्षतको जो सद्यःकृत रतिपरिचय दे रहा है, आवृत नहीं कर लेती हो तो हमलोगोंके सामने बगलाभगत कैसे बन सकोगी?

इस उदाहरणमें हास स्थायिभाव, कपटमानवती वह नायिका आलम्बन, नखक्षत उद्दीपन, उलाहनाभरी उक्ति अनुभाव तथा प्रतीयमान अवहित्थादि व्यभिचारिभाव हैं, इनसे पोषित होकर हास हास्य रस होता है, अतः यह रसवत् है ॥ २८९ ॥

अंशुकानि प्रवालानि पुष्पं हारादिभूषणम्।
शाखाश्च मन्दिराण्येषां चित्रं नन्दनशाखिनाम् ॥ २९० ॥

विस्मयरसवदुदाहरति—**अंशुकानीति**। एषाम् नन्दनशाखिणां कल्पवृक्षतरूणाम् प्रवालानि किसलयानि अंशुकानि वस्त्राणि, पुष्पं हारादिभूषणम् नानालङ्कारस्थानीयम्, शाखाः विटपाः मन्दिराणि गृहाणि, चित्रम्! अत्याश्चर्यकरमिदं सर्वमिति भावः। अत्र विस्मयः स्थायी, नन्दनशाखिन आलम्बनानि, प्रवालादीनामंशुकादिपर्यवसायित्वमुद्दीपनम्,

---

१. मालया। २. द्रवं।

प्रतीयमानाः स्तम्भस्वेदादयोऽनुभावाः, व्यभिचारिभावाश्च वितर्कादयः, एतैः पुष्टो विस्मयोऽद्भुतरसत्वं प्रपद्यत इति ॥ २९० ॥

हिन्दी—क्या आश्चर्य ! ये कल्पवृक्ष हैं, इनके नूतन किसलय वस्त्रका काम देते हैं, इनके फूल नानाप्रकारके अलङ्कार हो जाते हैं और इनकी डालियाँ भवन हो जाती हैं ।

इस उदाहरणमें विस्मय स्थायी, कल्पवृक्ष आलम्बन, उनके पत्ते आदिका वस्त्रादि बन जाना उद्दीपन, प्रतीयमान स्तम्भस्वेदादि अनुभाव एवं वितर्कादि व्यभिचारी भाव हैं, इनसे पोषित हो विस्मय अद्भुतरसरूपमें परिणत होता है, अतः यह अद्भुतरसवत् है ॥ २९० ॥

इदं मघोनः कुलिशं धारासन्निहितानलम् ।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय जायते ॥ २९१ ॥

भयानकरसवदुदाहरति—**इदमिति** । मघोनः महेन्द्रस्य इदम् धारासन्निहितानलम् अग्रभागावस्थितपावकम् (तेजसा ज्वलद्धारम्) इदं कुलिशं वज्रमस्ति, यस्य मघवत्कुलिशस्य स्मरणं दैत्यस्त्रीगर्भपाताय जायते, स्मर्यमाणमेव यद्वज्रं दैत्यवनितानां हृदये भयमुत्पाद्य गर्भान्पातयतीत्यर्थः । अत्र भयं स्थायिभावः, इन्द्र आलम्बनम् , कुलिशायुद्दीपनम् , गर्भपातादयोऽनुभावाः, प्रतीयमाना आवेगादयो व्यभिचारिभावाः, एभिः पुष्यमाणं भयं भयानकरसत्वं प्रपद्यते ॥ २९१ ॥

हिन्दी—जिसकी धारमें आग वर्त्तमान है, ऐसा है यह इन्द्रका वज्र, उसकी याद दानवस्त्रियोंके गर्भपातका कारण बन जाती है, उसकी याद भर हो जानेसे दैत्यस्त्रियोंके हृदयमें इस प्रकारका आवेग होता है कि उनके गर्भ गिर जाते हैं ।

यहाँ भय स्थायी, इन्द्र आलम्बन, वज्र उद्दीपन, गर्भपातादि अनुभाव और प्रतीयमान आवेगादि व्यभिचारी है, इनसे पुष्ट भय भयानक रसके रूपमें आस्वादित होता है, अतः यहां रसवत् अलङ्कार है ।

यहाँ तक आठ रसोंके आठ उदाहरण दिये गये हैं, दण्डीने शान्तका उदाहरण नहीं दिया है, मालूम होता है वह भरतके अनुसार आठ ही रस स्वीकार करते थे । काव्यप्रकाशकारने शान्तरस भी माना है :—'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः' । इस रसभेदप्रकरणमें अष्टरसवादी भरतने—'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' कहा है, जिसका तात्पर्य यह मालूम पड़ता है कि नाट्यसूत्रकार भरतको केवल नाटकोपयोगी रसोंका ही परिचय कराना इष्ट था, अतः उन्होंने केवल आठ ही रस कहे हैं, शान्तरसको नाटकानुपयुक्त समझकर छोड़ दिया है, शान्तरसका अभिनय उनके मतानुसार शान्तिका उपहास करना होगा, परन्तु यह बात परवर्त्ती आचार्योंको स्वीकार्य नहीं हुई, उन लोगोंने शान्तरसप्रधान नाटक भी लिखे हैं, और रचना द्वारा यह दिखलाया है कि—शान्तरस भी नाट्योपयुक्त हो सकता है । प्रबोधचन्द्रोदय, अमृतोदय, जीवानन्द आदि नाटक इसी प्रेरणासे लिखे गये हैं ।

काव्यप्रकाशकारने नाट्यमें आठ रस और श्रव्य काव्यमें शान्तसमेत नव रस स्वीकार कर लिये हैं, यह समन्वयवादी दृष्टिकोण है ।

शान्तरस स्वीकार करनेवाले उसका उदाहरण देते हैं :—

'अहौ वा हारे कुसुमशयने वा दृषदि वा मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः क्वचित् पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रजपतः ॥'

यहाँ पर मिथ्यात्वेन माना गया संसार आलम्बनविभाव, तपोवनादि उद्दीपनविभाव, सर्वत्र समदर्शन अनुभाव, मतिधृत्यादि व्यभिचारिभावोंसे पोषित निर्वेद शान्तरसरूपमें आस्वादित होता है, इसे ही शान्तरसवत्का उदाहरण समझें ।

शाण्डिल्यमतानुयायी लोग भक्तिरस नामक एक अलग रस मानते हैं—

'परत्रानासक्तं जनयति रतिर्या नियमतः परस्मिन्नेवास्मिन् समरसतया पश्यत इमम्।
परप्रेमाढ्येयं भवति परमानन्दमधुरा परा भक्तिः प्रोक्ता रस इति रसास्वादनचणैः॥'

इस भक्तिरसमें—भगवान् आलम्बन, रोमाञ्चाश्रुपातादि अनुभाव, हर्षादि व्यभिचारिभाव एवं भगवदनुराग स्थायिभाव होता है।

पण्डितराज जगन्नाथने इस रसका खण्डन करते हुए कहा है कि यह देवादिविषया रति होनेसे भाव है, रस नहीं। अपने मतकी पुष्टिमें उन्होंने भरतादिवचनको ही प्रमाणरूपमें दुहराया है।

कुछ लोग वत्सल रस भी मानते हैं 'केचिच्चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।'

'उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः॥'

इस रसमें पुत्रस्नेह स्थायी, पुत्रादि आलम्बन, पुत्राद्यालिङ्गन-संभाषण अनुभाव और हर्षादि व्यभिचारी भाव होते हैं।

इसी प्रकार रस भाव जहाँ अनौचित्य प्रवृत्त हो वहाँ रसाभास और भावाभास होता है, वहाँ भी रसवत् अलङ्कार होगा क्योंकि रसवत्में रसशब्दका अर्थ रस्यमानमात्र है॥ २९१॥

[1]वाक्यस्याग्राम्यता[2]योनिर्माधुर्ये[3] दर्शितो रसः।
इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्॥ २९२॥

(इति रसवच्चक्रम्)

ननु पूर्वं माधुर्यगुणस्वरूपकथनावसरे मधुरं रसवत् इत्यनेन रसवत्त्वस्य माधुर्यगुणत्वमुक्तमत्र पुनस्तस्यैव रसवत्त्वस्यालङ्कारत्वमुच्यते, तदिदं भ्रामकमित्यपेक्षायामाह—**वाक्यस्येति**। वाक्यस्य वाचः (वस्तुनश्चेत्युपलक्ष्यते) अग्राम्यतायोनिः अग्राम्यतामूलको रसो माधुर्ये दर्शितः, दोषाभावे सति वाक्यं रसवद् भवति, तदन्यथात्वमपकृष्यते, तदिदं माधुर्यगुणप्रक्रमे उक्तम्, इह तु अष्टरसायत्ता रसावत्ता दर्शिता। अत्र ग्राम्यत्वाभावसमानाधिकरणरसव्यञ्जकालङ्कारादिमत्त्वस्य माधुर्यगुणत्वं पूर्वमुक्तम्, इह तु केवलानां रसानामेवालङ्कारत्वमुच्यते इति भावः॥ २९२॥

हिन्दी—प्रथम परिच्छेदमें माधुर्यगुणनिर्वचनप्रसङ्गमें—'मधुरं रसवत्' कहा था, फिर यहां रसवत् अलङ्कार कहा। एक जगह माधुर्यगुणस्वरूप रसवत्त्व और दूसरी जगह अलङ्कारस्वरूप, ऐसी बात क्यों हो रही है? इसी प्रश्नका उत्तर इस कारिकामें दिया जा रहा है। पहले वाक्यमें अग्राम्यता होनेसे—ग्राम्यता दोषके नहीं होने से—प्रतीत होनेवाले रसकी बात कही गई थी, यहां पर केवल रसकी बात है। अर्थात् पहले ग्राम्यत्वदोषाभावसे समन्वित रसव्यञ्जक अलङ्कारादिसद्भावको माधुर्यगुणरूपमें कहा गया था—रसमात्रको माधुर्य नहीं कहा था, यहाँ केवल आठ रसोंको ही रसवदलङ्कारके रूपमें कहा गया है, अतः उनके भेद स्पष्ट हैं॥ २९२॥

अपकर्त्ताऽहमस्मीति हृदि ते मा स्म भूद्भयम्।
विमुखेषु न मे खड्गः प्रहर्तुं जातु वाञ्छति॥ २९३॥
[4]इति मुक्तः परो युद्धे निरुद्धो दर्पशालिना।
पुंसा केनापि तज्ज्ञेयमूर्जस्वीत्येवमादिकम्॥ २९४॥

(इत्यूर्जस्वि)

१. वाच्यस्य। २. योनेः। ३. माधुर्ये। ४. एवमुक्त्वा।

क्रमप्राप्तमूर्जस्विनमुदाहरति—**अपकर्त्तेति**। अहं ते तव अपकर्ता अतिकरः अपकारपरायणोऽस्मीति कृत्वा ते तव भयं मदपादानकं भयं मा स्म भूत् न जायताम्, तत्र कारणमाह—**विमुखेष्विति**। विमुखेषु सम्मुखयुद्धात्पलायितेषु मे खड्गः प्रहर्त्तुं प्रहारं कर्त्तुं जातु कदाचिदपि न वाञ्छति नाभिलष्यति। पराङ्मुखस्य हननं शास्त्रविरुद्धं मत्वा मम खड्गः त्वयि प्रहारं नैव करिष्यति, तदलमपकर्त्तुरपि तव मदपादानकेन भयेनेति भावः॥ २९३॥

उदाहरणमुपपादयति—**इति मुक्त इति**। दर्पशालिना अहङ्कारयुतेन केनापि पुंसा वीरेण युद्धे निरुद्धः अवरुद्धः स्ववशीकृतः परः शत्रुरिति एवमुक्त्वा मुक्तः गन्तुमाज्ञप्तः, तत् तस्मात् गर्वस्यात्र प्राधान्येनाभिव्यक्तेरित्येवमादिकं सर्वमप्युदाहरणमोजस्विनाम्नाऽलङ्कारेण युतं मन्तव्यम्॥ २९४॥

हिन्दी—तुमने मेरा अपकार किया है इसलिए तुम्हें मुझसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है, जब तुम युद्धविमुख हो गये हो, तब हजार उपकार करने पर भी हमारा यह खड्ग कभी भी तुम पर प्रहार नहीं करना चाहेगा।

यहाँ गर्वरूप व्यभिचारी भाव उत्साहरूप स्थायी भावको आवृत करके प्रकट हो रहा है, अतः इसे ऊर्जस्वी अलङ्कार मानते हैं॥ २९३॥

इस उदाहरणमें महाभिमानी किसी वीर पुरुषने युद्धमें बन्दी बनाये गये शत्रुको उपर्युक्त प्रकारसे लज्जित करनेवाली बातें कहकर मुक्त कर दिया, इसलिये इस तरहके सगर्व कथनोंमें ऊर्जस्वी अलङ्कार होगा॥ २९४॥

इष्टमर्थमनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये।
यत्प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते॥ २९५॥

पर्यायोक्तं नामालङ्कारं लक्षयति—**इष्टमर्थमिति**। इष्टम् प्रतिपादयितुमीहितम् अर्थम् साक्षात् अनाख्याय अभिधया अनुक्त्वा तस्यैव अभिधित्सितार्थस्य सिद्धये सचमत्कारप्रतीतये यत् प्रकारान्तरेण चमत्कारजनकभङ्गिविशेषेण आख्यानं व्यञ्जनया प्रतिपादनं तत्पर्यायोक्तं नामालङ्कारः। विवक्षितमर्थं साक्षात्तद्वाचकपदैरनुक्त्वा चमत्कारातिशयप्रतिपत्तये प्रकारान्तरेण तत्कथनं पर्यायोक्तमिति फलितम्। पर्यायो नामैकस्यार्थस्य प्रतिपादकान्तरम्, पर्यायता हि शब्दयोरेकार्थबोधकता, सा चैकयैव वृत्त्येति न नियमः, तथा च वाच्यस्यार्थस्य व्यञ्जनया प्रतिपादनमेव पर्यायोक्तमिति भावः। न चैवमस्य ध्वनिरूपताऽऽपत्तिः, अत्र व्यञ्जनया वाच्यार्थस्यैवाभिधानं, ध्वनौ तु न वाच्य एवार्थो विषय इति भेदात्॥ २९५॥

हिन्दी—विवक्षित अर्थको वाचक शब्दोंसे साक्षात् नहीं कह कर उसी अर्थकी चमत्कारिणी प्रतीतिके लिये चातुर्यव्यञ्जक भङ्गीसे व्यञ्जना द्वारा कथनको पर्यायोक्त कहते हैं। पर्यायका अर्थ है शब्दान्तर, जिस शब्दसे व्यञ्जना द्वारा विवक्षित अर्थ कहा जायगा वह अभिधा द्वारा तदर्थवाचकका पर्याय हुआ ही, उसीके द्वारा कहा जाता है अतः पर्यायोक्त नामकरण सार्थक हुआ। इसे आप ध्वनि या गुणीभूतव्यङ्ग्य नहीं कह सकते हैं क्योंकि यहाँ पर वाच्यार्थ ही व्यञ्जनासे कहलाया जाता है, ध्वनिमें तो वाच्यार्थ ही ध्वनिका विषय नहीं होता है, इसके अतिरिक्त वहाँ का व्यङ्ग्यार्थ अतिस्फुट हुआ करता है अत एव वह वाच्यातिशायी नहीं होता है, फिर उसे

ध्वनि कैसे माना जाय, यह तो उक्तिवैचित्र्यमात्र है, इन्हीं बातोंको हृदयमें रख कर काव्यप्रकाश-कारने लिखा है :—'यदेव वाच्यं तदेव व्यङ्ग्यं, यथा तु वाच्यं तथा न व्यङ्ग्यम्' इति ॥ २९५ ॥

दशत्यसौ परभृतः सहकारस्य मञ्जरीम् ।
तमहं वारयिष्यामि युवाभ्यामास्यतामिह ॥ २९६ ॥
सङ्गमय्य सखीं यूना संकेते तद्रतोत्सवम् ।
[1]निर्वर्तयितुमिच्छन्त्या कयाऽप्यपसृतं ततः ॥ २९७ ॥

(इति पर्यायोक्तम्)

पर्यायोक्तमुदाहरति—**दशत्यसाविति** । असौ परभृतः कोकिलः सहकारस्य आम्रस्य मञ्जरीं दशति आस्वाद्य विनाशयति, अहं तं परभृतं वारयिष्यामि, युवाभ्याम् इह स्वैरम् निश्रब्धम् आस्यताम् । अत्र अहं गच्छामि, युवाभ्यां यथेप्सितं सुरतं विधीयतामिति विवक्षितमर्थं प्रकारान्तरेण चमत्कारकारिणोक्तं विभाव्य पर्यायोक्तलक्षणं संगतं वेदितव्यम् ॥ २९६ ॥

प्रकरणं स्पष्टयति—**सङ्गमय्येति** । यूना नायकेन सखीं तत्सङ्गमाभिलाषिणीं वनितां सङ्केते सङ्गमय्य मेलयित्वा तद्रतोत्सवं तयोर्यूनोर्निधुवनं निर्वर्तयितुं स्वापसरणेन संपादयितुम् इच्छन्त्या कयापि सख्या ततः स्थानात् अपसृतम् ॥ २९७ ॥

हिन्दी—वह कोकिल आम्रमञ्जरीको नष्ट कर रहा है—कुतर-कुतर कर गिरा रहा है, मैं उसे वैसा करनेसे रोकने जा रही हूँ, आप दोनों आदमी यहाँ यथाकाम निश्चिन्त होकर रहें ।

इस उदाहरणमें आप दोनों अपना अभीष्ट सुरतोपभोग करें यह वाच्यार्थ—मैं जाती हूँ, और किसीका यहाँ आना संभव नहीं है, अतः आप विश्रब्ध होकर यहाँ रहें, इस व्यञ्जक प्रकारसे कहा गया है, अतः यह पर्यायोक्तालङ्कार हुआ ॥ २९६ ॥

युवा नायकके साथ नायिकाको एकान्त संकेत-स्थानमें मिलाकर उनके सुरतकार्यको सम्पादित करनेकी इच्छा रखनेवाली सखी वहाँसे टल गई । यह केवल इसलिये कह दिया गया है कि प्रकरण स्पष्ट हो जाय, जिससे उदाहरणश्लोकका तात्पर्य स्फुट हो सके ॥ २९७ ॥

किञ्चिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात्[2] पुनः ।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम् ॥ २९८ ॥
मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः ।
उपकाराय दिष्ट्येदमुदीर्णं घनगर्जितम् ॥ २९९ ॥

(इति समाहितम्)

समाहितं नामालङ्कारं लक्षयति—**किञ्चिदारभमाणस्येति** । किञ्चित् कार्यम् किमपि कर्तव्यं कर्म आरभमाणस्य यथोचितसाधनावलम्बनेन कर्तुमुपक्रममाणस्य कर्तुः दैववशात् या तत्साधनसमापत्तिः तत्कार्यसाधकसाधनान्तरोपलब्धिः तत् समाहितम् आहुः । आरब्धस्य कार्यस्य दैववशात् साधनान्तरोपलब्ध्या सौकर्येण समाधानं समाहितं नाम । अर्वाचीनास्तु समाधिसंज्ञयाऽमुं व्यवहरन्ति ।

अत्र भोजराजेन दैवात् साधनान्तरोपलब्धौ बुद्धिपूर्वकं वा साधनान्तरोपलब्धौ द्विधाऽपि समाहितं स्वीकृतं, तथोदाहृतं च ॥ २९८ ॥

१. प्रवर्त । २. दैववशात् ।

उदाहरति—**मानमस्या इति**। अस्या मानिन्या नायिकाया मानम् निराकर्तुं दूरीकर्तुम् पादयोः तदीयचरणयोः पतिष्यतः प्रणिपत्य तां प्रसादयिष्यतो मे मम उपकाराय दिष्ट्या दैववशेन इदं घनगर्जितम् उदीर्णम् जातम्। अत्र मानिन्या मानापनोदनरूपकार्याय प्रणामरूपं साधनमादाय तत्परस्य नायकस्य दैवादुदीर्णेन घनगर्जितेन मानिनीकामोद्दीपनद्वारा तत्सम्पाद्ये मानापनोदने सौकर्यं सम्पाद्यत इति समाहितसंगतिः ॥ २९९ ॥

हिन्दी—कर्ता किसी कार्यमें अपेक्षित साधनको लेकर उस कार्यको प्रारम्भ करे, भाग्यवश यदि उसी समय उस कार्यके साधक अन्य साधन मिल जायँ तब कार्य सुकर हो जाय, इसे समाहित अलङ्कार मानते हैं। नवीन आचार्य इसे समाधि नामसे व्यवहृत करते हैं, समाहित तो उनके अनुसार भावशान्तिमें होता है।

यहाँ 'दैवात्' यह नियमतः अपेक्षित नहीं है, दैवद्वारा अथवा बुद्धिकृत साधनान्तरोपलब्धि द्वारा कार्यसौकर्यविवक्षामें समाहित होता है, यह बात भोजराजने कही है, तदनुसार उदाहरण भी दिये हैं ॥ २९८ ॥

इस मानिनी नायिकाके मानको दूर करनेके लिये मैं इसके पैरों पर पड़ने ही वाला था कि मेरे उपकारके लिए मेघका गर्जन भी होने लगा. चरणप्रणिपातरूप साधनसे मानापनोदनरूप कार्यके करनेके लिये नायक तत्पर था, उसके उपकारार्थ मेघकी आवाज सुनाई पड़ी, उसका कार्य मानापनोदन सुकर हो गया, क्योंकि मेघगर्जन अतिकामोद्दीपक होता है, उसके होने पर मानिनीका मान सहज ही दूर हो गया। मानिनीके मानापनोदनोपायों में प्रणाम भी गिना गया है—
'सामभेदोऽथ दानं च नत्युपेक्षे रसान्तरम्। तद्भङ्गाय पतिः कुर्यात् षडुपायानिति क्रमात्' ॥२९९॥

आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम्।
उदात्तं नाम तं प्राहुरलङ्कारं मनीषिणः ॥ ३०० ॥

उदात्तं लक्षयति—**आशयस्येति**। आशयस्य अभिप्रायस्य मनोव्यापारस्वरूपस्य विभूतेः सम्पदो वा यत् अनुत्तमम्[1] अत्यधिकं महत्त्वं तत् मनीषिण उदात्तं नामालङ्कारं प्राहुः, यत्र प्रस्तुतस्यालौकिकं महाशयत्वं महाविभवत्वं वा वर्ण्यते स उदात्तो नामालङ्कारः इत्यर्थः ॥ ३०० ॥

हिन्दी—आशय—अभिप्राय अथवा सम्पत्तिका यदि अतिशय महत्त्व वर्णित हो तो उदात्त अलङ्कार कहते हैं, अर्थात् यदि प्रस्तुत वस्तुकी महाशयता अथवा महाविभवशालिताका वर्णन हो तो उदात्त नामक अलङ्कार है। इन दोनों विषयोंके दो उदाहरण अभी आगे कहेंगे। काव्यप्रकाशकारने 'महतां चोपलक्षणम्' कहकर एक नया प्रभेद बनाया है—जहाँ पर प्रस्तुत वस्तुका अङ्ग होकर महान् जनका चरित वर्णित हो वह भी एक प्रकारका उदात्त है, इस प्रभेदका उदाहरण यह दिया है—

'तदिदमरण्यं यस्मिन् दशरथवचनानुपालनव्यसनी।
निवसन् बाहुसहायश्चकार रक्षःक्षयं रामः ॥'

यहाँ वर्णनीयतया प्रस्तुत दण्डकारण्यके उत्कर्षके लिए तदङ्गतया रामका महान् चरित वर्णित हुआ है ॥ ३०० ॥

गुरोः शासनमत्येतुं न शशाक स राघवः।
यो रावणशिरश्छेदकार्यभारेऽप्यविक्लवः ॥ ३०१ ॥

---

१. अनुत्तरम्।

महाशयत्ववर्णेन उदात्तमुदाहरति—गुरोरिति। यो राघवो रामः रावणस्य असाधारणशौर्यविख्यातस्य राक्षसाधिपस्य च शिरसां मस्तकानां छेदकार्यभारे छेदनरूपे गुरुणि कार्ये अविक्लवः अव्यग्रः, सः गुरोः शासनम् वनवासाज्ञाम् अत्येतुं लङ्घयितुं न शशाक नाक्षमत। अत्र रावणवधरूपस्यासाध्यकार्यस्य कर्तरि रामे राज्यापहारकपित्रादेशानुल्लङ्घकतया महाशयत्वमुक्तमिति भवत्युदात्तम् ॥ ३०१ ॥

हिन्दी—जिस राघव रामने रावणके सिर काटनेके समान महान् कार्यमें भी क्षमता प्रदर्शित की थी, वही राम पिताकी आज्ञा—वनवासादेशको (जिसके माननेसे राज्य छूट गया) नहीं टाल सके। यहाँ राक्षसराज-वधरूप असाधारण कार्य करनेवाले राममें पित्राज्ञावर्त्तित्व बताकर उनकी महाशयताका निदर्शन कराया गया है, अतः इसे उदात्त अलङ्कारका प्रथम भेद जानना चाहिये ॥ ३०१ ॥

रत्नभित्तिषु[1] सङ्क्रान्तैः[2] प्रतिबिम्बशतैर्वृतः।
ज्ञातो लङ्केश्वरः कृच्छ्रादाञ्जनेयेन तत्त्वतः ॥ ३०२ ॥

महाविभवत्वे उदात्तमुदाहरति—रत्नेति। आञ्जनेयेन हनूमता रत्नभित्तिषु मणिमयगृहकुड्येषु सङ्क्रान्तैः प्रतिफलितैः प्रतिबिम्बशतैः बहुभिः स्वीयप्रतिमूर्त्तिभिः वृतः वेष्टितो लङ्केश्वरः कृच्छ्रात् कष्टतः तत्त्वतो ज्ञातः यथार्थरावणः परिचितः। प्रतिबिम्बशतवृततया रावणस्य वास्तविकपरिचयो हनुमता कष्टेन प्राप्यते स्मेत्यर्थः। अत्र प्रतिबिम्बशतवृतत्वोपपादकरत्नभित्तिकभवनशालितया रावणस्य महाविभवत्वं वर्ण्यत इति भवत्युदात्तालङ्कारः ॥ ३०२ ॥

हिन्दी—रत्ननिर्मित दीवारों पर प्रतिबिम्बित मूर्त्तिशतसे आवृत रावणको हनुमान्ने कष्टसे यथार्थ रूपमें पहचाना। समानाकारक बिम्बप्रतिबिम्ब-समवधान होने—कौन यथार्थ रावण है, और कौन-कौन प्रतिबिम्ब हैं, यह पहचाननेमें हनुमान् को बुद्धि खपानी पड़ी। यहाँ पर रत्नभित्तिक भवनके वर्णनसे रावणका महाविभवत्व प्रदर्शित होता है, अतः इसे उदात्त अलङ्कार कहा गया है ॥ ३०२ ॥

पूर्वत्राशयमाहात्म्यमत्राभ्युदयगौरवम्।
सुव्यञ्जितमिति[3] प्रोक्तमुदात्तद्वयमप्यदः[4] ॥ ३०३ ॥
(इत्युदात्तम्)

उदात्तमुपसंहरति—पूर्वत्रेति। पूर्वत्र—'गुरोः शासनम्' इत्यादिप्रथमोदाहरणे आशयमाहात्म्यम् रामस्य महाशयत्वं सुव्यञ्जितम् साधु प्रकाशितम्, अत्र 'रत्नभित्तिषु' इत्यादि द्वितीयोदाहृणे अभ्युदयगौरवम्—महाविभवत्वं रावणस्य सुव्यञ्जितमिति हेतोः अदः एतत् उदात्तद्वयम् अपि प्रोक्तम्, उदात्तस्य माहात्म्य-महाविभवत्वरूपविषयद्वयगतत्वेन द्वैविध्यमुक्तमिति भावः ॥ ३०३ ॥

हिन्दी—प्रथम उदाहरण—'गुरोः शासनमत्येतुं न शशाक स राघवः' इसमें रामके महाशयत्वको अच्छी तरह व्यञ्जित किया गया है, और 'रत्नभित्तिषु सङ्क्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैर्वृतः' इस द्वितीय उदाहरणमें रावणका अभ्युदयगौरव—वैभवकी विशालता प्रकाशित की गई है, अतः विषयद्वैविध्य होनेसे हमने उदात्तका दो प्रकार किया है ॥ ३०३ ॥

---

१. स्तम्भेषु। २. संक्रान्त। ३. व्यक्तम्। ४. द्वितयं पुनः।

अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थदर्शनम् ।
न पञ्चेषुः स्मरस्तस्य सहस्रं पत्रिणामिति ॥ ३०४ ॥

अपह्नुतिं कथयति—अपह्नुतिरिति । किञ्चित् किमपि प्रकृतस्य गुणक्रियादिरूपं वस्तु अपह्नुत्य अपलप्य अन्यस्य अर्थस्य दर्शनम् धर्मान्तरस्यारोपणम् अपह्नुतिर्नामालङ्कारः । प्रकृतं धर्मिणं निषिध्य धर्म्यन्तरारोपः तत्त्वापह्नवरूपकनाम्ना पूर्वमुक्तः, अत्र तु गुणक्रियादिरूपधर्मापलापपूर्वको धर्मान्तरारोपोऽपह्नुतिनाम्ना निर्दिश्यते इति भेदः । अन्यार्थारोपमात्रस्य लक्षणत्वे रूपकातिशयोक्त्योरतिव्याप्तिः स्यादतः 'किञ्चिदपह्नुत्य' इति योजितं तथा च रूपकातिशयोक्त्योः कस्यापि निषेधाभावान्नातिव्याप्तिः । 'किञ्चिदपह्नुत्य' इत्येतावन्मात्रोक्तौ आक्षेपालङ्कारेऽतिव्याप्तिः, अतोऽन्यार्थसाधनमुच्यते । संदेहालङ्कारे संशयः, अत्र तु निश्चयः, उत्प्रेक्षायां संभावनामात्रम् , अत्र त्वाहार्यारोप इति भेदः ।

उदाहरण उत्तरार्धमुपन्यस्यति—न पञ्चेषुरिति । स्मरः कामदेवः पञ्चेषुः बाणपञ्चकमात्रसहायो न, तावद्भिर्बाणैर्जगदुत्पीडनासम्भवात् , अतस्तस्य पत्रिणां सहस्रमस्तीति बोध्यम् । अत्र प्रस्तुतस्य कामबाणस्य धर्मं पञ्चसंख्यकत्वं निषिध्य तत्र धर्मान्तरं सहस्रसंख्यकत्वमारोप्यत इति भवति लक्षणसङ्गतिः ॥ ३०४ ॥

हिन्दी—वर्णनीय वस्तुके गुणक्रियादि धर्मको असत्य बताकर—अपलपित करके यदि दूसरे धर्म—गुणक्रियादिका आरोप किया जाय तो अपह्नुति अलङ्कार होता है, धर्मीका निषेध करके धर्म्यन्तरके आरोपमें दण्डीने तत्त्वापह्नवरूपक नामका अलङ्कार बताया है, अतः उससे भेद बतानेके लिये धर्मनिषेधपूर्वक धर्मान्तरारोप को अपह्नुति कह रहे हैं । अन्यान्य नवीन आचार्यगण उभयविध स्थलमें अपह्नुति ही मानते हैं ।

यहाँके अपह्नुतिलक्षणमें दो अंश हैं—धर्मका अपह्नव और धर्मान्तरका आरोप, उसमें यदि धर्मान्तरारोपमात्रको लक्षण कहेंगे तो रूपक और अतिशयोक्तिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः 'किञ्चिदपह्नुत्य' धर्मका अपह्नवरूप प्रथम अंशको भी लक्षणमें स्थान दिया गया । वैसा कहने पर अतिव्याप्ति नहीं होती है क्योंकि वहाँ किसी वस्तुका अपह्नव–प्रतिषेध नहीं किया जाता है ।

'किञ्चिदपह्नुत्य' इस पूर्वांशमात्रको लक्षण मानते हैं तो आक्षेप नामक अलङ्कारमें लक्षणकी अतिव्याप्ति होती है, अतः अन्यधर्मारोपस्वरूप उत्तरांशको लक्षणमें समाविष्ट करते हैं ।

संदेहालङ्कारमें संशय होता है यहाँ निश्चय, उत्प्रेक्षामें संभावना होती है यहाँ आहार्यनिश्चय होता है, यही भेद है ।

इस कारिका का उत्तरार्ध अपह्नुति का उदाहरण है । कामदेव पञ्चेषु नहीं है, उसके बाणोंकी संख्या हजार है, यदि वह पञ्चेषु होता तो उतनेसे बाणोंसे संसारको उत्पीडित नहीं कर पाता, अतः निश्चय ही उसके पास हजारों बाण हैं ।

इस उदाहरणमें वर्णनीय वस्तु कामबाणके धर्म पञ्चसंख्यकत्वको असत्य बताकर दूसरे धर्म सहस्रसंख्यकत्वका आरोप हुआ है, अतः यह अपह्नुतिका उदाहरण है ॥ ३०४ ॥

चन्दनं चन्द्रिका मन्दो गन्धवाहश्च दक्षिणः ।
सेयमग्निमयी सृष्टिर्मयि शीता परान्प्रति ॥ ३०५ ॥
शैशिर्यमभ्युपेत्यैव परेष्वात्मनि कामिना ।
औष्ण्यप्रकाशनात्[1] तस्य [2]सेयं विषयनिह्नुतिः ॥ ३०६ ॥

---

१. प्रदर्शनात् । २. सैषा ।

विषयापह्नुतिमुदाहरति—**चन्दनमिति**। चन्दनं मलयजरसः, चन्द्रिका ज्योत्स्ना, तथा मन्दः दक्षिणो दक्षिणदिक्प्रसूनः गन्धवाहो वायुश्च, सेयम् एतत्समुदायरूपा मयि वियोगपीडितेऽग्निमयी सृष्टिः अग्निवत्सन्तापजननी, अतो मयाऽग्निवन्मन्यते, परान् संयोगिनः प्रति शीतला शीता, अतस्ते कामं तत्र तत्र शैत्यं प्रतियन्तु इति भावः, अत्रौष्ण्यत्वप्रतिपादनेन शीतत्वं निषिध्यमानं बोध्यम् ॥ ३०५ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**शैशिर्यमिति**। अत्रोदाहरणे कामिना वियुक्तेन पुंसा परेषु स्वभिन्नेषु संयोगिषु जनेषु (चन्दनादीनाम्) शैशिर्यम् शीतलताम् अभ्युपेत्य अङ्गीकृत्य एव तस्य शैशिर्यस्य आत्मनि औष्ण्यप्रकाशनात् सन्तापकतया वर्णनात्, सा इयं विषयनिह्नुतिः विषयापह्नुतिः नामालङ्कारः। अत्र चन्दनादीनां शैत्यं निषेध्यं तापकत्वं चारोप्यमिति निषेधारोपयोर्व्यवस्थितविषयत्वाद्विषयापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०६ ॥

हिन्दी—चन्दन, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना और दक्षिण दिशासे आनेवाली शीतल मन्द वायु, यह सब मेरे लिये अग्निमयी सृष्टि है, भले ही संयोगी पुरुषोंके लिये यही वस्तुएँ शीतल हों। यहाँ चन्दनादिकी उष्णता प्रतिपादन करके उनके शैत्यका निषेध व्यञ्जित किया गया है ॥ ३०५ ॥

इस उदाहरणमें कामी-वियुक्त पुरुषने स्वभिन्न संयोगी पुरुषोंमें चन्दनादिकी शीतलताको स्वीकार करके अपने विषयमें उन्हीं पदार्थोंकी उष्णता प्रकाशित की है, इसीलिए इसे विषयापह्नुति कहते हैं। इसका नाम विषयापह्नुति इसीलिए रखा गया कि निषेध्य और आरोप्यके विषय नियत हैं, अर्थात् शैत्यका निषेध होता है और सन्तापकत्वका आरोप है ॥ ३०६ ॥

अमृतस्यन्दिकिरणश्चन्द्रमा नामतो[1] मतः।
अन्य एवायमर्थात्मा विषनिष्यन्दिदीधितिः ॥ ३०७ ॥
इति चन्द्रत्वमेवेन्दौ निवर्त्यार्थान्तरात्मता[3]।
उक्ता[4] स्मरार्तेनेत्येषा[5] स्वरूपापह्नुतिर्मता ॥ ३०८ ॥

स्वरूपापह्नुतिमुदाहरति—**अमृतेति**। चन्द्रमाः चन्द्रः नामतः केवलं संज्ञामात्रेण अमृतस्यन्दिकिरणः सुधास्राविकरशाली, मतः। चन्द्रमाः केवलं संज्ञयैवामृतवर्षी, न त्वर्थत इति पूर्वार्द्धार्थः, अर्थात्मा यथार्थत्वे त्वयं चन्द्रमा अन्य एव अन्यथाभूत एव विषनिष्यन्दिदीधितिः गरलवर्षिकिरणः। वियोगिनां सन्तापजनकोऽयं चन्द्रो नाममात्रेणामृतकरः, यथार्थभावे त्वसौ विषकिरण इति।

अत्र चन्द्रमसः संज्ञामात्रं सुधाकरत्वं क्रियाकृतं तु विषकरत्वमिति सुधाकरत्वं प्रतिषिध्य विषकरत्वारोपादपह्नुतिः, इन्दौ चन्द्रत्वमाह्लादकस्वरूपत्वं तदेवापह्नुत्य विषादकत्वस्वरूपं धर्मान्तरमारोप्यते इति स्वरूपापह्नुतिः ॥ ३०७ ॥

उदाहरणं योजयति—**इति चन्द्रत्वमिति**। केनचित् स्मरार्तेन कामसन्तापितेन पुंसा इति प्रोक्तेन प्रकारेण इन्दौ चन्द्रमसि चन्द्रत्वं सर्वजनाह्लादकत्वरूपं तदीयमसाधारणधर्मं निवर्त्य प्रतिषिध्य अर्थान्तरात्मता अन्यस्वरूपता विषमयकिरणशालिता उक्ता आरोपिता, इति स्वरूपापह्नुतिः एषा स्वरूपस्याह्लादकत्वस्य निषेधेन प्रवृत्तत्वात्स्वरूपापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०८ ॥

---

१. नाम नामतः। २. निह्नुत्य। ३. अर्थान्तरात्मना। ४. उक्तं। ५. नेत्यादि।

हिन्दी—चन्द्रमा केवल संज्ञामात्रके लिये सुधाकर है, यथार्थमें वह विषमयकिरण है।

यह स्वरूपापह्नुति है, वियोगियोंको सताने वाले चन्द्रमाको सुधाकर कोई वियोगी कैसे स्वीकार कर सकता है, उसके लिये तो वह विषकर ही है ॥ ३०७ ॥

इस उदाहरणमें किसी कामसन्तप्त विरहीने उक्त रीतिसे चन्द्रमाके स्वरूप सुधास्यन्दिकिरणत्व-सुधाकरत्व-आह्लादकत्वका प्रतिषेध करके विषमयकिरणत्वका आरोप किया है अतः इसे स्वरूपापह्नुति नामक अलङ्कार कहा है। स्वरूपका अपलाप करके धर्मान्तरका आरोप किया जाता है अतएव इसे स्वरूपापह्नुति कहते हैं ॥ ३०८ ॥

उपमापह्नुतिः पूर्वमुपमास्वेव दर्शिता।
इत्यपह्नुतिभेदानां लक्ष्यो लक्ष्येषु विस्तरः ॥ ३०९ ॥

(इत्यपह्नुतिः)

अपह्नुतिप्रसङ्गमुपसंहरति—**उपमेति**। उपमायाः। सादृश्यस्य अपह्नुतिः प्रतिषेधः उपमापह्नुतिः पूर्वम् उपमासु उपमाप्रभेदेषु दर्शिता-प्रतिषेधोपमानाम्ना उक्ता-अतोऽत्र नोच्यते। इति एवम् अपह्नुतिभेदानां विस्तरो लक्ष्येषु लक्ष्यः अन्वेष्टव्यः ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे अनुपमत्व-प्रतिपादनमें चमत्कार हो सकता है, अतः उपमापह्नुति नामक प्रभेद भी इस अपह्नुतिका होना चाहिये, उसे न कहने से न्यूनताका संदेह उठ सकता है, उसीका यह उत्तर दिया जाता है कि उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे होनेवाले प्रभेदका उपमाकरण में कथन हो गया है, उसका वहाँ प्रतिषेधोपमा नामसे निरूपण कर दिया गया है, देखिये—

'न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्। कलङ्किनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा ॥'

इस तरहके लक्ष्योंमें सादृश्यका प्रतिषेध करके गुणातिशय प्रतिष्ठापित किया जाता है। यद्यपि सादृश्यप्रतिषेध होता है परन्तु सादृश्यप्रतिषेध उपमाके मूल गुणातिशयको ही प्रतिष्ठापित करता है, अतः यहाँ अपह्नुति भी उपमाकी विकासिका ही होकर रह जाती है, प्रधान उपमा ही होती है, अतएव दण्डीने इसे उपमाके प्रभेदोंमें ही कहा है, इसी अभिप्रायको व्यक्त करनेके लिये आचार्यने 'प्रतिषेधोपमैव'में एवकार लगा दिया है, यह ध्यान देनेके योग्य है।

इसी प्रकारसे अलङ्कारान्तरोत्पादक अपह्नुतिप्रभेदोंका लक्ष्यग्रन्थमें अन्वेषण करें। 'प्रेमचन्द्र' ने उत्प्रेक्षापह्नुतिका यह उदाहरण दिया है—

'अमुच्छलेन सुदृशो हुतपावकधूमकलुषाक्ष्याः। अप्राप्य मानमङ्गे विगलति लावण्यवारिपूर इव ॥'३०९॥

श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा ॥ ३१० ॥

अथावसरप्राप्तं श्लेषालङ्कारं निरूपयति—**श्लिष्टमिति**। अनेकार्थम् एकरूपान्वितम् वचः श्लिष्टम् इष्टम्। अनेकार्थम् अभिधाद्वाराऽनेकार्थवाचकम्, एकरूपान्वितम् अर्थभेदेऽपि अभिन्नप्रयत्नोच्चार्यतया एकेन रूपेण युक्तम्, वचः वाक्यं श्लिष्टम् श्लेषाख्यालङ्कारयोगीष्टम्। श्लेषः—एकत्वावभासकः सम्बन्धविशेषः, स च शब्दयोरेकप्रयत्नोच्चार्यत्वरूपः, अर्थयोस्तु प्रकरणादिनियमाभावे एकप्रयत्नोच्चार्यशब्दद्वयेनैककालिकबोधविषयत्वरूपः।

एतच्च अनेकार्थकत्वम् अभिधाद्वारा युगपदनेकार्थप्रतिपादकत्वं, तच्चाभिधानियामकानां संयोगविप्रयोगादीनामभावे एव संभवतीति संयोगादिभिरभिधाया नियमनस्थले युगपदर्थद्वयप्रतीतेरभावान्न श्लेषः, किन्तु तत्राप्रकृतार्थस्य ध्वनित्वमेव, यथा—

विषयापह्नुतिमुदाहरति—**चन्दनमिति**। चन्दनं मलयजरसः, चन्द्रिका ज्योत्स्ना, तथा मन्दः दक्षिणो दक्षिणदिक्प्रभवः गन्धवाहो वायुश्च, सेयम् एतत्समुदायरूपा मयि वियोगपीडितेऽग्निमयी सृष्टिः अग्निवत्सन्तापजननी, अतो मयाऽग्निवन्मन्यते, परान् संयोगिनः प्रति शीतला शीता, अतस्ते कामं तत्र तत्र शैत्यं प्रतियन्तु इति भावः, अत्रोष्णत्वप्रतिपादनेन शीतत्वं निषिध्यमानं बोध्यम् ॥ ३०५ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**शैशिर्यमिति**। अत्रोदाहरणे कामिना वियुक्तेन पुंसा परेषु स्वभिन्नेषु संयोगिषु जनेषु (चन्दनादीनाम्) शैशिर्यम् शीतलताम् अभ्युपेत्य अङ्गीकृत्य एव तस्य शैशिर्यस्य आत्मनि औष्ण्यप्रकाशनात् सन्तापकतया वर्णनात् , सा इयं विषयनिह्नुतिः विषयापह्नुतिः नामालङ्कारः। अत्र चन्दनादीनां शैत्यं निषेध्यं तापकत्वं चारोप्यमिति निषेधारोपयोर्व्यवस्थितविषयत्वाद्विषयापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०६ ॥

हिन्दी—चन्दन, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना और दक्षिण दिशासे आनेवाली शीतल मन्द वायु, यह सब मेरे लिये अग्निमयी सृष्टि हैं, भले ही संयोगी पुरुषोंके लिये यही वस्तुएँ शीतल हों। यहाँ चन्दनादिकी उष्णता प्रतिपादन करके उनके शैत्यका निषेध व्यञ्जित किया गया है ॥ ३०५ ॥

इस उदाहरणमें कामी-वियुक्त पुरुषने स्वभिन्न संयोगी पुरुषोंमें चन्दनादिकी शीतलताको स्वीकार करके अपने विषयमें उन्हीं पदार्थोंकी उष्णता प्रकाशित की है, इसीलिए इसे विषयापह्नुति कहते हैं। इसका नाम विषयापह्नुति इसीलिए रखा गया कि निषेध्य और आरोप्यके विषय नियत हैं, अर्थात् शैत्यका निषेध होता है और सन्तापकत्वका आरोप है ॥ ३०६ ॥

अमृतस्यन्दिकिरणश्चन्द्रमा नामतो[1] मतः।
अन्य एवायमर्थात्मा विषनिष्यन्दिदीधितिः ॥ ३०७ ॥
इति चन्द्रत्वमेवेन्दौ निवर्त्या[2]र्थान्तरात्मता[3]।
उक्ता[4] स्मरार्तेनेत्येषा[5] स्वरूपापह्नुतिर्मता ॥ ३०८ ॥

स्वरूपापह्नुतिमुदाहरति—**अमृतेति**। चन्द्रमाः चन्द्रः नामतः केवलं संज्ञामात्रेण अमृतस्यन्दिकिरणः सुधास्राविकरशाली, मतः। चन्द्रमाः केवलं संज्ञयैवामृतवर्षी, न त्वर्थेत इति पूर्वार्द्धार्थः, अर्थात्मा यथार्थत्वे स्वयं चन्द्रमा अन्य एव अन्यथाभूत एव विषनिष्यन्दिदीधितिः गरलवर्षिकिरणः। वियोगिनां सन्तापजनकोऽयं चन्द्रो नाममात्रेणामृतकरः, यथार्थभावे त्वसौ विषकिरण इति।

अत्र चन्द्रमसः संज्ञामात्रं सुधाकरत्वं क्रियाकृतं तु विषकरत्वमिति सुधाकरत्वं प्रतिषिध्य विषकरत्वारोपादपह्नुतिः, इन्दौ चन्द्रत्वमाह्लादकस्वरूपत्वं तदेवापह्नुत्य विषादकत्वस्वरूपं धर्मान्तरमारोप्यते इति स्वरूपापह्नुतिः ॥ ३०७ ॥

उदाहरणं योजयति—**इति चन्द्रत्वमिति**। केनचित् स्मरार्तेन कामसन्तापितेन पुंसा इति प्रोक्तेन प्रकारेण इन्दौ चन्द्रमसि चन्द्रत्वं सर्वजनाह्लादकत्वरूपं तदीयमसाधारणधर्मं निवर्त्य प्रतिषिध्य अर्थान्तरात्मता अन्यस्वरूपता विषमयकिरणशालिता उक्ता आरोपिता, इति स्वरूपापह्नुतिः एषा स्वरूपस्याह्लादकत्वस्य निषेधेन प्रवृत्तत्वात्स्वरूपापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०८ ॥

१. नाम नामतः। २. निह्नुत्य। ३. अर्थान्तरात्मना। ४. उक्तं। ५. नेत्यादि।

हिन्दी—चन्द्रमा केवल संज्ञामात्रके लिये सुधाकर है, यथार्थमें वह विषमयकिरण है।

यह स्वरूपापह्नुति है, वियोगियोंको सताने वाले चन्द्रमाको सुधाकर कोई वियोगी कैसे स्वीकार कर सकता है, उसके लिये तो वह विषकर ही है॥ ३०७॥

इस उदाहरणमें किसी कामसन्तप्त विरहीने उक्त रीतिसे चन्द्रमाके स्वरूप सुधास्यन्दिकिरणत्व-सुधाकरत्व-आह्लादकत्वका प्रतिषेध करके विषमयकिरणत्वका आरोप किया है अतः इसे स्वरूपापह्नुति नामक अलङ्कार कहा है। स्वरूपका अपलाप करके धर्मान्तरका आरोप किया जाता है अतएव इसे स्वरूपापह्नुति कहते हैं॥ ३०८॥

उपमापह्नुतिः पूर्वमुपमास्वेव दर्शिता।
इत्यपह्नुतिभेदानां लक्ष्यो लक्ष्येषु विस्तरः॥ ३०९॥
(इत्यपह्नुतिः)

अपह्नुतिप्रसङ्गमुपसंहरति—**उपमेति**। उपमायाः। सादृश्यस्य अपह्नुतिः प्रतिषेधः उपमापह्नुतिः पूर्वम् उपमासु उपमाप्रभेदेषु दर्शिता-प्रतिषेधोपमानाम्ना उक्ता-अतोऽत्र नोच्यते। इति एवम् अपह्नुतिभेदानां विस्तरो लक्ष्येषु लक्ष्यः अन्वेष्टव्यः॥ ३०९॥

हिन्दी—उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे अनुपमत्व-प्रतिपादनमें चमत्कार हो सकता है, अतः उपमापह्नुति नामक प्रभेद भी इस अपह्नुतिका होना चाहिये, उसे न कहने से न्यूनताका संदेह उठ सकता है, उसीका यह उत्तर दिया जाता है कि उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे होनेवाले प्रभेदका उपमाकरण में कथन हो गया है, उसका वहाँ प्रतिषेधोपमा नामसे निरूपण कर दिया गया है, देखिये—

'न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्। कलङ्किनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा॥'

इस तरहके लक्ष्योंमें सादृश्यका प्रतिषेध करके गुणातिशय प्रतिष्ठापित किया जाता है। यद्यपि सादृश्यप्रतिषेध होता है परन्तु सादृश्यप्रतिषेध उपमाके मूल गुणातिशयको ही प्रतिष्ठापित करता है, अतः यहाँ अपह्नुति भी उपमाकी विकासिका ही होकर रह जाती है, प्रधान उपमा ही होती है, अतएव दण्डीने इसे उपमाके प्रभेदोंमें ही कहा है, इसी अभिप्रायको व्यक्त करनेके लिये आचार्यने 'प्रतिषेधोपमैव'में एवकार लगा दिया है, यह ध्यान देनेके योग्य है।

इसी प्रकारसे अलङ्कारान्तरोत्पादक अपह्नुतिप्रभेदोंका लक्ष्यग्रन्थमें अन्वेषण करें। 'प्रेमचन्द्र' ने उत्प्रेक्षापह्नुतिका यह उदाहरण दिया है—

'अमुच्छलेन सुदृशो हुतपावकधूमकलुषाक्ष्याः। अप्राप्य मानमङ्गे विगलति लावण्यवारिपूर इव॥' ३०९॥

श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा॥ ३१०॥

अथावसरप्राप्तं श्लेषालङ्कारं निरूपयति—**श्लिष्टमिति**। अनेकार्थम् एकरूपान्वितम् वचः श्लिष्टम् इष्टम्। अनेकार्थम् अभिधाद्वाराऽनेकार्थवाचकम्, एकरूपान्वितम् अर्थभेदेऽपि अभिन्नप्रयत्नोच्चार्यतया एकेन रूपेण युक्तम्, वचः वाक्यं श्लिष्टम् श्लेषाख्यालङ्कारयोगीष्टम्। श्लेषः—एकत्वावभासकः सम्बन्धविशेषः, स च शब्दयोरेकप्रयत्नोच्चार्यत्वरूपः, अर्थयोस्तु प्रकरणादिनियमाभावे एकप्रयत्नोच्चार्यशब्दद्वयेनैककालिकबोधविषयत्वरूपः।

एतच्च अनेकार्थकत्वम् अभिधाद्वारा युगपदनेकार्थप्रतिपादकत्वं, तच्चाभिधानियामकानां संयोगविप्रयोगादीनामभावे एव संभवतीति संयोगादिभिरभिधाया नियमस्थले युगपदर्थद्वयप्रतीतेरभावान्न श्लेषः, किन्तु तत्राप्रकृतार्थस्य ध्वनित्वमेव, यथा—

विषयापह्नुतिमुदाहरति—**चन्दनमिति**। चन्दनं मलयजरसः, चन्द्रिका ज्योत्स्ना, तथा मन्दः दक्षिणो दक्षिणदिक्प्रभूतः गन्धवाहो वायुश्च, सेयम् एतत्समुदायरूपा मयि वियोगपीडितेऽग्निमयी सृष्टिः अग्निवत्सन्तापजननी, अतो मयाऽग्निवन्मन्यते, परान् संयोगिनः प्रति शीतला शीता, अतस्ते कामं तत्र तत्र शैत्यं प्रतियन्तु इति भावः, अत्रोष्णत्वप्रतिपादनेन शीतत्वं निषिध्यमानं बोध्यम् ॥ ३०५ ॥

उदाहरणमुपपादयति—**शैशिर्यमिति**। अत्रोदाहरणे कामिना वियुक्तेन पुंसा परेषु स्वभिन्नेषु संयोगिषु जनेषु (चन्दनादीनाम्) शैशिर्यम् शीतलताम् अभ्युपेत्य अङ्गीकृत्य एव तस्य शैशिर्यस्य आत्मनि औष्ण्यप्रकाशनात् सन्तापकतया वर्णनात्, सा इयं विषयनिह्नुतिः विषयापह्नुतिः नामालङ्कारः। अत्र चन्दनादीनां शैत्यं निषेध्यं तापकत्वं चारोप्यमिति निषेधारोपयोर्व्यवस्थितविषयत्वाद्विषयापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०६ ॥

हिन्दी—चन्दन, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना और दक्षिण दिशासे आनेवाली शीतल मन्द वायु, यह सब मेरे लिये अग्निमयी सृष्टि हैं, भले ही संयोगी पुरुषोंके लिये यही वस्तुएँ शीतल हों। यहाँ चन्दनादिकी उष्णता प्रतिपादन करके उनके शैत्यका निषेध व्यञ्जित किया गया है ॥ ३०५ ॥

इस उदाहरणमें कामी-वियुक्त पुरुषने स्वभिन्न संयोगी पुरुषोंमें चन्दनादिकी शीतलताको स्वीकार करके अपने विषयमें उन्हीं पदार्थोंकी उष्णता प्रकाशित की है, इसीलिए इसे विषयापह्नुति कहते हैं। इसका नाम विषयापह्नुति इसीलिए रखा गया कि निषेध्य और आरोप्यके विषय नियत हैं, अर्थात् शैत्यका निषेध होता है और सन्तापकत्वका आरोप है ॥ ३०६ ॥

अमृतस्यन्दिकिरणश्चन्द्रमा नामतो[1] मतः।
अन्य एवायमर्थात्मा विषनिष्यन्दिदीधितिः ॥ ३०७ ॥
इति चन्द्रत्वमेवेन्दौ निवर्त्यार्थान्तरात्मता[3]।
उक्ता[4] स्मरार्तेनेत्येषा[5] स्वरूपापह्नुतिर्मता ॥ ३०८ ॥

स्वरूपापह्नुतिमुदाहरति—**अमृतेति**। चन्द्रमाः चन्द्रः नामतः केवलं संज्ञामात्रेण अमृतस्यन्दिकिरणः सुधास्राविकरशाली, मतः। चन्द्रमाः केवलं संज्ञयैवामृतवर्षी, न त्वर्थेन इति पूर्वार्द्धार्थः, अर्थात्मा यथार्थत्वे त्वयं चन्द्रमा अन्य एव अन्यथाभूत एव विषनिष्यन्दिदीधितिः गरलवर्षिकिरणः। वियोगिनां सन्तापजनकोऽयं चन्द्रो नाममात्रेणामृतकरः, यथार्थभावे त्वसौ विषकिरण इति।

अत्र चन्द्रमसः संज्ञामात्रं सुधाकरत्वं क्रियाकृतं तु विषकरत्वमिति सुधाकरत्वं प्रतिषिध्य विषकरत्वारोपादपह्नुतिः, इन्दौ चन्द्रत्वमाह्लादकस्वरूपत्वं तदेवापह्नुत्य विषादकत्वस्वरूपं धर्मान्तरमारोप्यते इति स्वरूपापह्नुतिः ॥ ३०७ ॥

उदाहरणं योजयति—**इति चन्द्रत्वमिति**। केनचित स्मरार्तेन कामसन्तापितेन पुंसा इति प्रोक्तेन प्रकारेण इन्दौ चन्द्रमसि चन्द्रत्वं सर्वजनाह्लादकत्वरूपं तदीयमसाधारणधर्मं निवर्त्य प्रतिषिध्य अर्थान्तरात्मता अन्यस्वरूपता विषमयकिरणशालिता उक्ता आरोपिता, इति स्वरूपापह्नुतिः एषा स्वरूपस्याह्लादकत्वस्य निषेधेन प्रवृत्तत्वात्स्वरूपापह्नुतिरिति संज्ञा ॥ ३०८ ॥

---

१. नाम नामतः। २. निह्नुत्य। ३. अर्थान्तरात्मना। ४. उक्तं। ५. नेत्यादि।

हिन्दी—चन्द्रमा केवल संज्ञामात्रके लिये सुधाकर है, यथार्थमें वह विषमयकिरण है।

यह स्वरूपापह्नुति है, वियोगियोंको सताने वाले चन्द्रमाको सुधाकर कोई वियोगी कैसे स्वीकार कर सकता है, उसके लिये तो वह विषकर ही है ॥ ३०७ ॥

इस उदाहरणमें किसी कामसन्तप्त विरहीने उक्त रीतिसे चन्द्रमाके स्वरूप सुधास्यन्दिकिरणत्व-सुधाकरत्व-आह्लादकत्वका प्रतिषेध करके विषमयकिरणत्वका आरोप किया है अतः इसे स्वरूपापह्नुति नामक अलङ्कार कहा है। स्वरूपका अपलाप करके धर्मान्तरका आरोप किया जाता है अतएव इसे स्वरूपापह्नुति कहते हैं ॥ ३०८ ॥

उपमापह्नुतिः पूर्वमुपमास्वेव दर्शिता।
इत्यपह्नुतिभेदानां लक्ष्यो लक्ष्येषु विस्तरः ॥ ३०९ ॥

(इत्यपह्नुतिः)

अपह्नुतिप्रसङ्गमुपसंहरति—**उपमेति**। उपमायाः। सादृश्यस्य अपह्नुतिः **प्रतिषेधः उपमापह्नुतिः** पूर्वम् उपमासु उपमाप्रभेदेषु दर्शिता-प्रतिषेधोपमानाम्ना उक्ता-**अतोऽत्र नोच्यते**। इति एवम् अपह्नुतिभेदानां **विस्तरो** लक्ष्येषु लक्ष्यः अन्वेष्टव्यः ॥ ३०९ ॥

हिन्दी—उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे अनुपमत्व-प्रतिपादनमें चमत्कार हो सकता है, अतः उपमापह्नुति नामक प्रभेद भी इस अपह्नुतिका होना चाहिये, उसे न कहने से न्यूनताका संदेह उठ सकता है, उसीका यह उत्तर दिया जाता है कि उपमा-सादृश्यके प्रतिषेधसे होनेवाले प्रभेदका उपमाकरण में कथन हो गया है, उसका वहाँ प्रतिषेधोपमा नामसे निरूपण कर दिया गया है, देखिये—

'न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्। कलङ्किनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा ॥'

इस तरहके लक्ष्योंमें सादृश्यका प्रतिषेध करके गुणातिशय प्रतिष्ठापित किया जाता है। यद्यपि सादृश्यप्रतिषेध होता है परन्तु सादृश्यप्रतिषेध उपमाके मूल गुणातिशयको ही प्रतिष्ठापित करता है, अतः यहाँ अपह्नुति भी उपमाकी विकासिका ही होकर रह जाती है, प्रधान उपमा ही होती है, अतएव दण्डीने इसे उपमाके प्रभेदोंमें ही कहा है, इसी अभिप्रायको व्यक्त करनेके लिये आचार्यने 'प्रतिषेधोपमैव'में एवकार लगा दिया है, यह ध्यान देनेके योग्य है।

इसी प्रकारसे अलङ्कारान्तरोत्पादक अपह्नुतिप्रभेदोंका लक्ष्यग्रन्थमें अन्वेषण करें। 'प्रेमचन्द्र' ने उत्प्रेक्षापह्नुतिका यह उदाहरण दिया है—

'अमुच्छलेन सुदृशो हुतपावकधूमकलुषाक्ष्याः। अप्राप्य मानमङ्गे विगलति लावण्यवारिपूर इव ॥'३०९॥

श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा ॥ ३१० ॥

अथावसरप्राप्तं श्लेषालङ्कारं निरूपयति—**श्लिष्टमिति**। अनेकार्थम् एकरूपान्वितम् **वचः श्लिष्टम् इष्टम्**। अनेकार्थम् अभिधाद्वाराऽनेकार्थवाचकम्, एकरूपान्वितम् अर्थभेदेऽपि अभिन्नप्रयत्नोच्चार्यतया एकेन रूपेण युक्तम्, वचः वाक्यं श्लिष्टम् श्लेषाख्यालङ्कारयोगीष्टम्। श्लेषः—एकत्वावभासकः सम्बन्धविशेषः, स च शब्दयोरेकप्रयत्नोच्चार्यत्वरूपः, अर्थयोस्तु प्रकरणादिनियमाभावे एकप्रयत्नोच्चार्यशब्दद्वयेनैककालिकबोधविषयत्वरूपः।

एतच्च अनेकार्थकत्वम् अभिधाद्वारा युगपदनेकार्थप्रतिपादकत्वं, तच्चाभिधानियामकानां संयोगविप्रयोगादीनामभावे एव संभवतीति संयोगादिभिरभिधाया नियमनस्थले युगपदर्थद्वयप्रतीतेरभावान्न श्लेषः, किन्तु तत्राप्रकृतार्थस्य ध्वनित्वमेव, यथा—

'भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोर्विशालवंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसङ्ग्रहस्य ।
यस्यानुपप्लवगतेः परवारणस्य दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत् ॥'

इत्यत्र प्रकरणनियमेन प्रथमं राजरूपोऽर्थः प्रतिपाद्यते, पश्चाच्च हस्ती व्यज्यते। श्लेषस्य भेदमाह—**तदभिन्नपदमिति**। तत् श्लिष्टम् द्विधा—अभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति च। शक्यतावच्छेदकभेदेऽपि एकप्रत्ययप्रकृत्यादिघटितानि अत एवाभिन्नानि पदानि यस्मिंस्तदभिन्नपदम्, एवम्—भिन्नानां प्रकृतिप्रत्ययादिभेदेन भिन्नानां पदानां प्रायः बाहुल्यं यत्र तादृशमभिन्नपदप्रायम्। एवञ्चाभिन्नपदस्थलेऽभङ्गश्लेषः भिन्नपदप्राये च सभङ्गश्लेष इति।

स चायं श्लेषः शब्दपरिवृत्तिसहत्वतदसहत्वाभ्यां द्विधा, अर्थश्लेषशब्दश्लेषनाम्ना नवीनैरभ्युपगतः, प्राचीनास्तु दण्ड्यादयः शब्दस्यार्थद्वयोपस्थापकत्वरूपं समानं वैचित्र्यं निमित्तमादायोभयत्रापि अर्थश्लेषमेवाहुः॥ ३१० ॥

हिन्दी—अनेकार्थक—अभिधावृत्तिद्वारा एकही साथ एकाधिक अर्थको कहनेवाले, एवं एकरूपान्वित—अर्थभेद होने पर भी अभिन्नप्रयत्नोच्चार्य होनेसे एकरूप वचनको श्लिष्ट—श्लेषालङ्कारयुक्त कहते हैं। श्लेषका अर्थ है—शब्द और अर्थका एकतावभासक संबन्धविशेष, वह शब्दोंमें एकप्रयत्नोच्चार्यत्वस्वरूप और अर्थोंमें एकप्रयत्नोच्चार्य शब्दद्वारा एककालिकबोधविषयत्वरूप पड़ता है।

कुछ लोग शब्दोंमें जतुकाष्ठन्यायसे और अर्थोंमें एकवृन्तगतफलद्वयन्यायसे श्लेष स्वीकार करते हैं।

नवीन आचार्योंने शब्दश्लेष और अर्थश्लेष नामसे अलग-अलग दो अलङ्कार माने हैं, उनके मतमें जहाँ पर शब्दपरिवर्तन होने पर भी—शब्दपरिवृत्तिसह स्थलमें श्लेष बना ही रहता है उसे अर्थश्लेष स्वीकार किया जाता है, जैसे—'स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्। अहो सुसदृशी वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च' यहाँ 'स्तोकेन' को 'अल्पेन' कहकर बदल देने पर भी श्लेषमें बाधा नहीं पड़ती है अतः यह अर्थश्लेष है, एवं जहाँ पर शब्दका परिवर्त्तन न हो सके, उस शब्दपरिवृत्यसह स्थलमें शब्दश्लेष होता है, जैसे—'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ' इसमें 'विधौ' के स्थानमें कोई दूसरा पद रखें तो श्लेष में बाधा पड़ जाती है, अतः यह शब्दश्लेष है।

परन्तु आचार्य दण्डीने अर्थद्वयप्रतीतिजनक इस श्लेषको प्रधानतया अर्थसापेक्ष देख कर केवल अर्थालङ्कार ही माना है।

शब्दका अनेकार्थत्व—अभिधावृत्तिसे अनेकार्थप्रतिपादकत्व माना जाता है, वह अनेकार्थप्रतिपादकत्व अभिधानियामक संयोगादिकोंके अभावमें ही संभव होता है, जहाँ अनेकार्थक शब्दप्रयोग होने पर भी संयोगप्रकरणादि द्वारा एकार्थमें अभिधा नियन्त्रित हो जाती है वहाँ श्लेष नहीं होता, जैसे—'भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोर्विशालवंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसङ्ग्रहस्य। यस्यानुपप्लवगतेः परवारणस्य दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत्' इस उदाहरणमें राजारूप अर्थमें अभिधानियन्त्रण हो जाने पर हाथीरूप अर्थ श्लेष द्वारा नहीं, व्यञ्जना द्वारा प्रतीत होता है—व्यङ्ग्य होता है।

यह श्लेष दो प्रकारका है—अभिन्नपद और अभिन्नपदप्राय। शक्यतावच्छेदक भिन्न होने पर भी एकप्रकृति-प्रत्ययादिघटित होनेसे अभिन्न पदों वाला अभिन्नपद कहलाता है, और प्रकृतिप्रत्ययादि भिन्न होनेसे भिन्नपदप्राय।

अभिन्नपद स्थलमें अभङ्ग श्लेष, भिन्नपदप्राय स्थलमें सभङ्ग श्लेष होता है। सभङ्ग श्लेष—

भिन्नपद श्लेष अधिक चमत्कारकारी होता है, उसे कवियोंका आदरातिशय प्राप्त है, अतः उसकी बहुलता बतानेके लिये 'प्राय' शब्दका निवेश कर दिया गया है।

काव्यप्रकाशादिमें शब्दश्लेषके आठ भेद किये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक समङ्गाभङ्ग श्लेष की भी कल्पना की गई है, इनके उदाहरण वहीं देखें ॥ ३१० ॥

असावुदयमारूढः कान्तिमान् रक्तमण्डलः ।
राजा हरति लोकस्य[1] हृदयं मृदुभिः करैः ॥ ३११ ॥

अभिन्नपदं श्लेषमुदाहरति—**असाविति**। उदयम् उन्नतिम् उदयाचलञ्च आरूढः प्राप्तः, कान्तिमान् सुन्दरतनुः किरणशाली च, रक्तमण्डलः अनुरक्तप्रजावर्गः लोहिताभाबिम्बश्च असौ राजा प्रभुश्चन्द्रमाश्च मृदुभिः सुखप्रदेयैः शीतलैश्च करैः राजग्राह्यभागैः किरणैश्च लोकस्य हृदयं हरति वशीकरोति। अत्र प्रकरणादिकृताभिधानियन्त्रणाभावात् राजचन्द्रौ द्वावपि वाच्यौ, उदयादिश्लिष्टपदेष्वपि एकप्रकृतिप्रत्ययादिनिष्पाद्यत्वरूपमभिन्नत्वमिति भवति अभिन्नपदश्लेषत्वम् ॥ ३११ ॥

उदय—प्रतापप्रकर्ष तथा उदयाचलको प्राप्त, कान्तिमान्—रमणीय रूप तथा प्रभाशाली, रक्तमण्डल–अनुरक्त प्रजावर्ग और लोहितबिम्ब यह राजा–चन्द्रमा अपने हलके करों अथवा शीतल किरणोंसे समस्त लोकके हृदयको आकृष्ट करता है।

इस उदाहरणमें प्रकरणादिकृत नियन्त्रणाभाव होनेसे राजा और चन्द्रमा दोनों ही समान भावसे वाच्य हैं, उसमें भी उदयादि श्लिष्ट पद एकप्रकृति-प्रत्ययादिसाध्य हैं, अत एव श्लेषालङ्कारका अभिन्नपद श्लेष नामक भेद हुआ ॥ ३११ ॥

दोषाकरेण सम्बध्नन्नक्षत्रपथवर्त्तिना ।
राज्ञा प्रदोषो मामित्थमप्रियं किं न बाधते ॥ ३१२ ॥

भिन्नपदं श्लेषमुदाहरति—**दोषाकरेणेति**। प्रदोषः सन्ध्यासमयो निशाप्रारम्भकालः नक्षत्रपथवर्त्तिना आकाशस्थितेन दोषाकरेण रजनीकरेण राज्ञा चन्द्रमसा सम्बध्नन् संयुज्यमानः सन् अप्रियं प्रियाविरहितं मां किन्न बाधत अपि तु बाधत एवेति प्रदोषपक्षेऽर्थः, कोऽपि प्रकृष्टदोषयुक्तः दोषाकरेण सकलदोषनिधिना नक्षत्रपथवर्त्तिना क्षत्रियोचितमार्गतश्च्युतेन सम्बध्नन् सम्बन्धं मैत्र्यादिकं स्थापयन् अप्रियं शत्रुभूतं मां किन्न बाधते नोपतापयति, अवश्यं तापयतीत्यर्थः। अत्र दोषाकरादिपदानां प्रकृतिप्रत्ययादिभेदेन भिन्नभिन्नार्थप्रतिपादकत्वात्सभङ्गपदश्लेषता ॥ ३१२ ॥

हिन्दी—'दोषाकरेण' यह सभङ्गपद श्लेषका उदाहरण है। इसका एक पक्षमें यह अर्थ है कि नक्षत्रपथवर्ती—आकाशचारी दोषाकर—रजनीकर राजा चन्द्रमासे सम्बन्ध स्थापित करनेवाला यह निशाका प्रारम्भकाल प्रियाविरही मुझको क्या नहीं बाधित करता है? दूसरा अर्थ है कि यह प्रदोष—नाना तरहके बड़े बड़े अवगुणोंवाला आदमी दोषोंके आकर—खानस्वरूप तथा क्षत्रियोचित मार्गसे च्युत इस राजासे सम्बन्ध स्थापित करके शत्रुता करनेवाले मुझको नहीं सताता है क्या? अर्थात् अवश्य सताता है।

इस उदाहरणमें दोषाकरादि श्लिष्ट पद प्रकृतिप्रत्ययादिके भिन्न होने से भिन्न-भिन्न अर्थोंको कहता है अतः यह सभङ्गश्लेष हुआ।

यद्यपि इस उदाहरणमें राजशब्दमें अभङ्गश्लेष ही है, इस तरह इसे किस प्रकारमें गिना जाय,

१. सर्वस्य।

यह बात उठती है, परन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि अधिकपदोंमें सभङ्गश्लेष देखकर इसे सभङ्गपद श्लेष ही माना गया।

अर्वाचीन आचार्यगण उभयात्मक श्लेष मानते हैं, उनके अनुसार तो यह निर्बाध रूपमें सभङ्गाभङ्ग श्लेषका उदाहरण माना जायगा। सभङ्गपदश्लेषका शुद्ध उदाहरण—
'पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव। विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम् ॥'
यह है। इसमें श्लेष वाले सभी पद सभङ्ग ही हैं ॥ ३१२ ॥

उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः।
प्रागेव दर्शिताः श्लेषा दर्श्यन्ते केचनापरे ॥ ३१३ ॥

प्रधानभूतं श्लेषं निरूप्य अलङ्कारान्तरस्याङ्गभूतोऽपि श्लेषश्चमत्कारमावहतीति बुबोधयिषयाऽऽह—**उपमेति**। उपमारूपकाक्षेपव्यतिरेकादिगोचराः एतदलङ्कारसहचरिताः श्लेषाः प्रागेव तत्तदलङ्कारोदाहरणप्रसङ्गे दर्शिताः, केचन अपरे प्रोक्तालङ्कारभिन्नालङ्काराङ्गभूता श्लेषाः दर्श्यन्ते ॥ ६१३ ॥

हिन्दी—प्रधानभूत श्लेषका सब प्रकार निरूपण किया जा चुका, इसके आगे यह बताना है कि श्लेषालङ्कार अन्यान्य अलङ्कारोंका अङ्ग होकर भी चमत्कारक होता है, इस सम्बन्धमें उपमा, रूपक, आक्षेप, व्यतिरेक आदि अलङ्कारोंका अङ्गभूत श्लेष तत्तदलङ्कारोदाहरणप्रसङ्गमें बताया जा चुका है, कुछ अन्यालङ्काराङ्गभूत श्लेषके स्थल बताये जा रहे हैं।

उपमाके साथ शब्दश्लेष और अर्थश्लेष दोनों तरहके श्लेष समानोपमा और श्लेषोपमामें दिखलाये गये हैं, जैसे—

'बाले वोद्यानमालेयं सालकाननशोभिनी' (समानोपमा)
'शिशिरांशुप्रतिस्पर्धि श्रीमत्सुरभिगन्धि च। अम्भोजमिव ते वक्त्रमिति श्लेषोपमा स्मृता।' (श्लेषोपमा)

रूपकके साथ श्लेष, जैसे—
'राजहंसोपभोगार्हं भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम्। सखि वक्त्राम्बुजमिदं तवेति श्लिष्टरूपकम् ॥'

आक्षेपके साथ श्लेष, जैसे—
'अमृतात्मनि पद्मानां द्वेष्टरि स्निग्धतारके। मुखेन्दौ तव सत्यस्मिन्नपरेण किमिन्दुना ॥'

साधारण धर्म प्रयोगवाले व्यतिरेकमें भी श्लेष होता है, जैसे—
'अभिन्नवेलौ गम्भीरावम्बुराशिर्भवानपि। असावञ्जनसंकाशस्त्वं तु चामीकरद्युतिः ॥'

'व्यतिरेकादिगोचराः' में आदि पदसे अर्थान्तरन्यास और समासोक्ति जानना चाहिये। अर्थान्तरन्यासमें श्लेष, जैसे—
'उत्पादयति लोकस्य प्रीतिं मलयमारुतः। ननु दाक्षिण्यसम्पन्नः सर्वस्य भवति प्रियः ॥'

समासोक्तिमें श्लेष, जैसे—
'रूढमूलः फलभरैः पुष्णन्ननिशमर्थिनः। सान्द्रच्छायी महावृक्षः सोऽयमासादितो मया ॥' ३१३ ॥

अस्त्यभिन्नक्रियः कश्चिदविरुद्धक्रियोऽपरः।
विरुद्धकर्मा[1] चास्त्यन्यः श्लेषो नियमवानपि ॥ ३१४ ॥
नियमाक्षेपरूपोक्तिरविरोधी विरोध्यपि।
तेषां निदर्शनेष्वेव रूपमाविर्भविष्यति[2] ॥ ३१५ ॥

श्लेषप्रकारानलङ्काराङ्गभूतात्परिगणयति—**अस्तीति**। निगदव्याख्यातम्। तेषाम्

---
१. विरुद्धधर्मा। २. रूपव्यक्ति।

अत्रोक्तनामधेयानां श्लेषाणां रूपं स्वरूपम् निदर्शनेषु तत्तदुदाहरणेष्वेव आविर्भविष्यति स्फुटीभविष्यति ॥ ३१४-३१५ ॥

हिन्दी—अभिन्नक्रियश्लेष, अविरुद्धक्रियश्लेष, विरुद्धक्रियश्लेष, सनियमश्लेष, नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेष, अविरोधीश्लेष; विरोधीश्लेष इस प्रकारसे और भी श्लेष हैं, उनके उदाहरण दिये जायँगे, जिनमें उनके स्वरूप प्रकट होंगे ॥ ३१४-३१५ ॥

वक्राः[1] स्वभावमधुराः शंसन्त्यो रागमुल्वणम् ।
दृशो दूत्यश्च कर्षन्ति कान्ताभिः प्रेषिताः प्रियान् ॥ ३१६ ॥

अभिन्नक्रियश्लेषमुदाहरति—**वक्रा इति** । कान्ताभिः प्रेषिताः प्रक्षिप्ताः प्रहिताश्च, वक्राः कुटिलाः वक्रोक्तिनिपुणाश्च, स्वभावमधुराः अकृत्रिमसौन्दर्याः मधुरप्रकृतयश्च उल्वणं प्ररूढं रागं लोहितभावं प्रेमाणं च शंसन्त्यः सूचयन्त्यः कथयन्त्यश्च दृशो नेत्राणि दूत्यश्च प्रियान् कर्षन्ति आवर्जयन्ति । अत्र दृशो दूत्याश्च कर्षणैकक्रियान्वयात्तुल्ययोगिता, वक्रादिपदेषु श्लेषश्च तदङ्गभूत इति अभिन्नक्रियश्लेषोयम् ॥ ३१६ ॥

प्रियतमा द्वारा क्षिप्त तथा प्रेषित, वक्र—तिरछी तथा वक्रोक्तिनिपुण, स्वभावतः सुन्दर तथा मधुर प्रकृति वाली, बढ़े हुए रक्तत्व एवं अनुरागको प्रकट करने वाली दृष्टियाँ तथा दूतियाँ नायकोंको आकर्षित करती हैं ।

इस उदाहरणमें दृष्टि और दूतीका कर्षणस्वरूप एकक्रियामें अन्वयसे होने वाली तुल्ययोगिता है, वक्रादिपदमें वर्त्तमान श्लेष उसका अङ्ग है, इस तरहके श्लेषको अभिन्नक्रियश्लेष कहते हैं ।

अलङ्कारान्तरसहचरश्लेषकी प्रतिज्ञामें यह तुल्ययोगितासहचरश्लेष कहा गया है ॥ ३१६ ॥

मधुरा रागवर्धिन्यः कोमलाः कोकिलागिरः ।
आकर्ण्यन्ते मदकलाः श्लिष्यन्ते चासितेक्षणाः ॥ ३१७ ॥

अविरुद्धक्रियश्लेषमुदाहरति—**मधुरा इति** । मधुराः श्रुतिप्रियाः रागवर्धिन्यः उद्दीपकतया रागजनिकाः कोमलाः अपरुषाः मदकलाः मदमत्ताः कोकिलागिरः आकर्ण्यन्ते श्रूयन्ते, मधुराः सर्वावस्थाविशेषेषु माधुर्यं रमणीयतेति लक्षितमाधुर्यगुणशालिन्यः रागवर्धिन्यः प्रणयसमेधिन्यः कोमलाः सुकुमार्यः मदकलाः सौभाग्यगर्वशालिन्यश्च असितेक्षणाः नीलाभनयनकान्तयः कामिन्यः श्लिष्यन्ते आलिङ्ग्यन्ते, अत्र आश्लेषाकर्णनक्रिययोर्विभिन्नेन्द्रियजन्यत्वेनाविरोधादविरुद्धक्रियत्वं, श्लेषश्चात्र तुल्ययोगिताङ्गभूतो बोध्यः ॥

हिन्दी—कानोंको भली लगने वाली, उद्दीपक होनेसे आसक्तिको बढ़ाने वाली, अकठोर एवं मदमत्त कोकिलावाणी सुनी जाती हैं, और माधुर्यगुणसे पूर्ण अनुराग बढ़ाने वाली सुकुमारी तथा सौभाग्यगर्विता असितेक्षणा सुन्दरियाँ लिपटायी जाती हैं, आलिङ्गित होती है ।

इसमें आश्लेष और आकर्णन रूप क्रियायें अविरुद्ध हैं, अतः अविरुद्धक्रियश्लेष है, यहाँ भी श्लेष तुल्ययोगिताका अङ्ग है ॥ ३१७ ॥

रागमादर्शयन्नेष वारुणीयोगवर्द्धितम् ।
[2]तिरोभवति घर्मांशुरङ्गजस्तु[3] विजृम्भते ॥ ३१८ ॥

विरुद्धक्रियं श्लेषमुदाहरति—**रागमिति** । एषः दृश्यमानः घर्मांशुः सूर्यः वारुणीयोगवर्धितम् पश्चिमदिक्संबन्धेन समेधितं रागं लौहित्यम् आदर्शयन् प्रकाशयन् तिरोभवति

१. यत्र । २. परापतति । ३. जश्च ।

अस्तं गच्छति, अङ्गजः कामस्तु वारुण्या मदिराया योगेन सेवनमेन वर्धितम् रागम् आसक्तिम् आदर्शयन् प्रकाशयन् उज्जृम्भते उद्दीप्तो भवति । अत्र तिरोभवनविजृम्भणक्रिये विरुद्ध इति तुल्ययोगिताङ्गभूतोऽयं श्लेषो विरुद्धक्रियश्लेषः ॥ ३१८ ॥

हिन्दी—वारुणी-पश्चिमदिशाके सम्बन्धसे बढी हुई लालिमाको प्रकटित करता हुआ यह सूर्य छिप रहा है और मदिरापानसे बढ़ी हुई वनितासक्तिको प्रकटित करता हुआ कामदेव उद्दीप्त हो रहा है।

इस उदाहरणमें छिपना और उद्दीप्त होना परस्पर विरुद्ध हैं, अतः यह विरुद्धक्रियश्लेष है, इसमें भी तुल्ययोगिताका ही अङ्गभूत श्लेष है ॥ ३१८ ॥

निस्त्रिंशत्वमसावेव धनुष्येवास्य वक्रता ।
शरेष्वेव नरेन्द्रस्य मार्गणत्वं च वर्तते ॥ ३१९ ॥

सनियमश्लेषोदाहरणमाह—निस्त्रिंशत्वमिति । अस्य नरेन्द्रस्य राज्ञः निस्त्रिंशत्वम् निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गस्तस्य भावो निस्त्रिंशत्वम् त्रिंशदङ्गुलिपरिमाणाधिकपरिमाणत्वं निर्दयत्वं च असौ खड्गे एव, वक्रता कुटिलता धनुषि एव (तस्यैवाकर्षणादौ वक्रीभावात्), मार्गणत्वं बाणत्वं शरेष्वेव, मार्गणत्वं याचकत्वं च । अत्र राज्ञोऽसिरेव क्रूरो न स्वभावः, धनुरेव वक्रं न हृदयम् , बाणा एव मार्गणा न प्रजाजनाः इत्येवकारेण व्यवच्छेदनात्सनियमश्लेषः, स चैवात्र मुख्यभूतोऽपि ॥ ३१९ ॥

हिन्दी—इस नरेन्द्रकी तलवारमें ही निस्त्रिंशता—तीस अंगुलीसे अधिक परिमाणता अथवा निर्दयता है हृदय में निर्दयता नहीं, धनुषमें ही कुटिलता (आकर्षणादिकृत) है मनमें नहीं, बाणोंमें ही मार्गणता—याचकता है प्रयोजनमें नहीं।

इस उदाहरणमें प्रत्येकवाक्यस्थित एवकारसे द्वितीय वस्तुका व्यवच्छेद होता है अतः इसे सनियमश्लेष कहा जाता है। यहाँ श्लेष ही प्रधान अलङ्कार है।

कुछ टीकाकारोंने यहाँ परिसंख्याको प्रधान अलङ्कार माना है और श्लेषको उसीका अङ्ग कहा है, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि दण्डीने तो परिसंख्यानामक अलङ्कार नहीं माना है, इस स्थितिमें उनका यह अभिप्राय कैसे हो सकता है। अतः यहाँ सनियमश्लेष ही प्रधान है, उसीमें परिसंख्याका अन्तर्भाव दण्डीका अभिप्रेत जानना चाहिये ॥ ३१९ ॥

पद्मानामेव दण्डेषु कण्टकस्त्वयि रक्षति ।
अथवा दृश्यते रागिमिथुनालिङ्गनेष्वपि ॥ ३२० ॥

नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेषमुदाहरति—पद्मानामेवेति । त्वयि रक्षति पालयति सति पद्मानां कमलानाम् एव दण्डेषु कण्टकः (प्रजानां तव वा कण्टकोऽल्पशत्रुर्नास्ति), अथवा रागिमिथुनस्य अनुरागिणोः कामिनोः आलिङ्गनेषु परस्पराश्लेषु कण्टको रोमाञ्चः दृश्यते, अत्र पद्मानामेवेति नियमं कृत्वा अथवेति पक्षमुत्थाप्य तदाक्षेप उक्त इति नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेषोऽयं दीपकस्याङ्गभूतः, अत्र एकत्रोक्तस्य कण्टकस्य वाक्यद्वयप्रकाशकतया दीपकपरिस्फूर्तिर्जायते ॥ ३२० ॥

हिन्दी—आपके रक्षक होने पर कमलके नालोंमें ही कण्टक-कांटे रह गये हैं (प्रजाओंके कण्टक सब उखाड़ दिये गये), अथवा अनुरागी युवकयुवतियोंके परस्पर आलिङ्गनमें रोमाञ्चरूप कण्टक रह गये हैं।

इस उदाहरणमें 'पद्मानामेव' यह नियम करके अथवापक्षोत्थापनद्वारा उसीका प्रतिषेध किया

गया है, अतः इसे नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेष माना गया। यहाँ एक वाक्यमें उक्त कण्टकपदसे वाक्य-द्वयका प्रकाशन होता है अतः दीपककी परिस्फूर्त्ति होती है, श्लेष उसीका पोषक है ॥ ३२० ॥

महीभृद्भूरिकटकस्तेजस्वी नियतोदयः।
दक्षः प्रजापतिश्चासीत् स्वामी शक्तिधरश्च सः ॥ ३२१ ॥

अविरोधिश्लेषमाह—**महीभृदिति**। सः राजा महीभृत् पृथ्वीपालकः पर्वतश्च भूरिकटकः विशालस्कन्धावारः विपुलनितम्बश्च, तेजस्वी समधिकप्रतापः सूर्यश्च नियतोदयः प्रतिदिवसजायमानसमृद्धिः सततोदयश्च, दक्षः कर्मसु निपुणः ऋषिमुख्यश्च प्रजापतिः सृष्टिप्रवर्त्तकः प्रजापालकश्च, स्वामी प्रभुः कार्त्तिकेयश्च, शक्तिधरः प्रभावोत्साहमन्त्रजभेदेन शक्तित्रयसम्पन्नः शक्त्याख्यशस्त्रधारी च आसीत्। अत्र महीभृदादिश्लिष्टपदार्थाना परस्पराविरुद्धतयाऽविरोधिश्लेषोऽयं, प्रधानभूतोऽप्यत्र स एव ॥ ३२१ ॥

हिन्दी—वह राजा महीभृत् पृथ्वीपालक (पर्वत भी) भूरिकटक—विशालस्कन्धावारवाला एवं विपुलविस्तारवाला था, तेजस्वी प्रतापवान् (सूर्य भी) नियमपूर्वक प्रतिदिन उन्नतिशाली एवं प्रतिदिन उगनेवाला था, दक्ष सर्वकार्यसमर्थ (दक्षप्रजापति) प्रजाका प्रवर्त्तक—प्रजापालक भी था, एवं स्वामी प्रभु (कार्त्तिकेय) प्रभावोत्साहमन्त्रजभेदसे त्रिविधशक्तिसम्पन्न और शक्त्याख्यास्त्रभेदसे युक्त था।

यहाँ श्लिष्ट पदोंके अर्थोंमें परस्पर कुछ विरोध नहीं है, अतः इसे अविरोधिश्लेष कहा गया है। यहाँ श्लेष ही प्रधान भी है ॥ ३२१ ॥

अच्युतोऽप्यवृषच्छेदी राजाप्यविदितक्षयः।
देवोऽप्यविबुधो जज्ञे शङ्करोऽप्यभुजङ्गवान् ॥ ३२२ ॥
(इति श्लेषचक्रम्)

विरोधिश्लेषमुदाहरति—**अच्युतोऽपीति**। अच्युतः सन्मार्गात् अपरिभ्रष्टोऽपि अवृषच्छेदी अधर्मध्वंसकरः (अच्युतो विष्णुरपि अवृषच्छेदी वृषाख्यासुरभेदस्याहन्ता) राजा प्रभुरपि अविदितक्षयः अज्ञातसंपत्क्षयः (राजा चन्द्रोऽपि अविदितक्षयः क्षयाख्यरोगेणा परिचितः) देवः राजापि अविबुधः पण्डितजनसम्पर्करहितो न, (देवः अपि अविबुधो देवभिन्नः) शङ्करः लोककल्याणकर्त्ता अपि अभुजङ्गवान खलजनासेवितः, (शङ्करो हरः सन्नपि अभुजङ्गवान्सर्परहितश्च) जज्ञे जातः। अत्राच्युतादिपदानां विष्ण्वादिरूपे द्वितीयार्थे वृषच्छेद्यादिद्वितीयपदार्थस्यासत्त्वं विरुद्धमिति विरोधिश्लेषोऽयं विरोधाभासस्याङ्गभूतः ॥

हिन्दी—वह अच्युत सुमार्गसे च्युत नहीं होकर भी अधर्मविनाशक (विष्णु होकर भी वृषनामक असुरको नहीं मारनेवाला), राजा होकर भी धनक्षयसे रहित (चन्द्रमा होकर भी क्षयरोग से मुक्त), देव—प्रभु होकर भी बुधसे कभी भी अरहित (देव होकर भी अविबुध-देवेतर), शङ्कर लोककल्याणकर होकर भी खल जनोंसे अयुक्त (शिव होकर भी सर्पसे रहित) थे।

इस उदाहरणमें अच्युतादि पदोंके श्लेषद्वारा जब विष्ण्वादि अर्थ किये जाते हैं तब अवृषच्छेदी आदि विशेषणार्थोंसे विरोध होता है। अतः यह विरोधिश्लेष प्राधान्येन प्रतीत होनेवाले विरोधाभासका अङ्गभूत है ॥ ३२२ ॥

गुणजातिक्रियादीनां यत्तु[1] वैकल्यदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते ॥ ३२३ ॥

---

१. यत्र।

क्रमायातां विशेषोक्तिं लक्षयति—**गुणजातीति** । यत् विशेषस्य वर्णनीयनिष्ठवीर्याद्यतिशयस्य (कारणसामग्र्यभावेऽपि कार्यक्षमत्वरूपस्य) दर्शनाय ज्ञापनाय गुणजातिक्रियादीनाम् वैकल्यदर्शनम् अनपेक्षाप्रकाशनं सा विशेषोक्तिर्नाम इष्यते। यत्र वर्णनीयवस्तुनः समधिकप्रभावताख्यापनार्थं कार्यसिद्धौ अपेक्षितानां गुणक्रियादीनां वैकल्यं प्रदर्श्यते सा विशेषोक्तिः इत्यर्थः। विशेषाय प्रकर्षसूचनाय उक्तिः गुणक्रियादिवैकल्याभिधानं विशेषोक्तिरिति शब्दरहस्यम् ।

अतिशयोक्तौ वीर्याद्यतिशयप्रकाशनेऽपि वैकल्यं न प्रकाश्यते, विभावनायां च कारणान्तरं स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यते, न तु प्रस्तुतस्य विशेष इति ताभ्यामस्या भेदः। नव्यास्तु—'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः' इत्याहुः ॥ ॥ ३२३ ॥

हिन्दी—जहाँ पर वर्णनीय वस्तुके वीर्याद्यतिशयको प्रदर्शित करनेके लिये (कार्यसिद्धिमें अपेक्षित) गुणजातिक्रियादिका वैकल्य वर्णित हो उसे विशेषोक्ति नामक अलङ्कार कहते हैं। विशेषके लिये—उत्कृष्टता बतानेके लिये उक्ति—गुणक्रियादिन्यूनताकथन विशेषोक्ति, यह अक्षरलभ्यार्थ ही इसका स्पष्ट लक्षण है ।

सरस्वतीकण्ठाभरणकारने भी यही लक्षण स्वीकार किया है। वामनाका लक्षण है:—'एकगुणहानकल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः ।'

विभावनामें प्रधानतया कारणान्तर विभावित होता है या स्वाभाविकत्व प्रकाशित किया जाता है, विशेष प्रदर्शनको प्रधानता नहीं दी जाती और अतिशयोक्तिमें प्रस्तुत वस्तुका विर्याद्यतिशयमात्र कहा जाता है, गुणादिवैकल्य नहीं, यही विभावना और अतिशयोक्तिसे इसका भेद है।

अर्वाचीन आचार्योंने कारणोंके रहनेपर भी कार्यके नहीं होनेमें विशेषोक्ति स्वीकार की है ॥३२४॥

न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुष्पधन्वनः ।
तथापि जितमेवासीदमुना भुवनत्रयम् ॥ ३२४ ॥

गुणवैकल्यविशेषोक्तिमुदाहरति—**न कठोरमिति** । पुष्पधन्वनः कामस्य आयुधम् अस्त्रम् न कठोरं कठिनं न वा तीक्ष्णम् शितधारम् , तथापि जयायापेक्षितस्य कठोरतीक्ष्णायुधत्वस्याभावेऽपि अमुना कामेन भुवनत्रयम् जितमेवासीत् ।

अत्र कामस्य पराक्रमातिशयख्यापनाय तदस्त्राणां काठिन्यतीक्ष्णत्वरूपगुणवैकल्यमुच्यत इति विशेषोक्तिः ॥ ३२४ ॥

हिन्दी—पुष्पधन्वाके अस्त्र न तो कठोर हैं, न वा तीक्ष्ण है, फिर भी उसने तीनों भुवनोंको वशमें कर लिया है।

इस उदाहरणमें कामदेवके पराक्रमातिशयको प्रकाशित करनेके लिये उसके अस्त्रोंमें कठोरता एवं तीक्ष्णता रूप गुणों की विकलता-न्यूनता का वर्णन किया गया है अतः गुणवैकल्यविशेषोक्ति है।

न देवकन्यका नापि गन्धर्वकुलसम्भवा ।
तथाप्येषा तपोभङ्गं विधातुं वेधसोऽप्यलम् ॥ ३२५ ॥

जातिवैकल्ये विशेषोक्तिमुदाहरति—**देवकन्यकेति** । एषा देवकन्यका न (अस्ति) न वा एषा गन्धर्वकुलसंभवा गन्धर्ववंशोत्पन्ना (अस्ति) तथापि एषा वेधसः ब्रह्मणः अपि तपोभङ्गं तपस्याच्युतिं विधातुं कर्तुम् अलं समर्था ।

देवत्वगन्धर्वत्वराहित्येऽपि ब्रह्मणस्तपस्याभञ्जनसामर्थ्योक्त्या तस्याः रूपगुणातिशयः

प्रतीयते। अत्र प्रस्तुताया नायिकाया जातिवैकल्येन विशेषो दर्शित इति जातिवैकल्यविशेषोक्तिरियम् ॥ ३२५ ॥

हिन्दी—न तो यह देवकन्या है और न गन्धर्ववंशोत्पन्ना है, फिर भी यह ब्रह्माके तप का भी भङ्ग करनेमें समर्थ है।

यहाँ देवत्व तथा गन्धर्ववंशोद्भवत्वके न होने पर भी ब्रह्मतपोभञ्जनसमर्थत्व बताकर उस नायिकाकी उत्कृष्ट रूपसंपत्ति अभिव्यञ्जित की गई है। यहाँ वर्णनीय नायिकाके जातिवैकल्यसे विशेष बताया गया है, अतः इसे जातिवैकल्यविशेषोक्ति कहते हैं ॥ ३२५ ॥

न बद्धा भ्रुकुटिर्नापि स्फुरितो दशनच्छदः।
न च रक्ताभवद्दृष्टिर्जितं[1] च[2] द्विषतां कुलम्[3] ॥ ३२६ ॥

क्रियावैकल्ये विशेषोक्तिमुदाहरति—**न बद्धेति**। भ्रुकुटिः भ्रुवोः कुटिलता न बद्धा न कृता, दशनच्छदः अधरः न स्फुरितः न चलितः, दृष्टिः रक्ता लोहिता न अभवत्, तथापि च द्विषतां कुलं जितम्। अत्र भ्रूभङ्गाद्यभावेऽपि शत्रुकुलाभिभवोक्त्या राज्ञो महाबलत्वं व्यञ्जितम्। अत्र च भ्रूभङ्गादिक्रियावैकल्ये विशेषाभिधानात् क्रियावैकल्य विशेषोक्तिः ॥ ३२६ ॥

हिन्दी—न भ्रुकुटि वक्रा की गई, न ओठ फड़के, न आँखें लाल हुईं, फिर भी शत्रुकुल पराजित कर लिया गया।

इस उदाहरणमें भ्रूभङ्गादिके अभावमें भी शत्रुकुलका अभिभव कहने से राजाका महाबलत्व व्यक्त होता है, भ्रूभङ्ग आदि क्रियाके वैकल्यमें विशेष कथन होनेसे इसे क्रियावैकल्यविशेषोक्ति कहते हैं।

इस उदाहरणमें बन्धन और स्फुरण तो क्रिया है, परन्तु रक्तत्व गुण है, अतः यह शुद्ध क्रियावैकल्यविशेषोक्तिका उदाहरण नहीं है, किन्तु क्रियावैकल्यविशेषोक्ति और गुणवैकल्यविशेषोक्तिका सङ्कर है। शुद्ध क्रियावैकल्यविशेषोक्तिका उदाहरण यह दिया जा सकता है—
'नोपभोगो न वा दानं बन्धूनां भरणं न वा। तथापि गुरुतां धत्ते नृणां संरक्षितं धनम् ॥' २२६ ॥

न रथा न च मातङ्गा न हया न च पत्तयः।
स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव जीयते जगतां त्रयम् ॥ ३२७ ॥

द्रव्यवैकल्ये विशेषोक्तिमाह—**न रथा इति**। न रथाः यानानि, न च मातङ्गाः हस्तिनः, न हयाः अश्वाः, न च पत्तयः पदातयः, स्त्रीणाम् सुन्दरीणाम् अपाङ्गदृष्ट्या कटाक्षेणैव जगतां त्रयम् लोकत्रयं जीयते वशीक्रियते। अत्र रथादिजयसाधनद्रव्याणामभावेऽपि जगत्त्रयविजयः केवलया दृशा विहित इति द्रव्यवैकल्यविशेषोक्तिरेषा ॥ ३२७ ॥

हिन्दी—न रथ थे न हाथी, न घोड़े थे और न पैदल सैनिक ही थे, फिर भी स्त्रियोंके कटाक्षमात्रसे तीनों लोक विजित कर लिये गये।

इस उदाहरणमें विजयसाधनतया सम्मत चतुरङ्ग सैन्यके न रहने पर भी स्त्रियोंके कटाक्षमात्रसे त्रिभुवनविजय वर्णित है, इससे स्त्रियोंके मनोमोहनसामर्थ्यकी प्रतीति होती है, अतः यह द्रव्यवैकल्यविशेषोक्तिका उदाहरण है ॥ ३२७ ॥

एकचक्रो रथो यन्ता विकलो विषमा हयाः।
आक्रामत्येव तेजस्वी तथाप्यर्को नभस्तलम् ॥ ३२८ ॥

---

१. ध्वस्तं। २. तत्। ३. बलम्।

सैषा हेतुविशेषोक्तिस्तेजस्वीति विशेषणात् ।
अयमेव क्रमोऽन्येषां भेदानामपि कल्पने ॥ ३२९ ॥

(इति विशेषोक्तिचक्रम्)

हेतुविशेषोक्तिं प्रदर्शयति—**एकचक्र इति** । रथः एकचक्रः (यथाह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्) इत्युक्त्या गन्तुमसमर्थ एव तादृशो रथो, यन्ता च विकलः अङ्गविकलः अनूरुनाम्ना प्रसिद्धः, हया अश्वाश्च विषमाः सप्तसंख्यकाः, एतेन तेषामप्यकार्यकरत्वं व्यञ्जितम्, तथापि एवंसामग्रीवैकल्येऽपि तेजस्वी अर्कः सूर्यः नभस्तलम् विस्तीर्णं व्योम-मण्डलम् आक्रामति पारयति एव । अत्र विकलसाधनस्यापि रवेराकाशपारगमनकथनेन तस्य सामर्थ्यातिशयप्रतिपत्तिस्तत्र च हेतुस्तेजस्वीति विशेषणेनोक्त इति हेतुविशेषोक्ति-रेषा ॥ ३२८ ॥

उदाहरणं विशदयति—**सैषेति** । तेजस्वीति विशेषणात् सैषा उक्तरूपा हेतुविशेषो-क्तिर्नाम, हेयोस्तेजस्वित्वस्योपन्यसनाद्धेतुविशेषोक्तिः, अन्येषामपि भेदानां विशेषोक्तिप्रका-राणां कल्पनेऽयं पूर्वोक्तरूप एव क्रमो मार्गो बोध्यः ॥ ३२९ ॥

हिन्दी—सूर्यके रथमें एक ही चक्का है, वाहक भी अङ्गविकल है—अनूरु है, घोड़े विषम सप्त-संख्यक हैं, फिर भी तेजस्वी होनेके कारण सूर्य आकाशमण्डलको लांघ जाता ही है ।

इस उदाहरणमें रथादि साधनोंकी विकलतासे यह बताया गया कि सूर्य असाधारण सामर्थ्य रखते हैं, उसमें हेतु तेजस्वी होना तेजस्वी शब्दसे कहा गया है, अतः इसे हेतुविशेषोक्ति नामक प्रभेद कहा गया है ।

भोजराजने 'न रथा न च मातङ्गाः' इसमें द्रव्यवैकल्यविशेषोक्ति तथा—'एकचक्रो रथो यन्ता' में वैकल्यवद् द्रव्यविशेषोक्ति स्वीकार की है ।

'एकचक्रो रथो यन्ता' इसका भाव लेकर भोजप्रबन्धमें एक श्लोक बनाया गया है, जो इसके अर्थको स्पष्ट कर देता है, जैसे—

'रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगा निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि ।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥'

पूर्वोक्त—'एकचक्रो रथो यन्ता' इस श्लोकमें 'तेजस्वी' विशेषण हेतुप्रकाशकरूपमें दिया गया है अतः यह हेतुविशेषोक्ति नामक प्रभेद हुआ । इसी प्रकार विशेषोक्तिके अन्यान्य प्रभेदोंकी कल्पना की जा सकती है । इसका तात्पर्य यह है कि जैसे—'एकचक्रो रथः' इत्यादि उदाहरणमें हेत्वलङ्कारसहित विशेषोक्ति होती है, उसी तरह अन्यान्य अलङ्कारोंके साथ भी विशेषोक्ति समावेशित हो सकती है, जैसे रूपकके साथ विशेषोक्ति—'भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः' या—'द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्' । इन उदाहरणोंमें रूपकसहचर विशेषोक्ति स्फुट है ॥ ३२८-३२९ ॥

विवक्षितगुणोत्कृष्टैर्यत्समीकृत्य कस्यचित् ।
कीर्तनं स्तुतिनिन्दार्थं सा मता तुल्ययोगिता ॥ ३३० ॥

तुल्ययोगितां निर्वक्ति—**विवक्षितेति** । विवक्षिताः वर्णनीयगतत्वेन वक्तुमिष्टाः ये गुणाः तैर्गुणैरुत्कृष्टैः प्रख्यातैरन्यैः समीकृत्य तुलामानीय स्तुतिनिन्दार्थं स्तुतये निन्दायै वा कस्य-चिद्यत् कीर्तनं कथनं सा तुल्ययोगिता नाम । तथा च प्रस्तुते यान् गुणान्विवक्षति,

१. गुणोत्कर्षैः । २. स्मृता ।

तैर्गुणैः प्रसिद्धैः प्रस्तुतैः पुरुषादिभिः समं तुलनामारोप्य स्तुतये निन्दायै वा प्रस्तुतस्य कीर्त्तनं तुल्यगुणयोगात्तुल्ययोगितानामालङ्कारः इति लक्षणं पर्यवस्यति ।

विवक्षितगुणोत्कृष्टैरिति बहुवचनमतन्त्रम् , तेन द्वाभ्यामेकेन वा समीकृत्याभिधानेऽपि तुल्ययोगिता भवत्येवेति बोध्यम् ।

वामनोऽपि—'विशिष्टेन साम्यार्थमेककालक्रियायोगस्तुल्ययोगिता' इति सूत्रयन्नवि-रुद्धमेव लक्षणमभिप्रैति ।

उपमायां शाब्दी साम्यप्रतीतिरत्र तु सर्वेषां प्रस्तुताप्रस्तुतानां समभावेन शाब्दबोध-विषयत्वे जाते पर्यवसाने पार्ष्ठिकी सादृश्यप्रतीतिरित्यनयोर्भेदः ॥ ३३० ॥

हिन्दी—जहाँ प्रस्तुत वस्तुमें विवक्षित गुणसे विख्यात अप्रस्तुतत वस्त्वन्तरके साथ समता बताकर प्रस्तुतकी स्तुति या निन्दाके उद्देश्यसे उसका वर्णन हो उसे तुल्ययोगिता अलङ्कार कहते हैं, तात्पर्य यह है कि प्रस्तुतमें जिन गुणोंको बताना चाहते हैं उन्हीं गुणोंसे विख्यात अप्रस्तुतोंके साथ समता बताकर यदि स्तुत्यर्थ या निन्दार्थ प्रस्तुतका वर्णन किया जाय तो तुल्यगुणयोग होनेसे तुल्ययोगिता नामक अलङ्कार होता है।

'गुणोत्कृष्टैः' पदमें का बहुवचन अविवक्षित है, अतः एक या दो के साथ समतामें भी तुल्य-योगिता होने में कुछ बाधा नहीं है।

वामनका तुल्ययोगितालक्षण भी इसी तरह का है।

उपमा (तुल्ययोगोपमा—'दिवो जागर्त्ति रक्षायै पुलोमारिर्भुवो भवान्' इसमें) में वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थकी साम्यप्रतीति वृत्त्युपस्थिततया शाब्दी होती है, परन्तु तुल्ययोगितामें प्रस्तुत और अप्रस्तुतका शाब्दबोध हो जाने पर पर्यवसानमें पार्ष्ठिक सादृश्यप्रतीति होती है, यही दोनोंमें भेद है ॥ ३३० ॥

यमः कुबेरो वरुणः सहस्राक्षो भवानपि ।
[1]बिभ्रत्यनन्यविषयां लोकपाल इति श्रुतिम् ॥ ३३१ ॥

स्तुतौ तुल्ययोगितामुदाहरति—**यम इति** । यमः, कुबेरः, वरुणः, सहस्राक्ष इन्द्रः, भवान् अपि, अनन्यविषयाम् अनन्यगामिनीम् 'लोकपालः' इति श्रुतिं प्रसिद्धिं बिभ्रति धारयन्ति । अत्र प्रस्तुते राजनि लोकपालत्वरूपो गुणी वक्तुमिष्टस्तेन च गुणेनोत्कृष्टैर्यमा-दिभिः समतामानीय राज्ञः स्तुत्यर्थं कीर्त्तनं कृतमिति स्तुतौ तुल्ययोगिता ॥ ३३१ ॥

हिन्दी—यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा आप अनन्यगामिनी दिक्पाल इस प्रतिष्ठाको धारण करते हैं। जैसे यमादि अनन्यगामी दिक्पालत्वसे ख्यात हैं, उसी तरह आप भी दिक्पालरूपमें प्रसिद्ध हैं।

यहाँ वर्णनीय राजामें दिक्पालत्वरूप गुण विवक्षित है, उसी दिक्पालत्वरूप गुणसे प्रख्यात यमकुबेरादिके साथ समतया निर्दिष्ट करके स्तुत्यर्थ राजाका कीर्त्तन हुआ है, अतः इसे स्तुतितुल्य-योगिता कहते हैं ॥ ३३१ ॥

सङ्गतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितानि[2] च ।
क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ॥ ३३२ ॥

निन्दायां तुल्ययोगितामाह—**सङ्गतानीति** । मृगाक्षीणाम् सुन्दरीणां स्त्रीणाम् सङ्ग-तानि समागमाः, तडिद्विलसितानि विद्युदुन्मेषाश्च, स्वयम् स्वेनैवानुरागाधिक्येन घना-

१. बिभर्ति । २. तान्यपि ।

रब्धानि बलवता वेगेन प्रारब्धानि मेघेन प्रारब्धानि अपि क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति, तथा स्त्रीणां सङ्गतानि बलवतानुरागेण स्वतःप्रवृत्तान्यपि क्षणमात्रं तिष्ठन्ति, यथा घनेन मेघेन स्वतः-प्रारब्धा अपि विद्युदुन्मेषाः क्षणमात्रेणैव समाप्ता भवन्तीति भावः। अत्र चपलतया प्रसिद्धायाः विद्युत उन्मेषेण सह स्त्रीणां सङ्गमः कीर्त्यमानः स्पष्टं निन्दापात्रं भवतीति निन्दा-तुल्ययोगिता ॥ ३३२ ॥

हिन्दी—रमणियोंका सङ्गम अनुरागप्रकर्षसे स्वतः प्रारब्ध होने पर एवं प्रबल वेगसे होकर भी दो क्षण भी नहीं ठहर पाता है, और बिजलीका उन्मेष मेघद्वारा प्रारब्ध होने पर भी दो क्षण नहीं ठहर पाता है।

यहाँ प्रसिद्ध चञ्चला विद्युतके उन्मेषसे समकक्ष बनाकर स्त्रीसङ्गमका प्रतिपादन निन्दार्थ पर्यवसित होता है, अतः इसे निन्दातुल्ययोगिता कहा जाता है।

भोजराजने तुल्ययोगिता का एक नया रूप स्वीकार किया है, वे कहते हैं—सुखहेतु और दुःखहेतुके समवधानमें तुल्यरूपत्वकृत भी एक प्रकारकी तुल्ययोगिता मानी जाय, उनका लक्षण-उदाहरण निम्नलिखित है :—

लक्षण—'अन्ये सुखनिमित्ते च दुःखहेतौ च वस्तुनि। स्तुतिनिन्दार्थमेवाहुस्तुल्यत्वे तुल्ययोगिताम् ॥'

स्तुतिमें उदाहरण—

'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥'

निन्दामें उदाहरण—

'यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा। यश्चैनं गन्धमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः' ॥ ३३२ ॥

विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
¹विशेषदर्शनायैव स विरोधः स्मृतो यथा ॥ ३३३ ॥

क्रमागतं विरोधालङ्कारं लक्षयति—**विरुद्धानामिति**। विशेषस्य प्रस्तुतगतोत्कर्षस्य दर्शनाय बोधनाय एव यत्र विरुद्धानां परस्परसहवासाक्षमाणां पदार्थानां संसर्गदर्शनं सहावस्थानप्रदर्शनं स विरोधः विरोधनामालङ्कारः। अयमाशयः, विरोधो द्विविधः-प्ररूढः अप्ररूढश्च, यत्र बाधबुद्ध्यानभिभूतत्वं तत्र प्ररूढो विरोधः, यत्र च बाधबुद्ध्यभिभूतत्वं तत्राप्ररूढो विरोधः, तत्र प्रथमो दोषो द्वितीयश्चालङ्कारस्वरूपः, तथा च विरुद्धानां नाम विरुद्धत्वेन भासमानानां वस्तुतो विरोधाभावेऽपि विरोधितया प्रतीयमानानां पदार्थानां यत्र सामानाधिकरण्यं प्रतिपाद्यमानं सत्प्रस्तुतस्योत्कर्षं गमयति तत्र विरोधो नामालङ्कार इति। अयमेवाशयः—'विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः' इति वदतः प्रकाशकारस्यापि ॥ ३३३ ॥

हिन्दी—विशेष—प्रस्तुतगत उत्कर्ष प्रदर्शित करनेके लिये जहाँ विरुद्ध पदार्थोंका संसर्ग-एकत्रावस्थान वर्णन किया जाय, उसे विरोधनामक अलङ्कार कहा जाता है। आशय यह है कि आपाततः विरुद्ध प्रतीत होनेवाले पदार्थोंका यदि प्रस्तुतोत्कर्ष बतानेके लिये सामानाधिकरण्य प्रदर्शित करें तो विरोधालङ्कार होता है। काव्यप्रकाशमें-'विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः' ऐसा लक्षण किया गया है, जो इसके साथ मिलता-जुलता है। वामनने—'विरुद्धाभासत्वं विरोधः' कहकर इसका अनुमोदन ही किया है।

इसके भेदके सम्बन्धमें काव्यप्रकाशकारने कहा है कि—जातिका जातिगुणक्रियाद्रव्यसे विरोध होनेसे चार प्रकार, गुणका गुणक्रियाद्रव्यसे विरोध होनेसे तीन प्रकार, क्रियाका क्रिया और

१. विरोधसाधना।

द्रव्यसे विरोध होनेसे दो प्रकार और द्रव्यका द्रव्यसे विरोध होने पर एक प्रकार—इस तरह कुल दस भेद होते हैं।

दण्डीने यह क्रम नहीं कहा है, उनका भेदकरण थोड़ा स्थूल है। यह विरोध अपिशब्दाप्रयोगमें व्यङ्ग्य और अपिशब्दप्रयोगमें वाच्य रहता है॥ ३३३॥

कूजितं राजहंसानां वर्धते मदमञ्जुलम्।
क्षीयते च मयूराणां रुतमुत्क्रान्तसौष्ठवम्॥ ३३४॥

विरोधमुदाहरति—**कूजितमिति**। राजहंसानां पक्षिभेदानाम् मदमञ्जुलम् मदकलम् कूजितं शब्दो वर्धते, मयूराणाञ्च उत्क्रान्तसौष्ठवम् अपगतमनोहरत्वं रुतं शब्दः क्षीयते अपचीयते। अत्र कूजितरुतपदाभिलप्यस्य शब्दस्यैकस्य क्षयवृद्धिक्रिये विरुद्धे, तयोरेकत्र शब्दे सामानाधिकरण्यवर्णनाद् विरोधो नामालङ्कारः, तेन च सामानाधिकरण्यदर्शनेन प्रस्तुतस्य शरत्कालस्य तुल्ययोरपि बलाबलकारित्वकृतं वैशिष्ट्यम् प्रतिभासत इति बोध्यम्। अत्र क्रिययोर्विरोधः॥ ३३४॥

हिन्दी—राजहंसोंकी आवाज मदमञ्जुल होकर बढ़ती जाती है और मयूरोंकी वही आवाज अपने मनोहरत्वको खोकर घटती जा रही है। यह शरत्का वर्णन है। यह श्लोक—'शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम्' इस श्लोकार्धसे समता रखता है। इस उदाहरणमें कूजित और रुत शब्दसे कहे जानेवाले एक शब्दरूप अर्थमें वृद्धि और क्षयक्रियाका-जो विरुद्ध है—वर्णन किया गया है, जिससे शरत्का माहात्म्य प्रतीत होता है, अतः विरोधालङ्कार है। इस उदाहरणमें क्रियाओंका विरोध है॥ ३३४॥

प्रावृषेण्यैर्जलधरैरम्बरं दुर्दिनायते।
रागेण पुनराक्रान्तं[1] जायते जगतां मनः॥ ३३५॥

वस्तुगतगुणविरोधं दर्शयति—**प्रावृषेण्यैरिति**। प्रावृषेण्यैः वर्षाकाले जायमानैः जलधरैः अम्बरं दुर्दिनायते आकाशं मेघाच्छन्नतया श्यामलं जायते, जगतां जगति स्थितानां प्रजानां मनः पुनः रागेण (विषयासक्त्या) आक्रान्तं व्याप्तं जायते, लोहितं भवतीति प्रतीतिः। अत्र रागस्य लोहिततया श्यामत्वलोहितत्वगुणयोरेकत्र जलधरे विरुद्धत्वं, तेन च वर्षासमयस्य विशेषः प्रकाश्यते॥ ३३५॥

हिन्दी—वर्षाकालिक जलदोंसे आकाश आच्छन्न (श्यामल) हो रहा है, और लोगोंका हृदय राग (लाली-प्रेम) से आक्रान्त हुआ जा रहा है। इस उदाहरणमें जलधररूप एक अर्थमें श्यामता और लालीरूप विरुद्ध धर्मोका संसर्ग वर्णित हुआ है, अतः इसे विरोधालङ्कार कहा गया है॥ ३३५॥

तनुमध्यं पृथुश्रोणि रक्तौष्ठमसितेक्षणम्[2]।
नतनाभि वपुः स्त्रीणां कन्न हन्त्युन्नतस्तनम्॥ ३३६॥

अवयवगतविरोधमुदाहरति—**तनुमध्यमिति**। स्त्रीणां सुन्दरीणां तनुमध्यं कृशकटिदेशम्, पृथुश्रोणि वृहन्नितम्बम्, रक्तौष्ठम् रक्तवर्णाधरं तथा असितेक्षणम् श्यामनयनम्, नतनाभि गभीरनाभिविवरम्, उन्नतस्तनम् तुङ्गकुचं च वपुः शरीरं कं पुमांसं न हन्ति न पीडयति, अत्र तनुत्वबृहत्त्वयोः रक्तत्वासितत्वयोः नतत्वोन्नतत्वयोश्च गुणयो-

---

१. पुनरुत्सिक्तं। २. रक्तोष्ठम्।

विरोधः प्रतिभासते, परं तेषामाश्रयभेदेन व्यवस्थिततया विरोधः परिह्रियते। अयं च विरोधो वर्णनीयाया वनिताया उत्कर्षं प्रकाशयति ॥ ३३६ ॥

हिन्दी—मध्यभागमें—कटिदेशमें कृश तथा नितम्बमें विशाल, ओठमें रक्त एवं नयनभागमें श्याम, नाभिमें गंभीर एवं स्तनमें उन्नत नारीका रूपसौन्दर्य किस पुरुषको नहीं सताता है। यहाँ तनुत्व और विशालत्व, रक्तत्व एवं श्यामत्व, नतत्व और उन्नतत्व परस्पर विरुद्ध हैं, फिर भी एक नायिकामें वर्णित हुए हैं, अतः विरोधालङ्कार है, जिससे नायिकाका असाधारण सौन्दर्य व्यक्त होता है। इस श्लोककी छाया गोविन्द ठक्कुरके निम्नलिखित श्लोकपर पड़ती हुई-सी प्रतीत होती है—

'अकृशं कुचयोः कृशं वलग्ने विपुलं चेतसि विस्तृतं नितम्बे।
अधरेऽरुणमाविरस्तु चित्ते करुणाशालि कपालि भागधेयम्' ॥ ३३६ ॥

मृणालबाहुरम्भोरु पद्मोत्पलमुखेक्षणम्।
अपि ते रूपमस्माकं तन्वि तापाय कल्पते ॥ ३३७ ॥

विषमविरोधमुदाहरति—**मृणालेति**। हे तन्वि कृशाङ्गि मृणालबाहु कमलनालोपमशीतलभुजम्, रम्भोरु कदलीसमानजङ्घम्, पद्मम् इव उत्पले इव च मुखम्, ईक्षणे नयने च यत्र तत्तथा, पद्ममुखमुत्पलनयनञ्चेत्यर्थः, एतादृशमपि ते रूपम् मृणालरम्भापद्मोत्पलादिशीतलपदार्थप्रकारोपमितमपि ते तव रूपम् अस्माकं त्वत्सङ्गवञ्चितानां तापाय सन्तापातिशयाय जायते। अत्र शीतलोपमेयैरङ्गैः सन्तापजननोक्त्या विरोधः ॥३३७॥

हिन्दी—हे कृशाङ्गि, मृणालके समान बाहुवाला, कदलीके समान जङ्घावाला, कमलके समान मुखवाला एवं नील कमलके समान नयनों वाला होकर भी तुम्हारा यह रूप हमलोगोंके (वियुक्तों या पानेमें अशक्तोंके) लिये सन्तापका कारण हो रहा है।

जो रूप इतना शीतल-मृणाल-कदली-पद्म-उत्पलके समान है, वह सन्ताप प्रदायक हो यह विरुद्ध है ॥ ३३७ ॥

उद्यानमारुतोद्धूताश्चूतचम्पकरेणवः।
उदश्रयन्ति पान्थानामस्पृशन्तोऽपि लोचने[1] ॥ ३३८ ॥

असङ्गतिविरोधमुदाहरति—**उद्यानेति**। उद्यानमारुतेन पुष्पवाटिकापवनेन उद्धूताः चालिताः चूतानाम् आम्राणाम् चम्पकानाञ्च रेणवः परागाः लोचने पान्थानां पश्यतां वियोगिनां नयने अस्पृशन्तोऽपि उदश्रयन्ति सबाष्पे कुर्वन्ति। अत्र चूतचम्पकरेणूनाम् स्पर्शाभावेऽपि अश्रूदयकारणत्वं विरोधः, स चोद्दीपकतया सपरिहारः। अनेन वियोगिनामुत्कण्ठातिशयध्वनिः ॥ ३३८ ॥

हिन्दी—पुष्पवाटिकाकी वायुसे सञ्चालित होकर उड़नेवाली आम्रमञ्जरी तथा चम्पककी धूल (पराग) बिना स्पर्श किये ही वियोगियोंकी आँखोंको अश्रुपूर्ण बना देती है। आम्रमञ्जरी एवं चम्पकके परागको देखकर उद्दीपितकन्दर्प पथिकजन आँखोंमें आँसू भरकर उद्विग्न हो जाते हैं।

इस उदाहरणमें—पुष्पपराग आँखको स्पर्श नहीं करता है फिर भी आँखें आँसूसे भर जाती हैं—यही असङ्गतिमूलक विरोध है, जिससे समयकी मादकता व्यक्त होती है ॥ ३३८ ॥

कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि ॥ ३३९ ॥

---

१. लोचनम्।

इत्यनेकप्रकारोऽयमलङ्कारः प्रतीयते ।
(इति विरोधचक्रम्)

श्लेषमूलं विरोधमुदाहरति—**कृष्णेति** । हे कलभाषिणि मधुरवचने, कृष्णे भगवति वासुदेवे अर्जुने तृतीयपाण्डवे चानुरक्ता धृतप्रणयापि कर्णावलम्बिनी कानीने राधेये आश्रिता (इति विरोधः, कृष्णार्जुनानुरक्ताया दृष्टेः कर्णाश्रितत्वानुपपत्तेः), कृष्णा अंशतः श्यामप्रभा अंशतोऽर्जुना धवला अनुरक्ता प्रान्तभागे लोहितवर्णा च (इति विरोध-परिहारः) ते तव दृष्टिः कस्य विश्वसनीयत्वं विश्वासपात्रत्वं याति, विरुद्धपक्षद्वयाश्रितायां तव दृष्टौ को विश्वासं कुर्यादिति । अत्र कृष्णार्जुनानुरक्तायाः कर्णाश्रयणं विरुद्धमिति क्रिया-विरोधः, स च श्लेषमूलः ॥ ३३९ ॥

उपसंहरति—**इत्यनेकेति** । इति पूर्ववर्णितदिशा अयं विरोधो नाम अलङ्कारः अनेक-प्रकारो बहुविधः, स च दर्शित एव ॥

हिन्दी—हे मधुरभाषिणि, तुम्हारे ये नयन कृष्णार्जुनानुरक्त—कृष्ण एवं अर्जुन पर अनुराग रखनवाले होकर भी कर्णका अवलम्बन करते हैं, इनपर कौन विश्वास करेगा ? तुम्हारे नयन काले, उजले और प्रान्तभागमें रक्तवर्ण हैं, श्वेतश्यामरतनार हैं फिर भी कान तक आये हैं, इनका विश्वास कौन करेगा ? इस उदाहरणमें कृष्णार्जुनानुरक्तका कर्णाश्रित होना विरुद्ध है, यह श्लेषकृत विरोध है, श्वेतश्यामरतनार नयन आकर्ण व्याप्त हैं, इस अर्थमें विरोधपरिहार हो जाता है ॥ ३३९ ॥

इस प्रकारसे यह विरोधनामक अलङ्कार अनेक प्रकारका प्रतीत होता है, जिन प्रकारोंका परिचय कराया गया, भोजराजने एकके दूसरेसे उलझानेमें—परस्परसापेक्षविरोधस्थलमें ग्रथित विरोध मानकर यह उदाहरण दिया है—

'दिग्वासा यदि तत् किमस्य धनुषा, शस्त्रस्य किं भस्मना,
भस्मस्याथ किमङ्गना, यदि च सा कामं परिद्वेष्टि किम् ।
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमिदं पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धपुरुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः ॥'

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः ॥ ३४० ॥

अप्रस्तुतप्रशंसां लक्षयति—**अप्रस्तुतेति** । अप्रक्रान्तेषु अप्रस्तुतेषु (अप्रस्तुताना-मित्यर्थः) प्रस्तुतस्य निन्दार्था या स्तुतिः प्रशंसा सा अप्रस्तुतप्रशंसा नाम । यत्र प्रस्तुतस्य निन्दामुद्दिश्य अप्रस्तुतं प्रशस्यते सा अप्रस्तुतप्रशंसेत्यर्थः । इयं हि संज्ञाऽन्वर्था, तथा चाप्रस्तुतानां प्रशंसया प्रस्तुतानां निन्दैवास्यालङ्कारस्य प्रधानमुपपादकम् । समा-सोक्तौ तु अप्रस्तुताद्वाच्यात् प्रस्तुतस्य प्रतीतिरिति ततो भेदः ॥ ३४० ॥

हिन्दी—प्रस्तुतकी निन्दाके लिये की गई अप्रस्तुतकी प्रशंसा-स्तुतिको अप्रस्तुतप्रशंसा नामक अलङ्कार कहते हैं ।

दण्डीने अप्रस्तुत वाच्यसे प्रस्तुतको प्रतीति होनेमें समासोक्ति एवं अप्रस्तुतकी प्रशंसा द्वारा प्रस्तुतकी निन्दामें अप्रस्तुतप्रशंसा मानकर दोनों अलङ्कारोंका विषयविभाग कर दिया है । इस मतमें संज्ञाकी अन्वर्थता पर ध्यान दिया गया है ।

अन्यान्य आचार्योंने अप्रस्तुत वाच्यसे प्रस्तुतकी प्रतीतिमें अप्रस्तुतप्रशंसा और प्रस्तुत वाच्यसे अप्रस्तुतकी प्रतीतिमें समासोक्ति, इस प्रकार विभाग किया है । इस मतमें प्रशंसा-शब्द स्तुत्यर्थक न होकर उक्तिमात्रार्थक है ॥ ३४० ॥

---

१. अलङ्कारोतिशोभते । २. अप्रकान्तेप्सितस्तुतिः ।

सुखं जीवन्ति हरिणा वनेष्वपरसेविनः ।
अन्यैरयत्नसुलभैस्तृणदर्भाङ्कुरादिभिः ॥ ३४१ ॥
सेयमप्रस्तुतैवात्र मृगवृत्तिः प्रशस्यते ।
राजानुवर्त्तनक्लेशनिर्विण्णेन मनस्विना ॥ ३४२ ॥

(इत्यप्रस्तुतप्रशंसा)

अप्रस्तुतप्रशंसामुदाहरति—**सुखमिति** । अपरसेविनः परकीयसेवाकार्यविमुखाः परसेवाजनितस्वात्मापमानदुःखापरिचिताः हरिणाः अयत्नसुलभैः अनायासप्राप्यैः तृणदर्भाङ्कुरादिभिः अन्यैः भोज्यवस्तुभिः सुखं कमपि क्लेशं विना वनेषु सुखं जीवन्ति । कस्यचिद्राजसेवानिर्विण्णमनस इयमुक्तिः । वनवासिनोऽपि परसेवारहितास्सुखिनः परं प्रासादवासिनोऽपि परसेवाधिकृताः मादृशाः सततसुलभदुःखा इति मृगप्रशंसया स्वनिन्दा ॥ ३४१ ॥

उदाहरणं योजयति—**सेयमिति** । अत्र उक्तोदाहरणे राजानुवर्त्तनक्लेशनिर्विण्णेन राजसेवाखिन्नेन केनापि मनस्विना मानिना सेयम् अप्रस्तुता एव मृगवृत्तिः प्रशस्यते, तया च प्रशंसया राजसेविनो वक्तुरात्मनिन्दा व्यज्यते ॥ ३४२ ॥

हिन्दी—दूसरेकी सेवा नहीं करनेवाले यह हरिण अनायासलभ्य घास, कुशाङ्कुर आदि भोज्य वस्तुओंसे वनोंमें सानन्द जीवनयापन करते हैं (परन्तु राजप्रासादमें रहकर नानाविध मिष्टान्नभोजी परसेवी जन कष्टमें रहते हैं क्योंकि सेवा बड़ी बुरी वस्तु है) ॥ ३४१ ॥

इस उदाहरणमें राजसेवामें अनुभूत होनेवाले कष्टोंसे ऊब उठनेवाले किसी मानवाले पुरुषने अप्रस्तुत मृगवृत्तिकी प्रशंसा की है, जिससे वक्ताकी आत्मनिन्दा प्रतीत होती है । यह अलङ्कार प्रस्तुताप्रस्तुतकी प्रशंसामें नहीं होता है, किन्तु अप्रस्तुतकी प्रशंसासे प्रस्तुतकी निन्दामें होता है, अतएव—

'याते मय्यचिरान्निदाघमिहिरज्वालाशतैः शुष्कतां
गन्ता कं प्रति पान्थसन्ततिरसौ सन्तापमालाकुला ।
इत्थं यस्य निरन्तराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते
धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिग् वारिधीनां जनुः ॥'

यहाँ अप्रस्तुत मार्गस्थ सरोवर एवं प्रस्तुत दाताकी प्रशंसा होने पर भी अप्रस्तुतप्रशंसा नहीं, समासोक्ति ही है ॥ ३४२ ॥

यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता[3] ।
दोषाभासा गुणा एव लभन्ते ह्यत्र[4] सन्निधिम् ॥ ३४३ ॥

सम्प्रति व्याजस्तुतिं निरूपयति—**यदीति** । निन्दन्निव यदि स्तौति असौ व्याजस्तुतिः स्मृता । अत्र व्याजस्तुतौ दोषाभासाः वस्तुतो दोषा अभवन्तोऽपि गुणाः सन्तोऽपि दोषवदवभासमाना एव सन्निधिं लभन्ते, दोषत्वेनोच्यमाना गुणा एव व्याजस्तुतौ कारणीभवन्तीत्यर्थः । निन्दन्निव स्तौतीति शब्दैः निन्दामुखेन स्तुतावेवालङ्कारत्वमभिप्रेयते दण्डिना, अत एवाग्रे तथैवोदाहृतमपि, प्रकाशकारादयस्तु 'स्तुवन्निव निन्दति' स्थलेऽपि व्याजस्तुतिमभिप्रयन्ति, तत्र व्याजेन निन्दा व्याजेन स्तुतिरिति दण्डी, प्रकाशकारादयश्च तेन व्याख्यानेन सहैव व्याजरूपा स्तुतिर्व्याजस्तुतिः निन्दापर्यवसायिनी स्तुतिरित्यपि व्याख्यानमङ्गीकुर्वन्तीति बोध्यम् ॥ ३४३ ॥

---

१. अर्थैः । २. जलदर्मा । ३. मता । ४. तत्र ।

हिन्दी—यदि आपाततः निन्दा-सी प्रतीत हो, लेकिन उससे स्तुति प्रकट होती हो तो उसे व्याजस्तुति मानते हैं, इस अलङ्कारमें दोषाभासके समान प्रतीत होनेवाले गुण ही प्रधान कारण होते हैं। अर्थात् गुणोंको ही ऐसे शब्दोंसे कहें कि वह दोष मालूम पड़े, तो उस स्थितिमें निन्दाके बहाने स्तुति होनेसे व्याजस्तुति नामक अलङ्कार होता है। आचार्य दण्डीका अभिप्राय ऐसा मालूम पड़ता है कि निन्दामुखेन स्तुतिस्थलमें ही व्याजस्तुति अलङ्कार होता है, परन्तु काव्यप्रकाशकारप्रभृतिने व्याजस्तुतिका दो प्रकार विभाग किया है, एक निन्दामुखेन स्तुतिमें और दूसरा स्तुतिमुखेन निन्दामें। 'व्याजेन निन्दा व्याजेन स्तुतिः, व्याजरूपा वा स्तुतिः व्याजस्तुतिः' इन दोनों प्रकारोंमें नामनिर्वचन किया जाता है।

निन्दाव्याजेन स्तुतिमें दण्डीने कुछ उदाहरण दिये हैं, वे आगे दिये गये हैं, व्याजरूप स्तुतिका उदाहरण काव्यप्रकाशकारने यह दिया है—

'हे हेलाजिनबोधिसत्त्व, वचसां किं विस्तरैस्तोयधे, नास्ति त्वत्सदृशः परः परहिताधाने गृहीतव्रतः।
तृष्यत्पान्थजनोपकारघटनावैमुख्यलब्धायशोभारस्योद्वहने करोषि कृपया साहायकं यन्मरोः॥'

इस श्लोकमें समुद्रकी स्तुतिके व्याजसे निन्दा प्रतिपादित हुई है, अतः यह व्याजरूपा स्तुतिस्वरूप व्याजस्तुति अलङ्कार है॥ ३४३॥

तापसेनापि रामेण जितेयं भूतधारिणी।
त्वया राज्ञापि सैवेयं जिता माभून्मदस्तव॥ ३४४॥

व्याजस्तुतिमुदाहरति—**तापसेनापीति**। तापसेन तपस्यापरायणेन (सैन्यसम्बन्धरहितेन) रामेण भार्गवेण परशुरामेण इयं भूतधारिणी पृथिवी जिता, त्वया राज्ञापि (चतुरङ्गसैन्यसम्पन्नेनापि) सैवेयं तावती एव पृथ्वी जिता, इति हेतोः तव मद् पृथ्वीजयसंभवो गर्वः माभूत् न भवतु। साधनहीनेन रामेण या पृथ्वी जीयते स्म, साधनसम्पदुपेतेन राज्ञा तस्या एव जये क्रियमाणे नास्ति गर्वस्यावसर इति प्रथममापाततो निन्दा प्रतिभाति, तद्व्याजेन समस्तपृथिवीजयजनितोत्कर्षवत्तया राज्ञः प्रशंसा फलतीति व्याजस्तुतिरियम्। अत्र निन्दाव्याजेन स्तुतिः स्फुटा॥ ३४४॥

हिन्दी—तपस्वी होकर भी परशुरामने जिस पृथ्वीकी विजय की थी, आपने राजा होकर भी उसी पृथ्वीकी विजय की है, अतः आपको पृथ्वी जीतने का गर्व नहीं होना चाहिये।

उस उदाहरणमें आपाततः (ऊपर ऊपरसे) निन्दा प्रतीत होती है किन्तु है यह स्तुति, क्योंकि महादेवके शिष्य परशुरामने जिसे अधीनस्थ किया, आपने भी उसी पृथ्वीको अधीनस्थ बनाया है, यह मामूली बात नहीं है। अतः एव इसे निन्दाव्याजेन स्तुति—व्याजस्तुति कहा गया है॥ ३४४॥

पुंसः पुराणादाच्छिद्य श्रीस्त्वया परिभुज्यते।
राजन्निक्ष्वाकुवंश्यस्य किमिदं तव युज्यते॥ ३४५॥

अलङ्कारान्तरोत्था सा वैचित्र्यमभियं वहतीति समन्वाऽर्थश्लेषमूलां व्याजोक्तिमुदाहरति-**पुंस इति**। हे राजन्, त्वया पुराणात् आद्यात् पुंसः पुरुषात् ('पुराणपुरुषो यज्ञपुरुषो नरकान्तकः' इति कोशात्) विष्णोः (वृद्धाद्धेति ध्वनिः) आच्छिद्य बलादाहृत्य श्रीर्लक्ष्मीः (सम्पत्तिश्च) परिभुज्यते उपभोगविषयीक्रियते, इक्ष्वाकुवंश्यस्य इक्ष्वाकुकुलसंभवस्य तव किम् इदं पुरुषान्तराहृतलक्ष्मीभोगरूपं कार्यम् युज्यते औचित्यमावहति?

१. वंशस्य।

पुराणपुरुषाहृतसम्पदुपभोगस्तव न युज्यते इति निन्दया प्रभूतसम्पत्तिकृता स्तुतिः प्रतीयते इति व्याजस्तुतिः। अत्र पुराणशब्दे श्रीशब्दे चार्थश्लेषः॥ ३४५॥

हिन्दी—पुराणपुरुष विष्णुसे (किसी वृद्धसे) उसकी श्री (स्त्री) छीन कर आप भोग कर रहे हैं, यह क्या इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न आपके योग्य कार्य है?

इस उदाहरणमें पुराणपुरुषसे छीन कर लाई गई सम्पत्तिका उपभोग निन्दाव्याजसे प्रभूत-सम्पत्तिशालिता द्वारा स्तुति प्रकाशित करता है, अतः व्याजस्तुति है। इस श्लोकमें पुराण एवं श्रीशब्दमें अर्थश्लेष है॥ ३४५॥

भुजङ्गभोगसंसक्ता कलत्रं तव मेदिनी।
अहङ्कारः परां कोटिमारोहति कुतस्तव॥ ३४६॥

शब्दश्लेषमूलां व्याजस्तुतिमुदाहरति—**भुजङ्गेति**। तव कलत्रं भार्या (भोग्या पाल्या च) मेदिनी पृथ्वी भुजङ्गभोगसंसक्ता शेषनागफणमण्डलाश्रिता (जारजनानुरक्ता च)। (एवं सति) तव अहङ्कारः परां कोटिं प्रकर्षं कथमारोहति?

अत्र निन्दया त्वं सार्वभौमोऽसीति स्तुतिः पर्यवस्यति, सा भुजङ्गशब्दस्य श्लिष्टतया शब्दश्लेषमूला॥ ३४६॥

हिन्दी—आपकी स्त्री पृथ्वी भुजङ्गभोगसंसक्ता—शेषनागके फणपर अवलम्बित या जारजनानुरक्त है, फिर भी आपका अहङ्कार पराकाष्ठाको क्यों पहुँच रहा है? इस उदाहरणमें राजाकी स्त्री-स्थानीया पृथ्वीकी जारासक्तत्वकथनरूप निन्दासे उसकी सार्वभौमता प्रतीति होती है, अतः व्याज-स्तुति है, यहाँ भुजङ्गपदमें शब्दश्लेष है, इसलिये यह शब्दश्लेषमूला व्याजस्तुति हुई॥ ३४६॥

इति श्लेषानुविद्धानामन्येषाञ्चोपलक्ष्यताम्।
व्याजस्तुतिप्रकाराणामपर्यन्तस्तु[3] विस्तरः॥ ३४७॥

(इति व्याजस्तुतिः)

व्याजोक्तिमुपसंहरति—**इतीति**। इति एवंप्रकारेण श्लेषानुविद्धानाम् श्लेषमूलानां तथा अन्येषाम् अन्यालङ्कारमूलानां च व्याजस्तुतिप्रकाराणाम् अपर्यन्तः असीमः विस्तरः तु उपलक्ष्यताम् स्वयमूह्यताम्, सर्वेषामेतदलङ्कारप्रभेदानां वक्तुमशक्यतयेत्थमुक्तम्॥ ३४७॥

हिन्दी—इसी तरहसे श्लेषमूलक तथा अन्यालङ्कारमूलक व्याजस्तुतिके प्रभेदोंका असीम प्रभेद स्वयं समझें। अनन्तप्रभेद होनेसे वह कहा नहीं जा सकता है, स्वयं उसका ऊह करें॥ ३४७॥

अर्थान्तरप्रवृत्तेन किञ्चित् तत्सदृशं फलम्।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत्स्यान्निदर्शनम्॥ ३४८॥

निदर्शनं लक्षयति—**अर्थान्तरेति**। अर्थान्तरप्रवृत्तेन कार्यान्तरव्यापृतेन केनचित् किमपि सत् असत् वा तत्सदृशम् अर्थान्तरतुल्यम् (स्वप्रवृत्तिविषयकार्यान्तरसदृशम्) यदि निदर्श्यते बोध्यते, तत् निदर्शनम् तन्नामालङ्कार इत्यर्थः॥ ३४८॥

हिन्दी—किसी कार्यान्तरमें प्रवृत्त कोई कर्ता यदि स्वक्रियमाण कार्ययोग्य किसी सत् या असत् कार्यका बोधन करे तो वहाँ निदर्शन नामक अलङ्कार होता है, उदाहरणके लिए 'उगते ही सूर्य उदय का फल मित्रोंको उपकृत करना होता है' यह समझानेके लिये कमलकी श्रीसम्पन्न करते

१. संक्रान्ता। २. नुवद्धानाम्। ३. न्तः प्रविस्तरः।
४. ५२। ५. सा स्यान्निदर्शना।

है' इस वाक्यमें पद्मश्रीदायक उदयरूप कार्यमें प्रवृत्त सूर्यरूप कर्त्ता स्वक्रियमाण उदयकार्ययोग्य सत् सुहृदुपकार रूप कार्यका बोधन करता है, अतः यह निदर्शन है, अर्वाचीन आचार्योंने इसका लक्षण इस प्रकार कहा है—

'सम्भवन्वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन्वापि कुत्रचित् । यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना ॥ १४८ ॥

उदयन्नेष सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम् ।
विभावयितुमृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम् ॥ ३४९ ॥

सत्फलनिदर्शनमुदाहरति—**उदयन्नेवेति ।** एषः सविता सूर्यः उदयन् उदयं प्राप्नुवन् ऋद्धीनां जायमानानां सम्पत्तीनामुदयानां च फलं सुहृदनुग्रहं बन्धुजनोपकारं विभावयितुं ज्ञापयितुम् पद्मेषु श्रियमर्पयति, कमलानि विकासभाजनानि कृत्वा सश्रीकाणि रचयतीत्यर्थः । अत्र पद्मेषु श्रीप्रदानोन्मुखेन उदयभाजा सूर्येण उदयफलं सुहृदनुग्रहरूपं निदर्श्यत इति भवति निदर्शनालङ्कारस्तत्र च सुहृदनुग्रहस्य सत्फलत्वम् ॥ ३४९ ॥

हिन्दी—सूर्य उगते ही समयमें सम्पत्तिका फल सुहृदनुग्रह होता है इस बातको ज्ञापित करनेके लिये कमलोंको विकासित करके शोभाशाली बना देते हैं ।

इस उदाहरणमें कमलोंको श्रीप्रदानमें उन्मुख उगता हुआ सूर्य उदयका फल सुहृदनुग्रह है—यह बताता है, अतः यह सत्फल निदर्शन रूप निदर्शन प्रभेद है॥ ३४९ ॥

याति चन्द्रांशुभिः स्पृष्टा ध्वान्तराजी पराभवम् ।
सद्यो राजविरुद्धानां सूचयन्ती दुरन्तताम् ॥ ३५० ॥

(इति निदर्शनम्)

असत्फलनिदर्शनमुदाहरति—**यातीति ।** चन्द्रांशुभिः चन्द्रकरैः स्पृष्टा ध्वान्तराजी तमःपङ्क्तिः राजविरुद्धानां नृपप्रतिकूलानां चन्द्रविरोधिनां च दुरन्तताम् दुःखकरावसानताम् सूचयन्ती सद्यः तत्समये एव पराभवं विनाशं याति, अत्र चन्द्रकरपरिभूयमाना तमस्ततिः राजद्रोहिणि परिणामदुरन्तं फलं बोधयतीति असत्फलनिदर्शनमिदम् ॥ ३५० ॥

हिन्दी—चन्द्रमाकी किरणोंसे छुये जाते ही अन्धकारराशि राजविरोधी—नृपद्रोही (या चन्द्रविरोधी) का अन्त भला नहीं हुआ करता, इस बातको सूचित करती हुई नष्ट हो जाती है ।

यहाँ चन्द्रकरसे परिभूयमान तमोराशि राजद्रोहीका अन्त भला नहीं होता है—इस असत् फलका बोधन कराती है, अतः यह असत्फलनिदर्शन है ॥ ३५० ॥

सहोक्तिः सहभावेन कथनं गुणकर्मणाम् ।
अर्थानां यो विनिमयः परिवृत्तिस्तु सा स्मृता ॥ ३५१ ॥

सहोक्तिं लक्षयति—**सहोक्तिरिति ।** गुणस्य कर्मणः क्रियायाश्च सहभावेन साहित्येन कथनं सहोक्तिः, अत्र क्रियापदं द्रव्यस्याप्युपलक्षकं, तथा च सम्बन्धिभेदेन भिन्नानामपि गुणक्रियादीनां सहार्थकशब्दसामर्थ्येन यदेकदा प्रतिपादनं सा सहोक्तिर्नामलङ्कारः । सहभावेन कथने चमत्कारकत्वमपेक्ष्यत एव, अलङ्कारत्वस्य तन्मूलकत्वात् , अत एव सत्यपि सहकथने 'पुत्रेण सहागतः पिता' इत्यादौ नायमलङ्कारः, चमत्कारश्चात्रातिशयोक्तिमूलकत्व एव संभवति, अत एव च दर्पणकृता लक्षणे 'मूलभूताऽतिशयोक्तिर्यदा भवेत्' इति समावेशितम् ।

१. एव । २. विभावयन् समृद्धीनां । ३. राशिः । ४. सहभावस्य । ५. कथा ।

पूर्वार्धेन सहोक्तिं लक्षयित्वोत्तरार्धेन परिवृत्तिं नामालङ्कारं लक्षयति—**अर्थानामिति**। यः अर्थानां विनिमयः प्रतिदानम् (किञ्चिद्दत्त्वा अन्यस्य कस्यचिद्ग्रहणम्) सा परिवृत्तिः स्मृता। चमत्कारकोऽर्थविनिमयः परिवृत्तिरिति स्मर्यते, तेन 'अश्वैर्गाः क्रीणाति' इत्यत्र नालङ्कारः। सा च परिवृत्तिस्त्रिधा—समेन समस्य, न्यूनेन अधिकस्य, अधिकेन न्यूनस्य च ॥ ३५१ ॥

हिन्दी—गुण, क्रिया, द्रव्यके सहभावेन कथनको सहोक्ति अलङ्कार कहते हैं, जहाँ सम्बन्धिभेदेन भिन्न होनेवाले भी गुण-क्रियादि सहार्थक शब्दके बलसे एक साथ कहे जाते हों उसको सहोक्ति माना जाता है, इस एक साथ कथनमें चमत्कार आवश्यक है, अतएव 'पुत्रके साथ पिता आये' इसमें अलङ्कार नहीं है। यहाँ चमत्कार अतिशयोक्तिमूलक ही होता है, इसी बातको ध्यान में रखकर साहित्यदर्पणकारने लक्षणमें ही 'मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत्' कह दिया है।

कारिकापूर्वार्द्धमें सहोक्तिका विवेचन करके उत्तरार्धसे परिवृत्तिका लक्षण कहते हैं। अर्थ-वस्तुओंके विनिमय-प्रतिदान बदलकर लेनेको परिवृत्ति अलङ्कार कहते हैं, उस विनिमयमें चमत्कार अवश्य अपेक्षित है, अतएव 'घोड़े देकर गाय बदलते हैं' इस वाक्यमें परिवृत्ति नहीं होती है।

विनिमय तीन प्रकारका हो सकता है—समसे समका, न्यूनसे अधिकका, अधिकसे न्यूनका। अतएव परिवृत्तिके तीन भेद होंगे।

विनिमयका तात्पर्य है अपना कुछ देकर दूसरेका कुछ लेना, इसीलिये जहाँ कुछ छोड़कर कुछ ग्रहण करना इसका विषय नहीं है, अतएव—'किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्' इसमें परिवृत्ति नहीं है।

भोजराजने परिवर्त्तन—एक स्थानस्थित वस्तुका स्थानान्तरित होना भी परिवृत्तिका विषय माना है, यथा—

> 'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
> उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः' ॥ ३५१ ॥

सह दीर्घा मम श्वासैरिमाः सम्प्रति रात्रयः।
पाण्डुराश्च ममैवाङ्गैः सहताश्चन्द्रभूषणाः ॥ ३५२ ॥

गुणसहोक्तिमुदाहरति-**सह दीर्घा इति**। विरहिण्या उक्तिरियम्, सम्प्रति विरहकाले मम श्वासैः सह दीर्घाः विशालाः इमा रात्रयः जाता इत्यर्थः, चन्द्रभूषणाः चन्द्रिकाशोभिताः ताः रात्रयश्च ममैवाङ्गैः सह पाण्डुराः श्वेतवर्णाः जाता इत्यत्रापि। अत्र दीर्घत्वपाण्डुरत्वगुणौ सम्बन्धिभेदभिन्नावपि सहोक्तौ ॥ ३५२ ॥

हिन्दी—इस वियोगकालमें रातें मेरी सांसोंके साथ बड़ी-बड़ी होती जा रही हैं और चन्द्रकलामण्डित वही रातें मेरे अङ्गोंके साथ उजली हुई जा रही है।

यहाँ दीर्घत्व और पाण्डुरत्व रूप गुणकी सहोक्ति है।

हेतुप्रभेदमें सहजहेतुका उदाहरण दिया है—

'आविर्भवति नारीणां वयः पर्यस्तशैशवम्। सहैव विविधैः पुंसामङ्गजोन्मादविभ्रमैः ॥'

इसमें क्रियओंका सहभाव वर्णित हुआ है, तथापि वह सहोक्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ सहभाव होने पर भी कार्यकारणभावकृत वैचित्र्यको चमत्कारक मानते हैं। इसका सारांश यह है कि जहाँ कार्यकारणभावके विना केवल सहोक्तिकृत चमत्कार होगा, वहाँ सहोक्ति अल-

---

१. प्राणैः। २. पाण्डराश्च।

कार और जहाँ कार्यकारणसहभावकृत चमत्कार होगा, वहाँ सहज हेतु नामक हेत्वलङ्कारप्रभेद होगा। 'सहदीर्घा' इत्यादि प्रकृतोदाहरणमें रात्रिदैर्घ्य और श्वासदैर्घ्यमें परस्पर कार्यकारणभाव नहीं है, दोनों ही विरहकृत हैं ॥ ३५२ ॥

वर्धते सह पान्थानां मूर्च्छया चूतमञ्जरी।
'पतन्ति च समं तेषामसुभिर्मलयानिलाः ॥ ३५३ ॥

क्रियासहोक्तिमाह—**वर्द्धत इति**। पान्थानां प्रवासिनां वियोगिनां मूर्च्छया सह चूतमञ्जरी वर्धते, तेषां प्रवासिवियोगिनाम् असुभिः प्राणैः समं मलयानिलाः दक्षिणवाताश्च पतन्ति। अत्र वृद्धिपतनक्रिये सहभावेन मूर्च्छाचूतमञ्जर्योरसुमलयानिलयोश्चोपनिबद्धे। तत्कृतैव च सहोक्तिरियम् ॥ ३५३ ॥

हिन्दी—वियोगी पथिकोंकी मूर्च्छाके साथ आम्रमञ्जरी बढ़ती जा रही है, और उनके प्राणोंके साथ ही दक्षिण वायु निकलने लगी है।

इस उदाहरणमें बढ़ना और पतनरूप क्रियामें सहभावेन मूर्च्छा—आम्रमञ्जरी, एवं वियोगिजनप्राण—मलयानिलगतत्वेन वर्णित हुए हैं, अतः यह सहोक्तिका उदाहरण है।

सहजहेतु अलङ्कार यह नहीं है, क्योंकि यहाँ भी परस्पर कार्यकारणभाव नहीं है, सभी वसन्तकार्य हैं ॥ ३५३ ॥

कोकिलालापसुभगाः सुगन्धिवनवायवः।
यान्ति सार्धं जनानन्दैर्वृद्धिं सुरभिवासराः ॥ ३५४ ॥

उदाहरणान्तरमाह—**कोकिलेति**। कोकिलानाम् आलापैः सुभगाः मनोहराः, सुगन्धिवनवायवः विकसितपुष्पतया सुगन्धयुतवाताः सुरभिवासराः वसन्तर्तुदिवसाः जनानन्दैः सार्धं सह वृद्धिं यान्ति।

सहशब्दप्रयोग एवायमलङ्कार इति भ्रमनिरासाय सार्धशब्देनेदमुदाहरणमित्येके। केचित्तु वृद्धिरूपस्य गुणस्य वृद्धिपदार्थभूतव्याप्तिरूपक्रियायाश्च तुल्यतयाभिधाने गुणक्रियासहोक्तिरियमिति व्याजह्रुः ॥ ३५४ ॥

हिन्दी—कोकिलोंके आलापसे मुखरित एवं पुष्पोंके विकसित होनेके कारण सुगन्धित वनवात वाले यह वसन्तके दिवस लोगोंके आनन्दके साथ बढ़ रहे हैं। इसमें वृद्धि रूप गुणक्रियाकी सहोक्ति है ॥ ३५४ ॥

इत्युदाहृतयो दत्ताः सहोक्तेरत्र काश्चन।
(इति सहोक्तिः)
क्रियते परिवृत्तेश्च किञ्चिद्रूपनिदर्शनम् ॥ ३५५ ॥

सहोक्तिमुपसंहरन्नेव परिवृत्तिं प्रस्तौति—**इत्युदाहृतय इति**। इति एवंप्रकारेण अत्र काश्चन कतिपयाः सहोक्तेः उदाहृतयः उदाहरणानि दत्ताः, इदानीं परिवृत्तेः किञ्चिद्रूपनिदर्शनम् उदाहरणप्रदर्शनं क्रियते ॥ ३५५ ॥

हिन्दी—इस प्रकारसे यहाँ सहोक्तिके कुछ उदाहरण दिये गये (इसके विषयमें अधिक प्रभेद सरस्वतीकण्ठाभरणादिमें देखें), अब आगे परिवृत्तिका उदाहरण दिया जाता है ॥ ३५५ ॥

---

१. वहन्ति। २. अश्रुभिः। ३. निरूपणम्।

शस्त्रप्रहारं ददता भुजेन तव भूभुजाम् ।
चिरार्जितं हृतं तेषां यशः कुमुदपाण्डुरम् ॥ ३५६ ॥
(इति परिवृत्तिः)

परिवृत्तिमुदाहरति—**शस्त्रप्रहारमिति** । भूभुजाम् राज्ञाम् (शेषे षष्ठी) शस्त्रप्रहारं ददता तव भुजेन तेषां राज्ञां चिरार्जितं सुबहुकालोपार्जितं कुमुदपाण्डुरं कुमुदवदतिधवलं यशो हृतम् गृहीतम् । अत्र शस्त्रप्रहारं दत्त्वा कीर्त्तिग्रहणमिति न्यूनेनाधिकस्य ग्रहणरूपा परिवृत्तिः ॥ ३५६ ॥

हिन्दी—हे राजन् , नृपोंको शस्त्रप्रहार देकर आपके बाहुने उनका चिरार्जित तथा कुमुद-समान स्वच्छ यश ले लिया ।

इस उदाहरणमें शस्त्रप्रहार देकर कीर्त्तिग्रहण किया गया है, यह न्यूनसे अधिकग्रहणरूप परिवृत्तिभेद हुआ ।

समसे समग्रहणमें—'दत्त्वा कटाक्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम ।'

अधिकसे न्यूनग्रहणमें-'मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः' यह उदाहरण दिये जाते हैं ॥३५६॥

आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशंसनं यथा ।
पातु वः[1] परमं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥ ३५७ ॥

आशीर्नामकमलङ्कारं निरूपयपि—**आशीरिति** । अभिलषिते स्वसम्बन्धितया स्वेष्टजनसंबन्धितया वा लिप्सितेऽर्थे आशंसनं स्वकीयाभिरुचिप्रकाशनम् आशीर्नामाऽलङ्कारः । उदाहरति—**पात्विति** । अवाङ्मनसगोचरम् वाचा मनसा च प्राप्तुमशक्यम् वाचा वर्णयितुम् मनसा च ग्रहीतुमशक्यम् परमं ज्योतिः परमात्माभिधानं तेजो वो युष्मान् पातु । अवाङ्मनसगोचरतामाह ब्रह्मणः श्रुतिर्यथा 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' ॥३५७॥

हिन्दी—अपने तथा अपने इष्टजनोंकी अभिलषित वस्तुके सम्बन्धमें स्वेच्छाप्रकाशनको 'आशीः' नामक अलङ्कार माना जाता है । इसका उदाहरण यह है—वचन तथा मनसे पर-वचनसे अवर्णनीय एवं मनसे अग्राह्य परमात्मस्वरूप तेज आपका कल्याण करे । इस उदाहरणमें स्वेष्टजनसम्बन्धितया अभिलषित ब्रह्मकर्त्तृक पालनमें अपनी इच्छा प्रकट की गई है । कुछ लोगोंने इसमें वैचित्र्य नहीं है, इसलिए इसे अलङ्कार नहीं मानना चाहिये, ऐसा कहा है ।

'आशीरपि च केषाञ्चित् अलङ्कारतया मता ।'

साहित्यदर्पणकार प्रभृतिने इसे नाट्यालङ्कार माना है, क्योंकि उनके मतमें नाट्यमें ही इसका चमत्कार प्रतीत होता है, उनका कहना है—

'आशीराक्रन्दकपटाक्षमागर्वोद्यमाश्रयाः ।·······नाट्यभूषणहेतवः ॥'

इसके बाद—'आशीरिष्टजनाशंसा' यह लक्षण लिखकर उन्होंने उदाहरण दिया है—

"ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्त्तुर्बहुमता भव । पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥'

अन्य आचार्य इसे प्रयः अलङ्कार स्वरूप मानते हैं ॥ ३५७ ॥

अनन्वयससन्देहावुपमास्वेव दर्शितौ ।
उपमारूपकं चापि रूपकेष्वेव दर्शितम्[2] ॥ ३५८ ॥
उत्प्रेक्षाभेद एवासावुत्प्रेक्षावयवोऽपि च ।

---

१. नः । २. कीर्तितम् ।

एतावत्पर्यन्तं यथोद्दिष्टान् सर्वानलङ्कारान् प्रदर्श्य परोक्तानां केषाञ्चिदलङ्काराणां स्वोक्तेष्वेवालङ्कारेष्वन्तर्भावं प्रदर्श्य स्वपरिगणनस्य न्यूनतां वारयति—अनन्वयेति। भामहेन अनन्वयः, ससन्देहः, उपमारूपकम्, उत्प्रेक्षावयवः इति चत्वारोऽधिका अलङ्कारा लक्षिता उदाहृताश्च, तत्र अनन्वयः ससन्देहश्च उपमासु उपमाप्रभेदेषु एव दर्शितौ उक्तौ, उपमायाः प्रभेदेऽसाधारणोपमायामनन्वयस्यान्तर्भावः, ससन्देहस्य च संशयोपमायामन्तर्भावः, इति भावः।

उपमारूपकस्य तन्नामके रूपकप्रभेदेऽन्तर्भावः, उत्प्रेक्षावयवो न पृथगलङ्कारः किन्तूत्प्रेक्षाभेद एव, तस्मादेषां पृथगलङ्कारतयानुक्तावपि नास्माकं न्यूनतेति दण्डिनस्तात्पर्यम्॥

हिन्दी—यहाँ उद्देशक्रमानुसार नाम्ना उद्दिष्ट अलङ्कारोंका निरूपण किया गया, इसके आगे यह बताया जायगा कि परोक्त अलङ्कारोंका अन्तर्भाव इन्हीं अलङ्कारोंमें हो जाता है, अतः उनका अलगसे निरूपण नहीं होनेपर भी इस ग्रन्थमें न्यूनता नहीं आई है।

भामहने अनन्वयके लक्षण तथा उदाहरण निम्नलिखित दिये हैं—

लक्षण—'यत्र तेनैव तस्य स्यादुपमानोपमेयता। असादृश्यविवक्षातस्तमित्याहुरनन्वयम्॥'

उदाहरण—'ताम्बूलरागवलयं स्फुरद्दशनदीधिति। इन्दीवराभनयनं तवेव वदनं तव॥'

इस अनन्वयको अलग अलङ्कार मानना व्यर्थ है, इसका अन्तर्भाव असाधारणोपमा नामक उपमाप्रभेदमें हो जाता है, जिसका लक्षणोदाहरण दण्डीने यह दिया है—

'चन्द्रारविन्दयोः कान्तिमतिक्रम्य मुखं तव। आत्मनैवाभवत्तुल्यमित्यसाधारणोपमा॥'

भामहने ससन्देहालङ्कारके लक्षणोदाहरण निम्न प्रकार दिये हैं—

लक्षण—'उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः। ससंदेहं वचः स्तुत्यै ससंदेहं विदुर्यथा॥'

उदाहरण—'किमयं शशी न स दिवा विराजते कुसुमायुधो न धनुरस्य कौसुमम्।
इति विस्मयाद्विमृशतोऽपि मे मतिस्त्वयि वीक्षिते न लभतेऽर्थनिर्वृतिम्'॥

इस सन्देहालङ्कारका भी दण्डीने उपमाप्रभेद—संशयोपमामें ही अन्तर्भाव कर दिया है, जिसका स्वरूप यह है—

'किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किन्ते लोलेक्षणं मुखम्। मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा॥'

उपमारूपकके लक्षणोदाहरण भामहने यह दिये हैं—

लक्षण—'उपमानेन तद्भावमुपमेयस्य साधयन्। यां वदन्त्युपमामेतदुपमारूपकं यथा॥'

उदाहरण—'समग्रगगनायाममानदण्डो रथाङ्गिनः। पादो जयति सिद्धस्त्रीमुखेन्दुनवदर्पणः॥'

इसका अन्तर्भाव दण्डीने रूपकके प्रभेदमें किया है, जिसका स्वरूप निम्न प्रकार है—

'इदं साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनाद् गौणमुख्ययोः। उपमाव्यतिरेकाख्यं रूपकद्वितयं यथा॥'

उत्प्रेक्षावयव नामक अलङ्कारके भामहने इस प्रकार लक्षणोदाहरण बताये थे—

लक्षण—'श्लिष्टस्यार्थेन संयुक्तः किञ्चिदुत्प्रेक्षयान्वितः। रूपकार्थेन च पुनरुत्प्रेक्षावयवो यथा॥'

उदाहरण—

'तुल्योदयावसानत्वाद् गतेऽस्तं प्रतिभास्वति। वासाय वासरः क्लान्तो विशतीव तमोगृहम्॥'

इस उत्प्रेक्षावयव नामक अलङ्कारका भी अन्तर्भाव उत्प्रेक्षामें ही हो जाता है, इसे आचार्य दण्डीने श्लेषरूपकादिसंकीर्ण उत्प्रेक्षा कहा है।

इसके अतिरिक्त—पराभिमत दृष्टान्तका उपमाप्रभेदमें उल्लेख और परिणामका रूपकप्रभेदमें, कारणमालाका हेतुप्रकारमें अन्तर्भाव किया गया है, जिससे न्यूनताका समाधान समझना चाहिये॥ ३५८॥

नानालङ्कारसंसृष्टिः संसृष्टिस्तु निगद्यते ॥ ३५९ ॥

संसृष्टिं लक्षयति—**नानेति** । सजातीयविजातीयबहुविधालङ्काराणां संसृष्टिः संसर्गः एकत्रावस्थानं संसृष्टिनाम्ना व्यवह्रियते, यथा लौकिकालङ्कारभेदानां परस्परसहभावे कोऽपि नवः प्रकारः शोभातिरेकजनकः प्रादुर्भवति, तद्वदिहापि । अत एव चास्याः पृथगलङ्कारतया व्यवहारः ॥ ३५९ ॥

हिन्दी—सजातीय तथा विजातीय अनेक अलङ्कारोंका एक साथ रहना संसृष्टि नामक पृथक् अलङ्कार माना जाता है, सजातीयसंसृष्टिस्थलमें शब्दालङ्कारोंकी संसृष्टि और अर्थालङ्कारोंकी संसृष्टि, इस तरह दो प्रकार होंगे, विजातीयस्थलमें शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार—दोनों तरहके अलङ्कारोंकी संसृष्टि होगी ।

जिस प्रकार हारादि लौकिक अलङ्कारोंको एक साथ मिलाकर कोई नवीन अलङ्कार बनाया जाता है तो उसका एक विलक्षण चमत्कार होता है, उसी तरह इन शाब्दिक संसारके अलङ्कारों के परस्पर संसर्गसे एक दिव्य चमत्कार उत्पन्न होता है, अतएव इसको पृथक् अलङ्कार माना जाता है ॥ ३५९ ॥

अङ्गाङ्गिभावावस्थानं सर्वेषां समकक्षता ।
इत्यलङ्कारसंसृष्टेर्लक्षणीया द्वयी गतिः ॥ ३६० ॥

संसृष्टेर्भेदानाह—**अङ्गाङ्गिभावेति** । अङ्गाङ्गिभावः गुणप्रधानभावः, तेन अवस्थानं स्थितिः (कस्यचित्प्राधान्यं तदितरालङ्काराणां च गौणत्वमेवंरूपेणावस्थानम्), तथा सर्वेषामलङ्काराणां समकक्षता तुल्यबलता, गुणप्रधानभावं विना समप्राधान्येनावस्थानम्, इति अलङ्कारसंसृष्टेः अलङ्काराणां परस्परसंसर्गस्य द्वयी गतिः भेदद्वयी लक्षणीया ज्ञेया ॥ ३६० ॥

हिन्दी—संसृष्टि नामक इस अलङ्कारके दो प्रभेद होंगे, एक वह जिसमें समवेत विजातीय सजातीय सकल अलङ्कार परस्पर अङ्गाङ्गिभावापन्न हों, अर्थात् कोई एक अलङ्कार प्रधान हो, तदन्य अलङ्कार उसके पोषक हों, गौण हों, दूसरा प्रभेद वह होगा जिसमें समवेत सकल अलङ्कार समकक्ष-बराबर-तुल्यभावेन स्वतन्त्रतया अवस्थित हों । इस प्रकार दण्डीने संकर-संसृष्टि सभी नवीन प्रभेदों की जगहमें एकमात्र संसृष्टि ही मान ली है ।

अर्वाचीन आचार्योंने इस प्रसङ्गमें कुछ स्पष्ट विचार प्रस्तुत किया है, उनके मतानुसार समकक्षतया वर्त्तमान दो अलङ्कारोंके संसर्गमें संसृष्टिनामक अलङ्कार होता है :—'मिथोऽनपेक्षमेतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते' और अङ्गाङ्गिभाव, एकाश्रयानुप्रवेश तथा सन्दिग्धत्व स्थलकी संसृष्टिको सङ्कर नामसे अलग अलङ्कार माना जाता है—

'अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ । सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधस्ततः ॥'

इसका विस्तृत विवेचन जाननेके लिये साहित्यदर्पणादि ग्रन्थ देखें ॥ ३६० ॥

आक्षिपन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखश्रियम् ।
कोशदण्डसमग्राणां किमेषामस्ति दुष्करम् ॥ ३६१ ॥

अङ्गाङ्गिभावसंसृष्टिमुदाहरति—**आक्षिपन्तीति** । हे मुग्धे बाले, अरविन्दानि कमलानि तव मुखश्रियम् वदनकान्तिम् आक्षिपन्ति तुलयन्ति (आक्षिपतिर्निन्दार्थकतयौपम्यवाची, 'आक्रोशत्यवजानाति कदर्थयति निन्दती'त्यादिनौपम्यवाचकसंग्रहात्), तत्रोपपत्तिमाह—**कोषेत्यादि** । कोषः कुड्मलं धनचयश्च, दण्डो नालदण्डः सामादिषूपायेषु चरम

---

१. संकीर्णं । २. भावसंस्थानं । ३. स्क्ष्यता । ४. श्रियः ।

उपायश्च, ताभ्यां कोषदण्डाभ्यां समग्राणां पूर्णानाम् एषां कमलानां दुष्करमसाध्यं किमस्ति, कोषदण्डसद्भावे नास्ति किमप्यसाध्यम्, तत्सम्पन्नानि चामूनि कमलानि तव मुखश्रियमाक्षिपन्तीति सयुक्तिकमेव ।

अत्र प्रधानमुपमा, कोषदण्डपदयोः स्थितेन श्लेषेणानुप्राणितोऽर्थान्तरन्यासश्च तदङ्गमिति बोध्यम्, तदयं भवत्यङ्गाङ्गिभावसंसृष्टयलङ्कारः ॥ ३६१ ॥

हिन्दी—हे बाले, तुम्हारे मुखकी शोभासे कमल बराबरी कर रहे हैं, ठीक ही हैं, कोष (धनराशि—कमलपुष्पकुड्मल), तथा दण्ड (कमलनालदण्ड तथा सामाद्युपायमें अन्तिम उपाय दण्ड) इन दोनोंसे युक्त इन कमलोंके लिये दुष्कर क्या है? कुछ भी असाध्य नहीं है।

'आक्षिपन्ति' पदसे उपमाप्रधानतया प्रतीत होती है, और 'कोषदण्ड' पदोंमें वर्त्तमान श्लेषसे अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास उसका अङ्ग है, अतः यह श्लोक अङ्गाङ्गिभाव-संसृष्टिका उदाहरण हुआ है ॥ ३६१ ॥

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ ३६२ ॥

समकक्षतासंसृष्टिमुदाहरति—**लिम्पतीवेति** । तमः अङ्गानि लिम्पतीव, नभः अञ्जनं वर्षतीव, असत्पुरुषसेवा नीचजनानुवृत्तिः इव दृष्टिः निष्फलतां वस्तुनिरीक्षणाशक्ततां नैरर्थक्यम् गता प्राप्ता । अत्र पूर्वार्द्धे उत्प्रेक्षाद्वयम्, उत्तरार्धे चोपमा, तासां परस्परनिरपेक्षभावेन समकक्षतयाऽवस्थानात्समकक्षसंसृष्टिरियम् ॥ ३६२ ॥

हिन्दी—अन्धकार अङ्गोंको लिप्त सा कर रहा है, आकाश अञ्जनकी वृष्टि-सा कर रहा है और दुर्जनकी सेनाकी तरह आँखें वस्तुग्रहणाक्षमतया निष्फल हो रही हैं। इस श्लोकमें कृष्णपक्ष की त्रयोदशीका वर्णन है, पूर्वार्द्धमें दो उत्प्रेक्षायें है और उत्तरार्धमें उपमा है, उनका परस्पर निरपेक्ष रूपमें समकक्षतया अवस्थान होनेसे समकक्षतासंसृष्टि नामक संसृष्टिप्रभेद यहां स्फुट है ॥

श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ॥ ३६३ ॥

(इति संसृष्टिः)

श्लेष इति । श्लेषः प्रायः भूयसा सर्वासु वक्रोक्तिषु उक्तिवैचित्र्यमूलकालङ्कारेषु श्रियं शोभां पुष्णाति वर्धयति, प्रायः सर्वेष्वेवोक्तिवैचित्र्यकृतालङ्कारेषु श्लेषो मूलत्वेनावतिष्ठते इत्यर्थः । वक्रोक्तिसाजात्यात्स्मृतां स्वभावोक्तिमपि निर्दिशंस्तयोर्वाङ्मयव्यापितामाह—**भिन्नमिति** । स्वभावोक्तिः वस्तुस्वरूपवर्णनम्, वक्रोक्तिश्च सालङ्कारमुक्तिवैचित्र्यमिति वाङ्मयम् सकलं काव्यादि द्विधा भिन्नम् प्रकारद्वितयकृतसमावेशमिति ॥ ३६३ ॥

श्लेष प्रायः सभी वक्रोक्तियों—उक्तिवैचित्र्यकृत अलङ्कारोंमें शोभाधायक रहा ही करता है, इस तरह सारा वाङ्मय दो विभागोंमें बाँटा जा सकता है—१. स्वभावोक्ति, २. वक्रोक्ति।

इस तरह विभाग करनेका तात्पर्य यह मालूम पड़ता है कि काव्य में दो तरहकी उक्तिशैली को प्रश्रय दिया जाता है, एक वस्तुस्वरूपवर्णनको दूसरा चमत्कृतवर्णन—उक्तिवैचित्र्यकी। इन दोनों में ही सारी काव्यकी प्रवृत्तियाँ निहित हैं। इन दोनों शैलियोंमें यथार्थस्वरूपवर्णनवाली शैली स्वभावोक्तिसे युक्त रह सकती है, और दूसरी शैली चमत्कृतवर्णन-उक्तिवैचित्र्य-वक्रोक्तिसे चमत्कृत हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारा वाङ्मय दो विभागों में बँट जाता है—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति ॥ ३६३ ॥

तद्भाविकमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम्।
भावः कवेरभिप्रायः काव्येष्वासिद्धिसंस्थितः ॥ ३६४ ॥

अथ सर्वालङ्कारप्रधानं भाविकं नामालङ्कारं लक्षयति—**तद्भाविकमिति**। प्रबन्धाः ते ते महाकाव्यनाटकाख्यायिकादयः तद्विषयं तत्र वर्त्तमानं धर्मम् चमत्काराधायकं गुणविशेषम् तत् भाविकमिति प्राहुः कथयन्ति। संज्ञां व्युत्पादयति—**भाव इति**। भावः कवेरभिप्रायस्ततः प्रवृत्तं भाविकम्, स च भावः आसिद्धिसमाप्तिपर्यन्तं संस्थितः एकरूपेण वर्त्तमानोऽत इदं भाविकं प्रबन्धगतम्।

काव्यप्रकाशकारादयस्तु भाविकलक्षणमन्यथैवाहुः—'प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः तद्भाविकम्' ॥ ३६४ ॥

हिन्दी—भाविक नामक एक प्रबन्धगत अलङ्कार भी दण्डीने स्वीकार किया है, उसीका निरूपण इस कारिकामें किया जा रहा है। प्रबन्ध—महाकाव्य, नाटक, आख्यायिका आदि ग्रन्थोंसे कविके भावको चमत्काराधायक धर्मविशेषको भाविक अलङ्कार कहते हैं। यह अलङ्कार प्रबन्धगत है, क्योंकि कविभाव पूर्ण ग्रन्थमें रहता है, तन्मूलक यह अलङ्कार भी प्रबन्धगत होगा।

काव्यप्रकाश आदिमें इसका जो लक्षण है, वह अत्यन्त भिन्न है। इस तरहके भेदका कारण क्या है? कहा नहीं जा सकता है ॥ ३६४ ॥

परस्परोपकारित्वं सर्वेषां वस्तुपर्वणाम्।
विशेषणानां व्यर्थानामक्रियास्थानवर्णना ॥ ३६५ ॥
व्यक्तिरुक्तिक्रमबलाद् गम्भीरस्यापि वस्तुनः।
भावायत्तमिदं सर्वमिति तद्भाविकं विदुः ॥ ३६६ ॥

(इति भाविकम्)

पूर्वकारिकायां कवेरभिप्रायो भाव इत्युक्तं तन्मूलमेवेदं भाविकमित्यपि स्वीकृतम्, सम्प्रति कवेरभिप्रायविषयान् कांश्चिन् प्रबन्धधर्मानुद्दिशति—**परस्परोपकारित्वमिति**। वस्तुनि आधिकारिकेतिवृत्तानि, पर्वाणि प्राकरणिकेतिवृत्तानि, तेषां वस्तुपर्वणाम् सर्वेषाम् परस्परोपकारित्वम् अन्योन्यपोषकत्वम् (अयमेकः कवेर्भावः), अत्र धनञ्जयेनोक्तम्—वस्तु द्विधा—'तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः' इति। यथा रामायणे रामसीतावृत्तान्तः आधिकारिकः, सुग्रीवविभीषणादिवृत्तान्तश्च प्रासङ्गिकः, प्राकरणिकः। व्यर्थानां मुख्यार्थानुपकारिणां विशेषणानाम् अक्रिया अविधानम्, अयं द्वितीयः कवेरभिप्रायः, सोऽयमभिप्रायः परिकरालङ्काररूपतया परैरङ्गीकृतः। अन्ये त्वस्यापुष्टार्थत्वरूपदोषाभावस्वरूपत्वमातिष्ठन्ते। स्थानवर्णना प्रकृतोपयुक्तविषयवर्णना अयमपरः कवेरभिप्रायः ॥ ३६५ ॥

उक्तिक्रमबलाद् वचनोपन्यासक्रमसामर्थ्यात् गम्भीरस्य गूढस्यापि वस्तुनः अर्थस्य व्यक्तिः अभिव्यञ्जना, अयमपरः कवेरभिप्रायः, तदेषां सर्वेषामपि कवेरभिप्रायरूपाणां भावानाम् भाविकालङ्काररूपतां निगमयति—**भावायत्तमिति** ॥ ३६६ ॥

हिन्दी—पूर्वकारिकामें प्रबन्धगत भाविक अलङ्कारको कविके अभिप्रायस्वरूप भावमूलक कहा गया था, उसी भावको विवृत करके समझानेके लिये यह दो कारिकायें हैं।

१. भाविकं तमिति। २. काव्येष्वस्य व्यवस्थितिः।

धनञ्जयने लिखा है कि कथावस्तु दो प्रकारकी होती है, आधिकारिक और प्रासङ्गिक, प्रासङ्गिकको ही प्राकरणिक भी कहा जाता है, उनमें—आधिकारिकको वस्तु एवं प्राकरणिकको पर्व शब्दसे दण्डीने कहा है। जैसे रामायणमें रामसीतावृत्तान्त आधिकारिक होनेसे वस्तु है, और सुग्रीव-विभीषणादि वृत्तान्त प्राकरणिक होनेसे पर्व हैं। इन वस्तु और पर्वोंका परस्परोपकारकत्व होना एक कविभाव है, व्यर्थ विशेषणोंका प्रयोग नहीं करना दूसरा कविभाव है, इस कविभावको कुछ लोग परिकरालङ्कारस्वरूप मानते हैं और कुछ लोग अपुष्टार्थत्वदोषाभावस्वरूप कहते हैं। स्थानवर्णना—उपर्युक्त विषयोंका वर्णन, यह भी एक कविभाव है॥ ३६५॥

उक्तिक्रमके बलसे गूढ़ विषयकी अभिव्यक्ति भी एक प्रकारका कविभाव है, भाविक अलङ्कार इन्हीं भावोंपर अवलम्बित होता है. इसके समान भावोंके होनेपर भाविक अलङ्कार माना जायगा॥ ३६६॥

यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः॥ ३६७॥

स्वग्रन्थस्य न्यूनतां वारयति—**यच्चेति**। यच्च सन्धयः पञ्च—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः' इति, तदङ्गानि—'उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्' इत्यादीनि चतुःषष्टिप्रकाराणि। एवं वृत्तयश्चतस्रस्तत्तद्रसनियताः, यथा—'शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः। रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र सात्वती'॥ तदङ्गानि षोडश—'नर्मतत्स्फूर्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका' इत्यादीनि लक्षणानि भूषणाक्षरसङ्घातादीनि षट्त्रिंशत्। आदिना नाट्यालङ्कारादयः, एतत्सर्वमागमान्तरे भरतमुनिप्रणीतनाट्यशास्त्रे व्यावर्णितं विस्तरेण निरूपितं तत् इदं नः अस्माकम् अलङ्कारतया एव इष्टम् अलङ्काररूपमेव मतम्। तत्र केषाञ्चित् स्वभावाख्यानादावन्तर्भावः, केषाञ्चिच्च भाविके इति बोध्यम्॥ ३६७॥

हिन्दी—भरतमुनिने जिन सन्धि, तदङ्ग, वृत्ति, तदङ्ग, लक्षण, आदि (पदबोध्य नाट्यालङ्कार) के लक्षण, भेद आदि विस्तारके साथ बतलाये हैं, उन सभीको दण्डीने अलङ्कारस्वरूप ही मान लिया है॥ ३६७॥

पन्थाः स एष[1] विवृतः परिमाणवृत्त्या
संहृत्य[2] विस्तरमनन्तमलङ्क्रियाणाम्।
वाचामतीत्य विषयं परिवर्त्तमाना-
नभ्यास एव विवरीतुमलं विशेषान्॥ ३६८॥

इत्याचार्य[3]दण्डिनः कृतौ काव्यादर्शेऽर्थालङ्कारविभागो
नाम द्वितीयः परिच्छेदः।

प्रकरणमुपसंहरति—**पन्था इति**। अलङ्क्रियाणां तत्तदलङ्काराणाम् अनन्तम् बहुलीभूतम् विस्तरं प्रपञ्चं संहृत्य संक्षिप्य परिमाणवृत्त्या परिमितभावेन स एष पन्थाः अलङ्कारमार्गो विवृतः व्याख्यातः, वाचां विषयम् अतीत्य वर्णनापथमतिक्रम्य परिवर्त्त-

१. एव। २. संक्षिप्य। ३. इत्यार्य।

मानान् स्थितान् विशेषान् अलङ्कारप्रभेदान् विवरीतुं प्रकाशयितुम् अभ्यासः सततकाव्यपरिशीलनम् एव अलम् प्रभवति । अयमाशयः—'सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाश्यन्ते प्रकाशिताश्च' इति ध्वन्यालोकोक्तिदिशाऽनन्तमलङ्कारप्रपञ्चं संक्षिप्य परिमिताकारोऽयमलङ्कारमार्गो निरूपितः, वर्णयितुमशक्यास्ते तेऽलङ्कारप्रकाराऽभ्यासवशादेवोन्नेयस्वरूपा भविष्यन्तीति तदर्थं स्पृहयद्भिस्तदभ्यास एवालम्बनीय इति ॥ ३६८ ॥

हिन्दी—इस प्रकारसे हमने इस अनन्त अलङ्कारविस्तारको संक्षिप्त करके परिमित रूपमें यह अलङ्कारमार्ग प्रदर्शित किया है, वचनविषयसे परे, वर्णनके अयोग्य अनन्त अलङ्कारप्रकारोंको सतत काव्यपरिशीलन ही बता सकता है ॥ ३६८ ॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मप्रणीते काव्यादर्श-
'प्रकाशे' द्वितीयपरिच्छेद'प्रकाशः' ॥



तृतीयः परिच्छेदः

अव्यपेतव्यपेतात्मा व्यावृत्तिर्वर्णसंहतेः।
यमकं तच्च पादानामादिमध्यान्तगोचरम् ॥ १ ॥

अथ यमकालङ्कारनिरूपणमारभते — **अव्यपेतेति**। अव्यपेतः अव्यवहितः व्यपेतः व्यवहितश्च आत्मा स्वरूपं यस्याः सा अव्यपेतव्यपेतात्मा वर्णसंहतेः स्वरव्यञ्जनसमुदायस्य व्यावृत्तिः विशेषेण आवृत्तिः पुनःपुनरुच्चारणम् यमकमिति लक्षणम्। तथा च पूर्वोच्चारितवर्णसमुदायस्य क्वचिदव्यवधानेन क्वचिद्व्यवधानेन च पुनःपुनरुच्चारणं यमकमिति फलति, तच्च यमकं पादानाम् श्लोकचरणानाम् आदौ मध्ये अन्ते च भवति, तदाह— **पादानामादिमध्यान्तगोचरमिति**। इदमुपलक्षणं तेन पादखण्डपादपद्यार्धसम्पूर्णपद्यानामपि पुनःपुनरावृत्तौ सत्यामपि यमकं भवत्येवेति बोध्यम् ॥ १ ॥

हिन्दी—द्वितीय परिच्छेदके आरम्भमें शब्दार्थोभयसाधारण अलङ्कारसामान्यका लक्षण किया गया 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते'। अर्थालङ्कारकृत चमत्कारको प्रधान मान कर पहले अर्थालङ्कारका वर्णन भी कर दिया गया, शब्दालङ्कारके यमकादि प्रभेद साधारणचमत्कारकारी होते हैं यह बात माधुर्यगुणवर्णनप्रसङ्गमें प्रथम परिच्छेदमें कही गई थी—

'आवृत्तिमेव सङ्घातगोचरां यमकं विदुः। तत्तु नैकान्तमधुरमतः पश्चाद्विधास्यते ॥'

तदनुसार अब यमकका निरूपण प्रक्रान्त किया जाता है, उसका लक्षण है—वर्णसङ्घातका अव्यवधानसे या व्यवधानसे पुनः पुनः उच्चारण यमक कहा जाता है।' अर्थात्—पूर्वोच्चारित वर्णसमुदायकी अव्यवधानेन व्यवधानेन वा की गई पुनः पुनः आवृत्ति ही यमक नामसे प्रख्यात है, वह यमक पादोंके आदि, मध्य एवं अन्तमें रहा करता है। यह स्थाननियम उपलक्षणमात्र है, अतः पादमें, पादखण्डमें, पद्यार्थमें, सम्पूर्ण पद्यमें भी आवृत्तिका यमक नामसे अभिधान होता है ॥१॥

एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानां विकल्पनाः।
आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः ॥ २ ॥

पूर्वश्लोके 'आदिमध्यान्तगोचरम्' इत्युक्त्वा सामान्यतो दर्शितस्य यमकस्य पादस्थितत्वविविधत्वेन संभविनो भेदान्दर्शयितुमाह— **एकेति**। एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानाम् एकद्वित्रिचतुष्पादस्थितानां यमकानां विकल्पनाः विविधाः प्रभेदाः भवन्तीति शेषः, तथाहि—प्रथमपादे, द्वितीयपादे, तृतीयपादे, चतुर्थपादे चेति एकपादयमकभेदाश्चत्वारः, प्रथमद्वितीययोः, प्रथमतृतीययोः, प्रथमचतुर्थयोः, द्वितीयतृतीययोः, द्वितीयचतुर्थयोः, तृतीयचतुर्थयोश्चेति द्विपादयमकभेदाः षट्, प्रथमद्वितीयतृतीयेषु, प्रथमद्वितीयचतुर्थेषु, प्रथमतृतीयचतुर्थेषु, द्वितीयतृतीयचतुर्थेषु इति त्रिपादयमकभेदाश्चत्वारः। चतुष्पादयमकमेकविधमेव, एवं सङ्कलनया पादयमकस्य पञ्चदशभेदाः। अयं पादविकल्पनासम्भविनां यमकानां भेदप्रचयः, सम्प्रति पादेऽपि आदिमध्यान्तादिभिः सम्भाविनो भेदान्दर्शयितुमाह— **आदिमध्यान्तेति**। पूर्वोक्ताः पञ्चदश यमकभेदाः आदियमकम्, मध्ययमकम्, अन्तयमकम्, आदिमध्ययमकम्, आद्यन्तयमकम्, मध्यान्तयमकम्, आदिमध्यान्तयमकम् इति सप्तधा संभवन्ति, अतः सर्वसंहत्या पञ्चाधिकशतं यमकानि जातानि, तेषां च पुनरव्यपे-

---

१. या वृत्तिः। २. वर्णतः

तव्यपेतव्यपेताव्यपेतेति भेदत्रयेण पञ्चदशाधिकत्रिंशतिपरिमाणानि यमकानि भवन्तीति बोध्यम् ॥ २ ॥

हिन्दी—एक, दो, तीन, चार पादोंमें रहनेवाले यमकोंके बहुत भेद हो जाते हैं, जैसे:— प्रथम पादमें, द्वितीय पादमें, तृतीय पादमें, चतुर्थ पादमें, यमक इस प्रकार एकपादयमक चार प्रकारके हुए। प्रथम द्वितीय पादोंमें, प्रथम तृतीय पादोंमें, प्रथम चतुर्थ पादोंमें, द्वितीय तृतीय पादोंमें, द्वितीय चतुर्थ पादों, तृतीय चतुर्थ पादोंमें यमक, इस प्रकारसे द्विपादयमकके छः प्रभेद हुए। त्रिपादयमकके—प्रथमद्वितीयतृतीयपादगत, प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगत, प्रथमतृतीयचतुर्थपादगत, द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगत, इस प्रकार चार भेद हैं; चतुष्पादयमक एक ही प्रकारका है। इस तरह पादयमकके १५ भेद हुए। ऊपर बताये गये १५ भेदोंके—आदियमक, मध्ययमक अन्तयमक, आदिमध्ययमक, आद्यन्तयमक, मध्यान्तयमक, आदिमध्यान्तयमक, नामक सात प्रकार होते हैं, इनके योगसे १०५ प्रभेद हुए, इन सबके अव्यपेतयमक, व्यपेतयमक, व्यपेताव्यपेतयमक नामसे तीन प्रभेद हुए, इस प्रकार कुल मिलाकर ३१५ भेद होते हैं ॥ २ ॥

अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः संभेदयोनयः।
सुकरा दुष्कराश्चैव दर्श्यन्ते तत्र केचन ॥ ३ ॥

अत्यन्तबहव इति। तेषां पूर्वोक्तभेदानाम् संभेदयोनयः परस्परमिश्रणकृताः सजातीयविजातीययमकानामन्योन्यसंमिश्रणेन जायमाना इत्यर्थः। भेदाः अत्यन्तबहवः परिच्छेत्तुमशक्याः, तत्र बहुषु प्रभेदेषु केचन सुकराः सुखं साध्याः, केचन च दुष्कराः कठिनतया साध्याः, सन्तीति योज्यम्। तेषु केचन प्रकारा वर्ण्यन्तेऽस्माभिरिति वेदितव्यम् ॥३॥

हिन्दी—पूर्ववर्णित यमकोंके सजातीय-विजातीय-संमिश्रणजन्य प्रभेद बहुत अधिक हो जाते हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती, उनमें कुछ भेद ऐसे होते हैं जिनकी रचना सुखसाध्य है और कुछ भेद ऐसे भी हैं जिनकी रचना कठिनतासे साध्य है, इस तरहके यमकोंमें से कुछके उदाहरण यहाँ पर शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थ दिये जा रहे हैं ॥ ३ ॥

मानेन मानेन सखि प्रणयोऽभूत् प्रिये जने।
खण्डिता कण्ठमाश्लिष्य तमेव कुरु सत्रपम् ॥ ४ ॥

मानेनेति। हे सखि, प्रिये जने स्वप्रियतमे अनेन मानेन कोपेन सह तव प्रणयः आन्तरिकः स्नेहः मा भूत् नास्तु, प्रिये जने सस्नेहया त्वया तस्मिन्कोपो न कार्य इत्यर्थः। ननु तथा कृतापराधस्य तस्य प्रतियातनं कथं स्यादित्यपेक्षायामाह—**खण्डितेति**। खण्डिता 'पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता' इत्युक्तस्वरूपा सत्यपि त्वं कण्ठमाश्लिष्य आलिङ्ग्य तमेव सत्रपं संजातलज्जं कुरु। अपकर्त्तरि प्रियेऽविकृतभावेन प्रीतिप्रदर्शनमेव तदीयापकारप्रतियातनस्य सर्वोत्तमं वर्त्मेति सख्यास्तथानुरोधः। तत्र प्रथमपादस्थम् अव्यवहितम् अमिश्रमादियमकम् ॥ ४ ॥

हिन्दी—खण्डिता होनेसे कुपिता किसी नायिकाकी उसकी सखी समझाती है, अरी सखी, तुमको अपने प्रियतमके ऊपर प्रणयके साथ इस मानका धारण नहीं करना चाहिये, (अगर तुम प्रियतम द्वारा किये गये अपकारके लिये उसे सजा देना चाहती हो, तो यही सबसे अच्छा है कि) खण्डिता होकर भी तुम उसके गले से लिपटकर उसे लज्जित कर दो, (क्योंकि अपकारीके प्रति प्रीतिप्रदर्शन उसकी बड़ी भारी सजा हो जाती है) ॥ ४ ॥

१. वर्ण्यन्ते। २. तेऽत्र।

मेघनादेन हंसानां मदनो मदनोदिना ।
नुन्नमानं मनः स्त्रीणां सह रत्या विगाहते ॥ ५ ॥

द्वितीयपादगतं यमकमुदाहरति—मेघनादेनेति । मदनः कामः रत्या नाम स्वस्त्रिया सह अनुरागेण च सह हंसानां मदनोदिना गर्वापहारकेण मेघनादेन घनगर्जितेन नुन्नमानं दूरीकृतकोपम् (घनर्जितस्योद्दीपकतया त्यक्तमानम्) स्त्रीणां मनो विगाहते आलोडयति । घनगर्जिताकर्णनेन सर्वासां स्त्रीणां हृदयं विगतमानमनुरक्तं भवतीति भावः ॥ ५ ॥

हिन्दी—मदन अपनी स्त्री रति या अनुरागके साथ—हंसोके गर्वको दूर करनेवाले मेघगर्जन से अपगतमान अबलाओंके हृदयको आलोडित कर देता है, अर्थात् मेघगर्जन श्रवण करके सभी स्त्रियोंके हृदयसे मान निकल जाता है, और अनुरागके साथ काम आ जाता है, इस उदाहरणमें 'मदनो मदनो' मह द्वितीयपादगत यमकका उदाहरण हुआ ॥ ५ ॥

राजन्वत्यः प्रजा जाता भवन्तं प्राप्य सत्पतिम्[1] ।
चतुरं चतुरम्भोधिरशनोर्वीकरग्रहे[2][3] ॥ ६ ॥

तृतीयपादयमकमुदाहरति—राजन्वत्य इति । (हे राजन्) चत्वारः अम्भोधयः समुद्रा एव रशना मेखला यस्याः सा चतुरम्भोधिरशना सागरचतुष्टयवेष्टिता या उर्वी पृथ्वी तस्याः करग्रहे राजग्राह्यभागादाने पाणिग्रहणे च चतुरं निपुणं सत्पतिं योग्यपालकं प्राप्य प्रजाः प्रकृतयः राजन्वत्यः सराजोपपन्ना जाताः, त्वयि राजनि प्रजानां राजन्वत्त्वं जातमित्यर्थः, सुराज्ञि देशे राजन्वान स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः ॥ ६ ॥

हिन्दी—चारों सागर जिसकी मेखला हैं, ऐसी पृथ्वीके कर (टैक्स) या हाथ ग्रहण करनेमें दक्ष आपको उपयुक्त पालकके रूपमें प्राप्त करके प्रजायें राजन्वती-सुराजयुक्त हो गई, इसमें 'चतुरं चतुरम्भोधि'में तृतीयपादगत यमक हुआ ॥ ६ ॥

अरण्यं कैश्चिदाक्रान्तमन्यैः सद्म दिवौकसाम् ।
पदातिरथनागाश्वरहितैरहितैस्तव ॥ ७ ॥

चतुर्थपादगतं यमकं दर्शयति— अरण्यमिति । पदातयः पादचारिसैनिकाः, रथाः यानानि, नागाः हस्तिनः, अश्वा, तैः सर्वैः रहितैः शून्यैः (पदातिरथनागाश्वानामपाये तद्रहितैः) तव कैश्चित् अहितैः शत्रुभिः आक्रान्तम् वने पलायितम्. अन्यैः वनं गतेभ्योऽतिरिक्तैश्च तैः दिवौकसां देवानां सद्म स्वर्गलोकरूपम् आक्रान्तम् गतम् । अत्र रहितैरहितैरिति चतुर्थपादगतमव्यपेतमादियमकं बोध्यम् ॥ ७ ॥

हिन्दी—पैदल सैनिक, रथ, हाथी, घोड़ोंसे रहित आपके कुछ शत्रु प्राणभयसे वनमें भाग गये, और उसी तरहके कुछ अन्य शत्रु संमुख रणमें कटकर देवलोक सिधार गये । इसमें 'रहितैरहितैः' में चतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक है ॥ ७ ॥

मधुरं मधुरम्भोजवदने वद नेत्रयोः ।
विभ्रमं भ्रमरभ्रान्त्या विडम्बयति किन्नु[4] ते ॥ ८ ॥

एकपादयमकस्य प्रभेदचतुष्टयमुदाहृत्य सम्प्रति द्विपादयमकप्रभेदानुदाहर्तुमुपक्रममाणः प्रथमं द्विपादगताव्यपेतादियमकमाह—मधुरमिति । वसन्तसमये कमलेषु विकसितेषु भ्रमरं भ्रमन्तमालोकमानस्य कस्यचित् प्रियाचाटुकारस्य नायकस्य तां प्रत्युक्तिरियम्

१. सम्प्रति । २. रशनोर्वी । ३. परिग्रहे । ४. किं न ।

हे अम्भोजवदने, मधुः वसन्तः ते तव नेत्रयोः मधुरं हृदयहारिणं विभ्रमं शोभातिशयम् भ्रमरभ्रान्त्या इमौ भ्रमन्तौ भ्रमरावेवेति लोकानां हृदि भ्रममाधाय विडम्बयति अनुकृत्य विशेषयति नु किम्, तत् वद, त्वमेव कथय ॥ ८ ॥

हिन्दी—हे कमलमुखि, तुम्हीं बताओ, यह वसन्तसमय तुम्हारे नयनोंके हृदयाकर्षक शोभातिशयको भ्रमरका भ्रम उत्पन्न करके—यह भ्रमर ही है इस प्रकारका ज्ञान कराके क्या बढ़ा नहीं रहा है ? वसन्तऋतुमें कमलोंपर भ्रमर घूम रहे हैं, ऐसा मालूम पड़ता है कि वसन्तऋतु चञ्चलनयन तुम्हारे मुखकी शोभाका अनुकरण करके उसकी प्रतिष्ठावृद्धि कर रहा हो, तुम्हीं कहो, क्या ऐसी बात नहीं है।

वसन्तमें लिखे कमलोंपर घूमते हुए भ्रमरोंको देखकर किसी चाटुकार नायकने अपनी प्रेयसी से यह श्लोक कहा है।

इसमें प्रथम पादमें 'मधुरं मधुरं' एवं द्वितीय पादमें 'वदने वदने' यह अव्यपेत आदिगत यमक है ॥ ८ ॥

वारणो वा रणोद्दामो हयो वा स्मरदुर्धरः।
न यतो न'यतोऽन्तं नस्तदहो विक्रमस्तव ॥ ९ ॥

प्रथमतृतीयपादयमकमुदाहरति—वारण इति। हे स्मर कन्दर्प, यतस्तव रणोद्दामः युद्धदुर्मदः वारणः करी (नास्ति) दुर्धरः दुरासदः हयः वाजी वा न अस्तीति शेषः, तथापि पराभिभवसाधनवैकल्येऽपि नः वियोगिजनान् अन्तं नाशं नयतः ते तव अहो आश्चर्यजनको विक्रमः पराक्रमातिशयः अस्तीति योजनीयम् ॥ ९ ॥

हिन्दी—हे कामदेव, तुम्हारे पास न तो लड़ाईके उपयुक्त दुर्दान्त हाथी है, न दुर्धर्ष घोड़ा ही है फिर भी तुम हम लोगों—वियोगिजनोंको विनष्ट करनेमें समर्थ होते ही हो, अद्‌भुत है तुम्हारा पराक्रम !

इस श्लोकमें 'वारणो वा रणो' यह प्रथम पादगत, 'न यतो नयतो' यह तृतीय पादगत अव्यपेत आदियमक है ॥ ९ ॥

राजितै राजितैक्ष्ण्येन² जीयते त्वादृशैर्नृपैः।
नीयते च पुनस्तृप्तिं वसुधा वसुधारया ॥ १० ॥

प्रथमचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—राजितैरिति। आजितैक्ष्ण्येन संग्रामदुर्धर्षतया राजितैः शोभितैः त्वादृशैर्नृपैः वसुधा समस्तपृथ्वी वासिजनसमूहः जीयते स्वायत्तीक्रियते, पुनश्च सैव वसुधा वसुधारया दानस्वरूपधनवृष्ट्या तृप्तिं नीयते सन्तोष्यते ॥ १० ॥

हिन्दी—संग्रामकी प्रखरतासे युक्त आपके समान नृपोंने समूची पृथ्वी जीत ली और दानमें धाराप्रवाह रूपसे धनदान देकर उसी वसुधाको सन्तुष्ट किया है।

इस उदाहरणमें प्रथम पादमें 'राजितैराजितै' और चतुर्थ पादमें 'वसुधा वसुधा' यह अव्यपेत आदियमक है ॥ १० ॥

करोति सहकारस्य कलिकोत्कलिकोत्तरम्।
मन्मनो मन्मनोऽप्येष³ मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ ११ ॥

द्वितीयतृतीयपादगतमव्यपेतमादियमकमुदाहरति—करोतिती। सहकारस्य आम्रस्य मञ्जरी मन्मनः मदीयं चित्तम् उत्कलिकोत्तरम् उत्कण्ठापूर्णं करोति, तथा एषः मन्मनः

१. नयतोस्तं। २. तैक्ष्णेन। ३. ह्येष।

अव्यक्तमधुरः मत्तकोकिलनिस्वनः समदकोकिलकलरवः अपि (मन्मनः) उत्कलिकोत्तरम् सोत्कण्ठं । करोति । अत्र मधौ यथैवाम्रकलिका ममोत्कण्ठयति चित्तं, तथैव मदमत्तकोकिलकूजितमपि मदीयमुत्कण्ठयति चित्तमिति भावः । 'मन्मनोऽव्यक्तमधुरो मन्मनो रतिभाषित'मिति विश्वकोषः ॥ ११ ॥

हिन्दी—इस वसन्तसमयमें आमकी मञ्जरी हमारे हृदय को उत्कण्ठापूर्ण बनाती है, एवं यह मदमत्त कोयलकी कूक भी हमारे मनको उत्कण्ठित करती है ।

इस उदाहरणश्लोकके द्वितीय पादमें 'कलिकोत् कलिकोत्' एवं तृतीय पादमें 'मन्मनो मन्मनो' यह आदिगत अव्यपेत यमक है ॥ ११ ॥

कथं त्वदुपलम्भाशा विहताविह तादृशी[1] ।
अवस्था नालमारोढुमङ्गनामङ्गनाशिनी ॥ १२ ॥

द्वितीयचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—कथमिति । इह वसन्तसमये त्वदुपलम्भाशाविहतौ त्वदीयसङ्गमाशाया विघाते जाते तादृशी वर्णनातिगामिनी अङ्गनाशिनी गात्रक्षयकरी अवस्था कामयमानावस्था अङ्गनां तां तव प्रियां सुन्दरीम् आरोढुम् अभिभवितुं कथं न समर्था, अपि तु समर्था एव । तव विरहे सा मरणोन्मुखी जातेत्यर्थः । नायकं प्रति दूत्या उक्तिरियम् । अत्र द्वितीयपादे 'विहता विहता' चतुर्थपादे च 'मङ्गना मङ्गना' इति यमकम् ॥ १२ ॥

हिन्दी—इस वसन्तसमयमें तुम्हारे मिलने की आशा छूट जानेपर वर्णनसे परे तथा शरीरक्षयकरी कामावस्था तुम्हारी प्रेयसी उस अबलाको सतानेमें किस प्रकार समर्थ नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य सताने में समर्थ होगी । नायकके प्रति दूतीकी उक्ति है ।

इस श्लोकके द्वितीय चरणमें 'विहता विहता' और चतुर्थ चरणमें 'मङ्गना मङ्गना' में यमक है ॥ १२ ॥

निगृह्य नेत्रे कर्षन्ति बालपल्लवशोभिना ।
तरुणा तरुणान् कृष्टानलिनो नलिनोन्मुखाः[2] ॥ १३ ॥

तृतीयचतुर्थपादयमकमुदहरति—निगृह्येति । नलिनोन्मुखाः कमलमधुपानमत्ता अलिनो भ्रमराः बालपल्लवशोभिना नवकिसलयशोभासमृद्धेन तरुणा वृक्षेण कृष्टान् स्वशोभावलोकनार्थमाकृष्टान् तरुणान् युवकान् नेत्रे चक्षुषी निगृह्य गृहीत्वा इव कर्षन्ति स्वसौन्दर्यदर्शनाय बाध्यभूतानिव कुर्वन्ति, नवकिसलयमनोरमं तरुं विलोकमाना युवानो भ्रमराणां तद्वृक्षस्थितानां दर्शने कृष्टचक्षुष इव आयन्त इत्यर्थः, वसन्तशोभावर्णनमिदम् । अत्र तृतीयपादे 'तरुणा तरुणा' 'नलिनो नलिनो' इति यमकम् ॥ १३ ॥

हिन्दी—कमललोलुप भ्रमरगण नवकिसलय शोभासनाथ वृक्षसे आकृष्ट किये गये युवकोंको आँख पकड़ कर अपनी ओर खींच रहे हैं, वृक्षकी शोभा देखने के लिये आकृष्ट होने वाले युवकोंको भ्रमर अपनी शोभा देखनेके लिये बाध्य कर रहे हैं । यह वसन्तवर्णन है । इस श्लोकमें तृतीय पादमें 'तरुणा तरुणा' और चतुर्थ पादमें 'नलिनो नलिनो' यह यमक है ॥ १३ ॥

विशदा विशदामत्तसारसे सारसे जले ।
कुरुते कुरुतेनेयं हंसी मामन्तकामिषम् ॥ १४ ॥

---

१. ता दृशीम् । २. क्लिष्टा ।

क्रमप्राप्तं त्रिपादगतमादिगतमव्यपेतयमकमुदाहरति—**विशदेति**। विशदामत्तसारसे सारसे जले इयं विशदा हंसी कुरुते न माम् अन्तकामिषं कुरुते इति अन्वयः, विशन्तः प्राविश्य गाहमाना आमत्ताः सारसाः पक्षिभेदा यत्र तादृशे सारसे सरोवरस्थे जले विशदा स्वच्छवर्णा इयं हंसी कुरुते न कामोद्दीपकतया विरहिजनासह्येन स्वीयेन दुःशब्देन माम् विरहिणं जनम् अन्तकामिषम् यमस्य भोज्यं वस्तु कुरुते विधत्ते, अत्र 'विशदा विशदा' 'सारसे सारसे' 'कुरुते कुरुते' इति प्रथमपादत्रये क्रमशो यमकानि, चतुर्थपादमात्रं यमकरहितम् ॥ १४ ॥

हिन्दी—प्रवेश कर रहे हैं मदमत्त सारसगण जिसमें ऐसे सरोवरजलमें वर्त्तमान यह धवलवर्णा हंसी कामोद्दीपकतया निन्दनीय अपने शब्द से मुझ विरहीको यमका भोज्य बना रही है, हंसीके शब्दसे मैं मरा जा रहा हूँ।

इस श्लोक में क्रमशः प्रथम तीन चरणों में आदिगत अव्यपेत 'विशदा विशदा' 'सारसे सारसे' 'कुरुते कुरुते' यह यमक है, केवल चौथा चरण यमकरहित है ॥ १४ ॥

विषमं विषमन्वेति मदनं मदनन्दनः।
सहेन्दुकलयापोढमलया मलयानिलः ॥ १५ ॥

प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगतं तादृशमेव यमकमुदाहरति—**विषममिति**। मलयानिलः अपोढमलया इन्दुकलया सह मदनन्दनः विषमं विषम् मदनम् अन्वेति इत्यन्वयः।

मलयानिलः दक्षिणदिक् प्रवृत्तः पवनः अपोढमलया त्यक्तमालिन्यया इन्दुकलया चन्द्रमसो लेखया सह मदनन्दनः मदप्रीतिकरः सन विषमम् भयङ्करं विषम् विषमिव सन्तापकारं मदनं कामं नाम अन्वेति अनुयाति। निर्मलचन्द्रिकासहकृतो दक्षिणवातो मदप्रीतिमुत्पाद्य सन्तापकस्य भयङ्करस्य च कामस्य साहाय्यमिव करोति। अत्र प्रथमे द्वितीये चतुर्थे च पादेऽव्यपेतमादिगतं च क्रमशः—'विषमं विषमम्' 'मदनं मदनं' 'मलया मलया' इति यमकानि ॥ १५ ॥

हिन्दी—यह मलयानिल मालिन्यरहित चन्द्रिकाके साथ हमारी अप्रीतिको बढ़ाते हुए भयङ्कर तथा विषकी तरह सन्तापक कामदेवकी सहायता कर रहा है।

इस श्लोकके प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थपादोंमें अव्यपेत आदियमक हैं, उनके आकार हैं—'विषमं विषमम्' 'मदनं मदनं' 'मलया मलया' ॥ १५ ॥

मानिनी मा निनीषुस्ते निषङ्गत्वमनङ्ग मे।
हारिणी हारिणी शर्म तनुतां तनुतां यतः ॥ १६ ॥

प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतं यमकमुदाहरति—**मानिनीति**। मानिन्याः प्रसादनाय कोऽपि कामी कामदेवं प्रार्थयते—मा ते निषङ्गत्वं निनीषुः हारिणी हारिणी इयं मानिनि तनुतां यतः मे शर्म तनुताम्, इत्यन्वयः। मा माम् ते तव कामस्य निषङ्गत्वं तूणीरभावम् अविरलनिपतितशरसमाश्रयत्वम् निनीषुः प्रापयितुमिच्छुः (मानमाधाय कृतवैमुख्या सततपतितकामबाणपात्रत्वेन निषङ्गतां प्रापयितुमिच्छुः) हारिणी मौक्तिकहारभूषणा अत एव हारिणी मनोहरसौन्दर्या इयं मानिनी तनुतां कृशाभावं यतः प्राप्नुवतः मम शर्म सुखं तनुताम्। यथेयं मयि प्रसीदेत्तथा कुरुष्वेति प्रार्थना। अत्र प्रथमे तृतीये तुर्ये च पादे क्रमशो 'मानिनी मानिनी' 'हारिणी हारिणी' 'तनुतां तनुतां' इति यमकानि ॥ १६ ॥

हिन्दी—हे काम, मुझसे विमुख होकर यह श्री मुझे तुम्हारे बाणों का तरकस बनाना चाह रही है, अर्थात् तुम्हारे बाण मुझपर गिरकर एकत्र हुए जा रहे हैं जिससे मैं बाणोंका तरकस-सा हुआ जा रहा हूँ, ऐसी तथा मौक्तिकहार धारिणी अतएव मनोहारिणी यह रमणी अनवरत दुर्बल होनेवाले मेरे सुखको करे। मैं उसके बिना दुर्बल हुआ जा रहा हूँ, वह मेरे अनुकूल हो जाय जिससे मैं सुखका उपभोग कर सकूँ। इसमें प्रथम, तृतीय एवं चतुर्थ चरणोंमें यमक स्पष्ट है ॥१६॥

जयता त्वन्मुखेनास्मानकथं न कथं जितम्।

कमलं कमलं कुर्वदलिमद्दलि मत्प्रिये ॥ १७ ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—**जयतेति**। हे प्रिये अस्मान् जयता स्ववशीकुर्वता त्वन्मुखेन तवाननेन कम् पानीयम् अलङ्कुर्वत् भूषयत्, तथा अलिमद्दलि भ्रमरयुक्तपत्रम् कमलम् अकथम् विना संशयम् अविवादरूपेण कथं न जितम्? अवश्यं जितम्, चेतनानामस्माकं जेतुर्मुखस्य भ्रमरजयो नितान्तासन्दिग्ध इत्यर्थः। अत्र द्वितीये तृतीये चतुर्थे च पादे क्रमशो 'नकथं नकथं' 'कमलं कमलं' 'दलिमद् दलिमत्' इति यमकानि ॥ १७ ॥

हिन्दी—हे प्रिये, हम लोगोंको अपने वशमें कर लेने वाला यह तुम्हारा मुख जलकी शोभा बढ़ाने वाले तथा भ्रमरसे युक्त दलों वाले इन कमलपुष्पोंको जीत लेगा, इसमें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। जिस मुखने सचेतन मुखको अपने वशमें कर लिया है, वह अचेतन कमलोंको क्यों न जीतेगा? इस उदाहरणके द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पादमें क्रमशः 'नकथं नकथं' 'कमलं कमलं' तथा 'दलिमद् दलिमत्' यह यमक स्पष्ट है ॥ १७ ॥

रमणी रमणीया मे पाटलापाटलांशुका।

वारुणीवारुणीभूतसौरभा सौरभास्पदम् ॥ १८ ॥

पादचतुष्टयगतमव्यपेतमादिभागयमकमुदाहरति—**रमणीति**। पाटलापाटलांशुका पाटलपुष्पवच्छ्वेतरक्तवस्त्रा सौरभास्पदम् पद्मिनीनायिकात्वेन सुगन्धिशरीरा मे रमणी प्रेयसी अरुणीभूतसौरभा रक्तसूर्यकररञ्जिता वारुणी पश्चिमदिगिव रमणीया मनोहरा। अत्र चतुर्ष्वपि पादेषु अव्यपेतमादिगतं यमकम् ॥ १८ ॥

हिन्दी—गुलाबके फूलकी तरह रक्तश्वेत वस्त्र धारण करने वाली, पद्मिनी नायिका होनेसे परम सुगन्धिशरीरा, मेरी प्रिया लाल सूर्यकान्तिसे मण्डित वारुणी-पश्चिमदिशाकी तरह रमणीय लग रही है।

इसमें 'रमणी रमणी' 'पाटला पाटला' 'वारुणी वारुणी' 'सौरभा सौरभा' इस प्रकार चारों चरणोंमें आदिगत अव्यपेत यमक वर्त्तमान है। इस प्रकार यहाँ तक अव्यपेत आदिगत यमकके उदाहरण दिये गये ॥ १८ ॥

इति पादादि यमकमव्यपेतं विकल्पितम्।

व्यपेतस्यापि वर्ण्यन्ते विकल्पास्तस्य केचन ॥ १९ ॥

अव्यपेतमादियमकमुपसंहरति—**इतीति**। इति पूर्वदर्शितप्रकारेण पादादि पादादिभागगतम् अव्यपेतम् अव्यवहितं यमकम् विकल्पितम् संभवद्भिर्भेदैर्भेदितमुदाहृतञ्च तस्य पूर्वोद्दिष्टस्य व्यपेतस्य व्यवहितस्य यमकस्य केचन विकल्पाः प्रभेदाः क्रमप्राप्ततया वर्ण्यन्ते दर्शयितुमुपक्रम्यन्ते ॥ १९ ॥

---

१. तत्र।

हिन्दी—पूर्वदर्शित प्रकारसे पादादिगत अव्यपेत यमकके संभवी प्रभेदोंके भेद-प्रभेद तथा उदाहरण बताये गये, अब व्यपेत यमकके प्रभेद बताये जायेंगे ॥ १९ ॥

मधुरेणदृशां मानं मधुरेण सुगन्धिना ।
सहकारोद्गमेनैव शब्दशेषं करिष्यति ॥ २० ॥

प्रथमद्वितीयपादगतं व्यपेतमादियमकमुदाहरति—**मधुरेणेति** । मधुरेण मधुबिन्दुसुगन्धकृतमाधुर्ययुतेन सुगन्धिना सौरभपूर्णेन सहकारोद्गमेन आम्रमञ्जरीविकासेनैव मधुर्वसन्तसमयः एणदृशां हरिणाक्षीणां मानम् प्रणयकोपम् शब्दशेषम् नाममात्रावशिष्टम् करिष्यति समापयिष्यति । अत्र 'मधुरेण मधुरेण' इति वर्णसमुदायावृत्ते'र्दृशां मान' मिति वर्णचतुष्टयव्यवहितमिति व्यपेतयमकोदाहरणमिदम् ॥ २० ॥

हिन्दी—यह वसन्तसमय मधुबिन्दुसे मधुर तथा अतिशयसुगन्धित आम्रमञ्जरीविकाससे ही इन हरिणनयनाओंके मानको कथावशेष बना देगा, इन आम्रमञ्जरियोंके विकसित होते ही मानिनिओंके मानकी कथाभर रह जायगी ।

इस उदाहरणमें 'मधुरेण मधुरेण' की आवृत्ति है, उन आवर्त्यमान वर्णसमुदायोंके बीचमें 'दृशां मानम्' यह व्यवधान है, अतः इसे आदिगत व्यपेतयमक कहा है । यह प्रथमद्वितीयपादगत व्यपेतयमक हुआ, एकपादगत व्यपेतयमकका उदाहरण सरल समझकर नहीं दिया गया है ॥२०॥

करोतिताम्रो रामाणां तन्त्रीताडनविभ्रमम् ।
करोति सेर्ष्यं[1] कान्ते च[3] श्रवणोत्पलताडनम् ॥ २१ ॥

प्रथमतृतीयपादगतं व्यपेतमादियमकमुदाहरति—**करोतीति** । विलासिन्या विलासस्य वर्णनम् । रामाणाम् रमणीनाम् अतिताम्रः रक्तवर्णः करः हस्तः तन्त्रीताडनविभ्रमम् वीणावादनविलासम्, तथा कान्ते परस्त्रीसङ्गादिना कृतापराधे नायके सेर्ष्यं कृतेर्ष्याप्रकाशनं श्रवणोत्पलताडनम् कर्णावतंसीभूतनीलकमलकरणकं प्रहारं च करोति । अत्रावर्त्यमानयोः 'करोति' 'करोति' इति वर्णसङ्घातयोर्मध्ये बहुवर्णव्यवधानमिति व्यपेतयमकमिदम्, तच्च प्रथमतृतीयपादादिगतं स्पष्टम् ॥ २१ ॥

हिन्दी—इस विलासिनी रमणीका अति रक्तवर्ण कर वीणावादनविलास करता है और कृतापराध नायकके प्रति ईर्ष्यासे कर्णभूषण नीलकमलद्वारा प्रहार भी करता है ।

इस उदाहरणमें प्रथम तृतीय चरणोंमें 'करोति करोति' वर्णसमुदायकी आवृत्ति है, बीचमें अनेकवर्णव्यवधान है, पादादिमें आवृत्ति है, अतः अनेकपादगत व्यपेत आदियमकका यह उदाहरण है ॥ २१ ॥

सकलापोल्लसनया कलापिन्यानु[4] नृत्यते ।
मेघाली नर्तिता वातैः सकलापो विमुञ्चति ॥ २२ ॥

प्रथमचतुर्थपादगतं यमकमुदाहरति—**सकलेति** । वातैः वर्षाकालिकपवनैर्नर्तिता चालिता सकला समस्ता मेघाली घनमाला अपः जलानि विमुञ्चति वर्षति, अनु पश्चात् कलापस्य बर्हभारस्य उल्लसनं विकासस्तेन सहितया सकलापोल्लसनया विकासिपिच्छभारया कलापिन्या मयूर्या नृत्यते, हर्षनृत्यं क्रियते । अत्र प्रथमचतुर्थपादयोः 'सकलापो' 'सकलापो' इति व्यवहितमादिगतं यमकम् ॥ २२ ॥

१. वारीणाम् । २. सेर्ष्ये । ३. वा । ४. न्यानुनृत्यते ।

हिन्दी—बरसाती हवासे नचाई गई यह मेघमाला पानी बरसा रही है, और तदनन्तर उल्लसित पिच्छधारिणी यह मयूरी हर्षनृत्य कर रही है।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथम तथा चतुर्थ चरणोंमें 'सकलापो' 'सकलापो' का यमक है, जो आदिगत तथा व्यवहित है ॥ २२ ॥

स्वयमेव गलन्मानकलि कामिनि ते मनः।
कलिकामिह नीपस्य दृष्ट्वा कां न स्पृशेद्दशाम् ॥ २३ ॥

द्वितीयतृतीयपादगतं व्यपेतमादियमकमुदाहरति—**स्वयमेवेति**। हे कामिनि नायकसङ्गमाभिलाषिणि, स्वयमेव विनैव नायकानुनयं घनोदयं वा गलन्मानकलि अपगच्छन्मानकलहम् इदं ते तव मनः इह वर्षासमयसमागमे नीपस्य कदम्बस्य कलिकां कोरकं दृष्ट्वा कां दशां न स्पृशेत्, सर्वा अपि कामकृता अवस्था अनुभवेत्, कामातुराया स्वयमपगच्छन्मानायाः स्वल्पावशिष्टमानायाश्च ते कोपोऽत्र फुल्लत्कदम्बे काले न स्थातुं शक्त इत्यर्थः।

अत्र द्वितीयतृतीयपादयोः कलिकाकलिकेति पादादिगतं व्यवहितं यमकम् ॥ २३ ॥

हिन्दी—तुम्हारा मानकलह स्वयं ही शान्त होता जा रहा है, तुम्हारा हृदय स्वतः अपगतमानकलह हो रहा है, इस वर्षासमयमें खिलती हुई कदम्बकलिकाको देखकर, न जाने, किस अवस्थाको प्राप्त करेगा?

इस उदाहरणमें द्वितीयतृतीयपादगत 'कलिका कलिका' शब्दमें व्यवहित आदियमक है ॥२३॥

आरुह्याक्रीडशैलस्य चन्द्रकान्तस्थलीमिमाम्।
नृत्यत्येष लसच्चारुचन्द्रकान्तः शिखावलः ॥ २४ ॥

द्वितीयचतुर्थपादगतं व्यपेतयमकमुदाहरति—**आरुह्येति**। आक्रीडशैलस्य उद्यानगतक्रीडापर्वतस्य चन्द्रकान्तस्थलीम् चन्द्रकान्तमणिनिर्मितां भूमिम् आरुह्य एषः चारवः चन्द्रकाः मेचकाः बर्हस्थाश्चिह्नविशेषास्तैरन्तो रमणीयोऽयं शिखावलो मयूरः नृत्यति। 'पुमानाक्रीड उद्यानम्' इति 'अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽतिमनोहरे' इति चामरविश्वौ। अत्र प्रथमचतुर्थपादगतं 'चन्द्रकान्त' 'चन्द्रकान्त' इति व्यपेतं यमकम् ॥ २४ ॥

हिन्दी—उद्यानस्थित क्रीड़ापर्वतकी चन्द्रकान्तमणिनिर्मित भूमिपर आरोहण करके चारु मेचकसे रमणीय यह मयूर नृत्य कर रहा है।

इस उदाहरणमें 'चन्द्रकान्त' 'चन्द्रकान्त' यह द्वितीयचतुर्थपादगत आदिवर्ती व्यपेतयमक है ॥२४॥

उद्धृत्य राजकादुर्वी ध्रियतेऽद्य भुजेन ते।
वराहेणोद्धृता यासौ वराहेरुपरि स्थिता ॥ २५ ॥

तृतीयचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—**उद्धृत्येति**। (हे नृप) या असौ पृथ्वी वराहेण वराहरूपेण भगवता विष्णुना उद्धृता सागरादूर्ध्वमानीता, तथा या वराहेः श्रेष्ठनागस्य शेषस्य उपरि स्थिता (सा) अद्य ते तव भुजेन बाहुना राजकात् अन्यराजसमूहात् उद्धृत्य आच्छिद्य ध्रियते स्ववशीकृत्य पाल्यते।

अत्र तृतीयचतुर्थपादगतमादौ व्यपेतयमकम्—'वराहे वराहे' इति ॥ २५ ॥

हिन्दी—हे राजन्, जो पृथ्वी वराहमूर्त्ति विष्णुद्वारा सागर से निकाली गई, जो श्रेष्ठ सर्प शेषके ऊपर स्थित है, आजकल आपके भुज अन्य राजगणसे छीनकर उसका यथान्याय पालन

१. कामपि। २. चलच्चारु। ३. उद्धृता।

करते हैं। इस उदाहरणमें 'वराहे' 'वराहे' यह तृतीयचतुर्थपादगत आदिमें व्यपेतयमक है ॥ २५ ॥

करेण ते रणेष्वन्तकरेण द्विषतां हताः।
करेणवः क्षरद्रक्ता भान्ति सन्ध्याघना इव ॥ २६ ॥

प्रथमद्वितीयतृतीयपादेष्वादिगतं व्यपेतयमकमुदाहरति—करेणेति। पराक्रमशालिनृपवर्णनमिदम्। रणेषु युद्धक्षेत्रेषु द्विषतां शत्रूणाम् अन्तकरेण नाशकरेण ते करेण हस्तेन हताः ताडिताः क्षरद्रक्ताः गलद्रुधिराः करेणवः हस्तिन्यः सन्ध्याघनाः सायंकालिकरक्ताभमेघा इव भान्ति शोभन्ते।

अत्र 'करेण करेण करेण' इति प्रथमद्वितीयतृतीयपादेष्वादिगतं व्यपेतयमकम् ॥ २६ ॥

हिन्दी—हे राजन्, युद्धमें शत्रुओंके संहारक तुम्हारे इस भुजदण्डसे आहत एवं रक्तस्रावयुक्त हथिनियाँ ऐसी मालूम पड़ती हैं, मानो सन्ध्याकालमें आरक्तवर्ण घनमाला हो।

इस उदाहरणश्लोकमें 'करेण करेण करेण' यह प्रथम द्वितीय तृतीय पादोंमें व्यपेत आदिगत यमक है ॥ २६ ॥

परागतरुराजीव वातैर्ध्वस्ता भटैश्चमूः।
परागतमिव क्वापि परागततमम्बरम् ॥ २७ ॥

प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—परागेति। (हे राजन) तव भटैः योद्धृगणैः वातैः वायुभिः ध्वस्ता उत्पाटिता परागतरुराजीव परे महति अगे पर्वते स्थिता तरुराजी वृक्षततिरिव चमूः शत्रुसेना ध्वस्ता दूरे क्षिप्ता, (तथा) परागततम् त्वत्प्रयाणसमये सैन्यसंमर्दजनितधूलिपूर्णम् अम्बरम् व्योम क्वापि परागतम् इव, आकाशं धूलिपटलेनादृश्यमिवाजायतेति भावः। अत्र प्रथमतृतीयचतुर्थ पादेषु 'परागत परागत परागत' इति आदिगतं व्यपेतयमकम् ॥ २७ ॥

हिन्दी—हे राजन्, आपके वीर भटोंने शत्रुसेनाको उसी तरह उखाड़ फेंका है, जैसे ऊंचे पर्वत पर अवस्थित वृक्षमाला को हवा उखाड़ फेंकती है, आपके प्रयाणसमयमें सैन्य द्वारा उड़ाये गये धूलीपटलसे भरा हुआ आकाश कहीं चला-सा गया, छिप गया, अदृश्य हो गया।

इस उदाहरणश्लोकमें 'परागत परागत परागत' यह प्रथम-तृतीय-चतुर्थपादगत व्यपेत आदियमक है ॥ २७ ॥

पातु वो भगवान् विष्णुः सदा नवघनद्युतिः[1]।
स दानवकुलध्वंसी सदानवरदन्तिहा ॥ २८ ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतयमकमुदाहरति—पात्विति। सदानः समदो यो वरदन्ती श्रेष्ठगजः कुवलयापीडाख्यस्तस्य हा हन्ता, सः प्रसिद्धो दानवकुलध्वंसी राक्षसवंशविनाशकः नवघनद्युतिः नवीनमेघच्छविः भगवान् विष्णुः वः युष्मान् सदा पातु।

अत्र—'सदानव सदानव सदानव' इति द्वितीयतृतीयचतुर्थपादेष्वादिगतं व्यपेतयमकम् ॥ २८ ॥

हिन्दी—मदमत्त कुवलयापीड नामक श्रेष्ठ हस्तीके हन्ता, प्रसिद्ध दानवकुलसंहारी तथा नवीन जलदश्यामलतनु भगवान् विष्णु सदा आप लोगोंका कल्याण करें।

१. रुचि.।

इस उदाहरणश्लोकमें 'सदानव सदानव सदानव' यह द्वितीयतृतीयचतुर्थपादमें आदिगत व्यपेतयमक है ॥ २८ ॥

कमले: समकेशं ते कमलेर्ष्याकरं मुखम्।
कमलेख्यं करोषि त्वं कमलेवोन्मदिष्णुषु ॥ २९ ॥

पादचतुष्टयगतं व्यपेतयमकमुदाहरति—**कमलेरिति**। (हे बाले) तव अलेः सम-केशं भ्रमरोपमकेशराशि कं शिरः, तथा कमलेर्ष्याकरं कमलशत्रुत्वकरं मुखम्, अतः त्वं कमला लक्ष्मीः इव कं अनम् उन्मदिष्णुषु उन्मत्तेषु अलेख्यम् अगणनीयं करोषि, सर्वानेवो-न्मत्तेषु गणनीयं करोषि, उन्मादयसीति यावत्। अत्र सर्वेष्वेव पादेषु 'कमले' इति आदि-गतं व्यपेतयमकम् ॥ २९ ॥

हिन्दी—शिरपर भ्रमरके समान काले घुंघराले तुम्हारे केश हैं और तुम्हारा मुख कमलोंके हृदयों में ईर्ष्या पैदा करता है, ऐसी तुम कमलाकी तरह सुन्दरी किस जनको पागलोंमें नहीं गिनवा देती हो? अर्थात् सभी तुम्हारे सौन्दर्यपर उन्मत्त हो उठते हैं। 'कमले' यह इस उदाहरण-श्लोकमें चारों पादोंके आदिमें व्यपेतयमक है ॥ २९ ॥

मुदा रमणमन्वीतमुदारमणिभूषणाः।
मदभ्रमदृशः कर्तुमदभ्रजघनाः क्षमाः ॥ ३० ॥

अथ व्यपेतस्यैव यमकस्य सजातीयविजातीयघटितानि प्रभेदान्तराण्युदाजिहीर्षुः प्रथम-द्वितीयपादयोरेकप्रकारं तृतीयचतुर्थपादयोश्च तदन्यप्रकारं यमकमुपस्थापयति—**मुदेति**। उदारमणिभूषणाः रमणीयरत्नाभरणाः मदभ्रमदृशः मद्योपयोगघूर्णमाननयनाः अदभ्रज-घनाः विशालनितम्बाः (स्त्रियः) रमणम् स्वनायकम् मुदा आनन्देन अन्वीतं युक्तं कर्तुं क्षमाः समर्था भवन्तीति शेषः ॥ ३० ॥

हिन्दी—इसके आगे व्यपेत यमकके ही सजातीय-विजातीयघटित प्रभेदोंके उदाहरण देनेकी इच्छासे प्रथम-द्वितीय पादोंमें अन्य प्रकारके तथा तृतीय-चतुर्थपादोंमें अन्य प्रकारके यमकसे युक्त एक उदाहरण दे रहे हैं। उदाहरणश्लोकका अर्थ है—

रमणीय मणि-भूषणोंसे युक्त, मदसे घूमते हुए नयनोंवाली तथा विशालनितम्बा रमणियाँ अपने प्रियतमोंको आनन्दमग्न बना देनेमें समर्थ होती हैं।

इस उदाहरणके प्रथम-द्वितीय पादोंमें 'मुदार मुदार' और तृतीय-चतुर्थ पादोंमें 'मदभ्र मदभ्र' यह विजातीय व्यपेत यमक हैं ॥ ३० ॥

उदितैरन्यपुष्टानामा रुतैर्मे हृतं मनः।
उदितैरपि ते दूति मारुतैरपि दक्षिणैः ॥ ३१ ॥

प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्च पादयोर्यमकमुदाहरति—**उदितैरिति**। आः खेदे, अन्यपुष्टानाम् कोकिलानाम् उदितैः प्रकटीभूतैः रुतैः कूजितैः, हे दूति, ते तव उदितैः वचनैः, तथा दक्षिणैः मारुतैः मलयानिलैः च मे मम मनः हृतम् व्यथितम्।

अत्र प्रथमतृतीयपादयोः 'मारुतैः मारुतैः' इति द्वितीयचतुर्थपादयोश्च 'रुतै रुतैः' इति यमकम् ॥ ३१ ॥

---

१. हतं।

हिन्दी—कोकिलोंके उदित होनेवाले कूजितोंसे, हे दूति, तुम्हारे वचनोंसे तथा दक्षिण पवनसे हमारा मन व्यथित हो रहा है।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथम-तृतीय चरणोंमें 'उदितैः उदितैः' और द्वितीय-चतुर्थ चरणोंमें 'मारुतैः मारुतैः' यह यमक है ॥ ३१ ॥

सुराजितह्रियो यूनां तनुमध्यासते स्त्रियः ।
तनुमध्याः क्षरत्स्वे[1]दसुराजितमुखेन्दवः ॥ ३२ ॥

प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयतृतीययोश्च पादयोर्यमकमुदाहरति—**सुराजितेति**। तनुमध्याः कृशोदर्यः क्षरता प्रस्रवता स्वेदेन घर्मबिन्दुना सुराजिताः सुशोभिताः मुखेन्दवः मुखचन्द्राः यासां तादृश्यः अथ च सुराजितह्रियः मद्यपानापगतलज्जाः स्त्रियो रमण्यः यूनाम् युवकपुरुषाणाम् तनुम् शरीरम् अध्यासते आरोहन्ति विपरीतरतये पुंसामुपर्याक्रामन्तीति भावः।

अत्र प्रथमचतुर्थपादयोः 'सुराजितसुराजिते'ति द्वितीयतृतीयपादयोश्च 'तनुमध्या तनुमध्या' इति चादिगतं विजातीयं व्यपेतं च यमकम् ॥ ३२ ॥

हिन्दी—कृशोदरी चूते हुए पसीनेकी बूँदोंसे अलङ्कृत मुखचन्द्रशालिनी तथा मद्यसेवनसे अपगतलज्जा ललनायें युवकोंके शरीरपर आरूढ होकर विपरीतरतिप्रवृत्त हो रही हैं।

इस उदाहरण श्लोकमें प्रथम-चतुर्थ चरणोंमें 'सुराजिह सुराजित' तथा द्वितीय-तृतीय चरणोंमें 'तनुमध्या तनुमध्या' यह आदिगत विजातीय तथा व्यपेत यमक है ॥ ३२ ॥

इति व्यपेतयमकप्रभेदो[2]ऽप्येष दर्शितः ।
अव्यपेतव्यपेतात्मा विकल्पोऽप्यस्ति तद्यथा ॥ ३३ ॥

स्पष्टार्थेयं कारिका ॥ ३३ ॥

हिन्दी—एतावत्पर्यन्त शुद्ध-असङ्कीर्ण अव्यपेत तथा व्यपेत यमकोंके स्वरूप दिखलाये गये, अब उनको छोड़कर मिश्रित-अव्यपेतव्यपेतात्मा यमकके स्वरूप दिखलये जायेंगे, उदाहरण आगे कहा जा रहा है ॥ ३३ ॥

सालं सालम्बकलिकासालं सालं न वीक्षितुम्[3] ।
नालीनालीनवकुलानाली नालीकिनीरपि ॥ ३४ ॥

प्रथमद्वितीययोस्तृतियचतुर्थयोश्च पादयोश्चाव्यपेतव्यपेतात्मकं यमकमुदाहरति—**सालमिति**। 'सा अलम् सालम्बकलिकासालम् सालम् न वीक्षितुम् न अलीन् आलीनबकुलान् आली नालीकिनीः अपि' इति पदपाठः वसन्ते नायिकादूती नायकं वक्ति—

सा त्वद्विरहाकुला मम सखी आलम्बाः लम्बमानाः कलिकाः कोरकाः एव सालः प्राकारस्तेन सहितम् सालम्बकलिकासालम् सालम् आम्रतरुम् वीक्षितुम् द्रष्टुं न अलम्, आलीनबकुलान् आश्रितबकुलवृक्षान् अलीन् भ्रमरान्, तथा नालीकिनीः पद्मिनीः अपि वीक्षितुं नालमिति योजना। 'नालीकौ पद्मनाराचौ' इति त्रिकाण्डशेषे। अत्र प्रथमपादे 'सालं सालम्' इत्यव्यपेतयमकम्, तदेव द्वितीयपादे व्यपेतं च, एवमुत्तरार्धे 'नाली नाली' इत्यत्रापि ॥ ३४ ॥

हिन्दी—मेरी सखी आपके वियोगमें लटकती हुई मञ्जरीरूप प्राकारसे घिरे आम्रतरुओंकी ओर दृष्टि नहीं डाल सकती और बकुल वृक्षपर आश्रित इन भ्रमरोंको तथा पद्मिनीको भी नहीं देख सकती है।

---

१. स्स्वेदाः। २. प्रपञ्चोऽप्येष। ३. निरीक्षितुम्।

इस उदाहरण श्लोकके प्रथम पादमें 'सालं सालं' यह अव्यपेत यमक है, द्वितीय पादमें होने-पर वही व्यपेत भी है। इसी प्रकार अगले चरणोंमें भी ॥ ३४ ॥

कालं कालमनालक्ष्यतारतारकमीक्षितुम् ।
तारतारम्यरसितं कालं कालमहाघनम् ॥ ३५ ॥

प्रथमचतुर्थपादयोर्द्वितीयचतुर्थयोश्चाव्यपेतव्यपेतयमकमुदाहरति—**कालं कालमिति ।** 'का अलम् कालम् अनालक्ष्यतारतारकम् ईक्षितुम् तारताऽरम्यरसितम् कालं कालमहाघनम्' इति पदपाठः । का विरहाक्रान्ता स्त्री अनालक्ष्याः अदृश्याः ताराः निर्मलमौक्तिकानीव तारकाः नक्षत्राणि यत्र तादृशम्, तारतया अत्युच्चतया अरम्यं कर्णकटु रसितं गर्जितं यस्य तादृशम्, कालमहाघनम् श्यामवर्णमहाघनयुक्तम् कालं यमोपमानम् कालं वर्षा-समयम् ईक्षितुं द्रष्टुम् अलम् समर्था । प्रावृट्समयमागतं वीक्ष्य नायिकाप्रेषिता दूती तमाह । 'तारो निर्मलमौक्तिके' इति हेमचन्द्रः ॥ ३५ ॥

हिन्दी—अदृश्य हो गये हैं उज्ज्वल मौक्तिकाकार नक्षत्र जिसमें ऐसे, अत्युच्चस्वरतया कर्णकटु शब्द करनेवाले, श्याम वर्णवाले घनोंसे युक्त, यमराजतुल्य इस वर्षाकालको कौन वियोगिनी देख सकनेमें समर्थ हो सकती है।

इस उदाहरण श्लोकके प्रथम तथा चतुर्थ पादमें 'कालं काल' यह अव्यपेतव्यपेत यमक है, इसी तरह द्वितीय तृतीय चरणोंमें 'तार तार' यह यमक है। यद्यपि 'कालं काल' में एकमें अनुस्वार है और दूसरे में नहीं है, परन्तु इससे यमकमें कुछ बाधा नहीं होती है, आलङ्कारिकोंने अनुस्वार-विसर्गकी न्यूनतमें भी यमकादिको स्वीकार कर लिया है, लिखा है :—

'नानुस्वारो विसर्गश्च चित्रभङ्गाय कल्पते' ॥ ३५ ॥

याम यामत्रयाधीनायामया मरणं निशा ।
यामयाम धियाऽस्वर्त्यायामया मथितैव सा ॥ ३६ ॥

पादचतुष्टयगतमव्यपेतव्यपेतात्मकं यमकमुदाहरति—**यामेति ।** 'याम यामत्रयाधी-नयामया मरणं निशा याम् अयाम धिया अस्वर्त्याया मया मथिता एव सा' इति पदपाठः । यामत्रयाधीनः प्रहरत्रितयवशगः आयामो विस्तारो यस्यास्तथाभूतया निशा निशया मरणं याम प्राप्ता भवेम, याम् प्रियाम् धिया बुद्धया अयाम प्राप्तवन्तः यां लब्धुं सङ्कल्पमकुर्म, सा अस्वर्त्याया प्राणबाधागामिनी (असवः प्राणास्तेषामर्ति पीडा-मायातीति क्विबन्तम्—'अस्वर्त्याया' इति पदम्) मया मथिता एव व्यापादिता एव । ममाप्यस्यां निशि मरणमवश्यंभावि, किन्तु सा तपस्विनी मद्वियोगे म्रियेतेति चिन्तास्पद-मिति भावः । अत्र सर्वेष्वपि पादेषु यमकम् ॥ ३६ ॥

हिन्दी—इस तीन प्रहरोंके अधीन विस्तारवाली-त्रियामा-रात्रिमें मेरा तो मरण होगा ही, परन्तु जिसे पानेका मैंने सङ्कल्प किया था, चित्तवृत्ति जिसके पास पहुँच चुकी थी, उस प्राणसङ्कटा-पन्ना रमणीको मैंने समाप्त कर दिया, मेरे वियोगमें वह भी नहीं बच सकी।

इस उदाहरणश्लोकके चारों चरणोंमें अव्यवहित तथा व्यवहित आदिगत यमक है ॥ ३६ ॥

इति पादादियमकविकल्पस्येदृशी गतिः ।
एवमेव विकल्प्यानि यमकानीतराण्यपि ॥ ३७ ॥

१. धिया स्वर्त्या या मया ।

पादादियमकमुपसंहरति—इतीति। पादादियमकविकल्पस्य पादादिगतानां यमकानां प्रभेदस्य इति ईदृशी दर्शितरूपा गतिः प्रकारः, इतराणि पादमध्यपादान्तभागगतानि तानि तानि यमकानि एवमेव दर्शितप्रकारेण विकल्प्यानि कल्पितभेदानि विधातव्यानि ॥३७॥

हिन्दी—इस प्रकार हमने पादादिभागगत यमकके यथासंभव विकल्प-भेदप्रभेद बतला दिये हैं, इसी प्रकार पादमध्यगत एवं पादान्तगत यमकोंके भी उदाहरणभेद आदिकी कल्पना कर लें॥३७॥

न प्रपञ्चभयाद्भेदाः कात्स्न्र्येनाख्यातुमीहिताः[1]।
दुष्कराभिमता[2] ये तु वर्ण्यन्ते[3] तेऽत्र[4] केचन ॥ ३८ ॥

स्वयं भेदानां कथनं न कृतं तत्र कारणमुपन्यस्यति—नेति। प्रपञ्चभयात् विस्तारभीतेः भेदाः सर्वे विकल्पाः कात्स्न्र्येन साकल्येन आख्यातुं कथयितुम् न ईहिताः नाभिमताः, विस्तारभयादेव तेषामभिधाने न चेष्टितमिति भावः। ये तु भेदा दुष्कराभिमताः कठिनसम्पादनाः ते केचन कतिपये भेदाः अत्र वर्ण्यन्ते ॥ ३८ ॥

हिन्दी—विस्तारके भयसे मैंने सारे प्रभेद बतानेकी चेष्टा नहीं की है, उन्हीं कुछ प्रभेदोंको मैं आगे बता रहा हूँ जो कठिन हैं—बनाने में कष्टसाध्य हैं ॥ ३८ ॥

स्थिरायते यतेन्द्रियो न हीयते यतेर्भवान्।
अमायतेयतेऽप्यभूत् सुखाय तेयते क्षयम् ॥ ३९ ॥

सकलपादगतमव्यपेतव्यपेतं मध्यगतं यमकमुदाहरति—स्थिरेति। स्थिरा आयतिः उत्तरकालो यस्य तत्संबोधने हे स्थिरायते, निश्चलहृदय, भवान् यतेन्द्रियः निगृहीतकरणगणः अत एव यतेः संयमात् न हीयते न च्युतो भवति, ते तव अमायता मायाकपटराहित्यम् इयते एतावते क्षयम् अयते अगच्छते अविनाशिने सुखाय अपि अभूत्, स्वीयमायाराहित्यकृतैव तवेयमात्मज्ञानसंभवाऽक्षयसुखावाप्तिरिति भावः ॥ ३९ ॥

हिन्दी—हे स्थिरायते निश्चलहृदय जीवन्मुक्त योगिप्रवर, आप जितेन्द्रिय होनेके कारण संयमसे च्युत नहीं होते हैं, और आपकी अमायता-मायासंपर्कशून्यता ही आपके इस आत्मज्ञानसंभव अक्षयसुखका कारण होती है।

इस उदाहरणश्लोकके चारों चरणोंमें 'यते यते यते यते' यह अव्यपेतव्यपेत मध्यगत यमक है ॥ ३९ ॥

सभासु राजन्नसुराहतैर्मुखैर्महीसुराणां वसुराजितैः स्तुताः।
न भासुरा यान्ति सुरान्न ते गुणाः प्रजासु रागात्मसु राशितां गताः ॥४०॥

पादचतुष्टयगतं केवलव्यपेतं मध्ययमकमुदाहरति—सभास्विति। हे राजन्, असुराहतैः मद्यपानकृतदोषास्पृष्टैः वसुराजितैः भवदीयदानधनशोभायुतैः महीसुराणां ब्राह्मणानां मुखैः सभासु लोकसमाजेषु स्तुताः प्रशस्ताः रागात्मसु अनुरक्तहृदयासु प्रजासु तव प्रकृतिषु राशितां गताः सततोपचिताः भासुराः प्रकाशरूपास्ते तव गुणाः शौर्यौदार्यादयो धर्माः सुरान् देवान् न यान्ति, देवा अपि त्वद्गुणसदृशभासुरगुणानां पात्राणि न भवन्तीति भावः ॥ ४० ॥

हिन्दी—सुरापानकृत दोषसे अस्पृष्ट तथा भवदीय दानधनकृत शोभासे युक्त ब्राह्मणजनमुखोंद्वारा

---

१ ईप्सिताः। २. मता एव। ३. वक्ष्यन्ते। ४. तत्र।

सभाओंमें प्रशंसित एवं स्नेहपूर्ण हृदयवाली प्रजाओंमें राशीभूत आपके स्वच्छ गुणगण देवोंको भी नहीं प्राप्त हैं।

इस उदाहरणश्लोकमें 'सुरा सुरा सुरा सुरा' यह चारों चरणोंमें यमक है जो केवल अव्यपेत एवं मध्यगत है ॥ ४० ॥

तव प्रिया सच्चरिताप्रमत्त या विभूषणं धार्यमिहांशुमत्तया।
रतोत्सवामोदविशेषमत्तया प्रयोजनं नास्ति हि कान्तिमत्तया ॥ ४१ ॥

अथ व्यपेतं पादचतुष्टयगतमन्तयमकमुदाहरति—**तवेति**। हे अप्रमत्त, कपटेनानुनयकर्मणि सततसावधान, तव या सच्चरिता साधुशीला (विपरीतलक्षणया भ्रष्टा) प्रिया प्रियतमा (विद्यते) तया इह अस्मिन्नानन्दावसरे अंशुमत् किरणावलीभ्राजमानम् इदं भूषणम् रतोत्सवामोदविशेषमत्तया त्वया सह कृतस्य रतोत्सवस्य आमोदेन हर्षातिरेकेण विशेषमत्तया सातिशयप्रमत्तया तस्या धार्यम् धारणीयम् (सैव तव प्रेयसी धारयत्विदं भूषणम्) (मम त्वदुपेक्षितायाः) कान्तिमत्तया भूषणधारणजन्यशोभासम्पत्त्या प्रयोजनं नास्ति। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' इति न्यायेन या त्वया सह समवाप्तसुरतसौभाग्या सैवेदमधिकरोति भूषणं न तु त्वयोपेक्षिताऽहमिति भावः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—हे कपटानुनयसावधान, आपकी वह सच्चरिता (भ्रष्टा) प्रिया ही इस अवसरपर इस चमकदार आभूषणको धारण करे, क्योंकि वह आपके साथ सुरतविहार करके आनन्दमग्न है, मुझ उपेक्षिताको इस शोभासम्पत्ति की क्या आवश्यकता है। नायकने किसी अन्य नायिकासे सम्बन्ध जोड़ा, नायिका रूठ गई, उसको भूषण देकर प्रसन्न करनेको उद्यत नायकके प्रति उस उपेक्षिता नायिकाकी यह तिरस्कारोक्ति है

इस उदाहरणश्लोकके चारों चरणोंमें 'मत्तया' का अन्तगत व्यपेतयमक है ॥ ४१ ॥

भवादृशा नाथ न जानते नते रसं विरुद्धे खलु सन्नतेनते।
य एव दीनाः शिरसा नतेन ते चरन्त्यलं दैन्यरसेन तेन ते ॥४२॥

पादान्तगतमव्यपेतयमकमुदाहरति—**भवादृशा इति**। हे नाथ, भवादृशाः प्रभवः नतेः नमनस्य रसम् आस्वादविशेषम् न जानते न विदन्ति, सन्नतम् सम्यक् नमनम् इनता प्रभुता च सन्नतेनते खलु विरुद्धे नैकत्र संभवतः। (अतश्च प्रभुणा त्वया न नमनरसो वेद्यः) ये जनाः दीनाः त एव केवलं नतेन शिरसा चरन्ति स्वामिनं सेवन्ते, तेन नमनकृतेन दैन्यरसेन दैन्यास्वादेन ते तव प्रभोः अलम्, नास्ति किमपि प्रयोजनमिति ॥ ४२॥

हिन्दी—हे नाथ, आपको 'नमन' का स्वाद नहीं मालूम है क्योंकि आप प्रभु हैं, आपको कभी किसीके सामने झुकना नहीं होता है, नमन और प्रभुत्व एकास्पद नहीं हुआ करता है, जो दीन हैं वे सिर झुकाये सेवा करते हैं, (भगवान् की कृपासे) आपको कभी दैन्यरसका अनुभव न करना पड़े।

इस उदाहरणश्लोकके सभी चरणोंमें 'नते नते' यह अन्तगत अव्यपेत यमक है ॥ ४२ ॥

लीलास्मितेन शुचिना मृदुनोदितेन व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन।
व्याजृम्भितेन जघनेन च दर्शितेन सा हन्ति तेन गलितं मम जीवितेन ॥४३॥

चतुर्ष्वपि पादेषु मध्यान्तयोर्व्यपेतयमकमुदाहरति—**लीलेति**। सा नायिका शुचिना

---

१. चरित प्र। २. वानन्द। ३. न मे फलं किंचन कान्ति।

निर्मलेन लीलास्मितेन सविलासहसितेन, मृदुना उदितेन मधुरेण वचनेन, लघुना व्यालोकितेन अपाङ्गवीक्षितेन, गुरुणा गतेन स्तननितम्बभारवशान्मन्दगमनेन, व्याजृम्भितेन जृम्भया (अनुरागसूचकजृम्भितेन) दर्शितेन जघनेन जघनदर्शनेन च (माम्) हन्ति मारयति व्यथयति, मम जीवितेन गलितम् च्युतम् गतमित्यर्थः, तदीयानुरागचेष्टाभिः कामातुरीभूतोऽहं न शक्नोमि प्राणान् धारयितुमित्यर्थः ॥ ४३ ॥

हिन्दी—वह नायिका अपने निर्मल सविलास हाससे, मधुर वचनसे, असमग्र कटाक्षनिक्षेपसे, मन्द गमनसे, जम्भाई लेनेसे तथा जघनदर्शनरूप कामचेष्टासे मुझको व्यथित कर रही है, मेरे प्राण गये।

इस उदाहरणश्लोकमें चारों चरणोंमें मध्यान्तगत व्यपेत यमक है ॥ ४३ ॥

श्रीमानमानमरवर्त्मसमानमानमात्मानमानतजगत्प्रथमानमानम् ।
भूमानमानमत यः स्थितिमानमाननामानमानमतमप्रतिमानमानम् ॥४४॥

पादचतुष्टयगतं मध्यान्तवर्त्ति चाव्यपेतव्यपेतयमकमुदाहरति—**श्रीमानिति**। यः श्रीमान् स्थितिमान अमान् तम् अमानननामानम् आनमतम् अप्रतिमानमानम् आनतजगत्प्रथमानमानम् भूमानम् अमरवर्त्मसमानमानम् आत्मानम् आनमत इत्यन्वयः। यस्त्रिविक्रमो भगवान श्रीमान् लक्ष्मीसम्पन्नः, स्थितिमान मर्यादाशाली, अमान् अपरिमितः (वर्त्तते) तम् अमानननामानम् अन्तहीननामगणम्, अनन्तीति आनाः प्राणिनस्तेषां मतम् पूजितम्, अप्रतिमानमानम्—प्रतिमीयते प्रमीयते यैस्तानि प्रतिमानानि प्रमाणानि तैर्न मानं ज्ञानं यस्य तादृशम्—लौकिकप्रमाणावेद्यम्, आनते प्रह्वीभूते भजमाने जगति लोके प्रथमानः बहुलो मानः पूजा यस्य तथाविधम्, भूमानम् पृथ्वीमापकचरणन्यासम्, अमरवर्त्मसमानमानम् आकाशवद् व्यापकम् आत्मानम् आत्मस्वरूप भगवन्तम् आनमत नमस्कुरुत। अत्र 'मानमान' इति यमकम् ॥ ४४ ॥

हिन्दी—जो लक्ष्मीसम्पन्न, अपरिमित, मर्यादापालक हैं, उस अपरिमितनामवाले, योगियोंद्वारा पूजित, लौकिक प्रमाणोंसे अवेद्य, भक्तलोकमें प्रथितपूजन, एक चरणसे पृथ्वीको नाप लेनेवाले, आकाशकी तरह व्यापक तथा आत्मचैतन्यस्वरूप त्रिविक्रम भगवान्को प्रणाम् करें।

इस उदाहरणश्लोकके सभी चरणोंमें 'मानमान' यह अन्त मध्य दोनों जगह अव्यपेतव्यपेत यमक है ॥ ४४ ॥

सारयन्तमुरसा रमयन्ती सारभूतमुरुसारधरा तम् ।
सारवानुकृतसारसकाञ्ची सा रसायनमसारमवैति ॥ ४५ ॥

पादचतुष्टयगतं व्यपेतमादियमकं दर्शयति—**सारयन्तमिति**। सारयन्तम् सङ्केतस्थाने आत्मानमुपस्थापयन्तम्, सारभूतम् संसारसारभूतसौन्दर्ययौवनयुतम्, तं नायकम् उरसा वक्षसा रमयन्ती आलिङ्गनेन सुखयन्ती, सारवा सशब्दा अत एव अनुकृतसारसा तुलितसारसाख्यपक्षिभेदा काञ्ची मेखला यस्याः सा तथोक्ता—सारवानुकृतसारसकाञ्ची सारसाख्यपक्षिरवानुकारिरवशालिनीं मेखलां धारयन्तीत्यर्थः, उरुसारधरा विपुलसौन्दर्यसारधारिणी च सा नायिका रसायनम् अमृतम् असारम् तुच्छम् अवैति जानाति, प्रियसमागमसुखं अमृतमप्यतिशेते इत्याशयः ॥ ४५ ॥

हिन्दी—सङ्केतस्थानमें अपनेको उपस्थित करनेवाले तथा जगत्सारभूत सौन्दर्य-यौवन भूषित उस प्रियतमको छातीसे लगाकर आनन्दित करनेवाली, सारस पक्षियोंके शब्दका अनुकरण करनेवाले शब्दावली काञ्चीसे भूषित और विपुल सौन्दर्यसार धारण करनेवाली वह सुन्दरी अमृतको अतितुच्छ समझती है।

इस उदाहरण श्लोकके सभी चरणोंमें 'सार सार' यह व्यपेत आदिमध्य यमक है ॥ ४५ ॥

नयानयालोचनयानयानयांनयानयान्धान् विनयानयायते।
न यानयासीज्जिनयानया नयाँनयानयाँस्ताञ्जनयानयाश्रितान् ॥ ४६ ॥

इदानीं चतुर्ष्वपि पादेष्वाद्यन्तगतमव्यपेतव्यपेतयमकमुदाहरति—नयेति। अत्राय-मन्वयः—हे अनयायते अनया नयानयालोचनया अनयान् अयानयान्धान विनय, (तथा) अनयाश्रितान् तान् अयानयान् नयान् जनय, यान् जिनयानयाः न अयासीत्। अयमर्थः-एति गच्छतीति अया विनाशिनी न अया अनया अविनाशिनी आयतिः उत्तरकालो यस्य तत्संबोधने हे अनयायते, अनया मदुक्तरूपया नयानयालोचनया न्यायान्यायविवेचनया अनयान् न्यायविमुखान् अयः शुभावहो विधिः अनयः अशुभावहो विधिस्तयोरन्धान शुभाशुभविवेकशून्यान् विनय शिक्षय। तथा अनयाश्रितान् अन्यायमार्गगामिनः; तान् अयानयान् शुभप्रापकान नयान् नीतीः जनय उपदिश्य प्रापय, यान् नयान् जिनयानयाः जैनमार्गानुसारी न अयासीत्। कश्चित्सचिवः स्वनृपमुपदिशति—उन्मार्गगामिजनान उचिते वर्त्मन्यानयेति भावः ॥ ४६ ॥

हिन्दी—कोई मन्त्री अपने राजाको समझा रहा है—हे अनयायते-अनपायिभविष्य, इस न्यायान्यायविवेचना-द्वारा नीतिविमुख, शुभाशुभविवेकशून्य लोगोंको विनीत कीजिये और अन्यायगामी लोगोंको शुभप्रापक मार्गपर लाइये, जिस मार्गपर जैनमार्गानुसारी नहीं चल सके हैं।

इस श्लोकमें चारों चरणोंके आदि अन्तमें अव्यपेतव्यपेत यमक है, अथवा यह भी कहा जा सकता है कि प्रथम-तृतीय पादके आदि-अन्तमें और द्वितीय-चतुर्थ पादके आदि-मध्यमें अव्यपेत-व्यपेत यमक है ॥ ४६ ॥

रवेण भौमो ध्वजवर्तिवीरवेरवेजि संयत्यतुलाऽस्त्रगौरवे।
रवेरिवोग्रस्य पुरो हरेरवेरवेत तुल्यं रिपुमस्य भैरवे ॥ ४७ ॥

पादचतुष्टयगतं व्यपेतमाद्यन्तयमकमुदाहरति—रवेणेति। अतुलास्त्रगौरवे भैरवे भयङ्करे संयति संग्रामे ध्वजवर्तिवीरवेः ध्वजाग्रस्थितस्य वीरस्य वेः पक्षिणो गरुडस्य रवेण सिंहनादेन भौमो नरकासुरः अवेजि उद्विग्नः कृतः कम्पितः। रवेः सूर्यस्य इव उग्रस्य दीप्तस्य सूर्यसमद्युतेः हरेः सिंहसमानस्य अस्य भगवतः कृष्णस्य पुरः अग्रतः रिपुं नरकासुरनामानम् अवेः मेषस्य तुल्यम् अवेत अवगच्छत। अत्र संयच्छब्दस्य क्लीबत्वं चिन्त्यम्, अथवा स्वतन्त्राः कविबुद्धयः, सामान्ये नपुंसकत्वं तु दुरुपपादम् ॥ ४७ ॥

हिन्दी—अनुपम, अस्त्रगौरवपूर्ण एवं भयानक उस युद्धमें ध्वजाग्रवर्त्ति वीर गरुड पक्षीके शब्द-सिंहनादसे वह नरकासुर घबड़ा गया-काँपने लगा, और सूर्यके समान प्रदीप्त सिंहपराक्रम भगवान् कृष्णके सामने उसकी दशा भेड़ की-सी हो गई, यही समझ लें। इसमें कृष्ण-नरकासुर-युद्धका विवरण दिया गया है।

१. कृति। २. सीज्जिनः। ३. नरा।

इस उदाहरण श्लोकके चारों पादोंमें आद्यन्तगत व्यपेत यमक है ॥ ४७ ॥

मया मयालम्ब्यकलामयामयामयामयातव्यविरामयामया ।
मयामयार्त्ति निशयामयामयामयामयामूं करुणामयामया ॥ ४८ ॥

पादचतुष्टयगतमव्यपेतव्यपेतं तथाद्यन्तवर्त्तियमकमुदाहरति—**मयेति** । तत्रान्वयः-हे अमय करुणामय अयातव्यविरामयामया अमया अमया निशया मयः मयार्त्तिम् अयाम्, अमया मया मयालम्ब्यकलामयामयाम् अमूम् अमय । कश्चिद् विरही स्वमित्रमनुरुणद्धि—हे अमय निष्कपट, करुणामय दयाशालिन्, अयातव्यविरामयामया असमाप्यप्रहरया दीर्घया, अमया मा शोभा तद्रहितया, अमया अमावस्यासदृशया (विरहान्धकारपूर्णतयाऽमासादृश्यम्) निशया रात्र्या अहम् मयामयार्त्तिम् मयः क्षयः आमयो रोगः तस्य आर्त्तिम् पीडाम् दौर्बल्यातिशयकृतयन्त्रणाम् अयाम् प्राप्तवान्, (अतः) अमया अमं क्षयं याति तेन अमया क्षीणेन मया सह मयालम्ब्यकलामयामयाम् मयः क्षयः तेन आलम्ब्याः प्रमनीयाः कलाः तन्मयश्चन्द्रः स एव आमयो रोगो रोगवद्व्यथको यस्याः सा ताम् चन्द्रदर्शनसंजातव्यथाम् अमूम् नायिकाम् अमय योजय ।

हिन्दी—हे निष्कपट करुणामय, जिसके प्रहरोंका विराम ही नहीं हो रहा है ऐसी तथा शोभाशून्य इस विरहान्धकारपूर्ण अमासमान रात्रिसे मैं विरहातिक्षीणताको प्राप्त हो गया हूँ, अतः क्षीण होनेवाली कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर सन्तप्त उस नायिकाको मुझसे मिला दो ।

इस उदाहरण श्लोकके चारों चरणोंमें अव्यपेत-व्यपेतात्मक आद्यन्तवर्त्ती 'मयामया' यह यमक है ॥ ४८ ॥

मता धुनानारमतामकामतामतापलब्धाग्रिमतानुलोमता ।
मतावयत्युत्तमताविलोमतामताम्यतस्ते समता न वामता ॥ ४९ ॥

अत्रमत्यान्वयः—अताम्यतः ते मतौ उत्तमता विलोमताम् अयती अतापलब्धाग्रिमतानुलोमता आरमताम् अकामतां धुनाना मता समता न वामता । अताम्यतः कथमपि ग्लानिमगच्छतः ते तव मतौ विचारे उत्तमता विलोमताम् अपकृष्टताम् अयती अप्राप्नुवती अतापेन अक्लेशन लब्धे अग्रिमतानुलोमते (अग्रिमता श्रेष्ठता अनुलोमता अनुकूलता च) श्रेष्ठत्वानुकूलत्वे यया सा तथोक्ता, तथा आरमताम् आत्मारामाणां योगिनाम् अकामताम् कामवैमुख्यं धुनाना अपनयन्ती योगिनामपि चेतसि स्पृहां जनयन्ती मता इष्टा समता सर्वभूतमैत्री, वामता वैषम्यम् न मतेति शेषः ॥ ४९ ॥

हिन्दी—कभी भी ग्लानिको नहीं प्राप्त करने वाले आपकी बुद्धिमें समता—सर्वभूतमैत्री ही अभिमत है—वामता-विषमता नहीं अभिमत है, समताके विशेषण बताते हैं—अतापेत्यादि । जिस समताको उत्तमताविलोमता-अपकृष्टता कभी नहीं मिली, जो अक्लेश, श्रेष्ठत्व तथा अनुकूलत्व को पा चुकी है, और जिसके लिये आत्मारामयोगी भी अकामताको छोड़ स्पृहा करते हैं ।

इस उदाहरणश्लोकके चारों चरणोंमें आदिमध्यान्तगत व्यपेत—'मता मता' का यमक स्पष्ट है ॥ ४९ ॥

कालकालगलकालकालमुखकालकाल-
कालकालपनकालकालघनकालकाल- ।

---

१. मयालब्ध । २. मतान्धुनाना । ३. कमता । ४. घन । ५. पन ।

कालकालसितकालका ललनिकालकाल-
कालकालगतु कालकाल कलिकालकाल ॥ ५० ॥

चतुर्षु पादेषु आदिमध्यान्तयमकमव्यपेतव्यपेतं दर्शयति—कालकालेति । अयम-न्वयः—हे अलकालकालक, कालकाल, कलिकालकाल, कालकालगलकालकालमुखका-लकालकालकालपनकालकालघनकालकालकालकालसितकालका ललनिका आलगतु । कश्चित् कामी त्वत्प्रसादेन प्रिया मामिच्छतु मामालिङ्गतु चेति वर्षासमयं प्रार्थयते—हे अलकाल-कालक—अलका यक्षपुरी तस्याः अलकः अलङ्कर्त्ता कुबेरः तद्वत् अलक पर्याप्तिकारक (यक्षे-श्वरो यथा पर्याप्तं धनं ददाति तद्वत्त्वमपि पर्याप्तं जलं वितरसीति संबोधनार्थः) कालकाल, वसन्तादिकालेषु कालः श्रेष्ठः तत्सम्बोधने कालकालेति । कलिकालकाल—कलिकाः तरु-कोरकान् अलन्ति भूषयन्ति इति कलिकालकाः वसन्तादिसमयभेदास्तेभ्योऽपि अल समर्थ, एवंभूत वर्षाकाल, ललनिका प्रशंसनीया ललना आलगतु मयि अनुरज्यतु, सा ललना कीदृशीति प्रसङ्गे आह—कालो यमस्तस्यापि कालः संहर्त्ता शिवस्तस्य गल एव गलकः, अलीनां समूहः आलम् , कालं श्यामलं मुखं यस्य स कालमुखो वानरभेदः, कालः कलिः, कालो यमः, कालं कृष्णं कं शिरो येषां ते कालका मयूराः तेषाम् आलपनस्य कारः कर्ता एव रलयोरभेदात् कालः कालघनकालः श्यामलजलदसमयो वर्षर्तुः, एतैः इव कालकैः कृष्णवर्णैः अलकैः केशपाशैः आलसितं कृतशोभं कं शिरो यस्यास्तथोक्ता, हरकण्ठभ्रमर-समूहकलियुगवानरमुखयमवर्षासमयसमानश्यामकेशा सा ललना मयि रमतामिति प्रार्थ-नार्थः ॥ ५० ॥

हिन्दी—हे यक्षपुरीभूषण कुबेरके समान पर्याप्तिकारक, कालोंमें सर्वश्रेष्ठ वृक्षोंकी कलिका उगानेवाले वसन्तादि कालोंसे भी अधिक समर्थ (वर्षासमय) महादेवके कण्ठ, यम, वानरमुख, कलियुग, मयूरनृत्यकर वर्षासमयके समान श्याम केशकलापोंसे भूषित वह ललना मुझे आलिङ्गित करे ।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथम अढ़ाई चरणोंका एक ही पद है जो नायिकाका विशेषणमात्र है, अन्त्यचरणके उत्तरार्धमें वर्षाकालके दो संबोधन हैं । इसमें चारोंपाद आदिमध्यान्तगत अव्यपेत व्यपेत यमकशाली है ॥ ५० ॥

सन्दष्टयमकस्थानमन्तादी[^४] पादयोर्द्वयोः ।
उक्तान्तर्गतमप्येतत् स्वातन्त्र्येणात्र कीर्त्यते ॥ ५१ ॥

पराभिमतं सन्दष्टयमकं निरूपयति—संदष्टेति । द्वयोः पादयोरन्तादी अवसान-मादिश्च सन्दष्टयमकस्थानम् , एतत् सन्दष्टयमकम् उक्तान्तर्गतमपि पादचतुष्टयगतव्यपेता-द्यन्तनामकयमकप्रभेदे मदुक्तेऽन्तर्गतमपि अत्र स्वातन्त्र्येण पृथक् कीर्त्यते वर्ण्यते ॥ ५१ ॥

हिन्दी—प्रथम पादके अन्तमें तथा द्वितीय पादके अन्तमें रहनेवाले यमकका नाम प्राचीनोंने सन्दष्टयमक रखा है, वह यद्यपि हमारे द्वारा कहे गये पादचतुष्टयगत व्यपेताद्यन्त यमक नामक यमकप्रभेदमें अन्तर्भूत हो जाता है, तथापि प्राचीनानुरोधसे यहाँ स्वतन्त्र रूपसे वर्णन किया जाता है । उपर्युक्त यमकप्रभेदका उदाहरण है :—'रवेण भौमो ध्वजवर्तिवीरवे' इत्यादि ३।४७॥५१॥

१. गत । २. कलि । ३. कनि । ४. न्तादिपदयो । ५. णात्र ।

उपोढरागाप्यबला मदेन सा मदेनसा मन्युरसेनयोजिता।
न योजितात्मानमनङ्गतापिताङ्गतापि तापाय ममास नेयते ॥ ५२ ॥

संदष्टयमकमुदाहरति—**उपोढरागेति**। मदेन मद्योपयोगेन यौवनमदेन च उपोढ-रागा संजातसुरताभिलाषापि साऽबला स्त्री मदेनसा मदीयेन दोषेण हेतुना मन्युरसेन कोपेन योजिता (अतश्च) अनङ्गतापिताम् कामसन्तप्तत्वं गतापि सा आत्मानं (मयि) न योजिता योजितवती मया सह न सङ्गता, (इदम्) इदम् मम इयते एतत्परिमाणाय महते तापाय न आस न बभूव, अपि तु बभूवैवेति काक्वा व्यज्यते। आसेति तिङन्तप्रति-रूपमव्ययमिति शाकटायनः ॥ ५२ ॥

हिन्दी—मद्यपान तथा यौवनमदसे रत्यभिलाषिणी होकर भी वह अबला मेरे ही दोषसे क्रोधावेशयुक्त हो गई, अतः कामसन्तप्त होकर भी उसने मेरे पास आना नहीं चाहा, क्या यही मेरे इस महान् सन्तापका कारण नहीं है?

यह सन्दष्टयमकका उदाहरण है क्योंकि प्रथम पादके अन्तमें एवं द्वितीय पादके आदिमें 'मदेनसा मदेनसा' और तृतीय पादके अन्तमें और चतुर्थ पादके आदिमें 'ङ्गतापिता ङ्गतापिता' स्वरूप यमक है ॥ ५२ ॥

अर्धाभ्यासः[2] समुद्गः स्यादस्य भेदास्त्रयो मताः।
पादाभ्यासोऽप्यनेकात्मा व्यज्यते स निदर्शनैः ॥ ५३ ॥

अथ समस्तपादयमकमुपक्रमते—**अर्धाभ्यास इति**। अर्धाभ्यासः पादद्वयावृत्तिः समुद्गः स्यात् समुद्गयमकनाम्ना व्यवह्रियेत, समुद्गः सम्पुटकः स यथा भागद्वयात्मको भवति तथैव भागद्वयात्मकतयाऽस्य समुद्गसंज्ञकता। तस्य समुद्गयमकस्य त्रयो भेदा मताः। पादाभ्यासः एकमात्रपादावृत्तिरपि अनेकात्मा बहुविधो भवति स निदर्शनैः व्यज्यते उदाहरणप्रदर्शनेन स्फुटीक्रियते ॥ ५३ ॥

हिन्दी—अर्धाभ्यास-पादद्वयावृत्तिको समुद्गयमक नामसे व्यवहृत किया जाता है, उसके तीन भेद हैं—प्रथम-तृतीय-एवं द्वितीय-चतुर्थ चरणोंकी समानतामें एक, प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय-चतुर्थ चरणोंकी समानतामें द्वितीय, प्रथम-चतुर्थ एवं द्वितीय-तृतीय चरणों की समानतामें तृतीय भेद होगा। यह समुद्गयमक हुआ, समुद्ग सम्पुटक पेटारीका नाम है, पेटारीके जैसे दो भाग होते हैं उसी तरह इसके भी दो भाग होते हैं, इसीसे इसका नाम समुद्ग कहा गया है।

एकपादावृत्तियमक बहुत प्रकारका है जो उदाहरणोंद्वारा व्यक्त होगा। इस एकपादावृत्तियमकके निम्न प्रभेद संभव हैं, प्रथमपाद द्वितीयपादमें, प्रथमपाद तृतीयपादमें, प्रथमपाद चतुर्थपादमें इस प्रकार तीन भेद। द्वितीयपाद तृतीयपादमें, द्वितीयपाद चतुर्थपादमें इस प्रकार दो भेद। तृतीयपाद चतुर्थपादमें यह एक भेद, प्रथमपाद द्वितीय और तृतीयमें, प्रथमपाद द्वितीय और चतुर्थमें, प्रथमपाद तृतीय और चतुर्थमें, द्वितीयपाद तृतीय और चतुर्थमें यह चार भेद। प्रथम पाद द्वितीय तृतीय चतुर्थमें यह एक भेद, कुल मिलाकर एकादश भेद हुए।

समुद्गयमकके उदाहरण दिखलाकर इनके भी उदाहरण दिये जायेंगे ॥ ५३ ॥

नास्थेयःसस्त्वया वर्ज्यः परमायतमानया।
नास्थेयः स त्वयावर्ज्यः परमायतमानया ॥ ५४ ॥

१. तावाय ममास नेयते। २. अत्राभ्यासः।

समुद्गयमकभेदमुदाहरति—ना स्थेय इति। परमायतमानया अत्यन्तविस्तृतकोपया स्थेयः सत्त्वया निश्चलस्वभावया त्वया सः ना नायकः न वर्ज्यः न परित्यक्तव्यः, किन्तु परम् अत्यर्थम् आयतमानया चेष्टमानया आस्थेयः आदरणीयः आवर्ज्यः अनुकूलाचरणेन स्ववशीकरणीयश्च। अत्र प्रथमद्वितीययोस्तृतीयचतुर्थयोश्च पादयोरभ्यासः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—अत्यन्त विस्तृत मान तथा निश्चल स्वभावशालिनी तुम उस नायकका परित्याग मत कर दो अपितु यथासम्भव चेष्टा करके उसका आदर करो और अनुकूल आचरण करके उसे अपने वशमें कर लो।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथम-तृतीय एवं द्वितीय-चतुर्थ चरणोंमें समानताकृत अर्धाभ्यास है ॥५४॥

नरा जिता माननयासमेत्य न राजिता माननया समेत्य।
विनाशिता वैभवतापनेन विनाशिता वै भवतापनेन ॥ ५५ ॥

समुद्गयमकस्य द्वितीयं प्रभेदमुदाहरति—नरा इति। राज्ञः स्तुतिपरं पद्यमिदम्। अत्र पदच्छेदो यथा—नराः जिताः माननयासम् एत्य न राजिताः माननया सम इत्य· विनाशिता वैभवतापनेन विना अशिताः वै भवता आपनेन। सम माननया इत्य, जिताः नरा माननयासम् एत्य न राजिताः आपनेन भवता वैभवतापनेन विनाशिताः वै विना अशिताः इति चान्वयः।

हे मया लक्ष्म्या सहित सम सश्रीक, माननया आदरेण इत्य प्राप्य आदरणीय, जिताः भवता परासिताः नराः शत्रुभूताः पुरुषाः माननयासम् प्रतिष्ठानीत्योः प्रतिक्षेपम् एत्य प्राप्य न राजिताः न शोभिताः आपनेन व्यापकेन भवता वैभवतापनेन धनकृतपराभवप्रदानेन विनाशिताः मारितास्ते शत्रवो वै निश्चयेन विना गृध्रादिपक्षिणा अशिताः भक्षिताः इत्यर्थः। अत्र प्रथमद्वितीयौ तृतीयचतुर्थौ च पादौ समानौ ॥ ५५ ॥

हिन्दी—हे लक्ष्मीसम्पन्न तथा सम्माननीय नृपवर, आपके द्वारा पराजित आपके शत्रु प्रतिष्ठा और नीतिके प्रतिक्षेप हो जानेसे शोभासम्पन्न नहीं रह जाते हैं, हतप्रभ हो जाते हैं, और व्यापक प्रभाव आपके द्वारा धनकृत सन्तापनसे विनाशित होकर गृध्रादिपक्षिगणसे भक्षित हो जाते हैं। इस उदाहरणश्लोकमें प्रथमद्वितीय एवं तृतीयचतुर्थ पादोंको आवृत्ति होनेसे यह अर्धाभ्यासरूप समुद्गका द्वितीय प्रभेद हुआ ॥ ५५ ॥

कलापिनां चारुतयोपयान्ति[2] वृन्दानि लापोढ[3]घनागमानाम्।
वृन्दानिलापोढघनागमानां कलापिनां चारुतयोपयान्ति ॥ ५६ ॥

तृतीयं प्रभेदमुदाहरति—कलापिनामिति। लापेन शब्देन केकाध्वनिना ऊढः प्राप्तः स्वागतीकृतः घनागमो वर्षाकालो यैस्तादृशानां कलापिनां मयूराणां वृन्दानि समूहाः चारुतया शोभया उपयान्ति सङ्गच्छन्ते, शोभायुता भवन्तीत्यर्थः। तथा वृन्दानिलेन सङ्घातवायुनाऽपोढः निरस्तः घनस्य नृत्यविशेषस्यागमः परिशीलनं येषां तादृशानां वृन्दानिलापोढघनागमानाम् (वर्षाकाले हंसा मदशून्या नृत्यं त्यजन्तीति प्रसिद्धिः) कलापिनां मधुरशब्दानां के जले लापिनां कूजतां च हंसानां च आरुतयः कूजितानि अप-

---

१. तापनेन। २. तमोप। ३. लापोढ।

वान्ति मन्दीभूय शनैरपसरन्ति। अत्र प्रथमचतुर्थौ तथा द्वितीयतृतीयपादौ तुल्याविति समुद्गभेदस्तृतीयः ॥ ५६ ॥

हिन्दी—केकाध्वनिसे वर्षासमयका स्वागत-सत्कार करनेवाले मयूरोंके समुदायकी शोभा बढ़ रही है, और वर्षाऋतुके सब्वायुसे दूर कर दिया गया है नृत्याभ्यास जिनका ऐसे मधुरभाषी तथा जलमें कूजन करनेवाले हंसोंका कूजन उनसे छूट रहा है। 'घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्यमध्यम-नृत्ययोः' इति मेदिनी।

इस उदाहरणश्लोकमें प्रथमचतुर्थमें एवं द्वितीयतृतीय चरणोंमें आवृत्तिकृत समत्व है, अतः यह समुद्गयमकका तृतीय प्रभेद हुआ ॥ ५६ ॥

नमन्दयावर्जितमानसात्मया न मन्दयावर्जितमानसात्मया।
उरस्युपास्तीर्णपयोधरद्वयं मया समालिङ्ग्यत जीवितेश्वरः ॥ ५७ ॥

पादाभ्यासमुदाहर्तुमुपक्रममाणः प्रथमद्वितीयपादाभ्यासमुदाहरति—**नमन्दयेति**। मन्दया मन्दमत्या मूढया अवर्जिते अपरित्यक्ते माने कोपे सात्मया सप्रयासया तथा दयया वर्जितो मानसम् आत्मा स्वभावश्च यस्यास्तथाभूतया मया नमन् अपराधक्षमा-पणार्थं पादयोः पतन् जीवितेश्वरः प्राणनाथः उरसि वक्षोदेशे उपास्तीर्णपयोधरद्वयं स्था-पितनिजकुचयुगलं न समाश्लिष्यत नालिङ्गितः। पादपतितं प्रियं निराकृत्य मानिन्याः पश्चात्कोपापगमेऽनुतापोक्तिरियम् ॥ ५७ ॥

हिन्दी—मूढ़मति अपरित्यक्त मानके प्रति सदा सयत्न तथा दयाशून्यहृदय एवं स्वभावशालिनी मैंने चरणोंपर पड़ते हुए प्रियतमकी छातीसे अपने स्तनोंको लगाकर आलिङ्गन नहीं किया। पादपतित प्रियतमकी उपेक्षा करके पीछे पछतानेवाली नायिकाकी यह उक्ति है।

इस उदाहरणश्लोकमें प्रथमद्वितीय पादकी आवृत्ति है ॥ ५७ ॥

सभा सुराणामबला विभूषिता गुणैस्तवारोहि मृणालनिर्मलैः।
स भासुराणामबला विभूषिता विहारयन्निर्विश संपदः पुराम् ॥५८॥

प्रथमतृतीयपादाभ्यासमुदाहरति—**सभेति**। अबला बलसंज्ञकदैत्यशून्याऽतश्च निर्भया विभूषिता विभुना स्वामिना शक्रेण उषिता अध्यासिता सुराणां सभा सुधर्मा तव मृणाल-निर्मलैः स्वच्छैर्गुणैः आरोहि अध्याक्रान्ता, सुधर्माऽपि तव गुणान् गायतीत्यर्थः। सः त्वम् विभूषिताः अलङ्कृताः अबलाः स्त्रियः विहारयन् रमयन् भासुराणाम् उज्ज्वलानाम् पुराम् नगरीणां सम्पदः निर्विश उपभुङ्क्ष्व ॥ ५८ ॥

हिन्दी—हे राजन्, आपके मृणालधवलगुणोंने इन्द्रसे शोभित एवं बलके नहीं होनेसे निर्भय देवसभा सुधर्मा तक आरोहण कर लिया है—सुधर्मामें आपका गुणगान होता है, आप अलंकृत रमणियों के साथ विहार करते हुए उज्ज्वल नगरियोंकी सम्पत्तिका उपभोग करें। किसी राजाकी प्रशंसामें यह श्लोक कहा गया है।

इस श्लोकमें प्रथम-तृतीय पादका अभ्यास है ॥ ५८ ॥

कलं कमुक्तं तनुमध्यनामिका स्तनद्वयी च त्वरते न हन्यतः।
न याति भूतं गणने भवन्मुखे कलङ्कमुक्तं तनुमध्यनामिका ॥५९॥

१. सार्थया।

प्रथमचतुर्थपादाभ्यासमुदाहरति—कलमिति। कमपि महान्तं प्रतीयमुक्तिः, (विलासवतीनाम्) कलम् मधुरम् उक्तं वचनम्, तनुमध्यनामिका कृशकटिनमयित्री स्तनद्वयी च त्वदृते त्वद्भिन्नं कं न हन्ति व्यथयति? केवलं त्वमेव निर्विकारचित्तो नान्यः कोऽपीति भावः। अतः भवन्मुखे भवत्प्रमुखे समाजे गणने त्वादृशजनसंख्याने अनामिकानामाङ्गुलिः कलङ्कमुक्तं सर्वथा जितेन्द्रियम् तनुमत् शरीरिभूतं जन्तुम् न याति, जितेन्द्रियाणां गणनाप्रसङ्गे प्रथमं भवान् कनिष्ठिकामारोहति, त्वत्तुल्यस्य पुरुषान्तरस्याभावाचानामिकां न कोऽप्यन्यः प्राप्नोतीति सा सार्थनामा जायते इत्याशयः ॥ ५९ ॥

हिन्दी—विलासिनियोंके मीठे वचन तथा कटिभागको भारावनत बना देनेवाले स्तनद्वय आपके अतिरिक्त किसको नहीं व्यथित कर देते हैं, इसीलिये आपके समान जितेन्द्रिय निष्कलङ्क पुरुषोंकी गणनामें अनामिका किसी शरीरी प्राणीतक नहीं पहुँच सकती है, कनिष्ठिकापर आपका नाम ले लिया गया, आपके समान कोई दूसरा मिला नहीं, अतः अनामिकापर कोई नहीं गिना गया।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथमचतुर्थ चरणोंमें आवृत्ति है ॥ ५९ ॥

यशश्च ते दिक्षु रजश्च सैनिका वितन्वतेजोपम दंशिता युधा।
वितन्वतेजोपमदं शितायुधा द्विषां च कुर्वन्ति कुलं तरस्विनः ॥ ६० ॥

द्वितीयतृतीयपादाभ्यासमुदाहरति—यशश्चेति। कस्यापि विक्रान्तस्य नृपतेर्वर्णनमिदम्। हे अजोपम विष्णुतुल्य, ते तव दंशिताः कवचिनः शितायुधाः तीक्ष्णधारप्रहरणशालिनः तरस्विनो वेगवन्तः च सैनिकाः युधा युद्धेन दिक्षु रजः सेनासंमर्दभवां धूलिम्, यशः कीर्तिम् च वितन्वते विस्तारयन्ति, तथा द्विषां कुलं शत्रुसमूहम् वितनु विनष्टशरीरम् अतेजः प्रभावदरिद्रम्, अपमदं गलितगर्वम् कुर्वन्ति ॥ ६० ॥

हिन्दी—हे अजोपम विष्णुसमान, आपके कवचधारी, तीक्ष्णायुधवाले एवं वेगवान् सैनिकगणयुक्त द्वारा सभी दिशाओंमें रज तथा कीर्ति फैला देते हैं, एवं शत्रुसमूहको अतनु (शरीररहित), अतेज (प्रभाहीन) तथा अपमद (गर्वहीन) कर देते हैं।

इस श्लोकके द्वितीय-तृतीय चरणोंमें अभ्यास हुआ है ॥ ६० ॥

बिभर्ति भूमेर्वलयं भुजेन ते भुजङ्गमोमा स्मरतो मदञ्चितम्।
शृणूक्तमेकं स्वमवेत्य भूधरं भुजं गमो मा स्म रतो मदं चितम् ॥ ६१ ॥

द्वितीयचतुर्थपादाभ्यासमुदाहरति—बिभर्तीति। (हे नृप,) ते तव भुजेन समा सह भुजङ्गमः शेषनागः भूमेर्वलयं धरामण्डलं बिभर्ति धारयति, अतः स्मरतः एतत्सर्वं स्मृतिपथे रक्षतो मत्सकाशात् अञ्चितम् सर्वजनपूजितम् एकम् उक्तम् वचनं शृणु, किन्तद्वचनं यच्छ्रोतुमनुरुणत्सीत्यपेक्षायामाह—स्वं निजं भुजम् एकम् सहायान्तरनिरपेक्षमेव भूधरं पृथ्वीभारसहं समर्थम् अवेत्य ज्ञात्वा रतः सन्तुष्टहृदयः चितम् उपचितम् मदं गर्वं मा स्म गमः न याहीति ॥ ६१ ॥

हिन्दी—हे राजन्, आपके भुजके साथ शेषनाग पृथ्वीका धारण करते हैं, इस बातको ध्यानमें रखकर मैं आपसे एक बात कहूँगा, उस सर्वपूजित बातको आप सुनें, वह बात यही है कि

---

१. दु।

आपका भुज बिना किसीकी सहायतासे पृथ्वीको धारण करता है यह जानकर सन्तुष्टचित्त हो आप उपचित मदका वहन मत करें।

इस उदाहरणश्लोकके द्वितीय-चतुर्थ चरणोंमें अभ्यास हुआ है ॥ ६१ ॥

स्मरानलो मानविवर्धितो यः स निर्वृतिं ते किमपाकरोति।
समन्ततस्तामरसेक्षणेन समं ततस्तामरसे क्षणेन ॥ ६२ ॥

तृतीयचतुर्थपादयोरभ्यासमुदाहरति—**स्मरानल इति**। हे तामरसेक्षणे कमलनयने, हे अरसे नीरसहृदये, यः मानविवर्धितः मानेन वृद्धिं गमितः, तथा क्षणेन उत्सवेन समं ततः परिपूर्णश्च, एतादृशः स स्मरानलः कामाग्निः समन्ततः सर्वतोभावेन तां पूर्वानुभूताम् ते निर्वृतिं परमानन्दम् न अपाकरोति किम्! किं त्वं मानसमुपचितेन कामेन न सन्ताप्यसे? अतो मानं विहाय पतिमनुवर्तस्वेति सख्या अनुरोधः ॥ ६२ ॥

हिन्दी—हे कमलनयने, हे नीरसहृदये, मान करनेसे बढ़ा हुआ और उत्सवोंसे परिपूर्ण यह कामानल उस तुम्हारे पूर्वानुभूत परमानन्दको क्षति नहीं पहुँचाता है? क्या मान करनेसे तुम्हारी रतिको बाधा नहीं हो रही है? अतः मान छोड़कर अपने प्रियतमका अनुवर्त्तन करो।

इस उदाहरणमें तृतीय-चतुर्थ चरणोंका अभ्यास है ॥ ६२ ॥

प्रभावतोनाम न वासवस्य प्रभावतो नामन वा सवस्य।
प्रभावतो नाम नवासवस्य विच्छित्तिरासीत्त्वयि विष्टपस्य ॥ ६३ ॥

पादत्रयाभ्यासमुदाहर्तुमुपक्रममाणः प्रथमं प्रथमपादत्रयाभ्यासमुदाहरति—**प्रभावत इति**। हे प्रभावतः स्वप्रभावातिशयेन प्रभावतः प्रभासम्पन्नस्य वासवस्य इन्द्रस्यापि नामन विनम्रताकारक, हे अनाम, नास्ति आमः रोगो यस्य तत्सम्बोधने अनामेति पदम्, त्वयि श्रीकृष्णेऽतः विष्टपस्य जगतः प्रभौ पालके सति न वासवस्य नित्यनूतनसुरायाः सवस्य यज्ञस्य वा विच्छित्तिः विच्छेदो नासीत्। यादवानां सुरापानं धार्मिकाणां यज्ञकर्म च निर्बाधं प्रवर्त्ततेस्मेत्यर्थः। श्रीकृष्णस्तुतिरियम् ॥ ६३ ॥

हिन्दी—अपने प्रभावसे प्रभावशाली इन्द्रको भी नम्र करनेवाले, तथा सर्वथा नीरोग भगवान् श्रीकृष्ण, आपके जगत्प्रभु होनेपर यादवोंके नवासव—नवीन मद्यका तथा धार्मिकोंके यज्ञका कभी विच्छेद नहीं हुआ।

इस उदाहरणके प्रथम तीन चरणोंका अभ्यास हुआ है ॥ ६३ ॥

परंपराया बलवारणानां परं पराया बलवारणानाम्।
धूलीः स्थलीर्व्योम्नि[1] विधाय रुन्धन् परं पराया बलवा रणानाम् ॥६४॥

प्रथमद्वितीयचतुर्थपादाभ्यासमुदाहरति—**परंपराया इति**। बलवारणानाम् प्रबलगजानाम् परायाः अतिवृहत्याः श्रेष्ठायाः परम्परायाः पङ्क्तेः रणानां स्थलीः युद्धभूमीः व्योम्नि आकाशे धूलीः धूलिरूपाः विधाय कृत्वा बलेन स्वसामर्थ्येन शत्रून् वारयतीति बलवाः त्वम् परं श्रेष्ठं परं शत्रुं रुन्धन् अवरुध्य निगृह्णन् परायाः निर्गतः। गजसेनया युद्धभूमौ वृहद्रजः समुत्थाप्य स्वपराक्रमेण शत्रूनवरुन्धँस्त्वं रणस्थलान्निर्गत इत्यर्थः ॥६४॥

हिन्दी—प्रबल गजसेनाकी बड़ी पङ्क्तिके द्वारा युद्ध भूमिको आकाशमें धूलिके रूपमें परिणत

---

१. व्योमि।

करके और आत्मसामर्थ्यसे शत्रुको निवारित करनेवाले आप बड़े-बड़े शत्रुओंको रोककर निगृहीत करके युद्धस्थलसे निकल गये।

इस उदाहरणश्लोकके प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरणका अभ्यास हुआ है ॥ ६४ ॥

न श्रद्दधे वाचमलज्ज मिथ्याभवद्विधानामसमाहितानाम्।
भवद्विधानामसमाहितानां भवद्विधानामसमाहितानाम् ॥ ६५ ॥

इदानीं पुनर्द्वितीयपादमारभ्य चतुर्थपादपर्यन्तगतमभ्यासमुदाहरति—**न श्रद्दधे इति।** हे अलज्ज, निर्लज्ज, भवद्विधानाम् भवत्सदृशानाम् जनानाम्—मिथ्याभवद्विधानाम् असत्यार्थप्रतिपादकतया मिथ्याभवत् विधानं प्रतिपादनं यस्यास्तादृशीम्, असमाहितानाम् कुटिलसर्पसमविस्ताराम् अतिवक्राम्, भवद्विधानाम् भवत् प्रतिक्षणजायमानं नवं नवं विधानं विधिः प्रकारो यस्यास्ताम् प्रतिक्षणं नूतनेन प्रकारेण प्रकटन्तीम्, वाचं न श्रद्दधे न प्रत्येमि। किंभूतानां भवद्विधानाम् इत्यपेक्षायामाह—असमाहितानाम् अप्रतीकाराणाम्, असमाहितानाम् अनुपमशत्रुभूतानाम् ॥ ६५ ॥

हिन्दी—हे निर्लज्ज, आपके समान अप्रतीकार अथवा सदा व्यग्र रहनेवाले असमाहित, एवं अनुपम शत्रुभूत असमाहितजनकी मिथ्याभवद्विधान—असत्यार्थप्रतिपादक, असमाहितान कुटिल-सर्पवद्विस्तार (अतिवक्र) एवं भवद्विधान प्रतिक्षण नूतनप्रकारके वचनोंपर मैं श्रद्धा नहीं रखता हूँ।

इस श्लोकके द्वितीय-तृतीय चतुर्थ पादमें अभ्यास है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि इस श्लोकसे पूर्व प्रथमतृतीयचतुर्थपादाभ्यासका उदाहरण देना प्रकरण-प्राप्त था, जो नहीं है। मालूम पड़ता है वह श्लोक त्रुटित हो गया होगा। किसी भी टीकाकारने उसकी व्याख्या नहीं लिखी है, इससे यह भी पता लगता है कि वह श्लोक बहुत पहले ही त्रुटित हो गया था ॥ ६५ ॥

सन्नाहितोमानमराजसेन सन्नाहितोमानम राजसेन।
सन्ना हितोमानमराजसेन सन्नाहितो मानम राजसे न ॥ ६६ ॥

पादचतुष्टयाभ्यासमुदाहरति—**सन्नाहितोमानेति।** हे अनम अनम्रीभूत, तथा आहितोमानमराजसेन, (न नमन्तीति अनमाः द्विजाः तेषां राजा चन्द्रः अनमराजः, उमा च अनमराजश्चोमानमराजौ, आहितौ अङ्के शिरसि च धृतौ उमानमराजौ येन सः आहितोमानमराजः तेन शिवेन सेनः सस्वामिकः शैव इत्यर्थः, तत्सम्बोधने आहितोमान-मराजसेनेति) सन्नाहित, सन्नाः विनष्टाः अहिताः शत्रवो यस्य तथाभूत, उमानम पार्वती-नमस्कारकर्त्तः, राजसेन राजसानां क्षत्रियाणाम् इन श्रेष्ठ, अमराजसेन देवलोपकसैन्यसमन्वित, एतादृशनृपते, त्वं सन् ना उत्तमः पुमान् हितः सर्वभूतहितकारी, अमान अतिमहान् सन्नाहितः युद्धार्थं कृतकवचादिधारणः सन न मा राजसे न शोभसे इति मा नहि, 'द्वौ नञौ प्राकृतार्थं गमयत' इत्युक्त्या राजसे एवेति प्रतीयते ॥ ६६ ॥

हिन्दी—हे अनम (किसीके सामने नहीं झुकनेवाले) आहितोमानमराजसेन—उमा और द्विजराजको रखनेवाले शिवजीसे सनाथ अर्थात् शिवभक्त, सन्नाहितविनष्टशत्रो, उमानम-पार्वतीनमस्कर्त्ता, राजसेन—क्षत्रियश्रेष्ठ अमराजसेन-सैन्यद्वारा अमरोंको भी परास्त करनेवाले

१. सन्नामितो।

नृपवर, आप उत्तमपुरुष तथा सर्वहितैषी हैं, आप अतिमहान् हैं, आप जब युद्धार्थ सन्नाहादि धारण करते हैं तब नहीं शोभते हैं ऐसी बात नहीं है, अर्थात् बहुत शोभाशाली लगते हैं ॥ ६६ ॥

इस उदाहरणश्लोकके चारों चरणोंका अभ्यास है ॥ ६६ ॥

सकृद्द्विस्त्रिश्च योऽभ्यासः पादस्यैवं प्रदर्शितः।
श्लोकद्वयं तु युक्तार्थं श्लोकाभ्यासः स्मृतो यथा ॥ ६७ ॥

श्लोकावृत्तियमकप्रभेदमाह—**सकृदिति**। एवम् प्रोक्तप्रकारेण पादस्य चरणस्य सकृत् एकधा, द्विः द्विवारम्, त्रिः वारत्रयम् च यः अभ्यासः आवृत्तिः सः प्रदर्शितः। तत्र सकृदभ्यासः पादद्वयगतः, द्विरभ्यासः पादत्रयगतः, त्रिरभ्यासश्च पादचतुष्टयगत इति बोध्यम्। युक्तार्थम् परस्परसम्बद्धार्थम् एकवाक्यतापन्नम् श्लोकद्वयं तु श्लोकाभ्यासः स्मृतः, यथेत्युदाहरणोपक्रमे, श्लोकाभ्यास उदाहरिष्यत इति भावः ॥ ६७ ॥

हिन्दी—पादका एक बार दो बार तथा तीन बार अभ्यास अबतक बताया गया, एक बारका अभ्यास पादद्वयगत होता है, दो बारका अभ्यास पादत्रयगत होता है, और तीन बार का अभ्यास पादचतुष्टयगत होता है, इन सभी प्रभेदोंके उदाहरण दिये जा चुके हैं। परस्पर-सम्बद्धार्थक-एकवाक्यतापन्न दो समानानुपूर्वीक श्लोकको ही श्लोकाभ्यास कहा गया है, उसका उदाहरण दिया जा रहा है ॥ ६७ ॥

विनायकेन भवता वृत्तोपचितबाहुना।
स्वमित्रोद्धारिणा भीता पृथ्वी यमतुलाश्रिता ॥ ६८ ॥
विनायकेन भवता वृत्तोपचितबाहुना।
स्वमित्रोद्धारिणाभीता पृथ्वीयमतुलाश्रिता ॥ ६९ ॥

श्लोकाभ्यासमुदहरति—**विनायकेनेति**। अत्र समानानुपूर्वीके श्लोकद्वये प्रथमेन वर्णनीयस्य राज्ञः शत्रूणां दशा वर्ण्यते, अपरेण च राज्ञः स्तुतिः करिष्यते। तत्र प्रथमस्यार्थो यथा—विनायकेन नियामकशून्येन वृत्तोपचितबाहुना—वृत्तौ संजातौ उपचितं चितासमीपे बाहू यस्य तथाभूतेन चितासमीपगतबाहुयुगलेन नष्टप्रायबाहुनेति भावः। स्वमित्रोद्धा स्वं धनं मित्राणि च उज्जहातीति स्वमित्रोद्धास्तेन धनमित्रत्यागिना भीता भियम् एतीति भीत् तेन भयशालिना अरिणा शत्रुणा पृथ्वी विशाला यमतुला रणपराङ्मुखानां क्षत्रियाणां दण्डनाय तप्तायोनिर्मिता तुला लोकप्रसिद्धा आश्रिता आरूढा। नियामकमुख्यशून्यो नष्टप्रायबाहुश्च धनमित्रत्यागी तव रिपुर्यमतुलामारूढ इति भावः ॥ ६८ ॥

द्वितीयस्यार्थो यथा—विनायकेन विशिष्टनेत्रा वृत्तौ वर्तुलाकारौ उपचितौ पुष्टस्थूलौ च बाहू यस्य तेन यथोक्तेन, स्वमित्रोद्धारिणा निजमित्रोद्धारकरेण सु-अमित्रविनाशकेन च भवता च आश्रिता स्ववशे कृता इयं पृथ्वी भूमिः अतुला अनुपमा अभीता भयशून्या च जातेति शेषः ॥ ६९ ॥

हिन्दी—बिना नियामकके होनेसे अस्तव्यस्त, चिताके पास पहुँचे हुएके समान नष्टप्राय बाहुवाले, धन तथा मित्रका त्याग करनेवाले, एवं भययुक्त आपके शत्रु विशाल यमतुलापर आरूढ हो गये। (युद्ध-पराङ्मुख लोगोंको दण्डित करनेके लिये गरम लोहशलाकाओंसे बनी तुलाका यमतुला नाम दण्डनीति-प्रसिद्ध है) यह अर्थ शत्रुपरक हुआ ॥ ६८ ॥

१. युक्तार्थं।

समीचीन नेता, वर्तुलस्थूलबाहुशाली, अपने शत्रु अमित्रोंको नष्ट करनेवाले आपसे अधिकृत यह पृथ्वी अनुपम तथा भयरहित हो गई है। यह राजपरक अर्थ है।

इन दोनों अर्थोंका एकवाक्यत्व-परस्परसंबद्धत्व हो जाता है, अतः इन दोनों श्लोकोंको मिला कर श्लोकाभ्यास यमकका उदाहरण हुआ ॥ ६९ ॥

एकाकारचतुष्पादं तन्महायमकाह्वयम्।
तत्रापि दृश्यतेऽभ्यासः सा परा यमकक्रिया ॥ ७० ॥

महायमकमुपवर्णयति—**एकाकारेति**। एकाकारचतुष्पादं समानानुपूर्वीकपादचतुष्टयम् तत् महायमकाह्वयम् महायमकनामकं भवति, तत्रापि तत्र पादमध्येऽपि अभ्यासः आवृत्तिः दृश्यते, अत एव सा यमकक्रिया महायमकनिर्माणं परा उत्कृष्टा, अत्यन्तकष्टसम्पाद्येति भावः ॥ ७० ॥

हिन्दी—एक समान चारो चरण होनेपर महायमक नामक होता है, उसमें पाद-मध्यमें भी आवृत्ति हो सकती है, वही यमककी पराकाष्ठा मानी जाती है।

इससे पहले 'सन्नाहितोमानमराजसेन' इत्यादि श्लोकमें (तृती० ६६) जो पादचतुष्टय यमक है उसके पादमध्यमें अभ्यास नहीं होता है, इस महायमकमें पादमध्यमें भी अभ्यास होता है, अतः यह उससे भिन्न नामान्तरप्रकाश्ययमकभेद माना जाता है ॥ ७० ॥

समानयासमानया समानयासमानया।
स मा न यासमानया समानयासमानया ॥ ७१ ॥

महायमकमुदाहरति—**समानयेति**। समानया, असमानया, समानयाससमानया, सः, मा, न, या, असमानया, समानय, असम, अनया इति पदच्छेदः। हे असम निरुपम (सखे), सः त्वम् मा माम् समानं यासस्य आयासस्य खेदस्य मानं परिमाणं यस्यास्तथाभूतया समदुःखया समानया मानमहितया असमानया निरुपमया अनया न यिकया समानया मेलय, (ननूपेक्ष्यतां साऽतिकोपनेति चेत्तत्राह—) या सा नायिका मा लक्ष्मीः शोभा नयः विवेकश्च मानयौ ताभ्यां सहिता समानया न समानया असमानया न भवतीति शेषः, सा हि सुन्दरी विवेकशालिनी च अतो नोपेक्षामर्हति, अतो मां तया सह समानयेत्यनुरोधस्यौचित्यमिति। अस्य श्लोकस्यैकाकारचतुष्पादत्वं पादमध्येऽपि चावृत्तिमत्वमिति महायमकमिदम् ॥ ७१ ॥

हिन्दी—हे मेरे निरुपम मित्र, समदुःखशीला, मानशालिनी, निरुपमसौन्दर्या, इस नायिकासे मुझे मिला दो, जो शोभा तथा विवेकसे शून्या नहीं है।

इस उदाहरणके चारों चरण एकाकार हैं, और प्रत्येक चरणोंमें भी आवृत्ति होती गई है, अतः यह दुष्कर महायमकका उदाहरण है ॥ ७१ ॥

धराधराकारधरा धराभुजां भुजा महीं पातुमहीनविक्रमाः[२]।
क्रमात् सहन्ते सहसा हतारयो रयोद्धुरा मानधुरावलम्बिनः ॥ ७२ ॥

यमकनिरूपणप्रक्रमे 'अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः संभेदयोनयः' इत्युक्तं, तेषु संभेदयोनिषु भेदेषु सजातीयमिश्रणजनिता यमकप्रभेदा उदाहृताः, सम्प्रति विजातीयमिश्रणजनितं

१. तस्यापि। २. विक्रमात्।

भेदमुदाहरति—**धराधरेति**। धराधराकारधराः पृथ्वीधारकशेषनागाकारधारिणः अहीनविक्रमाः अन्यूनपराक्रमाः सहसा हतारयः मारितशत्रवः रयोद्धुराः उत्कटवेगाः मानधुरावलम्बिनः अभिमानपूर्णाः धराभुजां राज्ञां भुजाः बाहवः क्रमात् पूर्वजक्रमेण महीं पृथ्वीं पातुं रक्षितुं सहन्ते समर्था भवन्ति। अत्र 'धराधराकारधराधरा' इत्यव्यपेतव्यपेत॰यमकम्, 'भुजां भुजे'ति सन्दष्टयमकम्, 'महीं पातुमही' इति 'सहन्ते सहसा' इति च व्यपेतयमकम्, 'रयोरयो' इति अव्यपेतयमकं सन्दष्टयमकं च, 'धुरा मानधुरा' इति व्यपेतयमकम्। एवमत्र बहुप्रकाराणां यमकानां संभेदो बोध्यः॥ ७२॥

हिन्दी—पृथ्वी धारण करनेवाले शेषनागके समान दीर्घ, पीन, अन्यूनपराक्रमशाली, हठात् शत्रुसंहारक तथा उत्कट वेगशाली राजाओंके भुजगण ही इस पूरी पृथ्वीका धारण कर सकते हैं, जिस प्रकारसे उनके पूर्वज करते आये हैं।

इस उदाहरणश्लोकमें बहुत प्रकारके यमकोंकी संसृष्टि है, जैसे 'धराधराकारधरा धरा' यह अव्यपेतव्यपेतयमक है, 'भुजां भुजा' यह सन्दष्टयमक है, 'महीं पातुमही' यह और 'सहन्ते सहसा' यह व्यपेतयमक है, 'रयो रयो' यह अव्यपेतयमक और सन्दष्टयमक है, 'धुरा मानधुरा' यह व्यपेतयमक है।

यमकनिरूपणके प्रारम्भमें यह बात कही गई थी कि उक्त यमकोंके संमिश्रणसे बहुत अधिक भेद हो सकते हैं—'अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः संभेदयोनयः' तदनुसार सजातीय यमकोंके सम्मिश्रणमें संभवी भेदोंके उदाहरण इससे पूर्व दिये गये थे, यह विजातीय यमकोंके मिश्रणका उदाहरण दिया गया है॥ ७२॥

आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा।
यमकं[1] प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति[2] स्मृतम्॥ ७३॥

प्रतिलोमयमकनिरूपणमुपक्रमते—**आवृत्तिरिति**। प्रातिलोम्येन विपरीतक्रमेण पादः एकचरणः, अर्धम् श्लोकार्धम्, श्लोकः सम्पूर्णपद्यं च तद् गोचरा तद्विषया आवृत्तिः अभ्यासः प्रतिलोमत्वात् (विपरीतक्रमेण वर्णाभ्याससद्भावात्) प्रतिलोमम् इति स्मृतम् प्रतिलोमयमकनाम्ना उक्तम्। एवं च पादप्रतिलोमयमकम्, अर्धप्रतिलोमयमकम्, श्लोकप्रतिलोमयमकं चेति त्रयः प्रतिलोमयमकप्रकाराः॥ ७३॥

हिन्दी—इससे पहले जो यमकके प्रभेद कहे गये हैं उनमें अनुलोम आवृत्ति होती थी, अब प्रतिलोम आवृत्तिमूलक प्रतिलोम यमकका निरूपण करते हैं। प्रतिलोम—उल्टी वर्णावृत्ति होनेसे प्रतिलोमयमक नाम पड़ा है। यह तीन प्रकारका है, पादप्रतिलोमयमक, अर्धप्रतिलोमयमक एवं श्लोकप्रतिलोमयमक।

पादप्रतिलोमयमकमें पूर्वपादको उल्टा लिखकर दूसरा पाद बनाया जाता है, अर्धप्रतिलोमयमकमें पूर्वार्धको ही उलटा लिखकर उत्तरार्ध बनाया जाता है और श्लोकप्रतिलोमयमकमें एक श्लोकको उलटे क्रमसे लिखकर दूसरा श्लोक बना लिया जाता है। इन तीनोंके उदाहरण क्रमशः दिये जाते हैं॥ ७३॥

यामताश कृतायासा सा याता कृशता मया।
रमणारकता तेऽस्तु स्तुतेताकरणामर॥ ७४॥

पादप्रतिलोमयमकमुदाहरति—**यामताशेति**। अमते अनिष्टे परनायिकाप्रसङ्गे

१. यमकप्रति। २. लोम्यमिदं।

आशा यस्य सोऽमताशस्तत्संबोधने हे अमताश, या कृतायासा दुःखप्रदा कृशता विरह-प्रतीक्षादिकृता दुर्बलता सा मया याता प्राप्ता, (त्वद्विरहकष्टं मयानुभूतमेव), हे स्तुतेत अस्तुत्य, निन्द्याचरण, अकरणे अकार्यकरणे अमरवदप्रतिबन्ध = अकरणामर, हे रमण, ते तव आरकता इतो गन्तृत्वम् अस्तु। त्वमितो गच्छेति विवक्षा। अत्र प्रथमपादस्य विलोमावृत्त्या द्वितीयपादः, तृतीयपादस्य च विलोमावृत्त्या चतुर्थपादः संपाद्यत इति प्रति-लोमयमकमिदम्। तदपि च पादगतम् ॥ ७४ ॥

हिन्दी—अनिष्ट परनायिकाप्रसङ्गमें आशा रखनेवाले मेरे प्रिय, दुःखदायिनी विरहकृत दुर्बलता मैं पा चुकी (आपके वियोगमें प्रतीक्षामें जो कष्ट भोगने थे, मैंने भोग लिए), हे निन्द्य-चरित, अकार्य करनेमें देवोंकी तरह अप्रतिबन्ध मेरे रमण, अब आप यहाँ से चले जाइये।

अन्यनायिकासक्त नायकके प्रति नायिका फटकार बता रही है। इस उदाहरणश्लोकमें प्रथम चरणको उलटाकर दुहरा देनेसे द्वितीय चरण एवं तृतीय चरणको उलटाकर दुहरा देनेसे चरम चरण बन गया है, अतः यह पादगत प्रतिलोमयमकका उदाहरण हुआ ॥ ७४ ॥

नादिनोमदना धीः स्वा न मे काचन कामिता।
तामिका न च कामेन स्वाधीना दमनोदिना[2] ॥ ७५ ॥

श्लोकार्धप्रतिलोमयमकमुदाहरति—**नादिन इति**। नादिनः नादब्रह्मध्यानपरस्य मे मम साधकस्य अमदना कामविकारवर्जिता स्वा स्वीया धीः स्वाधीना आत्मवशा, अतः काचन कामिता विषयाभिलाषुकता न, अस्तीति शेषः, तथा दमनोदिना इन्द्रियनिग्रहा-पनयनक्षमेण कामेन विषयाभिलाषेण हेतुभूतेन तामिका ग्लानिः नास्ति। कस्यचिद्योगिनः स्वावस्थानिवेदनमिदम्। अत्र पूर्वार्द्धस्य विपरीतपाठेन द्वितीयार्धस्य निर्मितिरिति श्लोकार्ध-यमकमिदम्।

अत्रानुलोमपाठकाले मदनाधीः स्वा इत्यत्र धीपदोत्तरं विसर्गश्रुतिः, प्रतिलोमपाठकाले तु सा नास्तीति वैगुण्यं यमकेऽत्र दोषाय न जायते, 'नानुस्वारविसर्गौ च चित्रभङ्गाय सम्मतौ' इत्याचार्यैः स्वीकारात् ॥ ७५ ॥

हिन्दी—अनादहतनादस्वरूप ब्रह्मके ध्यानमें रत मुझ साधककी कामविकारशून्या अपनी बुद्धि अपने अधीन है, अतः किसी प्रकारकी विषयवासना नहीं होती है, और इन्द्रिय-निग्रहको दूर करनेवाली विषयतृष्णाके कारण ग्लानि भी नहीं होने पाती है। किसी साधक योगीका यह स्वावस्थानिवेदन है।

इसमें पूर्वार्द्धका प्रतिलोमाभ्यास करके उत्तरार्ध बना लिया गया है, अतः यह श्लोकार्ध प्रति-लोमयमकका उदाहरण हुआ ॥ ७५ ॥

यानमानयमाराविकशोनानजनाशना[3]।
यामुदारशताधीनामायामायमनादिसा ॥ ७६ ॥
सा दिनामयमायामा नाधीता शरदामुया।
नाशनाजनना[4] शोकविरामाय न मानया ॥ ७७ ॥

(इति यमकचक्रम्)

---

१. दमना। २. मदनोदिना। ३. जनासना। ४. नासना।

श्लोकगोचरं प्रतिलोमयमकमुदाहरति—यानमानेति। द्वाभ्यां श्लोकाभ्याम्, अनयोः श्लोकयोरर्थः सहैव भवतीति तदन्वयोऽपि सहैव, तत्रान्वयो यथा—उदारशताधीनां याम् आयाम् अमुया शरदा अधीता सा यानमानयमाराविकशा ऊनानजनाशना आयमनादिसा दिनामयमा अयामा नाशनाजनना मानया[1] शोकविरामाय न न। अयमर्थः—उदारशताधीनाम् बहुधनदायकजनगणवशगतामपि याम् गणिकाम् (सौभाग्यवशेन अहम्) अयाम् प्राप्तवान् , तथा या अमुया शरदा शरत्कालेन अधीता आक्रान्ता उत्पन्नमदना वियत इति शेषः, सा यानमानयमाराविकशा-याने कामिजनविजयप्रयाणे यो मानः अभिमानः तं यातीति यानमानयाः एतादृशो यो मारो मदनः स एव अविः मेषः तस्य कशा ताडनी—विजययात्रासाभिमानमदनवशीकारसमर्थेत्यर्थः, ऊनानजनाशना-ऊनः स्वल्पः अनः प्राणः सामर्थ्यं येषान्ते ऊनानाः स्वल्पसामर्थ्यशालिनः ये जनाः तान् अश्नाति सर्वस्वापहारद्वारा समापयति या सा तथोक्ता-स्वल्पप्राणतया चपलानां जनानां वित्तापहरणक्षमेत्यर्थः, आयमनादिसा-आयमनम् इन्द्रियनिग्रहः आदिर्येषां तेषाम् आयमनादिसमाधिसाधनानाम सा कृशताकारिणी—यमनियमादिविघ्नकरी, दिनामयमा दिनं दिवसमामयं रोगमिव मिमीते जानाति दिनं कामभोगपन्थितया रोगमिव मन्यमाना, अयामा-अयस्य शुभावहस्य विधेः अमतीति अमा आपिका प्राप्त्री शुभान्वितेत्यर्थः, नाशनाजनना-नाशनं कामिजनानां विनाशमाजनयतीति नाशनाजनना, मानया सत्कारगामिनी शोकविरामाय मदीयशोकसमापनाय न इति न, सा मम शोकमवश्यमपनुदेदिति भावः। कश्चित् कामी स्वोपभुक्तपूर्वां गणिकां स्तौति ॥ ७६–७७ ॥

हिन्दी—बहुतसे उदार पुरुषोंके वशमें रहनेवाली जिस गणिकाको मैंने सौभाग्यसे पा लिया था, जो शरद्की कामुकतासे आक्रान्त है, ऐसी वह कामिजनविषयप्रयाणमें साभिमान कामरूप भेंड़की चाबुकसमान-अपने अधीन रखनेवाली, चञ्चलचित्त जनोंके सर्वस्वका अपहरण करनेवाली, इन्द्रियनिग्रहादि समाधिसाधनोंको कृश बनानेवाली, दिनको कामोपभोगप्रतिपन्थितया रोग समझनेवाली, शुभान्विता, कामिजनोंके नाशको सम्पन्न करने वाली और सत्कारभागिनी वेश्यानायिका मेरे शोकको समाप्त न करे यह नहीं हो सकता है। श्लोक-द्वयग्रथित इस उदाहरणश्लोकमें एक श्लोक प्रतिलोमाभ्याससे श्लोकान्तरमें परिणत हो गया है, अतः यह श्लोकावृत्तिरूप प्रतिलोमयमक-प्रभेद है ॥ ७६–७७ ॥

वर्णानामेकरूपत्वं यत्त्वेकान्तरमर्धयोः।
गोमूत्रिकेति तत्[2] प्राहुर्दुष्करं तद्विदो यथा ॥ ७८ ॥

इयता प्रकरणेन दुष्करान् यमकालङ्कारप्रभेदान् निरूप्य अतिदुष्करान् चित्रालङ्कारान्निरूपयिष्यन् प्रथमं गोमूत्रिकाबन्धं लक्षयति—वर्णानामिति। अर्धयोः पूर्वार्धोत्तरार्धयोः (ऊर्ध्वाधःक्रमेण लिखितयोः) वर्णानाम् एकान्तरम् एकवर्णव्यवहितम् एकरूपत्वम् समानाक्षरत्वकृतमभिन्नत्वम् तत् तादृशवर्णरचनम् तद्विदः चित्रालङ्कारपण्डिताः 'गोमूत्रिका' इति प्राहुः कथयन्ति। तद्धि गोमूत्रिकारूपं चित्रकाव्यं दुष्करम् साधारणजनैर्निर्मातुमशक्यम्। इयं हि गोमूत्रिका त्रिधा—पादगोमूत्रिका, अर्धगोमूत्रिका, श्लोकगोमूत्रिका, च। तत्रेदमर्धगोमूत्रिकाया लक्षणम् ॥ ७८ ॥

---

१ मानेका। २ मम।

हिन्दी—इससे पहले दुष्कर यमकप्रभेदों के उदाहरणादि बताये गये हैं, अब अतिदुष्कर चित्रालङ्कारोंके उदाहरणादि बतानेके उपक्रममें गोमूत्रिकाका लक्षणादि बताया जाता है। जिसमें ऊर्ध्वाधः क्रमसे लिखे गये वर्णोंमें एकवर्णव्यवहित समानाकारता पाई जाय, उसे चित्रकाव्यके विशेषज्ञ विद्वान् अर्धगोमूत्रिका नामसे अभिहित करते हैं। यह गोमूत्रिकाचित्रप्रभेद अतिदुष्कर माना जाता है। यह गोमूत्रिका तीन प्रकारकी है—पादगोमूत्रिका, अर्धगोमूत्रिका और श्लोकगोमूत्रिका ॥ ७८ ॥

मदनो मदिराक्षीणामपाङ्गास्त्रो[1] जयेदयम् ।
मदेनो यदि तत्[2] क्षीणमनङ्गायाञ्जलिं ददे[3] ॥ ७९ ॥

अर्धगोमूत्रिकामुदाहरति—**मदन इति**। अयं मदनः कामः मदिराक्षीणाम् मदघूर्णितलोचनानां मदिरेव मादके नयने यासां तासामिति वा अपाङ्गः कटाक्षावलोकनमेवास्त्रं प्रहरणं यस्य तथोक्तः कामिनीजननयनप्रहरणः यदि जयेत् मामात्मवशगं कुर्यात्, तत् तदा मदेनः मदीयं पातकं क्षीणम् नष्टम् (इति मंस्ये), अहम् अनङ्गाय कामदेवाय अञ्जलिं ददे साञ्जलिः प्रणमामीत्यर्थः। विलासिन्यो यदि कटाक्षेण मां प्रहरेयुस्तदाऽहं कृती स्याम्, तथा भावश्च कन्दर्पकृपामात्रसाध्योऽतस्तामर्जयितुमहं कन्दर्पं प्रति प्रणतोऽस्मीत्याशयः ॥ ७९ ॥

हिन्दी—मदमत्त नेत्रशालिनी रमणियोंके कटाक्षरूप अस्त्रवाला कामदेव यदि मुझे जीत ले, रमणियोंके अधीन बना दे, तो मैं समझूंगा कि मेरे पाप क्षीण हो गये, इसी मनोरथसे मैं कन्दर्पको साञ्जलि नमस्कार किया करता हूं।

इस उदाहरणके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्धके विषम वर्ण समान हैं, इस अर्धगोमूत्रिका को पढ़नेका क्रम यह है कि इस श्लोकके उत्तरार्धका पहला अक्षर पहले पढ़ें, फिर पूर्वार्द्धका दूसरा अक्षर पढ़ें, अनन्तर उत्तरार्ध का तीसरा फिर पूर्वार्द्धका चतुर्थ अक्षर पढ़ें, इसी क्रमसे पढ़ते जानेपर पूर्वार्ध निकल जायगा, इसी प्रकार पूर्वार्ध प्रथमाक्षरके बाद द्वितीयार्धका द्वितीयाक्षर पढ़ें, फिर प्रथमार्धका तृतीयाक्षर अनन्तर द्वितीयार्धका चतुर्थ अक्षर पढ़ें, इसी प्रकार ऊर्ध्वाधःकोणस्थ अक्षरोंको पढ़ते जाने पर उत्तरार्ध भी निकल जायगा।

जिस उदाहरणमें समवर्णोंकी एकरूपता हो, उसमें पूर्वार्द्धके प्रथमाक्षर से ही पढ़ना प्रारम्भ करें, बादमें उत्तरार्धका द्वितीयाक्षर कहें, फिर पूर्वार्धका तृतीयाक्षर इसी तरह बदल कर पढ़ते जानेसे पूर्वार्ध और उत्तरार्धके प्रथमाक्षरसे प्रारम्भ करके बदल-बदलकर पढ़ते जानेपर उत्तरार्ध निकल जायगा। उदाहरण लीजिये—

'अजरामशुभाचारबलिशीलविनोचिता। भुजङ्गमनिभासारकलिकाब्जनोचिता ॥'

इस श्लोकके द्वितीयादि समवर्णोंमें एकरूपता है। यहाँ तक अर्धगोमूत्रिका का वर्णन हुआ।

पादगोमूत्रिकाका उदाहरण निम्नलिखित है—

'काङ्क्षन् पुलोमतनयास्तनताडितानि
वक्षःस्थलोत्थितरयाञ्चनपीडितानि।
मायादपायभयतो नमुचिप्रहारी
मायामपास्य भवतोऽम्बुमुचां प्रसारी ॥'

इस श्लोकको चार पङ्क्तियोंमें लिखिए, प्रथम द्वितीय चरणोंमें अर्धगोमूत्रिका-प्रकरणमें बताये गये क्रमसे अक्षर पढ़िये, प्रथम द्वितीय चरण निकल आयेंगे, उत्तरार्धमें भी अर्धगोमूत्रिकाकी ही तरह पढ़िये।

---

१. पाङ्गास्त्रं। २. च क्षीणम्। ३. दधे।

श्लोकगोमूत्रिकामें बारह पङ्क्तियोंवाला कोष्ठक बनता है, उनमें अक्षरन्यास करके अर्धगोमूत्रिकोक्त-क्रमद्वारा ही पढ़कर दोनों श्लोक निकाले जाते हैं। उदाहरणश्लोक यों है—

प्रथम श्लोक—पायाद्वश्चन्द्रधारी सकलसुरशिरोलीढपादारविन्दो
देव्या रुद्धाङ्गभागः पुरदनुजदवस्त्यानसंविन्निधानम्।
कन्दर्पक्षोददक्षः सरससुरवधूमण्डलीगीतगर्वो
दैत्याधीशान्धकेनानतचरणनखः शङ्करो भव्यभाव्यः॥

द्वितीय श्लोक—

देयान्नश्चण्डधामा सलिलहरकरो रूढकन्दारविन्दो
देहे रुग्भङ्गरागः सुरमनुजदमं त्यागसंपन्निधानम्।
मन्दं दिक्क्षोभदश्रीः सदसंदरवधूखण्डनागीरगम्यो
दैत्येधी बन्धहानावततरसनयः शंपरो दिव्यसेव्यः॥

गोमूत्रिका का बहुतसा विस्तार सरस्वतीकण्ठाभरणमें दिया गया है, वहाँ ही देखें। ऊपर दिये गये उदाहरणश्लोकोंके चित्र सामने (पृ. २५५ पर) देखें।

गोमूत्रिका नाम इसलिये रखा गया कि चलते हुए बैलके मूत्रपातसे जिस तरह भूमिपर बहुकोणयुक्त ऊपर नीचे रेखायें बनती जाती हैं, उसी तरहकी रेखाकृति इसमें भी बनाई जाती है ॥७९॥

प्राहुरर्धभ्रमं नाम श्लोकार्धभ्रमणं यदि।
तदिष्टं सर्वतोभद्रं भ्रमणं यदि सर्वतः ॥ ८० ॥

अर्धभ्रमं सर्वतोभद्रं च लक्षयति—**प्राहुरिति**। यदि श्लोकार्धभ्रमणं श्लोकस्य तत्पादानां वा अर्धमार्गेण भ्रमणं तदा अर्धभ्रमं नाम चित्रं प्राहुः, अनुलोमभ्रमणेन पादोपस्थितावर्धभ्रमो नाम चित्रभेद इति पूर्वार्द्धार्थः। यदि सर्वतः अनुलोमप्रतिलोमाभ्यां श्लोकपादानां भ्रमणं तदा तत् सर्वतोभद्रं नाम चित्रमिष्टं कविभिरिति शेषः ॥ ८० ॥

हिन्दी—इस कारिकामें अर्धभ्रम और सर्वतोभद्रनामक चित्रभेदोंके परिचय दिये गये हैं, अर्धभ्रम उसे कहते हैं जिसमें श्लोकका—बन्धाकारलिखित श्लोकपादका अर्धमार्गसे अर्थात् अनुलोमपाठ और प्रतिलोमपाठमें केवल अनुलोमपाठसे भ्रमण—भ्रमणद्वारा पादोत्थान होता हो।

सर्वतोभद्र उसे कहते हैं जिसमें सर्वतोभ्रमण—अर्थात् अनुलोमप्रतिलोम उभयविध भ्रमणसे पादोत्थान हो जाता हो। चित्रमें उदाहरण स्पष्ट है। इन दोनों चित्रोंमें वर्णसन्निवेशप्रकार यह होता है। यह बन्ध चौसठ कोष्ठोंमें लिखे जाते हैं, इनके लिये अष्टाक्षरवृत्त ही उपयुक्त हैं। आठ-आठ कोष्ठवाली आठ पङ्क्तियाँ बनाइये, उनके प्रथमपङ्क्तिचतुष्टयमें श्लोकके चारो चरण सीधे लिख लीजिये, इसके बाद नीचेकी चार पङ्क्तियोंमें चतुर्थ तृतीय द्वितीय प्रथम इस क्रमसे उन्हीं श्लोकचरणोंको लिखिये, इसी तरह दोनों बन्ध लिखे जायेंगे। अर्धभ्रमके अधःस्थित पङ्क्तिचतुष्टयमें लौटकर चतुर्थादिचरण लिखे जायेंगे, और सर्वतोभद्रमें लौट-लौटकर या बिना लौटे भी चतुर्थादिचरण लिखे जायँगे, यही अन्तर है। यह तो हुआ वर्णसन्निवेशप्रकार, इनका उद्धारप्रकार यह है कि अर्धभ्रममें ऊपरवाली पङ्क्तियोंमें वामभागसे दक्षिणभागकी ओर, और नीचेवाली पङ्क्तियोंमें दक्षिणभागसे वामभागकी ओर एवं वामभागके ऊपरवाले कोष्ठसे नीचे क्रमसे दक्षिणभागस्थ नीचेके कोष्ठसे ऊपर क्रमसे अनुलोमोच्चारण करते जानेसे प्रथमादि श्लोकचरण निकलते जाते हैं।

सर्वतोभद्रमें वामभागसे दक्षिणभागकी ओर अथवा दक्षिणभागसे वामभागकी ओर ऊपरसे नीचे अथवा नीचेसे ऊपर उलटा या सीधा किसी तरह आवर्त्तन करनेपर श्लोकके चरण निकलते जाते हैं। (अर्धभ्रम और सर्वतोभद्र चित्र पृ० २५६ पर देखें) ॥ ८० ॥

अ रा शु चा ब शी वि ध्वि
ज म भा र लि ल नो ता
भु ङ्गः नि सा क का ज ध्वि

श्लोक टीका ३।७९

कां न्पु म न स्त पी ता
क्ष लो त या न ह्रि नि
व स्थ च्छि र न्व पी ता
पा द य य न चि हा
या पा म तो मु प्र री
गा म स्य व न्तु चा सा

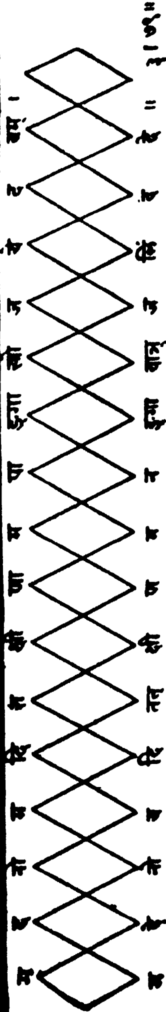
श्लोक टीका ३।७९

पा ह्र न्द्र री क सु शि ली पा र न्दो
या श्च धा स ल र रो व दा वि
दे त्र ण्ड भा लि ह क रू कं र न्दो
दे व्या त्ता भा पु द ज व न बि धा
हे रू ङ्गः ग र नु व स्त्वा स न्मि नम्
रम रा सु म ज मं ग प धा
कं र्प द क्षः र सु व म ली त र्वो
द लो द स स र धृ ण्ड गी गा
मं विक् म श्रीः द द व स्व ना र न्यो
न्या शा के न य ण रक्षः क भ भा
दै धी न्ध ना त र न शं रो न्य न्यः
त्यै व हा व त स क्षः प दि से

श्लोक टीका ३।७९

म	नो	भ	व	त	वा	नी	कं
नो	द	या	य	न	मा	नि	नी
भ	या	द	मे	या	मा	मा	वा
व	य	मे	नो	म	या	न	त
त	न	या	म	नो	मे	य	व
वा	मा	मा	या	मे	द	या	भ
नी	नि	मा	न	य	या	द	नो
कं	नी	वा	त	व	भ	नो	म

॥ अर्धभ्रमः ॥ श्लो. टी. ३।८०॥



॥ गोमूत्रिका ॥

सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा

॥ सर्वतो भद्रम् ॥ श्लो. टी. ३।८०॥

मंनोभव तवानीकं नोदयाय न मानिनी।
भयादमेयामा मा वा वयमेनोमया नत ॥ ८१ ॥

अर्धभ्रमसुदाहरति—हे नत कामिवन्दनीय, मनोभव मदन, तव अनीकम् सैन्यस्वरूपा मानिनी इयं प्रहिला नायिका उदयाय न इति न, अवश्यमेव विजयसाधनमियमिति भावः। वयम् एनोमयाः कृतापराधतया पापिनः मा वा नैव, न वयमपराद्धाः, परन्तु भयात् त्वदीयमानिनीरूपसेनाभयात् अमेयामाः अपरिमितपीडायुक्ताः, (अतः इमां मद्वशवर्त्तिनीं कुरुष्वेति योज्यम्) ॥ ८१ ॥

हिन्दी—हे कामिजनवन्दित कामदेव, तुम्हारी यह कामिनी स्वरूपसेना उदयके लिए नहीं होगी यह बात नहीं है, मैंने कुछ भी अपराध नहीं किया है, फिर भी भयसे अपरिमित पीड़ाका पात्र हो रहा हूँ, (अतः इस मानिनीको मेरे वशमें कर दो जिससे निर्भय तथा सुखी होकर रह सकूँ) ॥ ८१ ॥

सामायामा माया मासा मारानायायाना रामा।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥ ८२ ॥

सर्वतोभद्रमुदाहरति—**सामायामेति**। आमस्य विरहज्वरस्य आयामो दैर्ध्यं यस्याः सा तथोक्ता, मायाः लक्ष्म्याः अपेक्षया रामा रमणीया, मारानायायाना—मारं काममानयति जनयतीति मारानायं तादृशमायानम् समागमनं यस्यास्तादृशी, यानावारारावानाया—यानं गमनसाधनं पादस्तमावृणोति वेष्टयतीति यानावारो नूपुरस्तस्याराबो ध्वनिः स एव आनायः कामिजनबन्धकं जालकं यस्याः सा तथोक्ता, मायारामा शाम्बरीसृष्टिरूपा ललना अतिविस्मयकारिसौन्दर्यतया मायामयीव प्रतीयमाना रमणी मासा चन्द्रेण अमा सह माराय मम वधाय अस्तीति शेषः। कश्चित् सखायं प्रति कस्यापि कामिनः स्वावस्थाविनिवेदनमिदम्। मास्शब्दः चन्द्रपरः, 'मास्तु मासे निशाकरे' इति हेमचन्द्रकोषात् ॥ ८२ ॥

हिन्दी—विरहज्वरके विस्तारसे पीड़िता, कामोत्पादक आगमनवाली, लक्ष्मीसे भी अधिक सुन्दरी, नूपुरध्वनिरूप जालमें कामियोंको बाँधनेवाली, मायामयी वह सुन्दरी चन्द्रमाके साथ मेरे वधके लिये उद्यत है। सर्वतोभद्रका यह उदाहरण संलग्नचित्रमें अंकित क्रमसे लिखा गया है, वहाँ देखकर उद्धारक्रमसे मिला लें।

इस प्रकारके और बहुतसे पद्मबन्ध, मुरजबन्ध, हलबन्ध, मुसलबन्ध आदि चित्रकाव्य होते हैं, उनका निर्माण और उद्धार इतना कठिन नहीं है, अतः कठिनतम अर्धभ्रम और सर्वतोभद्रके ही उदाहरण यहाँ दिये गये हैं, शेष बन्धोंके उदाहरणादि सरस्वतीकण्ठाभरणमें देखें ॥ ८२ ॥

यः स्वरस्थानवर्णानां नियमो दुष्करेष्वसौ।
इष्टश्चतुष्प्रभृत्येषं दर्श्यते सुकरः परः ॥ ८३ ॥

सम्प्रति प्राचीनाभिमतान् स्वरस्थानवर्णनियमेन वैचित्र्यशालिनः शब्दालङ्कारानवतारयति—**यः स्वरस्थानेति**। स्वराः आकारादयः, स्थानानि कण्ठादीनि, तात्स्थ्यात्तदुद्भवानि अक्षराणि गृह्यन्ते, वर्णाश्च व्यञ्जनाक्षराणि, तेषां स्वरस्थानवर्णानाम् यः नियमः नियन्त्रणम्—अनेनैव एभिरेव वा स्वरेण स्वरैर्वा, एतत्स्थानाक्षरैर्वा, एतद्व्यञ्जनैर्वा समस्तं

१. मानोभव। २. प्रभृत्येषु। ३. दृश्यते।

पद्यं ग्रथनीयमित्येवंरूपो यो नियम इत्यर्थः, दुष्करेषु कविकर्मसु इष्टः अभिमतः, एषः चतुः-प्रभृति चतुरादि, चतुःस्वरः, त्रिस्वरः, द्विस्वरः, एकस्वरः तथा चतुःस्थानः, त्रिस्थानः, द्विस्थानः, एकस्थानः, एवमेव चतुर्वर्णः, त्रिवर्णः, द्विवर्णः, एकवर्णः, एतादृशो स्वरस्थानवर्ण-नियमो दर्श्यते उदाहरणप्रदर्शनेन विशद्यते, परः पञ्चषस्वरस्थानवर्णनियमस्तु सुकरः सुसम्पादः, अतो नात्र प्रदर्श्यते इति भावः ॥ ८३ ॥

हिन्दी—प्राचीन आचार्योंने स्वरस्थानवर्णनियमकृत वैचित्र्यमूलक भी कुछ शब्दालङ्कार स्वीकार किये हैं, उनको कष्टसम्पाद्य कहा है, उन स्वरस्थानवर्णनियममूलक कष्टसम्पाद्य शब्दा-लङ्कारोंमें यहाँ चार स्वर चार स्थान तथा चार वर्ण नियमवाले अलङ्कारों के ही उदाहरणादि बता रहे हैं, पाँच छः स्वरस्थानवर्णनियमवाले शब्दालङ्कार सुखसम्पाद्य हैं, अतः उनका उदाहरण नहीं दिया जाता है। चतुःप्रभृति का अर्थ है चार स्वरनियम, तीन स्वरनियम, दो स्वरनियम, एक स्वरनियम, (स्वरनियमके चार भेद) चार स्थाननियम, तीन स्थाननियम, दो स्थान-नियम, एक स्थाननियम, (स्थाननियमके चार भेद) चार वर्णनियम, तीन वर्णनियम, दो वर्णनियम, एक वर्णनियम (वर्णनियमके चार भेद) ॥ ८३ ॥

अम्नायानामाहान्त्या वाग्गीतीरीतीः प्रीतीर्भीतीः ।
भोगो रोगो मोदो मोहो[1] ध्येये[2] वेच्छेद्देशे क्षेमे ॥ ८४ ॥

चतुःस्वरनियममुदाहरति—**आम्नायानामिति** । आम्नायानां वेदानाम् अन्त्या अवसानभवा वाग् उपनिषत्—गीतीः गानानि ईतीः अतिवृष्ट्यादितुल्याः मोक्षप्रति-बन्धिकाः, प्रीतीः पुत्राद्यासक्तीः भीतीः भयस्वरूपाः, आह कथयति । किञ्च भोगो विषयो-पभोगः (पर्यन्ते) रोगः सन्तापप्रदः, मोदः सांसारिकसुखास्वादश्च मोहः अविवेकरूपः, अतः ध्येये ध्यातुं योग्ये भगवच्चरणे वा एव क्षेमे निरुपद्रवे देशे एकान्तस्थाने इच्छेत् ध्यातुमभिलष्येदित्यर्थः । अत्र आ–ई–ओ–ए इति चतुर्भिरेव स्वरैः पद्यमुपनिबद्धमिति स्वरनियमे चतुःस्वरनियमोदाहरणमिदम् ॥ ८४ ॥

हिन्दी—वेदोंके अन्तभाग उपनिषद्ने गीत को ईति—विघ्नबाधारूप, पुत्राद्यासक्तिको भीति-स्वरूप कहा है और भोग अन्तमें रोगरूप, सांसारिक सुखास्वाद अविवेकस्वरूप सिद्ध होते हैं अतः ध्यान करने योग्य हरिचरणोंको एकान्त स्थानमें ध्यान करें ।

इस उदाहरणमें आ–ई–ओ–ए यही केवल चार स्वर व्यवहृत हुए हैं, अतः यह स्वरनियम-प्रभेदमें चतुःस्वरनियमका उदाहरण हुआ ॥ ८४ ॥

क्षितिविजितिस्थितिविहितिव्रतरतयः परमतय[3]ः ।
उरु रुरुधुर्गुरु दुधुवुर्युधि कुरवः स्वमरिकुलम् ॥ ८५ ॥

त्रिस्वरनियममुदाहरति—**क्षितीति** । क्षितेः पृथिव्याः विजितिः स्ववशीकरणम्, स्थितेः मर्यादायाः विहितिः प्रतिष्ठापनम्, एतदेव व्रतं नियमस्तत्र रतिरनुरागो येषां ते तथोक्ताः, परमतयः उत्कृष्टबुद्धयः कुरवः पाण्डवाः युधि समरे उरु विशालं स्वम् स्वीयम् अरिकुलम् शत्रुवर्गम् दुर्योधनादिकम् रुरुधुः परिवव्रुः, तथा गुरु सातिशयं दुधुवुः कम्पयामासुः । अत्र इ–अ–उ–स्वरूपास्त्रय एव स्वरा उपात्ताः ॥ ८५ ॥

---

१. वेदे । २. ध्येयो देशे । ३. मतयः ।

हिन्दी—पृथ्वी-विजय और मर्यादाकी रक्षास्वरूप व्रतमें अनुराग रखनेवाले और उत्कृष्ट-बुद्धि पाण्डवोंने विशाल दुर्योधनादि शत्रुवर्गको घेर लिया और सम्मुख युद्धमें अतिशय कम्पित कर दिया।

इस उदाहरणश्लोकमें इ-अ-उ नामक तीन ही स्वर लिये गये हैं, अतः यह त्रिस्वरनियमका उदाहरण है ॥ ८५ ॥

श्रीदीप्ती ह्रीकीर्ती धीनीती गीःप्रीती ।
एधेते[1] द्वे द्वे ते ये नेमे देवेशे ॥ ८६ ॥

द्विस्वरनियममुदाहरति—**श्रीदीप्ती इति**। कश्चित्सत्पुरुषः प्रशस्यते। ये द्वे द्वे इमे देवेशे इन्द्रे अपि न (स्तः), ते श्रीदीप्ती लक्ष्मीकान्ती, ह्रीकीर्ती लज्जायशसी, धीनीती बुद्धिनयौ, गीःप्रीती वाग्मित्वसन्तोषौ, त्वयि राजनि एधेते निरन्तरोपचीयमानतया वर्तेते इत्यर्थः। अत्र ई-ए-स्वरूपौ द्वावेव स्वरौ निबद्धौ ॥ ८६ ॥

हिन्दी—जो श्री दीप्ति-धन और कान्ति, लज्जाशीलता और कीर्त्ति, बुद्धिमत्ता और नीति-परायणता, एवं वाग्मिता तथा सन्तोष आपमें वृद्धि पा रहे हैं, उस तरह की वह चीजें इन्द्रमें भी नहीं हैं।

इसमें ई-ए रूप दो ही स्वर निबद्ध हुए हैं ॥ ८६ ॥

समायामा माया मासा मारानायायाना रामा ।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥ ८७ ॥

एकस्वरमुदाहरति—**सामायामेति**। श्लोकोऽयं सर्वतोभद्रोदाहरणप्रस्तावेऽनुपदमेव व्याख्यातः। अत्र 'आ' रूप एकः स्वरो निबद्धः ॥ ८७ ॥

हिन्दी—इस श्लोकका अर्थ सर्वतोभद्रोदाहरणप्रकरणमें कर दिया गया है, वहीं देख लें। इसमें एकमात्र स्वर-आ-का उपादान हुआ है, यही एकस्वर नियम है ॥ ८७ ॥

नयनानन्दजनने नक्षत्रगणशालिनि[2] ।
अघने गगने दृष्टिरङ्गने दीयतां सकृत् ॥ ८८ ॥

स्थाननियमप्रस्तावे चतुःस्थाननियममुदाहरति—**नयनानन्देति**। हे अङ्गने प्रशस्त-सर्वावयवे, नयनानन्दजनने नेत्रप्रीतिकरे, नक्षत्रगणशालिनि तारकावयभूषिते अघने मेघशून्ये गगने वियति सकृत एकवारं दृष्टिः दीयताम्। मेघवर्जितं निर्मलं व्योम वीक्षमाणा मानं जहिहीति भावः। अत्र कण्ठदन्ततालुनासिकारूपस्थानचतुष्टयभवा एव वर्णा निबद्धा इति चतुःस्थाननियमोदाहरणमिदम् ॥ ८८ ॥

हिन्दी—हे सुन्दरि, आँखोंको तृप्त करनेवाले, नक्षत्रमण्डलसे भूषित, निर्मेघ इस आकाशकी ओर तो एक बार देखो। इस निर्मल आकाशकी ओर देखो और अपना यह मान छोड़ो।

इस उदाहरणमें कण्ठदन्ततालुनासिकारूप चार ही स्थानमें उच्चरित होने वाले वर्ण निबद्ध किये गये हैं, अतः यह चतुःस्थाननियमस्वरूप चित्रप्रभेदका उदाहरण है ॥ ८८ ॥

अलिनीलालकलतं[3] कं न हन्ति घनस्तनि ।
आननं नलिनच्छायनं शशिकान्ति ते ॥ ८९ ॥

१. एवैते। २. चन्द्रनक्षत्रमायिनि। ३. युतं।

त्रिस्थाननियममुदाहरति—**अलिनीलेति**। हे घनस्तनि कठोरकुचमण्डले, अलिनीला भ्रमरश्यामा अलकलता केशपाशो यत्र तत् तथोक्तम्, नलिनच्छायं कमलतुल्यं नयनं यत्र तत्तादृशञ्च शशिकान्ति चन्द्रोपमं ते तव आननं मुखं कं न हन्ति मदनव्यथया कदर्थयति ? सर्वमपि पुमांसं पीडयतीत्यर्थः। अत्र कण्ठ्यदन्त्यतालव्या एव वर्णा निबद्धा इति त्रिस्वरनियमोऽयम् ॥ ८९ ॥

हिन्दी—हे कठोरस्तनि, भ्रमरके समान काले अलकोंसे वेष्टित, कमलोपम नयनों वाला और चन्द्रमाके समान मनोहर यह तुम्हारा मुख किस पुरुषको पीडित नहीं करता है।

इस उदाहरणश्लोकमें कण्ठतालुदन्तरूप तीन ही स्थानोंमें उत्पन्न वर्ण विन्यस्त हुए हैं, अतः यह त्रिस्थाननियमका उदाहरण हुआ ॥ ८९ ॥

अनङ्गलङ्घनालग्ननानातङ्का सदङ्गना।
सदानघ सदानन्द[1] नताङ्गासङ्गसङ्गत[2] ॥ ९० ॥

द्विस्थाननियममुदाहरति—**अनङ्गेति**। हे सदानघ, सर्वदा निष्पाप, सदानन्द सतामानन्दो यस्मात्तादृश सज्जनप्रिय नताङ्ग नतानि नम्राणि अङ्गानि यस्य तादृश, असङ्गसङ्गत विषयानासक्तजनप्रिय, (सा त्वदीया) सदङ्गना सती स्त्री अनङ्गलङ्घनेन कामानुपभोगेन लग्नाः संजाताः नानातङ्काः विविधाः व्यथाः तस्याः तादृशी कामानुपभोगजनितविविधयातना (सञ्जाताऽस्ति, अतस्तां स्वसङ्गमेन प्रसादयेति भावः)। अत्र केवलं कण्ठ्यदन्त्यावेव वर्णौ निबद्धाविति द्विस्थाननियमोदाहरणमिदत् ॥ ९० ॥

हिन्दी—हे सदा निष्पाप, सज्जनोंके प्रिय, नतशरीर, विषयानासक्तजनप्रिय, वह तुम्हारी सती स्त्री कामानुपभोगसे नानाप्रकारकी यातनायें भुगत रही है (अतः कृपाकर उससे मिल लो)।

इस श्लोकमें केवल कण्ठ्य तथा दन्त्य ही वर्ण निबद्ध हुए हैं, अतः यह द्विस्थाननियमका उदाहरण हुआ ॥ ९० ॥

अगा गाङ्गाङ्गकाकाकगाहकाघककाकहा।
अहाहाङ्क[3] खगाङ्कागकङ्कागखगकाकक[4] ॥ ९१ ॥

एकस्थाननियममुदाहरति—**अगा इति**। अयमन्वयः—(हे) गाङ्गकाकाकगाहक अहाहाङ्क खगाङ्कागकङ्क अखखगकाकक (त्वम्) अघककाकहा गाम् अगाः।

गङ्गाया इदं गाङ्गं कं जलम् तस्य गाङ्गकस्य—आकायति शब्दायते इत्याकः अकति कुटिलं गच्छतीति अकः-आकश्चासावकः आकाकः सशब्दतिर्यक्प्रवाहः तं गाहते इति गाङ्गकाकाकगाहक = गङ्गाप्रवाहस्नानपरायण, हाहाङ्कः संसारक्लेशेन हाहाशब्दपरस्तादृशो न भवतीति अहाहाङ्क = संसारकष्टवर्जित, खगाङ्कागकङ्क—खगः आकाशचारी सूर्यः अङ्को यस्य तादृशोऽगः पर्वतः सुमेरुस्तत्र कङ्कति गच्छतीति खगाङ्कागकङ्क = सुमेरुपर्यन्तगामिन्, अगखगकाकक—अगन्ति कुटिलं गच्छन्ति तानि अगानि कुटिलगतीनि यानि खानि इन्द्रियाणि तान्येव अगखकानि तेषु न कक अकक अलोल अवशीभूत-अगखकाकक कुटिलेन्द्रियावशीभूत, (त्वम्) अघककाकहा—अघमेवाधकं तदेव काकः तं जहातीति

१. नन्दिन्नताङ्ग। २. सङ्गतः। ३. अहाहाङ्ग। ४. काङ्का। ५. काककः।

अघककाकहा = सर्वविधपापरूपकाकपरिहर्ता सन् गाम् भुवम् अगाः आगतः। अत्र केवल-कण्ठ्यवर्णविन्यासादेकस्थाननियमोदाहरणमिदम् ॥ ९१ ॥

हिन्दी—गङ्गाके जलके सशब्द तिर्यक् प्रवाहमें स्नान करनेवाले, संसारतापकृत हाहाशब्दसे अपरिचित, सुमेरुपर्वतपर्यन्त गमनसमर्थ, कुटिल इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहनेवाले, आप पापरूप कार्कोंके परिहर्त्ता बनकर इस धराधाममें आये। इस उदाहरणश्लोकमें केवल कण्ठ्यवर्ण ही निबद्ध हुए हैं, अतः एकस्थाननियम हुआ ॥ ९१ ॥

रे रे रोरुरुरोरुगागोगोगाङ्गगागगुः।
किं केकाकाकुकः काको मा मामामाममामम ॥ ९२ ॥

चतुर्वर्णनियममुदाहरति—रे रे इति। काञ्चित्सुन्दरीमभिलषन्तं कञ्चिद् व्याधपुत्रं प्रति तस्याः सुन्दर्याः प्रत्याख्यानोक्तिरियम्, रे रे मा मम मायां लक्ष्म्यां मम ममत्वं यस्य तत्संबोधने हे मामम लक्ष्मीलोभिन, त्वं माम् मा मा अम न आगच्छ (निषेध-दृढतायां मापदद्विरुक्तिः) यतः काकः किं केकाकाकुकः केका मयूरवाणी सा काकुर्भेद-जनिती ध्वनिः शब्दो यस्य तथोक्तः भवति? यथा काको मयूरवाणी नाधिकुरुते तथैव तवापि मत्समीपागमनाधिकारो नास्तीति भावः। रोरूयते इति रोरुः सशब्दो यो रुरु-मृगः सः रोरुरुः तस्य उरसः वक्षसो या रुक् शरपातजनिता व्यथा सा रोरुरुरोरुक् सैव आगः अपराधो यस्य तथाभुत रोरुरुरोरुगागः, अगाङ्गगः पर्वतैकभागस्थितः असभ्य इत्यर्थः, तथा अगगुः अगा अचला गौर्वाणी यस्य तादृशः अचतुरवचनः असि, एभि-र्विशेषणैस्तस्य सुन्दरीसमीपोपसरणायोग्यता ध्वनिता। अत्र रेफगकारककारमकाररूपवर्ण-चतुष्टयनियमः, ङकारस्तु पद्यपूरकत्वाभावाद् वर्णत्वेनात्र न गृह्यते पद्यपूरकवर्णानामेवात्र वर्णपदग्राह्यत्वात् ॥ ९२ ॥

हिन्दी—अरे मामम—लक्ष्मी लोभवाले, तुम मेरे समीप नहीं आना, क्या काकको कभी मयूरकी वाणीका सौभाग्य प्राप्त हो सकता है? तुम सशब्दरुरु मृगके वक्षोदेशमें बाणव्यथा पहुँचाने के अपराधी हो, पर्वतमें एकभागपर रहनेसे असभ्य तथा वाणीचातुर्यशून्य हो, (अतः तुमको मेरे पास आनेका क्या अधिकार है?)

इस उदाहरणश्लोकमें रेफ-ग-क-म रूप चार वर्णोंसे ही काम चलाया गया है, अतः यह चतुर्वर्णनियमका उदाहरण है।

यद्यपि ङ भी सुना जाता है परन्तु वह यहाँ वर्ण नहीं माना जायगा, क्योंकि पद्यपूरक वर्ण ही वर्ण कहे जाते हैं, वह यहाँ पद्यपूरक नहीं है, सन्धिज है ॥ ९२ ॥

देवानां नन्दनो देवो नोदनो वेदनिन्दिनः।
दिवं दुदाव नादेन दाने दानवनन्दिनः ॥ ९३ ॥

त्रिवर्णनियममुदाहरति—देव इति। देवानां नन्दनः आनन्दकरः, वेदनिन्दिनां वेद-मार्गदूषकाणां दैत्यानां नोदनः निवारकः देवो नरसिंहवपुर्भगवान् दानवनन्दिनः राक्षसा-नन्दजननस्य हिरण्यकशिपोः दाने खण्डने विदारणे नादेन सिंहनादेन दिवम् आकाशं दुदाव तापयामास क्षोभयामास। अत्र दवन इति वर्णत्रयनियमः। 'दानवदन्तिनः' इति पाठे तु तकारश्चतुर्थः स्यात्तश्च त्रिवर्णनियमोदाहरणतैव समाप्येत ॥ ९३ ॥

१. गोगगुः। २. मा मा मामम मामम। ३. देवनिन्दिनाम्। ४. दानव। ५. दन्तिनः।

हिन्दी—देवगणको प्रसन्न करनेवाले एवं वेदमार्गकी निन्दा करनेवाले राक्षसोंके निवारक देव नरसिंह ने राक्षसोंके आनन्ददाता हिरण्यकशिपुका खण्डन करते समय अपने सिंहनादसे आकाशको कँपा दिया। इस उदाहरणश्लोकमें 'द व न' इन तीन वर्णोका ही प्रयोग है, अतः यह त्रवर्णनियम हुआ' ॥ ९३ ॥

सूरिः सुरासुरासारिसारः सारसंसारसाः।
ससार सरसीः सारी[1] ससूरुः स सुरारसी ॥ ९४ ॥

द्विवर्णनियममुदाहरति—**सूरिरिति**। सूरिः पण्डितः सुरेषु असुरेषु च आसारी प्रसरणशीलः सारो बलं यस्य तथोक्तः, ससूरुः सु शोभनौ ऊरू यस्याः सा सूरुः रेवतीनाम बलप्रिया तया सहितः ससूरुः रेवतीसहितः, सुरारसी मद्यरसिकः सः सीरी बलभद्रः सारस-सारसाः शब्दायमानसारसपक्षियुताः सरसीः सरांसि ससार विहाराय जगाम। अत्र स-रेफाभ्यामेव निर्वाह इति द्विवर्णनियमः ॥ ९४ ॥

हिन्दी—सूरि-विद्वान्, सुरों तथा असुरों पर प्रसरणशीलपराक्रमशाली, सुन्दरी रेवतीके साथ मद्यपानरसिक बलभद्र सशब्दसारसपक्षिभूषित सरोवरोंमें जलक्रीड़ा करने चले। इस उदाहरणमें सकार और रेफ रूप दो वर्णोंसे ही निर्वाह किया गया है, अतः इसे द्विवर्णनियम कहते हैं ॥ ९४ ॥

नूनं नुन्नानि नानेन नाननेनाननानि नः।
नानेना नन्नु नानूनेनैनेनानानिनो निनीः ॥ ९५ ॥

(इति चित्रचक्रम्)

एकवर्णनियममुदाहरति—**नूनमिति**। अत्रान्वयो यथा—अनेन अननेन नः अननानि न नुन्नानि न, अनूनेन एनेन अनानिनीः इनः ना अनेनाः न।

अनेन युद्धे प्रत्यक्षबलेन राज्ञा अननेन स्वसामर्थ्येन नः अस्माकम् अननानि सामर्थ्यानि न नुन्नानि समापितानि इति न, अवश्यं समापितानीत्यर्थः। अनूनेन एनेन अधिकबलशालीना अनेन विजेत्रा अनान् बलवतः स्वजनानस्मान् निनीः युद्धे योजयितुमिच्छुः इनः अस्माकं प्रभुः ना पुरुषः अनेनाः निरपराधः नास्तीति शेषः। अधिकबलेनानेन विजयिना साधारणबलानस्मान् युद्धे संगमयन्नस्मत्स्वामी निरपराधो न भवतीति भाव। अत्र केवलेन नकारेण निबन्धादेकवर्णनियमो बोध्यः ॥ ९५ ॥

हिन्दी—इस बहादुर राजाने अपने पराक्रमसे हमारे पराक्रमको प्रतिक्षिप्त कर दिया है, यह बात अवश्य है, इस विषयमें अधिक बलशाली इस वीरके साथ अल्प बलवाले हम लोगोंको भिड़ा देनेवाले हमारे स्वामी निरपराध नहीं हैं।

इस श्लोकमें एकमात्र वर्ण नकार ही प्रयुक्त हुआ है, अतः इसे एकवर्णनियम कहते हैं ॥ ९५ ॥

इति दुष्करमार्गेऽपि कश्चिदादर्शितः क्रमः।
प्रहेलिकाप्रकाराणां पुनरुद्दिश्यते गतिः ॥ ९६ ॥

इदानीं चित्रचक्रमुपसंहरन् प्रहेलिकाचक्रमवतारयति—**इतीति**। इति अनेन रूपेण दुष्करमार्गे स्वरस्थानवर्णनियमरूपे कठिने कविकर्मणि कश्चित् अल्पमात्रः क्रमः प्रकारो दर्शितः, पुनः प्रहेलिकायाः प्रकाराणां गतिः लक्षणादि उद्दिश्यते प्रकाश्यते। प्रहेलिका-

---

१. असार। २. सीरो। ३. नाननिनां। ४. मार्गस्य।

सामान्यलक्षणम्—'प्रहेलिका तु सा ज्ञेया वचः संवृतकारि यत्'। विशेषप्रकाराणां लक्षणानि पुरो यथावसरं निर्देक्ष्यन्ते ॥ ९६ ॥

हिन्दी—इस प्रकार दुष्करमार्ग—स्वर स्थान वर्ण नियमरूप कष्टसाध्य चित्रालङ्कारके कुछ उदाहरणादि दिखलाये गये, अब आगे प्रहेलिकाके प्रकारोंका लक्षणादि दिखलाया जाता है।

क्रमस्थ सर्वव्यञ्जन, छन्दोऽक्षरव्यञ्जन, मुरजाक्षरव्यञ्जन, दीर्घैकस्वर आदि और पद्मबन्ध, मुसलबन्ध, हलबन्ध, खड्गबन्ध आदि का उल्लेख इस ग्रन्थमें केवल विस्तारभयसे नहीं किया गया है, इसी बातको व्यञ्जित करनेके लिये 'कश्चिदादर्शितः क्रमः' कहा है।

प्रहेलिकाका सामान्य लक्षण है—'जिसमें कुछ छिपा कर कहा जाय' इसका प्रख्यात नाम पहेली है, जो अतिप्रसिद्धार्थ है ॥ ९६ ॥

क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः ॥ ९७ ॥

प्रहेलिकाप्रयोजनान्युपदिशति—**क्रीडेति**। क्रीडार्थं या गोष्ठी सभा तत्र ये विनोदाः विचित्रवाग्व्यवहारजनितप्रमोदाः तेषु, तथा तज्ज्ञैः प्रहेलिकाप्रकारज्ञैः आकीर्णे नानाजनव्याप्ते समाजे परस्परं यन्मन्त्रणं गुप्तभाषणं तत्र, तथा परव्यामोहने अभिमतार्थबोधनवैफल्यसंपादने च प्रहेलिकाः सोपयोगाः उपयुक्ताः भवन्तीति शेषः। इयं प्रहेलिका प्रोक्तत्रिविधप्रयोजनशालितया नोपेक्षास्पदमिति भावः ॥ ९७ ॥

हिन्दी—प्रहेलिका रसके आस्वादमें परिपन्थी होनेके कारण अलङ्कार नहीं है, तथापि आमोदगोष्ठीमें विचित्र तरहके वाग्व्यवहारोंसे मनोविनोदमें, लोगोंसे भरी भीड़में, गुप्तभाषण करनेमें तथा दूसरोंको अर्थानभिज्ञ बनाकर उपहासपात्र बना देनेमें इसका उपयोग होता है, अतः इसका निरूपण निरर्थक नहीं है ॥ ९७ ॥

आहुः समागतां[1] नाम गूढार्थां पदसन्धिना।
वञ्चितान्यत्र रूढेन यत्र शब्देन वञ्चना[2] ॥ ९८ ॥

अथ प्रहेलिकाप्रभेदानुद्दिशति—**आहुरिति**। पदसन्धिना पदानां परस्परसन्धिना गूढार्थां दुर्बोधार्थां प्रहेलिकाम् समागतां नाम आहुः, तथाऽन्यत्र विवक्षितार्थादन्यस्मिन्नर्थे रूढेन प्रसिद्धेन पदेन यत्र वञ्चना परप्रतारणा क्रियते सा वञ्चिता नाम प्रहेलिका कथ्यते इति शेषः ॥ ९८ ॥

हिन्दी—जिस प्रहेलिकामें पदोंमें सन्धि हो जानेसे विवक्षित अर्थ गूढ़ हो जाय, छिप जाय उसे समागता नामक प्रहेलिका कहते हैं, और जहाँ पर योगसे विवक्षितार्थका बोध होता हो परन्तु रूढ़िके द्वारा परवञ्चना की जाय उसे वञ्चिता नामक पहेली कहते हैं ॥ ९८ ॥

व्युत्क्रान्तातिव्यवहितप्रयोगान्मोहकारिणी।
सा स्यात्प्रमुषिता यस्यां दुर्बोधार्था पदावली[3] ॥ ९९ ॥

व्युत्क्रान्तेति। यदि व्यवहितप्रयोगात् असंबद्धपदैर्व्यवहितानां संबन्धिपदानां प्रयोगात् मोहकारिणी अर्थावबोधे क्लेशदायिनी तदा सा व्युत्क्रान्ता नाम, यस्यां पदावली सर्वाण्यपि पदानि प्रायः दुर्बोधार्था कठिना सा प्रमुषिता स्यात् ॥ ९९ ॥

१. समाहिताम्। २. वञ्चनम्। ३. वलिः।

हिन्दी—जो प्रहेलिका असंबद्ध पदोंसे व्यवहित संबद्ध पद होनेके कारण अर्थज्ञानमें कठिनाई उत्पन्न करती हो उसे व्युत्क्रान्ता नामसे कहते हैं, और जिस प्रहेलिकाके पदसमुदाय दुर्बोधार्थ-कठिनाईसे जाननेयोग्य अर्थवाले-हों, उसे प्रमुषिता नामक प्रहेलिका कहा जाता है।

वञ्चिता नामकी प्रहेलिकामें एक पद दुर्बोधार्थ होता है, इसमें पदसमुदाय दुर्बोध होता है, वञ्चितामें नानार्थक पदका अप्रसिद्ध अर्थमें प्रयोग होता है, यहाँ पर एकार्थक शब्द ही अप्रसिद्ध रहता है, यही वञ्चिता और प्रमुषितामें अन्तर है ॥ ९९ ॥

समानरूपा[1] गौणार्थारोपितैर्ग्रथिता[2] पदैः ।
परुषा लक्षणास्तित्वमात्रव्युत्पादितश्रुतिः ॥ १०० ॥

समानेति। गौणार्थेन लाक्षणिकार्थेन आरोपितैः उपचरितैः पदैः ग्रथिता समानरूपा नाम प्रहेलिका भवति। लक्षणस्य शास्त्रीयनियमस्य अस्तित्वमात्रेण प्रवृत्त्या व्युत्पादिता श्रुतिः शब्दो यत्र सा परुषा नाम। यत्र शास्त्रीयसूत्रप्रवृत्तिमात्रेणैवार्थो बोधनीयो न प्रसिद्ध्या; सा परुषा नाम प्रहेलिका भवतीति भावः ॥ १०० ॥

हिन्दी—जो प्रहेलिका गौणार्थमें उपचरित पदोंसे ग्रथित हो उसे सादृश्यमूलक होनेसे समानरूपा नामक प्रहेलिका माना जाता है, और जिस प्रहेलिकामें शास्त्रीय सूत्रोंसे सिद्ध होने पर भी उसका वह योगार्थ अप्रसिद्ध हो उसे परुषा नामक प्रहेलिका कहते हैं ॥ १०० ॥

संख्याता नाम संख्यानं यत्र व्यामोहकारणम् ।
अन्यथा भासते यत्र वाक्यार्थः सा प्रकल्पिता ॥ १०१ ॥

संख्यातेति। यत्र यस्यां प्रहेलिकायां संख्यानं वर्णगणना व्यामोहकारणं संख्यावाचकशब्दप्रयोगो वा व्यामोहकारणं बोद्धृजनबुद्धिव्यामोहसाधनं सा संख्याता नाम प्रहेलिका। यत्र यस्यां वाक्यार्थः अन्यथा भासते प्रथममापाततः प्रतीयमानादर्थात् पर्यवसाने भिन्नतया प्रतीयते सा प्रकल्पिता नाम प्रहेलिका भवतीति ॥ १०१ ॥

हिन्दी—जिस प्रहेलिकामें वर्णगणना अथवा संख्यावाचकपदप्रयोग बुद्धिको भ्रममें डाल दे उसे संख्याता नामक प्रहेलिका कहते हैं, और जिसमें पहले प्रतीत होनेवाले अर्थसे भिन्न अर्थ पर्यवसानमें समझा जाय उसे प्रकल्पिता नामक प्रहेलिका कहते हैं ॥ १०१ ॥

सा नामान्तरिता यस्यां नाम्नि नानार्थकल्पना ।
निभृता निभृतान्यार्था तुल्यधर्मस्पृशा गिरा ॥ १०२ ॥

सा नामान्तरितेति। यस्यां नाम्नि नानार्थकल्पना बहुविधार्थविकल्पनं भवति सा नामान्तरिता नाम प्रहेलिका, तुल्यधर्मस्पृशा प्रकृताप्रकृतपदार्थसाधारणधर्मवाचकगिरा निभृतः निह्नुतः अन्यार्थः प्रकृतोऽर्थो यस्यां सा निभृतार्था नाम ॥ १०२ ॥

हिन्दी—जिसमें अनेकार्थक शब्दसे नाममें अनेकप्रकारक अर्थोंकी कल्पना की जाय उसे नामान्तरिता नामक प्रहेलिका माना जाता है, और जहाँ प्रकृताप्रकृत साधारणधर्मप्रतिपादक शब्दद्वारा प्रकृत अर्थका गोपन किया गया हो उसे निभृतार्था नामक प्रहेलिका कहते हैं ॥ १०२ ॥

समानशब्दोपन्यस्तशब्दपर्यायसाधिता ।
संमूढा नाम या साक्षान्निर्दिष्टार्थाऽपि मूढये[3] ॥ १०३ ॥

समानेति। उपन्यस्तानां श्लोके प्रयुक्तानां शब्दानां पर्यायो योजनाविशेषः तेन साधिता निष्पन्ना समानशब्दा नाम प्रहेलिका। साक्षात् वाचकशब्देन निर्दिष्टार्था उक्तार्था

---

१. समानरूप। २. ग्रथितैः। ३. मूढयोः।

अपि या मूढये आपाततः श्रोतृणां मूढये मूढभावस्योत्पादनाय क्षमते सा संमूढा नाम प्रहेलिका बोध्या ॥ १०३ ॥

हिन्दी—प्रयुक्त शब्दोंमें पर्यायकृत योजना विशेषद्वारा जो प्रहेलिका बन जाती है उसे समानशब्दा और जिसमें वाचक शब्दोंद्वारा अर्थ-निर्देश होने पर भी श्रोताओंको मूढ हो जाना पड़े उसे संमूढा नामक प्रहेलिका कहा जाता है ॥ १०३ ॥

योगमालात्मिका[1] नाम या[2] स्यात् सा परिहारिका[3]।
एकच्छन्नाश्रितं व्यक्तं यस्यामाश्रयगोपनम् ॥ १०४ ॥

योगेति। या प्रहेलिका योगमालात्मिका यौगिकशब्दपरम्परास्वरूपा स्यात्—यस्यां यौगिकशब्दमाला एकैकरूढार्थबोधनाय प्रयुज्येत, सा परिहारिका नाम। तथा यस्याम् आश्रितम् आधेयम् व्यक्तं सुबोधम्, आश्रयस्य आधारस्य च गोपनं स्यात् सा एकच्छन्ना नाम ॥ १०४ ॥

हिन्दी—जिस प्रहेलिकाभेदमें यौगिक शब्दोंकी परम्परा एक-एक रूढ अर्थको बतानेके अभिप्रायसे प्रयुक्त हो उसे परिहारिका कहा जाता है, और जिसमें आधेय तो स्पष्टरूपसे कहा गया हो, परन्तु आधार छन्न-गुप्त हो उसे एकच्छन्ना प्रहेलिका कहते हैं ॥ १०४ ॥

सा भवेदुभयच्छन्ना यस्यामुभयगोपनम्।
सङ्कीर्णा नाम सा यस्यां नानालक्षणसङ्करः ॥ १०५ ॥

सा भवेदिति। यस्यां प्रहेलिकायाम् उभयगोपनम् आश्रिताश्रययोरुभयोर्निगूहनं कृतं स्यात् सा उभयच्छन्ना नाम प्रहेलिका भवेत्, यस्यां च नानालक्षणानां समागतादीनामनुपदमेवोक्तानां प्रहेलिकानां मध्ये एकाधिकप्रहेलिकालक्षणानां सहावस्थानं भवेत् सा सङ्कीर्णा नाम प्रहेलिका भवेदिति शेषः ॥ १०५ ॥

हिन्दी—जिसमें आश्रित और आश्रय दोनोंका गोपन किया जाता है उसे उभयच्छन्ना नाम की प्रहेलिका कहते हैं, और जिसमें समागता आदि अनेक प्रहेलिकाओंके लक्षण एक साथ समाविष्ट हों उसे सङ्कीर्णा प्रहेलिका कहते हैं ॥ १०५ ॥

एताः षोडशनिर्दिष्टाः पूर्वाचार्यैः प्रहेलिकाः।
दुष्टप्रहेलिकाश्चान्यास्तैरधीताश्चतुर्दश ॥ १०६ ॥

एता इति। एताः पूर्वोक्ताः षोडश समागतायाः सङ्कीर्णान्ताः प्रहेलिकाः पूर्वाचार्यैः निर्दिष्टाः, एतत्षोडशप्रहेलिकाभिन्नाः अन्याः चतुर्दश दुष्टाः सदोषाः च्युताक्षरदत्ताक्षरादयः तैः पूर्वाचार्यैः अधीताः उक्ताः ॥ १०६ ॥

हिन्दी—इन सोलह प्रहेलिकाओंका वर्णन प्राचीन आचार्योंने किया है, समागतासे लेकर पन्द्रह रूप शुद्ध प्रहेलिकायें और एक सङ्कीर्णा, कुल सोलह प्रहेलिकायें प्राचीनोंने कही हैं, इन सोलह शुद्ध प्रहेलिकाओंके अतिरिक्त चौदह और च्युताक्षरदत्ताक्षर आदि दुष्ट प्रहेलिकाओंका निर्देश प्राचीनोंने किया है ॥ १०६ ॥

दोषानपरिसंख्येयान् मन्यमाना वयं पुनः।
साध्वीरेवाभिधास्यामस्ता दुष्टा यास्त्वलक्षणा ॥ १०७ ॥

---

१. मालात्मकं। २. यस्याः। ३. हारिणी।

दुष्टप्रहेलिकानुक्तौ हेतुमुपन्यस्यति—**दोषानिति**। वयम् दोषान् च्युताक्षरत्वादिशाब्दबोधपरिपन्थिदोषचयान् अपरिसंख्येयान संख्यातुमशक्यान् बहून् मन्यमानाः (न तान् दर्शयामः, किन्तु) पुनः साध्वीः चमत्कारजननीः स्वल्पदोषाश्च समागताद्याः षोडश प्रहेलिकाः एव अभिधास्यामः उदाहरणप्रदर्शनेन स्पष्टीकरिष्यामः, दुष्टप्रहेलिकासामान्यलक्षणं तु—'या अलक्षणाः समागतादिषोडशप्रहेलिकालक्षणशून्यास्ता दुष्टाः' इति ॥१०७॥

हिन्दी—प्रहेलिकाके दोष च्युताक्षरत्वादि असीम हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती है, इस बातको माननेवाले हमलोगोंने यहाँ साधु प्रहेलिकाओंके ही उदाहरण दिये हैं, दुष्ट प्रहेलिकाये वह हैं जो समागतादिकथित सोलह प्रहेलिकाओंके लक्षणसे रहित हों ॥ १०७ ॥

न मया गोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात्प्रकुप्यसि ।
अस्थानरुदितैरेभिरलमालोहितेक्षणे[1] ॥ १०८ ॥

अथ प्रागुद्दिष्टाः षोडशापि प्रहेलिकाः क्रमश उदाहरिष्यन्नुद्देशक्रमप्राप्तां समागतां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—**न मयेति**। काञ्चिद् गोपी प्रति कृष्णस्योक्तिरियम्।

हे **आलोहितेक्षणे** कोपरक्ताक्षि, मया **गोरसाभिज्ञं** पयःपानोन्मुखं **चेतो** हृदयं न कृतम्, कुतः प्रकुप्यसि? मह्यं कुध्यसि? अस्थानरुदितैः व्यर्थरोदनैः एभिः अलम्, एषः प्रकाशोऽर्थः समाजवञ्चकः, वास्तवार्थस्तु—मे मम चेतः आगः अपराधः परवनितासंसर्गरूपः तदभिज्ञं चेतो न, शेषं समानम्। मया वनितान्तरोपसर्पणरूपमागो नाचरितमतो वृथा तवायं कोपो रुदितं च वृथेति। अत्र मे आगोरसाभिज्ञमित्यत्र सन्धिना प्रकृतार्थसंवरणं कृतमिति बोध्यम् ॥ १०८ ॥

हिन्दी—मैंने अपने हृदयको दूध पीनेमें कभी नहीं लगाया, मैं ने तुम्हारा गोरस नहीं पिया, तुम मुझपर क्रोध क्यों करती हो? हे लाल आँखोंवाली, इस तरह तुम बिना कारणके क्यों रो रही हो? (यह तो खुला अर्थ है, जो समाजको वञ्चित करनेके लिये किया जाता है, वास्तविक अर्थ तो यह है कि) हे रक्तनेत्रोंवाली, मैंने कोई अपराध—परस्त्रीसंपर्क आदि करनेमें अपना मन नहीं दिया, मैंने दूसरी औरतका साथ नहीं किया है, तुम क्यों कोप करती हो? तुम्हारा यह अकारण रोदन व्यर्थ है।

श्रीकृष्ण किसी गोपीसे लोगोंके सामने कह रहे हैं। इस प्रहेलिकाको समागता कहते हैं क्योंकि इसमें 'मे आगोरसाभिज्ञम्' में सन्धि द्वारा गोप्य अर्थ छिपाया जाता है ॥ १०८ ॥

कुब्जामासेवमानस्य यथा ते वर्धते रतिः ।
नैवं निर्विशतो नारीरमरस्त्रीविडम्बिनीः ॥ १०९ ॥

वञ्चितां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—**कुब्जामिति**। कुब्जाम् विकृतोच्चपृष्ठदेशां नारीम् आसेवमानस्य रमयतः ते तव रतिः अनुरागो यथा वर्धते उपचीयते अमरस्त्रीविडम्बिनीः नारीः निर्विशतः देवाङ्गनातुल्याः निर्विशतः उपभुञ्जानस्य रतिः एवं न वर्धते इति प्रकाशोऽर्थः। संवृतार्थस्तु कुब्जां कान्यकुब्जानगरीम् आसेवमानस्य ते तव रतिर्यथा वर्धते इत्यादिः, शेषं समानम्।

अत्र कुब्जाशब्दो विकृताङ्गनायां रूढः, विवक्षितायां नगर्यां न रूढः, तदर्थप्रत्यय

---

१. रुपितैर्। २. क्षणैः।

उपक्रमं विना न संभवीति प्रकृतार्थस्य निपुणमतिवेद्यतयाऽत्र संवरणमिति वञ्चिता नाम प्रहेलिकेयम् ॥ १०९ ॥

हिन्दी—इस कुबड़ी स्त्रीके साथ रमण करनेसे आपको जो आनन्द होता है वह आनन्द देवबालासमान अन्य नारियोंके साथ रमण करने भी नहीं होता है। यह प्रकाश अर्थ है। छिपा अर्थ यह है कि इस कान्यकुब्जा नगरीका उपभोग करने से जो आनन्द आपको मिलता है वह देवबालाओंके उपभोगसे भी नहीं मिलता।

इसमें कुब्जा शब्द कुबडी स्त्रीमें रूढ है, कान्यकुब्जा नगरीमें रूढ नहीं है, अतः छिपा हुआ अर्थ निपुणमतिमात्रवेद्य है, अतः इसे वञ्चिता नामक प्रहेलिका कहा जाता है ॥ १०९ ॥

दण्डे चुम्बति पद्मिन्या हंसः कर्कशकण्टके।
मुखं वल्गुरवं कुर्वंस्तुण्डेनाङ्गानि घट्टयन् ॥ ११० ॥

व्युत्क्रान्तामुदाहरति—**दण्डे इति**। कर्कशकण्टके तीक्ष्णमुखमण्टकयुते दण्डे पद्मिन्याः नाले अङ्गानि स्वशरीरावयवान् घट्टयन् संघर्षयन् वल्गुरवं मधुररवं कुर्वन् हंसः तुण्डेन मुखाग्रेण पद्मिन्याः मुखं कमलरूपं चुम्बति। अत्रान्वयबोधस्य हेतोः पदासत्तेः विशेषेणातिक्रान्ततया व्युत्क्रान्ता नाम प्रहेलिकेयम् ॥ ११० ॥

हिन्दी—कठोर कण्टक वाले कमलनालमें अपने अङ्गोंको रगड़ता हुआ और मधुर शब्द करता हुआ हंस मुखाग्रसे कमलिनीके मुखरूप कमलको चूमता है। इसमें आसत्ति नामक अन्वयबोधका कारण अतिशय व्यवहित है, अतः इसे व्युत्क्रान्ता नामक प्रहेलिका कहा गया है। इसमें आसत्ति होने पर अर्थ सुगम हो जायगा, तब यह प्रहेलिका नहीं रह जायगी। आसत्ति होगी इस प्रकार पदविन्यास करने पर–'कर्कशकण्टके दण्डेऽङ्गानि सङ्घट्टयन् वल्गुरवं कुर्वन् हंसः पद्मिन्या मुखं तुण्डेन चुम्बति' ॥ ११० ॥

खातयः कनि काले ते स्फातयः स्फाह्ववल्गवः।
चन्द्रे साक्षाद् भवन्त्यत्र वायवो मम धारिणः ॥ १११ ॥

प्रमुषितां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—**खातय इति**। हे कनि कुमारि, ते काल्यते क्षिप्यते इति कालः पादः तस्मिन् तव पादे स्फातयः स्फीताः प्रभूता इत्यर्थः खे आकाशे अतिः गमनं येषां ते खातयः शब्दाः स्फाह्ववल्गवः प्रभूताः मनोहराश्च (भवन्ति) तादृशमनोहरशब्दयुते तव पादे चन्द्रे चन्द्रवदाह्लादकरे मम वायवः प्राणवायवः धारिणः स्थिराः सन्तीत्यर्थः। अत्र अप्रसिद्धपदैः प्रकृतार्थस्य संवरणात् प्रमुषिता नाम प्रहेलिकेयम्। 'कन्या कनी कुमारी च' इति हेमचन्द्रः ॥ १११ ॥

हिन्दी—हे कुमारी, तुम्हारे चरणोंमें ये प्रचुर स्फीत शब्द चलनेपर अधिक तथा मनोहर होते हैं, अतः चन्द्रमाके समान आह्लादक इन तुम्हारे चरणोंमें मेरी प्राणवायु स्थिर हैं। इसमें कनी (कुमारी), काल (चरण), स्फाति (प्रचुर स्फीत), खाति (शब्द), स्फाह्व वल्गु (चलनेपर मनोहर) इन अप्रसिद्धार्थक पदोंका न्यास करके विवक्षित अर्थ निगूढ कर दिया गया है, अतः यह प्रमुषिता नाम की प्रहेलिका कही जाती है ॥ १११ ॥

अत्रोद्याने मया दृष्टा वल्लरी पञ्चपल्लवा।
पल्लवे पल्लवे ताम्रा यस्यां कुसुममञ्जरी ॥ ११२ ॥

---

१. तायवो। २. मञ्जरी। ३. चार्द्रा। ४. यस्याः।

समानरूपां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—**अत्रोद्याने इति**। अत्र उद्याने (नायिकायां) मया पञ्चपल्लवा वल्लरी (बाहुरेव वल्लरी यत्राङ्गुलयः पल्लवस्वरूपाः) दृष्टा, यस्यां वल्लर्यां (बाहौ) पल्लवे पल्लवे प्रतिपल्लवं ताम्रा रक्तवर्णा कुसुममञ्जरी पुष्पमञ्जरी (नखप्रभा) विराजते इति योजनीयम्। अत्र नायिकोद्यानत्वेन, बाहुर्वल्लरीत्वेन, अङ्गुलयः पल्लवत्वेन, नखप्रभा च रक्ताभकुसुममञ्जरीत्वेन सादृश्यादुपचर्यत इति समानरूपा नामेयम् ॥ ११२ ॥

हिन्दी—इस (नायिका रूप) उद्यानमें पाँच पल्लवों (अङ्गुलियों) से युक्त वल्लरी लता (बाहु) देखी गई है, जिसके प्रत्येक पल्लवमें रक्तवर्ण कुसुममञ्जरी (नखप्रभा) विद्यमान है।

इसमें नायिका उद्यानसे उसका बाहु पल्लव रूप अङ्गुलि युक्त होनेके कारण पल्लविनी लतासे, पल्लव अङ्गुलियोंसे और नखप्रभा रक्तवर्ण पुष्पमञ्जरीसे सादृश्य द्वारा उपचरित होते हैं, अतः इसे समानरूपा प्रहेलिका मानते हैं ॥ ११२ ॥

सुराः सुरालये स्वैरं भ्रमन्ति दशनार्चिषा।
मज्जन्त इव मत्तास्ते सौरे सरसि संप्रति ॥ ११३ ॥

परुषां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—**सुरा इति**। सुरा अस्ति येषां ते सुराः शौण्डिकाः दशनार्चिषा हासद्वारा प्रकटीभूतदशनकान्त्या उपलक्षिताः सौरे सरसि सुरामये सोरवरे मज्जन्तः कृतावगाहना इव मत्ताः कृतसुरापानाः सुरालये गञ्जायाम् स्वैरं यथेच्छं भ्रमन्ति, इति प्रकृतार्थः, भ्रामकोऽर्थस्तु देवाः हसन्मुखाः सौरे सरसि मानससरोवरे मज्जन्तः कृतस्नानाः मत्ताः प्रसन्नाश्च सुरालये स्वर्गे यथेच्छं भ्रमन्ति। अत्र प्रकृतार्थः शौण्डिक-विषयो रूढ्या संप्रदायेन वाऽप्रतीतः केवलं योगबलादेवानुशासनसमर्थनादुन्नेय इति प्रयोक्तुः पारुष्यप्रतीत्या परुषा नामेयं प्रहेलिका ॥ ११३ ॥

हिन्दी—सुर-शौण्डिक (कलाल) हंसीसे निर्गत दन्तकान्ति होकर सुराके कुण्डमें स्नान करके खूब पीकर मत्त हुए सम्प्रति मद्यशालामें यथेच्छ भ्रमण कर रहे हैं। यही प्रकृत अर्थ है, इसे छिपानेके लिये यह अर्थ किया जायगा कि—प्रकटितदशनकान्ति सहासमुख देवतागण मानससरोवरमें स्नान करके अतिप्रसन्न हो स्वर्गमें यथेच्छ भ्रमण करते हैं।

इसमें शौण्डिक पक्षवाला अर्थ रूढ़िसे नहीं निकलता है, उसे सूत्रों द्वारा यौगिक बना कर ही निकाला जा सकता है, अतः प्रयोक्ताकी परुषताके प्रतीत होनेसे यह परुषा नामक प्रहेलिका कही जाती है ॥ ११३ ॥

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता[1]।
अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः ॥ ११४ ॥

संख्यातामुदाहरति—**नासिक्येति**। नासिक्यः नासिकारूपस्थानोत्पन्नो वर्णो मध्ये नामाक्षरमध्ये यस्याः सा तादृशी, परितः समन्ततः चतुर्वर्णविभूषिता अक्षरचतुष्टयेन युक्ता काचित् प्रसिद्धा पुर नगरी अस्ति विद्यते, यस्यां पुर्याम् अष्टवर्णाह्वयाः अष्टाक्षरनाम-शालिनो नृपाः सन्तीति। अत्र संख्याद्वारा काञ्चीपुरी विवक्षिता, तस्या मध्ये नासिक्यो अकारः तत्परितश्च क-आ-च-ई—रूपाश्चत्वारो वर्णाः, तत्र 'पल्लवाः' नाम राजानः- तद-भिधानमष्टाक्षरम्, यथा प, अ, ल, ल, अ, व, आ, :। केचित्तु विसर्गस्य योगवाहत्वेन

---

१. चातुर्वर्ण्य।

वर्णमध्ये परिगणनमनुपयुक्तं मन्यमानाः 'पुण्ड्रकाः' इति नाम कल्पयन्ति— प, उ, ण, ड, र, अ, क, आ, इत्यष्टौ वर्णास्तत्र स्थिताः ॥ ११४ ॥

हिन्दी—मध्यमें नासिकास्थानीय वर्ण है, और उसके चारों ओर चार अक्षर हैं, ऐसे नाम वाली एक प्रसिद्ध नगरी है जिसमें अष्टाक्षरनामशाली राजगण रहा करते हैं। इसमें वर्णसंख्या द्वारा काञ्चीपुरी और पल्लवानरेश विवक्षित है। 'काञ्ची' के मध्यमें 'ञ' और 'क-आ-च-ई-' रूप चार वर्ण हैं, 'पल्लवा' में आठ अक्षर हैं—प, अ, ल, ल, अ, व, आ, विसर्ग।

कुछ लोग विसर्गको वर्ण नहीं मानने के कारण 'पल्लवाः' की जगह 'पुण्ड्रकाः' की कल्पना करते हैं उसमें विसर्गके बिना ही आठ अक्षर हैं। पल्लव और पुण्ड्रक इस पाठ पर ही दण्डीके समय-निर्धारणका भार मुख्य रूपसे अवस्थित है, इस विषयमें भूमिका देखें ॥ ११४ ॥

गिरा स्खलन्त्या नम्रेण शिरसा दीनया दृशा।
तिष्ठन्तमपि सोत्कम्पं[1] वृद्धे मां नानुकम्पसे ॥ ११५ ॥

प्रकल्पितां नाम प्रहेलिकामुदाहरति—हे वृद्धे जरठे, स्खलन्त्या वार्धक्याद् गद्गदया गिरा, नम्रेण अधोनतेन शिरसा मस्तकेन, तथा दीनया कातरया दृशा (उपलक्षिता) त्वं सोत्कम्पं ससात्त्विकभावं सभयं वा कम्पमानं मां तिष्ठन्तं त्वत्प्रतीक्षास्थितं नानुकम्पसे न दयसे। वृद्धां कामयमानस्योक्तिरियम्। संवृतिकरोऽर्थस्तु—हे वृद्धे पुराणपुरुषपत्नि लक्ष्मि, स्खलन्त्या गिरा नम्रेण शिरसा दीनया च दृशा सोत्कम्पं तिष्ठन्तमपि मां नानुकम्पसे इति। अत्र प्रकल्पिता नाम प्रहेलिका ॥ ११५ ॥

हिन्दी—कोई वृद्धाकामुक वृद्धा स्त्रीसे कहता है कि, ओ वृद्धे, तुम्हारी वाणी बुढ़ापे के कारण लटपटा रही है, शिर झुक गया है, आँखें कातर हो रही हैं, मैं तुम्हारी प्रतीक्षामें सात्त्विक कम्पयुक्त होकर खड़ा हूँ, फिर भी तुम मुझपर कृपा नहीं कर रही हो। दूसरा संवृतिकारी अर्थ यह भी हो सकता है कि हे लक्ष्मी तुम मेरे ऊपर क्यों नहीं दया करती हो, मैं गद्गदवाणीसे शिर झुकाये, कातर नयनोंसे काँपता हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस श्लोकमें प्रतीयमान प्रथम अर्थ द्वारा द्वितीय अर्थकी कल्पना की गई है, अतः इसे प्रकल्पिता नायक प्रहेलिका कहते हैं ॥ ११५ ॥

आदौ राजेत्यधीराक्षि पार्थिवः कोऽपि गीयते।
सनातनश्च नैवासौ राजा नापि सनातनः ॥ ११६ ॥

नामान्तरितां प्रहेलिकामुदाहरति—अदाविति। हे अधीराक्षि चञ्चलनयने कोपि पार्थिवः पृथिव्यां विदितः प्रसिद्धः आदौ राजा इति गीयते कथ्यते, ततश्चासनातनः गीयते कथ्यते, असौ पृथिव्यां प्रसिद्धः नापि राजा नैव सनातनः अस्ति, (तर्हि कोऽसाविति प्रश्नः) तदुत्तरमप्यत्रैव, यथा पार्थिवः कोऽपि पृथ्वीप्रभवो वृक्षः आदौ प्रथमं राजा इति ततश्च नातनः न तनः अतनः न नातनः (परमार्थे तनः) नातनेन सहितः सनातनः तनशब्दयुतः राजातन इति गीयते। राजातनः प्रियालवृक्षः, यद्यप्यमरकोशे प्रियाल-पर्यायो राजादनशब्द एव दृश्यते, परन्तु शब्दमालायां राजातनशब्दोऽपि तदर्थकोऽस्तीति नानुपपत्तिः।

अत्र राजातन इति वृक्षनाम्नि नानार्थकल्पनया नामान्तरिता नामेयं प्रहेलिका ॥ ११६ ॥

---

१. सोत्कण्ठं।

हिन्दी—हे चञ्चलनयने, पृथिवीमें प्रसिद्ध कोई पहले राजा कहा जाता है फिर सनातन (तन शब्दयुक्त नामवाला) कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें न तो वह राजा ही है और न सनातन ही है। (फिर प्रश्न होता है कि तब वह कौन है? इस प्रश्नका उत्तर भी इसी श्लोकमें है) पृथिवीमें उत्पन्न कोई वृक्ष पहले राजा कहा जाता है बादमें सनातन (तनशब्दयुक्त) कहा जाता है—राजा + तन = राजातन कहा जाता है, वह न राजा है न सनातन शाश्वत। वह तो प्रियालवृक्षमात्र है।

इस श्लोकमें प्रियालवृक्षके नाम राजातन शब्दको लेकर नाना अर्थोंकी कल्पना की गई है, अतः यह नामान्तरिता नामक प्रहेलिका है। यद्यपि अमरकोशमें प्रियालका नामान्तर 'राजादन' कहा गया है, परन्तु शब्दमाला नामक कोषमें राजातन शब्द भी प्रियालपर्यायमें आया है, अतः इस तरहकी कल्पना अनुपपन्न नहीं कही जा सकती है।

इस नामान्तरिता नामक प्रहेलिकाके लक्षणमें 'नाम्नि नानार्थकल्पना' कहा गया है, वहाँका नामपद केवल संज्ञापरक नहीं है, वस्तुपरक है, अत एव—

तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः। गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः॥

इस श्लोकमें सजलघटरूप वस्तुको कहनेके लिये नाना अर्थकल्पनायें की गई हैं अतः नामान्तरिता प्रहेलिका होगी, इसी तरह—

य एवादौ स एवान्ते मध्ये भवति मध्यमः। अस्यार्थं यो न जानाति तन्मुखे नं ददाम्यहम्॥

इस पद्यमें भी नामान्तरिता प्रहेलिका है, यहाँ 'यवस' प्रतिपादन करनेके लिये नाना कल्पनायें की गई हैं॥ ११६॥

हृतद्रव्यं नरं त्यक्त्वा[1] धनवन्तं व्रजन्ति काः।
नानाभङ्गिसमाकृष्ट[2]लोका वेश्या न दुर्धराः॥ ११७॥

निभृतामुदाहरति—**हृतद्रव्यमिति**। नानाभङ्गिभिः बहुविधाभिर्विलासचेष्टाभिः समाकृष्टाः स्वाभिमुखीकृताः लोकाः याभिस्ताः तथोक्ताः तथा दुर्धराः स्वायत्तीकर्तुं कठिनाः कथञ्चिदप्यवश्याः काः हृतद्रव्यं गृहीतधनं नरं त्यक्त्वा धनवन्तं व्रजन्ति वेश्याः न (वेश्यातिरिक्ता एव प्रश्नविषयाः) इति प्रकटार्थः। निभृतार्थस्तु नानाभङ्गास्तरङ्गा यत्र तादृशं नानाभङ्गि जलं तेन समाकृष्टाः निमज्जिताः लोकाः याभिस्तास्तथोक्ताः, तथा दुर्धराः दुःखेन पर्वतेभ्यो निर्गताः नद्यः हृतानि गृहीतानि द्रव्याणि गैरिकादीनि येषां तादृशं नरम् पुरुषमिवाश्रयभूतं (पर्वतं) त्यक्त्वा धनवन्तं रत्नाकरं सागरं व्रजन्ति।

अत्र तुल्यविशेषणवशात्प्रतीयमानाया अपि नद्या वाचकशब्दानुपस्थापिततया निभृतात्वमिति बोध्यम्॥ ११७॥

हिन्दी—नानाविध विलासचेष्टाओंसे लोगोंको आकृष्ट करनेवाली, वशमें नहीं आनेवाली तथा हृतद्रव्य पुरुषको छोड़कर धनवान्‌के पास चली जानेवाली कौन है, वेश्याके विषयमें यह प्रश्न नहीं है, यह तो हुआ प्रकट अर्थ, निभृत अर्थ है कि नानाविध तरङ्गों द्वारा लोगोंको डुबानेवाली, कष्टसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियाँ जिसका गैरिकादि धातु ले लिया है ऐसे स्वोद्गम पर्वतको छोड़कर रत्नाकरकी ओर चली जाती हैं।

इस उदाहरणमें यद्यपि विशेषणसाम्यद्वारा नदीरूप अर्थ प्रतीत होता है, परन्तु नदीकी वाचक शब्दसे उपस्थिति नहीं होती है, अतः इसे निभृता नामक प्रहेलिका कहा जाता है॥ ११७॥

---

१. हित्वा। २. शताकृष्ट।

जितप्रकृष्टकेशाख्यो यस्तवाभूमिसाह्वयः ।
स मामद्य प्रभूतोत्कं करोति कलभाषिणि ॥ ११८ ॥

समानशब्दामुदाहरति—**जितप्रकृष्टकेशाख्य इति ।** हे कलभाषिणि, मधुरवचने, प्रकृष्टकेशाख्या प्रवाल इति जिता प्रकृष्टकेशाख्या प्रवालो येन तादृशः जितप्रवालस्तथा अभूमिः पृथ्वीरहितः अधरस्तेन साह्वयः समानाभिधानस्तेऽधरः, अद्य मां प्रभूतोत्कं जायमानोत्कं करोति ।

अत्र प्रकृष्टकेशाख्याभूमिसाह्वयशब्दौ लक्षितलक्षणया प्रवालाधरवाचकौ इति प्रकृतार्थस्य समानशब्देनोपस्थापनात् समानशब्दा नामेयं प्रहेलिका ॥ ११८ ॥

हिन्दी—प्रकृष्ट केशकी आख्या (नाम) प्रवालको जीत लेने वाले तथा अभूमि—पृथ्वी रहित अधरसे तुल्य नाम वाले तुम्हारे इस अधरने मुझे अतिउत्सुक-पानाभिलाषी बना दिया है ।

इस उदाहरणमें प्रकृष्टकेशाख्या और अभूमिसाह्वय शब्द लक्षितलक्षणा द्वारा प्रवाल तथा अधर रूप अर्थ को उपस्थापित करते हैं, अतः प्रकृत अर्थके समान शब्द द्वारा उपस्थापित होनेके कारण इसे समानशब्दा नामक प्रहेलिका कहा जाता है ॥ ११८ ॥

शयनीये परावृत्य शयितौ कामिनौ क्रुधा ।
तथैव शयितौ रागात् स्वैरं मुखमचुम्बताम् ॥ ११९ ॥

संमूढामुदाहरति—**शयनीय इति ।** कामिनौ क्रुधा प्रणयकोपेन परावृत्य विदिङ्मुखौ भूत्वा शयनीये शय्यायां शयितौ, रागात् प्रेमातिरेकात् तथैव शयितौ स्वैरं यथेच्छं मुखम् अन्योन्यवदनम् अचुम्बताम् । अत्र विवृत्य शयानयोः परस्परमुखचुम्बनमशक्यक्रियमिति प्रथमं संमोहः, पूर्वं परावृत्य शयितौ, परस्तात्र क्रोपशान्तौ पुनः परावृत्य शयितौ (परावृत्तयोः परावृतौ संमुखीनतासिद्धौ) परस्परं मुखमचुम्बतामिति भवत्युपपत्तिः ॥ ११९ ॥

हिन्दी—कामियुगल क्रोधके कारण परावृत्त होकर मुँह घुमा कर शय्या पर सो रहे थे, प्रेमातिरेकसे उसी प्रकार सो कर अन्योन्यमुख चुम्बन करने लगे ।

इसमें पहले मालूम पड़ता है कि मुँह घुमा कर सोते रहने पर मुख चुम्बन कैसे किया, परन्तु वास्तविकता यह है कि पहले क्रोधके कारण मुँह घुमा कर सोते रहे, पीछे कोप शान्त होने पर घूम गये, सम्मुख हो कर सो गये और एक दूसरेका मुख चुम्बन कर लिया ॥ ११९ ॥

विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतो जनः ।
हिमापहामित्रधरैर्व्याप्तं व्योमाभिनन्दति ॥ १२० ॥

परिहारिकामुदाहरति—**विजितेति ।** विना गरुडेन जित इन्द्रस्तस्यात्मभवः पुत्रः अर्जुनस्तस्य द्वेषी शत्रुः कर्णस्तस्य गुरुः पिता सूर्यस्तस्य पादैः किरणैः हतः सन्तापितः जनः हिमापहो वह्निः तस्यामित्राणि जलानि तेषां धरैर्जलधरैः मेघैः व्याप्तं व्योम आकाशम् अभिनन्दति प्रशंसति । अत्र यौगिकशब्दपरम्परया प्रकृतार्थोद्भावनात् योगमालात्मकतया परिहारिका नामेयं प्रहेलिका ॥ १२० ॥

हिन्दी—बिना गरुड़से जित इन्द्र, उनके पुत्र अर्जुनके द्वेषी कर्णके पिता सूर्यकी किरणोंसे सन्तापित जन हिम जाड़ेको दूर करनेवाला वह्नि-हिमापहके अमित्र जलको धारण करनेवाले

---

१. गस्तेऽभूमिसमाह्वयः । २. सुभूतोत्कं । ३. रुषा । ४. विजितात्म ।

मेघोंसे व्याप्त आकाशकी इच्छा करता है, सूर्यकरसन्तप्त मनुष्य बदली चाहता है। इस उदाहरणमें यौगिक शब्दोंकी भरमार है, अतः इसे परिहारिका नामक प्रहेलिका कहते हैं॥ १२०॥

न स्पृशत्यायुधं जातु न स्त्रीणां स्तनमण्डलम्।
अमनुष्यस्य कस्यापि हस्तोऽयं न किलाफलः॥ १२१॥

एकच्छन्नामुदाहरति—**न स्पृशतीति**। कस्यापि अमनुष्यस्य मनुष्यत्वायोग्यस्य हस्तः जातु कदाचिदपि आयुधं प्रहरणं न स्पृशति, न च स्त्रीणां युवतीनां स्तनमण्डलं स्पृशति, तथापि अयं हस्तः अफलः फलशून्यो न भवति। आयुधस्पर्शराहित्येन पौरुषाभावः, स्त्रीणां स्तनमण्डलस्पर्शाभावेन च रसिकत्वाभावः, तदुभयाभावयुतस्यापि हस्तस्य नाफल्यमिति विरोधः प्रतिभासते। तत्परिहाराय अमनुष्यशब्देन गन्धर्वो लक्ष्यते, तथा च अमनुष्यहस्तो नाम गन्धर्वहस्तः एरण्डवृक्षः, स च नायुधं स्पृशति—तस्य सुखच्छेद्यत्वेनायुधानपेक्षणात्, न वा स्त्रीणां स्तनमण्डलं स्पृशति, अनुपयोगात्कन्दूकरः-त्वाच्च, तथापि अफलो न भवति फलप्रसूत्वात्, इत्यर्थं कृत्वा विरोधो निरस्यते। 'अमण्ड-पञ्चांगुलवर्धमानागन्धर्वहस्तः' इति हारावली। अत्राश्रितं फलं व्यक्तम्, आश्रयो वृक्षश्च-च्छन्न इति एकच्छन्ना नामेयं प्रहेलिका॥ १२१॥

हिन्दी—न कभी आयुधका स्पर्श करता है—और न स्त्रियोंके कुचमण्डलको छूता है, फिर भी अमनुष्यका—अयोग्यपुरुषका यह हाथ निष्फल नहीं है। आपाततः यही अर्थ है, इस अर्थमें आयुधस्पर्श नहीं करनेसे पौरुषका अभाव और स्त्रीस्तनमण्डलस्पर्श नहीं करनेसे रसिकत्वका अभाव स्फुट है, फिर भी सफलताका होना विरुद्ध-सा प्रतीत होता है, उसके परिहारार्थ अमनुष्य-शब्द लक्षणाद्वारा गन्धर्वार्थक हो जाता है, तब अमनुष्यहस्त-गन्धर्वहस्त-एरण्डवृक्ष हुआ, वह कभी अस्त्र नहीं छूता, क्योंकि हाथसे ही टूट जाता है, स्त्रियोंके स्तनमण्डलपर भी उसका सम्बन्ध नहीं होता है, फिर भी फलशाली है। इस अर्थमें विरोध हट जाता है। गन्धर्वहस्त एरण्ड का नाम है।

इस उदाहरणमें फल-आश्रित व्यक्त है, वृक्ष-आश्रय छिपा हुआ है, अतः यह एकच्छन्ना का उदाहरण हुआ॥ १२१॥

केन कः सह संभूय सर्वकार्येषु सन्निधिम्।
लब्ध्वा भोजनकाले तु यदि दृष्टो निरस्यते॥ १२२॥

उभयच्छन्नामुदाहरति—**केनेति**। कः पदार्थः केन पदार्थेन सह संभूय उत्पत्ति प्राप्य सर्वकार्येषु सन्निधिम् उपस्थितिं लब्ध्वा प्राप्य भोजनकाले यदि दृष्टस्तदा निरस्यते दूरीक्रियते इति प्रश्नः। अस्योत्तरमप्यत्रैव, कस्य मस्तकस्यायं कः केशः केन मस्तकेन सह संभूय उत्पद्य सर्वकार्येषु भूषणादिधारणात्मकेषु सन्निधिं लब्ध्वापि भोजनकाले (पात्रे) दृष्टश्चेद् दूरीक्रियते इति। अत्राश्रयाश्रयिणोरुभयोर्मस्तककेशयोश्छन्नतया उभयच्छन्ना नामेयं प्रहेलिका॥ १२२॥

हिन्दी—कौन ऐसा पदार्थ है जो किस पदार्थके साथ जन्म लेकर और सभी कार्योंमें उपस्थित रह कर यदि भोजनकालमें देखा जाय तो दूर कर किया जाता है, यह प्रश्न है, इसका उत्तर भी इसीमें है—क-मस्तकका क—केश मस्तकके साथ उत्पन्न होकर और अलङ्कार—माल्यादि धारणमें

१. लब्ध्वा। २. वेलायां।

सान्निध्य पा करके भी यदि भोजनकालमें पात्रमें देखा जाय तो दूर कर दिया जाता है। कस्य मस्तकस्थायं कः केशः, अर्थात् ।

इस उदाहरणमें आश्रय मस्तक और आश्रित केश दोनों ही छिपे हुए हैं, अतः इसे उभयच्छन्ना नामक प्रहेलिका कहते हैं ॥ १२२ ॥

सहया सगजा सेना सभटेयं न चेज्जिता ।
अमात्रृकोऽयं मूढः स्यादक्षरज्ञश्च नः सुतः ॥ १२३ ॥

सङ्कीर्णामुदाहरति—**सहयेति** । सहया साश्वा, सगजा गजयुक्ता, सभटा योद्धृभिः सहिता इयम् शात्रवी सेना चेत् न जिता न पराभूता, तदा अयं नः सुतः अक्षरज्ञः परमार्थतत्त्वज्ञोऽपि अमातृकः परापरसामर्थ्यप्रमाविकलः एतादृशो मूढः स्यात् इति प्रकाशोऽर्थः । संवृतार्थस्तु सहया हकारेण यकारेण च सहिता, सगजा गकारेण जकारेण च सहिता, सभटा भकारटकाराभ्यां सहिता, सेना सकारेण नकारेण च सहिता । एवंभूता वर्णमाला न जिता नाभ्यस्ता न सम्यग्लिखिता न सम्यगुदिता चेत् अक्षरज्ञः वेदज्ञः अपि अमातृकः वर्णपरिचयरहितः मूढः स्यात् । कण्ठस्थीकृतवेदस्यापि लिखितुमक्षमस्य पुत्रस्य कृते पितुरियं चिन्ता ॥ १२३ ॥

हिन्दी—घोड़ोंसे युक्त, हाथीवाली, यह शत्रुसेना अगर नहीं परास्त की जा सकी, तो परमार्थज्ञानी होने पर भी परसामर्थ्यज्ञानसे वञ्चित यह हमारा पुत्र मूर्ख ही कहा जायगा । यह प्रकाश अर्थ हुआ, छिपा हुआ अर्थ यह है कि-हकारयकारसे युक्त, गकारजकारसे युक्त, भकारटकारसे युक्त तथा सकारनकार से युक्त यह वर्णमाला यदि लिखने पढ़ने योग्य नहीं हो सकी, तो पूरा वेद पढ़कर भी मात्रासे अपरिचित यह मेरा पुत्र मूर्ख ही रह जायगा । कण्ठीकृतवेद किन्तु अक्षरानभिज्ञ पुत्रके विषयमें पिता चिन्ता कर रहा है ॥ १२३ ॥

सा नामान्तरितामिश्रा वञ्चितारूपयोगिनी ।
एवमेवेतरासामप्युन्नेयः सङ्करक्रमः ॥ १२४ ॥

(इति प्रहेलिकाचक्रम्)

अस्य सङ्कीर्णप्रहेलिकात्वमुपपादयति—**सा नामेति** । सा प्रदर्शिता प्रहेलिका नामान्तरिता मिश्रा हयादिशब्दानां विविधार्थकल्पानामान्तरिताख्यानामिकया प्रहेलिकया मिश्रा युक्ता वञ्चितारूपयोगिनी सेनाशब्दस्य प्रसिद्धेऽर्थेऽप्रयोगाद् वञ्चितानामकप्रहेलिकायुक्ता चेति नामान्तरिता वञ्चितानामकप्रहेलिकाद्वयसाङ्कर्यमत्र बोध्यम् । एवमेव इतरासाम् अपि प्रहेलिकानां सङ्करक्रमः सङ्करप्रकारः उन्नेयः स्वयमूहनीयः ॥ १२४ ॥

हिन्दी—'सहया सगजा' इत्यादि उदाहरणमें दो तरहकी प्रहेलिकाओंका—नामान्तरिता और वञ्चिता नामक दो प्रहेलिकाओंका साङ्कर्य है, क्योंकि हयादि शब्दोंकी विविधार्थकल्पना होनेसे नामान्तरिता हुई और सेना शब्द का प्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग नहीं होने से वञ्चिता हुई, इस प्रकार नामान्तरिता और वञ्चिता नामक दो प्रहेलिकायें इस उदाहरणमें संकीर्ण हैं, इसी तरह अन्यान्य प्रहेलिकाओंके सङ्करका क्रम-प्रकार भी स्वयं समझ लें ॥ १२४ ॥

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम् ।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकम् ॥ १२५ ॥

---

१. अमात्रिकः ।

देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च।
इति दोषा दशैवैते वर्ज्याः काव्येषु सूरिभिः ॥ १२६ ॥

एतावत्पर्यन्तेन ग्रन्थेन काव्यशोभाकरा अर्थालङ्काराः शब्दालङ्काराश्च निरूपिताः, सम्प्रति 'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं शास्त्रे दुष्टं कथञ्चन' इति हेयत्वोक्तपूर्वान् दोषानाह— **अपार्थमिति । देशकालेति** । तत्र दोषसामान्यलक्षणं 'वर्ज्याः' इत्युक्तम् । काव्ये विद्वद्भिरभिमतप्रतीतिपरिपन्थितया विघ्नभूता इमे दोषा हेया इति वर्ज्यत्वमात्रं दोषलक्षणमुक्तम् । वामनस्तु गुणविपर्ययात्मानो दोषा इत्याह । प्रकाशकारस्तु 'मुख्यार्थहतिर्दोष' इत्याह । तदित्थं लक्षितस्य दोषस्य प्रभेदानाह—**अपार्थम् इति** । १-अपार्थम्-अर्थशून्यम्, २-व्यर्थम्-विरुद्धार्थम्, ३-एकार्थम्-अभिन्नार्थम् (पुनरुक्तम्), ४-ससंशयम्-सन्दिग्धम्, ५-अपक्रमम्-क्रमरहितम्, ६-शब्दहीनम्-अपेक्षितशब्दन्यूनम्, ७-यतिभ्रष्टं-विश्रान्तिविच्छेदशून्यम् । ८-भिन्नवृत्तम्—वृत्तनियमरहितम्, ९-विसन्धिकम्-सन्धिशून्यम्, १०-देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि-देशविरुद्धकालविरुद्धकलाविरुद्धलोकविरुद्धन्यायविरुद्धागमविरुद्धं चेति दश दोषाः सूरिभिः वर्ज्यत्वेन उक्ताः ।

भरतेन हि—'गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नार्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम् । न्यायादपेतं विषमं विसन्धि शब्दच्युतं वै दश काव्यदोषाः' इति दशैव दोषा उक्ताः, तदनुसारेण दण्डिनाऽपि तावन्त इव दोषाः स्वीकृताः । अर्वाचीनाचार्यैं रसार्थशब्दगतत्वेन बहवो दोषा अभ्युपेताः, परं दण्डिना इष्टार्थव्यवच्छिन्नपदावलीकाव्यत्ववादिना शब्दार्थगता एव दोषाः स्वीकृताः, न रसगताः, तस्य काव्यशरीरबहिर्भूतत्वात् ॥ १२५-१२६ ॥

हिन्दी—अब तक काव्यगत अलङ्कारोंका निरूपण किया गया, अब दोषोंका निरूपण करेंगे। आचार्य दण्डीने भरतके अनुसार दस ही दोष मानकर काम चलाया है, अन्यान्य दोषोंके विषयमें उन्होंने कुछका स्वाभिमत दोषोंमें अन्तर्भाव किया है और कुछ को दोष नहीं माना है। अर्वाचीन आचार्योंने 'पदे पदांशे वाक्येर्थे संभवन्ति रसेऽपि यत्' कहकर दोषोंके पांच प्रभेद स्थापित किये हैं, परन्तु दण्डीने केवल एक ही प्रभेद माना है—शब्दगत। इसका प्रधान कारण यह है कि दण्डीके मतमें शब्द ही काव्य है, अतः रसादिगत दोषोंके विषयमें वह क्यों ध्यान देते? दोषोंके नाम कारिकामें आये हैं, वह यह हैं, १-अपार्थ, २-व्यर्थ, ३-एकार्थ, ४-ससंशय, ५-अपक्रम, ६-शब्दहीन, ७-यतिभ्रष्ट, ८-भिन्नवृत्त, ९-विसन्धिक, १०-देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि। इन दोषों की परिभाषा यथावसर की जायेगी ॥ १२५-१२६ ॥

प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिर्दोषो न वेत्यसौ ।
विचारः कर्कशः प्रायस्तेनालीढेन किं फलम् ॥ १२७ ॥

भामहेन 'प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहीनं दुष्टं च नेष्यते' इति कथयता कथितेभ्यो दशभ्यो दोषेभ्योऽधिकाः प्रतिज्ञाहीनत्व-हेतुहीनत्व-दृष्टान्तहीनत्वरूपास्त्रयो दोषाः स्वीकृताः, तान् निराकर्तुमाह—**प्रतिज्ञेति** । साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा, साध्यसाधनं हेतुः, प्रसिद्धोदाहरणोपन्यासो दृष्टान्तः, एषां हानिः अनुपादानं दोषः अस्ति न वा अयं विचारः प्रायः भूम्ना कर्कशः रूक्षः, अतः काव्यनिरूपणे तेन विचारेण आलीढेन चर्वितेन कृतेन किं फलम्?

१. वेत्ययं । २. कर्कशप्रायस् ।

प्रतिज्ञाहीनत्वादयो हि दोषाः शास्त्रीयविचाररूपे शास्त्रार्थे समधिकमुपयुज्यन्ते न पुनः सरसकाव्यचिन्तने इति तद्विचारो निष्फलान्मयात्रोपेक्षित इति भावः ॥ १२७ ॥

हिन्दी—भामहने प्रतिज्ञाहीनत्व, हेतुहीनत्व तथा दृष्टान्तहीनत्व नामके तीन दोष माने हैं, दण्डीने उनके विषयमें कहा है कि उन्हें दोष मानें कि नहीं मानें यह विचार कर्कश है, रूक्ष है, अतः उसके सम्बन्धमें विचार करनेसे क्या लाभ ? दण्डीका अभिप्राय यह है कि प्रतिज्ञाहीनत्वादिदोष काव्यसे उतना सम्बन्ध नहीं रखते हैं, अप्रतिज्ञात वस्तुओंका भी वर्णन कविगण करते ही हैं, हेतुहीनत्व भी प्रसिद्ध हेतुस्थलमें दोष नहीं होता है, दृष्टान्तहीन होनेसे भी उतना वैरस्य नहीं होता है, अतः इन दोषोंका विचार अनपेक्षित है, अतः उनके नहीं मानने से भी कोई न्यूनता नहीं होगी ॥ १२७ ॥

समुदायार्थशून्यं[1] यत्तदपार्थमितीष्यते ।
उन्मत्तमत्तबालानाम्[2] उक्तेरन्यत्र[3] दुष्यति ॥ १२८ ॥

क्रमप्राप्तमपार्थं नाम दोषं लक्षयति—**समुदायेति** । यत् समुदायार्थशून्यम् परस्परसंबद्धार्थप्रतिपादनाक्षमं तत् अपार्थम्, इति इष्यते मन्यते, तत्सम्बद्धार्थप्रतिपादनाक्षमत्वं द्विधा भवति—एकं पदेषु, अपरं वाक्येषु । क्वचित् पदानि सार्थकान्यपि परस्परासम्बद्धतया आकाङ्क्षाराहित्यात्सार्थं मिलित्वोपस्थापयन्ति; यथा गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति । तदत्र वाक्ये पदान्यपार्थानि । एवमेव वाक्यानि प्रत्येकमर्थवन्ति सन्त्यपि मिलित्वाऽङ्गाङ्गिभावभाञ्जि सन्ति । यत्रार्थं नोपस्थापयन्ति तत्राप्यपार्थत्वं भवति, यथा—'रामा हसति, वृक्षस्य शाखा पतति, पत्रिणः विमले व्योम्नि गच्छन्ति, नद्यः पानीयपूरिताः' अत्र वाक्यानि परस्परासंबद्धानीत्यपार्थानि ।

तदिदमपार्थम् उन्मत्ताः उन्मादरोगिणः, मत्ताः मद्यपानजनितबुद्धिभ्रमाः बालाः शिशवश्च, तेषामुक्तेः भाषणादन्यत्र दुष्यति, तेषामुक्तौ तु न दुष्टमिति बोध्यम् ॥ १२८ ॥

हिन्दी—जिसमें पद या वाक्यका अर्थ हो, परन्तु समुदायवाक्य या महावाक्यका अर्थ न हो, उसे अपार्थ कहते हैं, अपार्थवाक्यमें सभी पदोंके सार्थक रहने पर भी उनका परस्पर सम्मिलित अर्थ नहीं होता है, अपार्थमहावाक्यमें अवान्तर वाक्यों के अर्थ रहने पर भी परस्पर सम्बद्ध अर्थ नहीं होता है, अतः वह अपार्थ है ।

यह अपार्थ दोष पागल, मदमत्त और बालकों की उक्तिके अतिरिक्तस्थलमें ही दोष कहा जाता है, उन्मत्त-मत्त-बालोक्तिमें परस्परासम्बद्धत्व होना स्वाभाविक है, अतः वहाँ वह दोष नहीं माना जाता ॥ १२८ ॥

समुद्रः पीयते देवैरहमस्मि[4] जरातुरः ।
अमी गर्जन्ति जीमूता हरेरैरावणः[5] प्रियः ॥ १२९ ॥

अपार्थमुदाहरति—**समुद्र इति** । 'देवैः समुद्रः पीयते' अत्र देवानां समुद्रपाने योग्यताविरहात् पदेषु सार्थकेषु सत्स्वपि वाक्यार्थबोधविरहादपार्थम्, एवमेव-'अहं जरातुरः अस्मि, जीमूता अमी गर्जन्ति. हरेः ऐरावणः प्रियः' इत्यमीषां त्रयाणामपि वाक्यानां पृथक्-पृथक् सार्थकत्वेऽपि परस्परनिरपेक्षत्वात् एकवाक्यत्वाभावकृतमपार्थत्वम् ॥ १२९ ॥

---

१. र्थकमिष्यते । २. तन्मत्तोन्मत्तबाला । ३. उक्तैरन्यत्र । ४. मेघैः । ५. अब । ६. ऐरावत ।

हिन्दी—वाक्यमें अपार्थत्वका उदाहरण है 'दे वैः समुद्रः पीयते'। इस वाक्यमें सभी पद अर्थ वाले हैं, परन्तु देवोंमें समुद्र-पानयोग्यताके नहीं होनेसे उनका मिलितार्थ नहीं होता है, अतः यह वाक्य अपार्थ है। 'अहं जरातुरोऽस्मि, अमी जीमूताः गर्जन्ति, हरे; ऐरावणः प्रियः' इन वाक्योंका अलग-अलग अर्थ होने पर भी परस्पर अङ्गाङ्गिभाव नहीं होनेसे एकान्वित वाक्यार्थ-बोध नहीं होता है, अतः यह महावाक्यगत अपार्थत्व दोष है ॥ १२९ ॥

इदमस्वस्थचित्तानामभिधानमनिन्दितम् ।
इतरत्र कविः को वा प्रयुञ्जीतैवमादिकम् ॥ १३० ॥

इदमिति । अस्वस्थचित्तानाम् उन्मादादिदोषग्रस्तानाम् इदं पूर्वोक्तस्वरूपम् अभिधानम् कथनम् अनिन्दितम् अदुष्टत्वेन संमतम् । इतरत्र उन्मत्तादीन् विना को वा कविः एवमादिकं पूर्वोक्तसदृशमपार्थं वाक्यं महावाक्यं वा प्रयुञ्जीत, कोप्यनुन्मत्तादिरीदृशं न प्रयोक्तुं क्षमते, दुष्टत्वात्तादृशप्रयोगस्येति भावः ॥ १३० ॥

हिन्दी—इस तरहका अपार्थ प्रयोग अस्वस्थचित्त उन्मादादिग्रस्त जनके लिये निन्दित—दुष्ट नहीं है, और जो उन्मादादिदोषग्रस्त नहीं है, वैसा कौन कवि होगा जो ऐसे अपार्थवाक्यादिका प्रयोग करेगा ? ॥ १३० ॥

एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापरपराहतम् ।
विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषेषु पठ्यते ॥ १३१ ॥

व्यर्थं नाम दोषं लक्षयति—**एकवाक्ये इति ।** व्यर्थमित्यत्र विपदं विरुद्धार्थकम्, तथा च एकवाक्ये प्रबन्धे नानावाक्यघटिते प्रबन्धे वा (यत्) पूर्वापरपराहतम् परस्परविरुद्धं प्रतीयते, तद् विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषाणां मध्ये गण्यते ।

अपार्थे आकाङ्क्षादिविरहाच्छाब्दबोध एव न भवति, अत्र तु शाब्दबोधे जाते पर्यालोचनयाऽर्थविरोधः प्रतिभासते इति अपार्थव्यर्थयोः परस्परं भेदः ।

वाक्यप्रबन्धपर्यालोचनया विरोधप्रतिभासे व्यर्थत्वदोषः, प्रकरणपर्यालोचनया विरोधप्रतिभासे तु वक्ष्यमाणो देशकालादिविरोधनामा दोष इति पार्थक्यं बोध्यम् ।

विरुद्धमतिकारित्व-प्रकाशितविरुद्धत्वामतपरार्थत्वपरिपन्थिरसाङ्गविभावादिपरिग्रहनामानो दोषा अत्रैव व्यर्थत्वाख्ये दोषेऽन्तर्भवन्तीति दण्डिनो हृदयस्याशय ऊहनीयः ॥१३१॥

हिन्दी—जिस वाक्य अथवा प्रबन्धमें परस्पर विरुद्ध बातें कही जाँय, उसे विरुद्धार्थक होनेके कारण व्यर्थत्व नामक दोष कहा जाता है। व्यर्थशब्दगत 'वि' का अर्थ विरुद्धत्व है, अभाव नहीं।

व्यर्थत्वदोषस्थलमें अर्थविरोध शाब्दबोधके बाद प्रतिभासित हो उठता है और अपार्थदोषस्थलमें आकाङ्क्षादिविरह होनेसे शाब्दबोध ही नहीं हो पाता है।

व्यर्थत्वदोषका विषय वह है जहाँ वाक्य या प्रबन्धकी पर्यालोचनासे विरोध प्रतिभासित हो और देशकालादिविरोध नामक वक्ष्यमाण दोष प्रकरण-पर्यालोचनके बाद ही प्रतिभासित होता है। यही भेद है।

दण्डीने इसी व्यर्थत्वदोषमें पराभिमत, विरुद्धमतिकारिता, प्रकाशितविरुद्धता, अमतपरार्थता, परिपन्थिरसाङ्गविभावादिपरिग्रह नामक दोषोंका अन्तर्भाव स्वीकार किया है ॥ १३१ ॥

जहि शत्रुबलं कृत्स्नं जय विश्वम्भरामिमाम्[१] ।
तव नैकोऽपि विद्वेष्टा सर्वभूतानुकम्पिनः ॥ १३२ ॥

१. कुलम् । २. भर । ३. अमूम् । ४. न हि ते कोपि ।

प्रबन्धगतं व्यर्थत्वमुदाहरति—**जहीति**। कृत्स्नं शत्रुबलं जहि विनाशय, इमां विश्वम्भरां पृथ्वीं जय स्वायत्तीकुरु, सर्वभूतानुकम्पिनः प्राणिमात्रदयालोस्तव नैकोऽपि विद्वेष्टा अस्तीति शेषः। अत्र शत्रुशून्यस्य शत्रुबलहननं, सर्वभूतदयालोश्च पृथ्वीजयो विरुद्धतया नोपपद्यते इति व्यर्थत्वं नाम दोषोऽत्र ॥ १३२ ॥

हिन्दी—समस्त शत्रुबलको मार दीजिये, और इस पृथ्वीको अधीन बनाइये, सकलभूतदयालु होनेके कारण आपका कोई भी शत्रु नहीं है।

इस उदाहरणश्लोकमें शत्रुशून्य राजा द्वारा शत्रुजय और प्राणिमात्र पर दया करने वालेका पृथ्वीविजय रूप परस्पर विरुद्ध बातें कही गई हैं, अतः यह व्यर्थत्वका उदाहरण है ॥ १३२ ॥

अस्ति काचिदवस्था सा साभिषङ्गस्य चेतसः।
यस्यां भवेदभिमता विरुद्धार्थाऽपि भारती ॥ १३३ ॥

विरुद्धार्थतारूपव्यर्थत्वस्य गुणत्वमुपपादयति—**अस्ति काचिदिति**। साभिषङ्गस्य[1] दुःखाभिभूतस्य चेतसः सा काचिदवस्था स्थितिः अस्ति, यस्यामवस्थायां विरुद्धार्थाऽपि भारती वाणी अभिमता इष्टा निर्दोषा गुणरूपा च भवेत्। सदुःखजनोक्ता वाणी विरुद्धार्था सत्यपि तद्विवेकशून्यस्थितिपरिचायकतया न दुष्यति, अपितु माऽधिकं स्वदते इत्यर्थः ॥१३३॥

हिन्दी—दुःखयुक्त चित्तकी कुछ ऐसी अविवेकावस्था होती है, जिस अवस्थामें कही गई विरुद्धार्था वाणी भी सदोष नहीं मानी जाती है, गुणयुक्त ही मानी जाती है। अर्थात् यदि दुखाभिभूत जनकी उक्तिमें विरुद्धार्थत्व दोष पाया जाय तो उसे दोष नहीं, गुण माना जायगा; क्योंकि उस तरहकी उक्तिसे उसकी आन्तरिक अस्तव्यस्तता प्रतीत होती है ॥ १३३ ॥

परदाराभिलाषो मे कथमार्यस्य युज्यते।
पिबामि तरलं तस्याः कदा नु दशनच्छदम् ॥ १३४ ॥

व्यर्थत्वदोषस्य गुणत्वमुपदर्शयति—**परदारेति**। आर्यस्याभिजनवतः मे मम परदाराभिलाषः कस्यचिदन्यस्य स्त्रिया सह सङ्गमः कथं युज्यते ? न युज्यते इत्यर्थः, तस्याः परस्त्रियः तरलं भयलज्जाचपलं दशनच्छदम् ओष्ठं कदा नु पिबामि ? अत्र पूर्वार्द्धे परस्त्रिया समागमस्यानौचित्यमुक्तम्, उत्तरार्धे तस्यैवाभिलाषास्पदत्वमुक्तमिति परस्परविरुद्धार्थमपीदं कामाभिभूतस्यास्तव्यस्तहृदयस्य जनस्य वचनं गुणवदेव ॥ १३४ ॥

हिन्दी—सत्कुलोत्पन्न होनेसे हमारे लिये पर-स्त्रीसङ्गम कैसे युक्त होगा ? भयलज्जासे चञ्चल उसके अधरके पानका अवसर कब मिलेगा ?

इस पद्यके दोनों चरण विरुद्धार्थक हैं, क्योंकि पूर्वार्द्धमें पर-स्त्रीसङ्गमका अनौचित्य बताया है और उत्तरार्धमें उसीके लिये अभिलाषा प्रकट की है, इसको सदोष नहीं, सगुण कहा जायगा; क्योंकि यह कामाभिभूत जनकी विरुद्धार्थक उक्ति उसके मनकी अस्तव्यस्तता व्यक्त करती है ॥१३४॥

अविशेषेण पूर्वोक्तं यदि भूयोऽपि कीर्त्यते।
अर्थतः शब्दतो वापि तदेकार्थं मतं यथा ॥ १३५ ॥

क्रमप्राप्तमेकार्थं लक्षयति—**अविशेषेणेति**। यदि पूर्वोक्तम् वचः अर्थतः शब्दतो वा अविशेषेण विशेषशून्येन शब्देनार्थतो वा पुनः कीर्त्यते; तदा तत् एकार्थम् मतम्। अत्राविशेषेणेत्युक्त्या यत्र विशेषाभिधानेच्छयोक्तार्थस्य पुनः कीर्तनं क्रियते, तत्र नैकार्थ-

१. साभिलाषस्य।

दोष इति सूचितम् । यत्र शब्दभेदेऽर्थाभेदस्तत्र केवलमर्थपुनरुक्तिः, यत्र तु शब्दाभेदस्तत्र शब्दार्थोभयपौनरुक्त्यम् । यत्र पुनर्भिन्नार्थयोः शब्दयोः सादृश्यं तत्र न पौनरुक्त्यं यथा—'सुरा विप्रैः सुरा नीचैः सेव्यन्ते भक्तिभावतः' इति । अर्थतः शब्दतो वेति कथनान्नवीनोक्तस्य पुनरुक्तत्वस्य कथितपदत्वस्य चात्र समावेशः कृतो बोध्यः ॥ १३५ ॥

हिन्दी—पहले जो कहा गया, उसके शब्द या अर्थको विना किसी विशेषके दुहरानेको एकार्थदोष कहते हैं। बिना किसी विशेषके पूर्वोक्त वस्तुको शब्द या अर्थ में समता रखनेवाले शब्द या अर्थसे दुहराया जाय तो एकार्थत्वनामक दोष होता है। 'विना किसी विशेषके' इस कथनका अभिप्राय यह है कि यदि किसी विशिष्ट—विशेष कथनके लिये दुहराया जाय तो एकार्थत्वदोष नहीं होता है। शब्दभेद रहनेपर भी यदि अर्थमें अभेद हो तो अर्थमें पुनरुक्ति, और एकही अर्थमें शब्द एकसा हो तो शब्दार्थोभयपुनरुक्ति होती है।

शब्द एकसा हो और अर्थ भिन्न हो तो कुछ दोष नहीं होता है, इसी दोषमें नवीनोक्त पुनरुक्तत्व और कथितपदत्व दोनों दोषोंका अन्तर्भाव हो जाता है ॥ १३५ ॥

उत्कामुन्मनयन्त्येते बालां तदलकत्विषः ।
अम्भोधरास्तडित्वन्तो गम्भीराः स्तनयित्नवः ॥ १३६ ॥

अर्थगतमेकार्थमुदाहरति—उत्कामिति । तस्याः बालाया अलकानां केशानां त्विषः कान्तय इव त्विषः कान्तयो येषां ते तदलकत्विषः श्यामलाः एते (मेघाः) तडित्वन्तो विद्युता युक्ताः गम्भीराः स्तनयित्नवः सशब्दाश्च अम्भोधराः उत्काम् उत्कण्ठाशालिनीम् इमां बालां युवतीम् उन्मनयन्ति उन्मनसं कुर्वन्ति । अत्र 'गम्भीराः स्तनयित्नवः' इति, 'उत्काम् उन्मनयन्ति' इति च पुनरुक्तिद्वयम् ॥ १३६ ॥

हिन्दी—इस उत्कण्ठिता युवतीको उसके बालोंके समान काले वर्णवाले, बिजलीसे युक्त, गम्भीर, गर्जन करनेवाले मेघ उन्मन बना देते हैं।

इस श्लोकमें 'उत्काम् उन्मनयन्ति' और 'गम्भीराः स्तनयित्नवः' यह दो पुनरुक्तियां हैं। 'तडित्वन्तः' पुनरुक्त नहीं है क्योंकि वह विशेषार्थ कहा गया है, उससे यह विशेष प्रतीत होता है कि बिजली युक्त होनेसे मेघ अधिक उत्कठाजनक है। यह अर्थपुनरुक्तिका उदाहरण हुआ, शब्दपुनरुक्तिका उदाहरण है—'रतिलीलाश्रमं भिन्ते सलीलमनिलो वहन्', प्रकारान्तरसे भी यदि दुबारा कहा जायगा तो पुनरुक्ति हो ही जायगी। जैसे—

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः' ॥

इस श्लोकमें पूर्वार्द्धोक्त अर्थ ही प्रकारान्तरसे उत्तरार्धमें कहा है ॥ १३६ ॥

अनुकम्पाद्यतिशयो यदि कश्चिद्विवक्ष्यते ।
न दोषः पुनरुक्तोऽपि प्रत्युतेयमलङ्क्रिया ॥ १३७ ॥

एकार्थत्वदोषवस्थलं निर्दिशति—अनुकम्पादीति । यदि कश्चित् अनुकम्पाद्यतिशयः दयादिभावातिशयः विवक्ष्यते—दयनीयताप्रकर्षः प्रमापयितुमिष्यते—तदा पुनरुक्तोऽपि न दोषः, प्रत्युत तादृशी पुनरुक्तिः अलङ्क्रिया गुण एव भवतीति । तथा चोक्तमत्र प्रसङ्गे भामहे—

१. कृति ।

कथमाक्षिप्तचित्तः सन् युक्तमेवाभिधास्यते ।
भयशोकाभ्यसूयासु हर्षविस्मययोरपि ।
यथाह गच्छ गच्छेति पुनरुक्तं न तद्विदुः ॥ १३७ ॥

हिन्दी—यदि किसी व्यक्तिविशेषके प्रति अतिदयनीयता आदिकी विवक्षा हो तो पुनरुक्तदोष नहीं होता है, प्रत्युत वह अलङ्कार-गुणस्वरूप हो जाता है ॥ १३७ ॥

हन्यते सा वरारोहा स्मरेणाकाण्डवैरिणा ।
हन्यते चारुसर्वाङ्गी हन्यते मञ्जुभाषिणी ॥ १३८ ॥

अनुकम्पाविवक्षायां पुनरुक्तेरुदाहरणमाह—**हन्यते सेति** । सा वरारोहा सुन्दरी अकाण्डवैरिणा अकारणशत्रुणा स्मरेण हन्यते पीडयते, चारुसर्वाङ्गी अनवद्यसर्वशरीरावयवा हन्यते, तथा मञ्जुभाषिणी हन्यते । अत्र 'हन्यते' इति पदस्य पुनरुक्त्या नायिकायाः कोऽपि दयनीयतातिशयः प्रत्याय्यते इति नात्र दोषः पुनरुक्तत्वं प्रत्युत गुण एवेति । एवं विहितानुवाद्यत्वादावपि पुनरुक्तिर्गुण एव, यथा—'उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च' इत्यादाविति बोध्यम् ॥ १३८ ॥

हिन्दी—यह सुन्दरी अकारणशत्रु कामदेव द्वारा पीडित की जाती है, तथा यह सर्वावयवानवद्य पीडित होती है, यह मधुरवचना पीडित होती है ।

इस उदाहरणश्लोकमें बार-बार 'हन्यते' कहनेसे उस सुन्दरीकी दयनीयता व्यञ्जित होती है, अतः यह 'हन्यते' की पुनरुक्ति दोष नहीं, गुण ही है । इसी तरह विहितानुवादस्थलमें भी पुनरुक्ति गुण ही होती है, जैसे—'उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च' इस उदाहरणमें ॥ १३८ ॥

निर्णयार्थं प्रयुक्तानि संशयं जनयन्ति चेत्[1] ।
वचांसि दोष एवासौ ससंशय इति स्मृतः ॥ १३९ ॥

ससंशयं नाम दोषं लक्षयति—**निर्णयार्थमिति** । यदि निर्णयार्थं प्रयुक्तानि निश्चयात्मकज्ञानजननाय प्रयुज्यमानानि वचांसि पदानि वाक्यानि वा संशयं जनयन्ति अनिश्चयात्मकं ज्ञानमुत्पादयन्ति, तदा असौ एव दोषः ससंशयः इति स्मृतः । संशयार्थं प्रयुक्तस्य संशयजनकत्वे तु न दोषः, तदर्थमेव प्रयोगात् । अयं च दोषो यत्र संशयेन निश्चितान्वयबोधानुदयवशात् निश्चितार्थानुपपत्तिस्तत्र शब्दगतः । यत्र त्वर्थबोधानन्तरं प्रकरणाज्ञाने वक्त्राद्यनिश्चयस्तत्रार्थगत इति बोध्यम् । तत्र शब्दगतस्यास्योदाहरणमनुपदं वक्ष्यते, अर्थगतस्योदाहरणं काव्यप्रकाशोक्तं यथा—

'मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।
सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणां किमु स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥'

अत्र प्रकरणाज्ञानेन शान्तशृङ्गारिणोः को वक्तेति न निश्चयः ॥ १३९ ॥

हिन्दी—जहाँ पर निश्चयात्मक ज्ञानके लिये उच्चारित पद अनिश्चयात्मक ज्ञान उत्पन्न करें, वही दोष ससंशयनामक दोष है ।

यह दोष वहाँ पर शब्दगत होता है जहाँ संशय हो जानेसे निश्चितान्वयबोध नहीं होनेके कारण निश्चितार्थ का ज्ञान नहीं हो पाता है । अर्थगत वहाँ होता है जहाँ प्रकरणज्ञान नहीं होनेके कारण वक्ता आदि का निश्चय नहीं हो पाता है ।

---

१. यत् ।

शब्दगत ससंशयका उदाहरण अभी आगे कहा जा रहा है, अर्थगत ससंशयका उदाहरण काव्यप्रकाशकारने 'मात्सर्यमुत्सार्य' इत्यादि श्लोक कहा है ॥ १३९ ॥

मनोरथप्रियालोकरसलोलेक्षणे सखि।
आराद्वृत्तिरसौ माता न क्षमा द्रष्टुमीदृशम् ॥ १४० ॥

शब्दगतं ससंशयदोषमुदाहरति—**मनोरथेति**। मनोरथप्रियः मनोरथोपनीतः पुरुषः तदालोकनरसे तद्दर्शनावेशे लोले चपले ईक्षणे यस्यास्तादृशे, मनोरथशतागतप्रियावलोकनचपलाक्षि सखि, असौ आराद्वृत्तिः समीपस्था (तव) माता ईदृशं तव प्रणयव्यापारम् ईक्षितुं सोढुं न क्षमा न शक्ता, अतो निवर्तस्वास्माद्दुरभिसन्धेरित्येकोऽर्थः, अथवा आराद्वृत्तिः अतिदूरस्था सा तव माता तवेदृशं व्यापारं द्रष्टुं न क्षमाऽतो यावत्तृप्ति विलोकय प्रियमिति वार्थः, अत्र कतरोऽर्थो वक्तुरभिमत इति निश्चयाभावात्संशयो नाम दोषः। स च 'आराद्दूरसमीपयोः' इति नानार्थशब्दोपनिबन्धनप्रभव इति शब्दगतः ॥ १४० ॥

हिन्दी—अरी मनोरथोपनीत प्रियतमके देखनेमें व्यस्तनयने, मेरी प्रिय सखि, तुम्हारी माता समीपस्थ है वह तुम्हारे इस गुप्त प्रणय-व्यापारको नहीं सह सकेगी।

पहले अर्थसे यह आशय निकलता है कि छोडो इस दुर्व्यवहारको, ओर दूसरे अर्थसे यह आशय निकलता है कि यथेच्छ देख लो।

इन दोनों अर्थोंमें कौनसा अर्थ कहनेवाली सखीका अभिमत था यह सन्देह बना ही रह जाता है, अतः यह ससन्देह दोष है।

'आरात्' शब्द दूर और समीप दोनों अर्थोंका वाचक होनेसे अनेकार्थक है वही इस सन्देहका बीज है, अतः यह ससन्देह दोष शब्दगत है ॥ १४० ॥

ईदृशं संशयायैव यदि जातु प्रयुज्यते।
स्यादलङ्कार एवासौ न दोषस्तत्र तद्यथा ॥ १४१ ॥

ससंशयस्य गुणत्वस्थलमाह—**ईदृशमिति**। यदि जातु कदाचित् ईदृशं ससंशयं संशयायैव संशयं जनयितुमेव प्रयुज्यते, तदाऽसौ ससंशयदोषः अलङ्कार एव संशयालङ्कार एव जायते, तत्र दोषो न भवति। तदुदाहरणमुच्यते ॥ १४१ ॥

हिन्दी—यदि कदाचित् संशय उत्पन्न करनेके ही लिये संशययुक्त वाक्यका प्रयोग किया जाय, तब वहाँ यह ससंशयदोष नहीं होगा, प्रत्युत वह संशयालङ्कार होगा। इस अदोषताका कारण तो लक्षणाप्रसक्ति ही है, क्योंकि लक्षणमें कहा है—'निश्चयार्थं प्रयुक्तानि संशयं जनयन्ति चेत्' ॥ १४१ ॥

पश्याम्यनङ्गजातङ्कलङ्घितां तामनिन्दिताम्।
कालेनैव कठोरेण ग्रस्तां किन्नस्तदाशया ॥ १४२ ॥

ससंशयदोषस्य गुणत्वमुदाहरति—**पश्यामीति**। अनङ्गजातङ्कलङ्घिताम् मदनजनितव्याधिनाऽऽक्रान्ताम् कठोरेण निष्कृपेण कालेन एव मृत्युनैव ग्रस्ताम् ताम् अनिन्दितां सुन्दरीं तव प्रेयसीं पश्यामि, नः अस्माकं तदाशया तदीयजीवनसंभावनया किम्? न किमपि तज्जीविताशायाः फलम्, साऽचिरादेव मरिष्यतीति भावः।

---

१. क्षणं। २. वादेव। ३. वा तु। ४. किं नुत। ५. स्तवदाशया।

अथवा अङ्गजः मदनः तस्यातङ्कः सन्तापः, स न भवतीत्यनङ्गजातङ्कः, तेन मदनसंतापभिन्नग्रीष्मसन्तापेन आक्रान्तां तां पश्यामि, अतो नस्तदाशया किम् ? अत्र नायकाकुलीकरणाय दूतीभूता सखी बुद्धिपूर्वकमेव ससंशयं वाक्यमाहेति नासौ दोषः ॥ १४२ ॥

हिन्दी—मदनसन्तापरूप व्याधिसे पीडिता उस अनिन्द्यसुन्दरी तुम्हारी प्रियतमाको कठोर कालसे ही ग्रस्त देख रही हूँ, अतः उसके विषयमें जीवनाशा करनेसे क्या प्रयोजन है ?

अथवा मदनसन्तापसे भिन्न ग्रीष्मरूप कठोर कालसे ही वह ग्रस्त है, उसके विषयमें जीवनाशा से क्या प्रयोजन ?

इसमें दूती बनी सखीने जान-बूझकर नायकको आकुल करनेके उद्देश्यसे ऐसा प्रयोग किया है, अतः यह ससंशय दोष नहीं, गुण है ॥ १४२ ॥

कामार्त्ता घर्मतप्ता वेत्यनिश्चयकरं वचः ।
युवानमाकुलीकर्तुमिति दूत्याह नर्मणा ॥ १४३ ॥

उदाहरणं सङ्गमयति—**कामार्त्तेति** । युवानम् नायकम् आकुलीकर्त्तुम् संशयोत्पादनद्वारा नायिकासमीपोपसर्पणाय व्याकुलयितुम् दूती सखी नर्मणा वचनचातुर्येण कामार्त्ता ग्रीष्मसन्तप्ता वा वर्त्तत इति अनिश्चयकरं वचः आह, अतो विदुष्या सख्या बुद्धिपूर्वकं तथोक्तत्वान्न दुष्टत्वमिति भावः ॥ १४३ ॥

ऊपरवाले उदाहरणमें दूतीने कामार्त्त है या ग्रीष्मपीडित है इस तरहका सन्दिग्ध वचन इसलिए कहा है कि सन्देहमें पड़कर नायक नायिकाके समीप जानेके व्याकुल हो उठे, अतः यहाँ पर ससंशय दोष नहीं है ॥ १४३ ॥

उद्देशानुगुणोऽर्थानामनूद्देशो न चेत्कृतः[1] ।
अपक्रमाभिधानं तं[2] दोषमाचक्षते बुधाः ॥ १४४ ॥

अपक्रमं नाम दोषं लक्षयति—**उद्देशेति** । अर्थानाम् उद्देशः प्रथमोपन्यासः तदनुगुणस्तदनुसारी अनूद्देशः तत्सम्बन्धिनाम् पश्चादभिधानम् चेत् न कृतः, तं दोषं बुधाः अपक्रमाभिधानम् आहुः । येन क्रमेण प्रथमोपन्यासः कृतस्तेनैव क्रमेण यदि पश्चादपि तत्सम्बन्धिनोऽर्थाः न उद्दिष्टाः अक्रमेणाभिधानं कृतं तदाऽपक्रमो दोषः । क्रमेणाभिधाने क्रमालङ्कार उक्तस्तत्परिपन्थी दोषोऽयम् ॥ १४४ ॥

हिन्दी—जिस क्रमसे अर्थोंको पहले कहा जाय, उसी क्रमसे तत्सम्बन्धिपदार्थोंके फिरसे कथन में क्रमनामक अलङ्कार कहा गया है, उसीका विपरीत यह अपक्रम नामक दोष है, यदि प्रथमोक्त पदार्थ जिस क्रमसे कहे गये हों, तत्सम्बन्धि पदार्थ के कथनमें उसी क्रमका अवलम्बन न किया जाय तो यह अपक्रमदोष होता है ॥ १४४ ॥

स्थितिनिर्माणसंहारहेतवो जगताममी[3] ।
शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः पालयन्तु वः ॥ १४५ ॥

अपक्रममुदाहरति—**स्थितिनिर्माणेति** । अमी जगतां स्थितिः सत्ता, निर्माणमुत्पादनं, संहारो विनाशस्तेषां हेतवः कारणभूताः शम्भुः नारायणः अम्भोजयोनिर्ब्रह्मा च ते त्रयो वः युष्मान पालयन्तु । अत्र स्थितिनिर्माणसंहाराणां येन पौर्वापर्यक्रमेणोद्देशस्तत्सम्बन्धिनां कर्त्तृतयाऽपेक्षितानां देवानाम् तेन क्रमेणोपन्यासो न कृतः, तेन

१. तद्वेव । २. यथा । ३. तामवाः ।

क्रमेणोपन्यासे हि अम्भोजनारायणशम्भव इति कथितं स्यात् स्थित्यादीनां पूर्वोद्दिष्टानां कर्तारोऽत्र क्रममनादृत्य निबद्धा इति भवत्यपक्रमदोषः ॥ १४५ ॥

हिन्दी—जगत्‌के स्थिति, निर्माण और संहारके कारण यह शम्भु-नारायण-ब्रह्मा आपलोगों का पालन करें।

इस उदाहरण में स्थिति-निर्माण-संहारका जिस पौर्वापर्य-क्रमसे कथन हुआ है, उनके कर्ता देवों का भी उसी क्रमसे अभिधान होना चाहिये, अर्थात् नारायण-ब्रह्मा-शम्भु इस क्रमसे कहना चाहिये, तभी यथासंख्य अन्वय हो सकेगा, वैसा नहीं कहा गया है, अतः इसमें अपक्रमदोष हुआ ॥ १४५ ॥

यत्नः[1] संबन्धविज्ञान[2]हेतुकोऽपि कृतो यदि ।
क्रमलङ्घनमप्याहुः सूरयो[3] नैव दूषणम् ॥ १४६ ॥

अपक्रमदोषस्यादोषत्वस्थलं दर्शयति—**यत्न इति**। संबन्धविज्ञानहेतुकः अन्वयबोधौपयिकः अन्वयस्य सुखावबोधे कारणीभूतो यत्नो यदि कृतः, तदा सूरयः क्रमलङ्घनम् अपक्रमम् अपि दूषणम् नैव आहुः। अन्वयानवगम एवापक्रमस्य दूषकताप्रयोजकः, तदर्थे यत्ने कृते सत्यन्वयस्य सुखावसेयतयाऽदोषत्वमस्त्येवेति ॥ १४६ ॥

हिन्दी—यदि अन्वय-बोध लिये यत्न किया गया हो (यदि अपेक्षित अन्वयबोधके लिये कविने कुछ प्रयत्न कर दिया हो) तो अपक्रमको विद्वान् दूषण नहीं मानते। अन्वयमें बाधा होनेसे ही तो वह दोष होता है, यदि कविकृत यत्नविशेषसे अन्वयबोध सुकर हो जाय तो वह दोष क्यों माना जायगा? ॥ १४६ ॥

बन्धुत्यागस्तनुत्यागो देशत्याग इति त्रिषु ।
आद्यन्तावायतक्लेशौ मध्यमः क्षणिकज्वरः ॥ १४७ ॥

अपक्रमदोषस्यादोषत्वस्थलमुदाहरति—**बन्धुत्याग इति**। बन्धुत्यागादिषु त्रिषु त्यागेषु आद्यन्तौ बन्धुत्यागदेशत्यागौ आयतक्लेशौ दीर्घक्लेशविधायिनौ, मध्यमः तनुत्यागस्तु क्षणिकज्वरः अल्पकालसन्तापकरः, तनुत्यागो बन्धुत्याग-देशत्यागापेक्षया सुमहद्व्यथ इत्यर्थः। अत्र कविः 'आद्यन्तौ' 'मध्यम' इति चोक्त्वाऽन्वयबोधं सुगमं कृतवानतो न दोषः, अस्यैव स्थाने यदि 'द्वावेवात्यायतक्लेशौ तृतीयः क्षणिकज्वरः' इत्यपठिष्यतदा कौ द्वौ, कश्च तृतीय इति बोधकष्टमभविष्यदेव, ततश्चापक्रमदोषो मन्तव्य एव स्यादिति भावः ॥ १४६ ॥

हिन्दी—बन्धुत्याग, देहत्याग और देशत्याग इन तीन त्यागोंमें आदि-अन्त (बन्धुत्याग और देशत्याग) दीर्घकाल तक कष्ट देनेवाले होते हैं, और तीसरा (देहत्याग) कुछ समयके लिये ही सन्तापदायी होता है।

इस उदाहरणमें आदि, अन्त, मध्यम शब्दोंका प्रयोग करके कविने अन्वयबोधका उपाय कर दिया है अतः यहाँ अपक्रमदोष नहीं होता है। यदि इसीके बदले—'द्वावेवात्यायतक्लेशौ तृतीयः क्षणिकज्वरः' ऐसा पाठ कर दिया जाय तो अपक्रमदोष हो ही जायगा ॥ १४७ ॥

शब्दहीनमनालक्ष्यलक्ष्यलक्षणपद्धतिः ।
पदप्रयोगो[4]ऽशिष्टेष्टः शिष्टेष्टस्तु[5] न दुष्यति ॥ १४८ ॥

---

१. यत्र। २. ज्ञाने। ३. अदोषं सूरयो यथा। ४. योगः शिष्टे। ५. य शिष्टेष्टं हि।

शब्दहीनमुपदर्शयति—**शब्दहीनमिति**। लक्ष्यं प्रयोगः, लक्षणं सूत्रम्, तयोः पद्धतिः मार्गः, अनालक्ष्या अप्रतीयमाना लक्ष्यलक्षणपद्धतिर्यत्र तादृशः सूत्रकृतसाधुत्वरहितः अनुशासनविरुद्धः पदप्रयोगः शब्दहीनम् शब्दहीनत्वरूपदोषस्वरूपम्। अशिष्टेष्टः शिष्टजनगर्हितः (अनुशासनसंमतोऽपि) पदप्रयोगः शब्दहीनम्, तथा च द्विविधं शब्दहीनम्—एकमसाधुत्वकृतम्, अपरं त्वप्रयुक्तत्वकृतम्।

शिष्टसंमतत्वे तु लक्षणहीनमपि दुष्यति-तदाह-**शिष्टेष्टस्तु न दुष्यतीति** ॥ १४८ ॥

हिन्दी—लक्ष्यलक्षणमार्ग—सूत्रादिकृत साधुत्व जहाँ नहीं मालूम पड़े, उस तरहके पदप्रयोग को शब्दहीन कहते हैं और साधुत्व होने पर भी शिष्टजनगर्हित शब्दप्रयोगको भी शब्दहीन ही कहते हैं।

इस प्रकार शब्दहीन दो प्रकार का है, एक व्याकरण-लक्षणहीन, दूसरा अप्रयुक्त। व्याकरणलक्षणहीनका उदाहरण—'अवते भवते' इत्यादि आगे कहेंगे, अप्रयुक्तत्वमूलक शब्दहीनका उदाहरण है—'हन्ति हन्त कान्तारे कान्तः कुटिलकुन्तलः', 'पद्मो भाति सरोवरे', 'दैवतोऽस्य पिशाचो राक्षसोऽथवा'। दण्डीने अप्रयुक्तत्व असमर्थत्वको भी शब्दहीन ही माना है। यही शब्दहीनदोष यदि शिष्टपरिगृहीत हो तो दोष नहीं माना जाता है, जैसे—'हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्' इसमें 'महात्मनाम्' में षष्ठी शास्त्रविरुद्ध होने पर भी महाकविगृहीत है, अतः दोष नहीं माना जाता है ॥ १४८ ॥

अवते भवते बाहुर्महीमर्णवशक्करीम्।
महाराजन्न जिज्ञासा नास्तीत्यासां गिरां रसः ॥ १४९ ॥

व्याकरणलक्षणहीनं नाम शब्दहीनमुदाहरति—**अवते इति**। हे महाराजन, भवते तव बाहुः अर्णवशक्वरीम् सागरमेखलां महीम् अवते रक्षति, जिज्ञासा अत्र विषये मम ज्ञातुमिच्छा नास्ति, प्रत्यक्षीकृतमिदं मयेति भावः। आसाम् पूर्वोक्तरूपाणां गिराम् रसः सन्तोषप्रदो धर्मविशेषः नास्ति, 'अवते, भवते बाहुः, 'महाराजन्' इत्यादिनि पदानि व्याकरणलक्षणहीनतया रसं न पुष्णन्ति, प्रत्युत वैरस्यमेव जनयन्तीति शब्दहीनत्वदोषोऽत्र मतः। अवते इत्यात्मनेपदमनुचितम्, भवते इति चतुर्थी न युक्ता, महाराजन्' इत्यत्र च टच् अवश्यमपेक्ष्यते इति बोध्यम् ॥ १४९ ॥

हिन्दी—महाराजन्, आपके बाहु सागरमेखला पृथ्वीका पालन करते हैं, इस विषयमें मुझे जिज्ञासा नहीं, निश्चयात्मक ज्ञान है; क्योंकि प्रत्यक्ष देखा है।

इस तरहकी अशुद्धभाषामयी उक्ति में रसास्वाद नहीं होता है, इनमें व्याकरण-त्रुटि देखकर विरसता का ही उदय आता है।

इस उदाहरणका—'अवते' आत्मनेपद अशुद्ध, 'भवते' में चतुर्थी गलत है, और महाराजन् में टच् होकर महाराज होना चहिये ॥ १४९ ॥

दक्षिणाद्रेरुपसरन् मारुतश्चूतपादपान्।
कुरुते ललिताधूतप्रवालाङ्कुरशोभिनः ॥ १५० ॥

शिष्टानुगृहीतस्य शब्दहीनत्वदोषस्यादोषभावमुदाहरति—**दक्षिणाद्रेरिति**। दक्षिणाद्रेर्मलयपर्वतात् उपसरन् आगच्छन्, मारुतो वायुः चूतपादपान् आम्रवृक्षान् ललितं

मन्दम् आधूताः कम्पिताः ये प्रवालाङ्कुराः नवकिसलयप्ररोहाः तैः शोभिनः शोभाशालिनः कुरुते विदधति ॥ १५० ॥

हिन्दी—दक्षिणाचल-मलयसे चलनेवाली वायु आम्रवृक्षोंको मन्दमन्द कम्पमान प्रवालोंसे सुशोभित बनाती है ॥ १५० ॥

इत्यादिशास्त्रमाहात्म्यदर्शनालसचेतसाम् ।
अपभाषणवद्भाति न च सौभाग्यमुज्झति ॥ १५१ ॥

उदाहरणं विशदीकरोति—**इत्यादिशास्त्रेति** । इत्यादि दक्षिणाद्रेरुपसरन् इत्यादिपदं शास्त्रमाहात्म्यम् साधुशब्दप्रयोगे फलबोधकशास्त्रगौरवम्, तद्दर्शने अलसचेतसाम् मन्दानाम् (वचः) अपभाषणवद्भाति अशुद्धमिव प्रतीयते, परम् शिष्टपरिग्रहेण सौभाग्यं सौष्ठवं न उज्झति न त्यजति ।

साधारणत उपसरन्नित्यत्रोपधावतीति युक्तं, एवमेव करोतीति युक्तं 'कुरुते' इत्यस्य स्थाने, परन्तु शिष्टाः त्वरितगमने एव सरतेर्धावादेशमाहुः, अत्र तु मन्दा गतिर्विवक्षितेति, कर्तृगामिक्रियाफलस्थले चेतनकर्तृकादेवात्मनेपदमभ्युपगच्छन्त्यत्र तु वायुर्न तथेति मन्यमानाः प्रयोगमीदृशं शुद्धं सुन्दरं चाहुरिति तात्पर्यम् ॥ १५१ ॥

हिन्दी—'दक्षिणाद्रेरुपसरन्' इत्यादि पदको देखनेसे ऐसा लगता है मानो किसी व्याकरणशास्त्रीय नियमको नहीं देखनेवालेका अशुद्ध प्रयोग हो, परन्तु शिष्टपरिगृहीत होनेके कारण इनका सौष्ठव नहीं गया है, यह सौष्ठवयुक्त ही हैं । यहाँ साधारणतः देखनेसे उपसरन्के स्थानमें उपधावन् होना चाहिये और कुरुते के स्थानमें करोति होना चाहिये, ऐसा लगता है, क्योंकि सूत्रके अनुसार वैसा ही होना चाहिये, परन्तु कविजन-सम्प्रदायमें ऐसा व्यवहार हो गया है कि सवेग गमनमें ही धावति का प्रयोग होता है, अतः मन्दगतिविवक्षामें यहाँ उपसरन्का ही प्रयोग उचित है । इसी तरह कर्तृगामिक्रियाफलमें आत्मनेपदका होना चेतनकर्तृक स्थलमें ही सीमित है, अतः वायुकर्त्ता होनेसे यहाँ आत्मनेपद ठीक ही है । यह नियम शिष्टजनकृत है, अतः इनको मानकर इस प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं ॥ १५१ ॥

श्लोकेषु नियतस्थानं पदच्छेदं यतिं विदुः ।
तदपेतं यतिभ्रष्टं श्रवणोद्वेजनं यथा ॥ १५२ ॥

यतिभ्रष्टं नाम दोषं लक्षयति—**श्लोकेष्विति** । श्लोकेषु नियतस्थानं शास्त्रकृद्भिः निश्चिताक्षरं पदच्छेदं पदावसाने विश्रामं यतिं विदुः आहुः, तदपेतं च यतिभ्रष्टमाहुः, तच्च श्रवणोद्वेजनं श्रुत्युद्वेगकरं भवति, यथेत्युदाहरणप्रस्तावाय ॥ १५२ ॥

हिन्दी—श्लोकमें विश्रामके स्थान निर्दिष्ट हुआ करते हैं, छन्दःशास्त्रके आचार्योंने किस छन्दमें कहाँ कहाँ विश्राम हुआ करता है इसका निश्चय कर दिया है, उसी निश्चित विश्रामस्थानको यति कहते हैं, उसीका विचार अगर नहीं हो, अस्थानमें ही विश्राम किया गया हो तो यतिभ्रष्ट नामक दोष होता है, वह श्रवणोद्वेगकर होता है । छन्दोमञ्जरी में यतिका लक्षण है :—'यतिर्जिह्वेष्टविश्रामस्थानं कविभिरुच्यते' । वामनने यतिभ्रष्टका लक्षण किया है :—'विरसविरामं यतिभ्रष्टम्' । अस्थानमें विराम होनेसे पदपदार्थका बोध कष्टकर हो जाता है, सुननेमें विचित्रसा प्रतीत होता है, इसी से दोष माना गया है ॥ १५२ ॥

---

१. शास्त्रयाथार्थ्य । २. स ।

स्त्रीणां सङ्गी । तविधिमयमा । दित्यवंशो नरेन्द्रः ।
पश्यत्यक्लि । ष्टरसमिह शि । ष्टैरमेत्यादि दुष्टम् ।
कार्याकार्या । ण्ययमविकला । न्यागमेनैव पश्यन्
वंश्यामुर्वीं[1] वहति नृप इत्यस्ति चैवं प्रयोगः ॥ १५३ ॥

पद्यार्धेन यतिभ्रष्टोदाहरणं तदुत्तरार्धेन च तदपवादमाह—**स्त्रीणामिति** । अयम् आदित्यवंश्यः सूर्यवंशोत्पन्नः नरेन्द्रो राजा शिष्टैः सभ्यजनैः अमा सह स्त्रीणाम् अक्लिष्टरसं बहुविधरसप्रदम् सङ्गीतविधिम् नृत्यवाद्यगीतविधानं पश्यति, इत्यादि एतादृशं पदं दुष्टम्, अस्थाने विरामाश्रयणात्, तथाहि मन्दाक्रान्तानामकेऽत्र वृत्ते चतुर्थे, ततः षष्ठे, ततश्च सप्तमे यतिरुचिता, परं तत्र पदावसानमपेक्षितमपि नात्र श्लोके कृतं; किन्तु पदमध्य एव विरन्तव्यं भवतीति यतिभ्रष्टमेतत् । पदमध्ये कृतया यत्या श्रवणोद्वेगकरणाद्यतिभ्रष्टरूपदोषोऽत्र बोध्यः ।

क्वचित् सन्धिविकारेण मिलितपदद्वयमध्ये यदि यतिर्भवति तदा न दोषस्तत्र श्रवणोद्वेगाभावादिति यतिभ्रष्टापवादमुत्तरार्धेनाह—**कार्येति** । अयं राजा अविकलानि समस्तानि कार्याकार्याणि आगमेन शास्त्रेण एव पश्यन् आलोचयन् वश्याम् स्वायत्तीकृताम् उर्वीं वहति धारयति—एवं प्रयोगः अस्ति शिष्टैः कृत इति शेषः । अत्रोदाहरणे कार्याकार्याण्ययमविकलान्यागमेनेत्यत्र सन्धौ सति पदान्तवर्णस्योत्तरपदादिगतत्वेनावशिष्टस्यैव पदत्वात्तत्र विश्रामस्योचितत्वेन न भवति यतिभ्रष्टत्वमिति भावः ॥ १५३ ॥

हिन्दी—'स्त्रीणां सङ्गीतविधिमयमादित्यवंश्यो नरेन्द्रः' यह मदाक्रान्ता वृत्त है, इसके चरणोंमें चतुर्थ, छठे, पुनः सप्तम अक्षरोंपर विराम लक्षणोक्त हैं, उन अक्षरोंपर पद भी पूर्ण होते रहना चाहिये, परन्तु वैसा नहीं है, पदके बीचमें ही विश्राम करना पड़ता है, अतः ऐसा प्रयोग यतिभ्रष्ट है ।

इसी श्लोकके उत्तरार्धमें यतिभ्रष्टदोषका अपवाद बताया गया है 'कार्याकार्याण्ययम् अविकलान्यागमेनैव पश्यन्' इस चरणमें 'कार्याकार्याणि + अयम्' 'अविकलानि + आगमेन' इस प्रकार सन्धि हुई है, जिससे पदान्तवाले वर्ण उत्तरपदके आदिमें चले गये हैं, 'कार्याकार्या' यही पद बच गया है, अतः वहाँ विश्राम होनेसे श्रवणोद्वेग नहीं होता, अतः वैसा प्रयोग शिष्टों द्वारा किया जाता है ॥१५३॥

लुप्ते पदान्ते शिष्टस्य पदत्वं निश्चितं यथा ।
तथा सन्धिविकारान्तंपदमेवेति[2] वर्ण्यते ॥ १५४ ॥

यतिभ्रंशदोषस्यादोषत्वस्थलीयमुदाहरणमुपपादयति—**लुप्ते इति** । यथा पदान्ते पदचरमावयवे वर्णे लुप्ते सति शिष्टस्य तद्वर्णहीनभागस्य पदत्वं निश्चितं तथा सन्धिविकारान्तपदं पदमेव इति तथा वर्ण्यते निर्दुष्टतया कविभिः प्रयुज्यते । अयमाशयः—यथा 'राजा' इत्यादौ नकारलोपे शिष्टमाकारान्तं पदं मन्यते, तथैव 'कार्याकार्याणि' इत्येतदन्तगतस्य णि इत्यस्य परस्वरवर्णेन सति सन्धौ शिष्टमाकारान्तं पदमवशिष्यते, तस्य च विश्रान्तिस्थानत्वे यतिभ्रष्टत्वं नास्तीति ॥ १५४ ॥

हिन्दी—जैसे पदान्तवर्णके लोप हो जाने पर शिष्ट भागको पद मानना निश्चित हैं, उसी तरह पदके अन्तमें सन्धिविकार हो जाने पर बचे हुए भागको ही पद मान लिया जाता है,

---

१. वंश्याम् । २. रान्तं पदम् ।

अतः तादृश पदके अन्तमें यतिभ्रंशदोष नहीं माना जाता है, 'कार्याकार्याणि' वाले पदके अन्त में इकारका यण् हो, वह अगले पदमें चला गया, णकार स्वरहीन होकर परवर्णका अनुगामी बन गया, शेष भाग पद माना गया 'कार्यकार्या' इतनेको ही पद कहा गया, वहाँ यदि यति हुई तो यह दोष नहीं है, अतः ऐसा प्रयोग अनुमोदित है ॥ १५४ ॥

तथापि कटु कर्णानां कवयो न प्रयुञ्जते।
ध्वजिनी तस्य राज्ञः के। तूदस्तजलदेत्यदः ॥ १५५ ॥

पूर्वदर्शितापवादस्य श्रुतिकटुत्वव्यतिरेकसामानाधिकरण्यमेवेति दर्शयति—**तथापीति।** तथापि पदान्ते सन्धिविकारेण शिष्टभागस्य पदत्वस्वीकारेऽपि कर्णानां कटु श्रुत्युद्वेजकं तादृशं कवयो न प्रयुञ्जते, यथा तस्य राज्ञो ध्वजिनी सेना केतूदस्तजलदा ध्वजवंशक्षिप्तमेघा अस्तीति शेषः। अत्र केतु + उदस्तपदयोः सन्धौ सति श्रुतिकटुत्वं प्रसक्तं तद्यतिनियमानतिक्रमेऽपि परिहर्तव्यमेवेति भावः ॥ १५५ ॥

हिन्दी—यति नियमानुकूल होनेपर भी यदि श्रुतिकटुत्व हो जाय तो कविगण उसका प्रयोग नहीं करते हैं, जैसे 'केतूदस्तजलदा'। यहाँ केतु + उदस्त पदोंमें सन्धि हो गयी, यतिभङ्गका नियम नहीं लगा, फिर भी श्रुतिकटुताके कारण वैसा प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये।

इसका तात्पर्य यह है कि सन्धिविकारान्तपद श्रुतिकटुत्वसे अस्पृष्ट रहेगा, तब तो वह प्रयोगयोग्य है, अन्यथा नहीं, अत एव 'केतूदस्तजलदा' वाला यतिभ्रष्ट ही माना जायगा ॥ १५५ ॥

वर्णानां न्यूनताधिक्ये गुरुलघ्वयथास्थितिः।
यत्र तद्भिन्नवृत्तं स्यादेष दोषः सुनिन्दितः ॥ १५६ ॥

भिन्नवृत्तं लक्षयति—**वर्णानामिति।** यत्र वृत्ते वर्णानाम् वृत्ताक्षराणाम् न्यूनता संख्याह्रासः, आधिक्यम् संख्यावृद्धिश्च स्यात्, अथवा गुरोर्लघोर्वा अयथास्थितिः यत्र ह्रस्वभावोऽपेक्ष्यते तत्र गुरुभावः, एवं यत्र गुरुभावोऽपेक्ष्यते तत्र ह्रस्वत्वं स्यात्तत्र भिन्नवृत्तत्वं नाम दोषः भवति, स चातीव सर्वथा निन्दित इत्यर्थः ॥ १५६ ॥

हिन्दी—जिस वृत्तमें वर्ण कम अथवा अधिक हो, या गुरुकी जगहमें ह्रस्व, ह्रस्वकी जगहमें गुरु हो, वह भिन्नवृत्त है, इसे अतिवर्जनीय जानना चाहिये ॥ १५६ ॥

इन्दुपादाः शिशिराः स्पृशन्तीत्यूनवर्णता।
सहकारस्य किस(ल)यान्यार्द्राणीत्यधिकाक्षरम् ॥ १५७ ॥

भिन्नवृत्तप्रभेदं न्यूनवर्णमधिकवर्णञ्चोदाहरति—**इन्दुपादा इति।** शिशिराः शीतला इन्दुपादाः स्पृशन्तीति न्यूनवर्णम्, एकाक्षराल्पत्वात्। एवं सहकारस्य किसलयानि आर्द्राणि इति चाधिकवर्णम्, अक्षरद्वयाधिक्यात् ॥ १५७ ॥

हिन्दी—ऊपर वाले उदाहरणके पूर्वार्ध भागमें एक अक्षर कम है, अतः वह न्यूनवर्ण हुआ, एवं उत्तरार्धमें दो अक्षर अधिक होनेसे अधिक वर्ण हुआ ॥ १५७ ॥

कामेन बाणानिशाता विमुक्ता मृगेक्षणास्वित्ययथागुरुत्वम्।
मदनबाणा निशिताः पतन्ति वामेक्षणास्वित्ययथालघुत्वम् ॥ १५८ ॥

गुरुलघ्वयथास्थितिरूपं भिन्नवृत्तमुदाहरति—**कामेनेति।** कामेन निशाताः तीक्ष्णाः बाणाः मृगेक्षणासु विमुक्ताः। अत्र पद्यार्धे 'निशाताः' इत्यत्र मध्यस्थ आकारोऽस्थानगुरुः।

---

१. वर्णानाम्। २. तत्र। ३. निशिता। ४. स्मरस्य। ५. मृगेक्षणा।

तत्र निशिता इति पाठे दोष उद्धृतो भवति । मदनबाणा निशिताः पतन्ति मृगेक्षणासु इति द्वितीयार्धे अयथालघुत्वम्, यत्र लघुत्वं नोचितं तत्र लघुत्वं कृतमिति, यथा आद्ययोर्वर्णयोर्द्वयोर्गुरुत्वमपेक्ष्यते, तच्च न कृतमिति दोष एव ॥ १५८ ॥

हिन्दी—भिन्नवृत्तके प्रभेदोंमें गुरुलघ्वयथास्थितिनामक प्रभेदका उदाहरण है—कामेन इत्यादि। इस श्लोकमें छन्दःशास्त्रीय नियम-विरुद्ध ह्रस्व-दीर्घ वर्ण का न्यास किया गया है। इसमें उपजातिवृत्त है, तदनुसार 'निशाताः' का द्वितीय अक्षर लघु होना चाहिये, कर दिया गया है गुरु। एवं उत्तरार्धमें द्वितीय अक्षर गुरुके बदले लघु कर दिया गया है, यही अयथागुरुत्व और अयथालघुत्वरूप भिन्नवृत्तत्व यहाँ दोष है ॥ १५८ ॥

न संहितां विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत् ।
तद्विसन्धीति निर्दिष्टं न प्रगृह्यादिहेतुकम् ॥ १५९ ॥

विसन्धिकं नाम दोषभेदं लक्षयति—**न संहितामिति**। संहितां न विवक्षामि न कर्त्तुमिच्छामि इति कृत्वा यत् पदेषु पदावयववर्णेषु असन्धानम् सन्धिविरहः तत् विसन्धीति निर्दिष्टम्, अर्थात् यत्र सत्यामपि सन्धेः प्राप्तौ केवलमविवक्षाकृतः सन्धिविरहस्तद्विसन्धीति मतम्, अस्य दोषस्यापवादमाह—**न प्रगृह्येति**। यत्र प्रगृह्यसंज्ञादिद्वारकः सन्धिविरहस्तत्र विसन्धित्वदोषो न भवतीति ॥ १५९ ॥

हिन्दी—व्याकरणशास्त्रमें नियम है कि—'संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः। नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥' इस नियमके अनुसार एक पद, एक चरणके मध्यमें संहिता होती है, वहाँ सन्धिका होना अनिवार्य है, तथापि यदि कोई प्रयोक्ता केवल इसीलिये सन्धि न करके प्रयोग करे कि मैं संहिता की विवक्षा नहीं करता हूँ, तो वैसे स्थलमें विसन्धित्व नामक दोष होता है।

यदि प्रगृह्यादि संज्ञाके हो जानेसे सन्धिकार्य नहीं हो पाता हो तो वैसे स्थलमें विसन्धित्व दोष नहीं माना जाता है ॥ १५९ ॥

मन्दानिलेन चलता[1] अङ्गनागण्डमण्डले ।
लुप्तमुद्भेदि[2] घर्माम्भो नभस्यस्मद्वपुष्यपि[3] ॥ १६० ॥

विसन्धिनामकदोषमुदाहरति—**मन्दानिलेति**। नभसि आकाशे चलता मन्दानिलेन अङ्गनागण्डमण्डले वनिताकपोलतले उद्भेदि समुत्पन्नं घर्माम्भः लुप्तम्, अस्मद्वपुष्यपि उद्भेदि घर्माम्भः लुप्तम्। अत्रोदाहरणे प्रथमपादान्ताकारस्य द्वितीयपादाद्यकारेण सह सन्धिर्न कृत इति, तथा सति वर्णन्यूनतापत्तेः, अतो विसन्धित्वनामको दोषोऽयम् ॥ १६० ॥

हिन्दी—आकाशमें चलने वाली मन्द वायुसे स्त्रियोंके गण्डस्थल पर उत्पन्न स्वेदकण दूर कर दिये गये, और हमारे शरीर पर वर्त्तमान स्वेदकण भी दूर कर दिये गये। इस उदाहरणश्लोकमें प्रथमपादान्तवर्त्ती आकार और द्वितीयपादादिवर्त्ती अकारमें अवश्यंभावी सन्धि छोड़ दी गई है, अतः यहाँ विसन्धि नामक दोष है ॥ १६० ॥

मानेर्ष्ये इह[4] शीर्येते स्त्रीणां हिमऋतौ प्रिये ।
आसु[5] रात्रिष्विति प्राज्ञैराम्नातं[6] व्यस्तमीदृशम्[7][8] ॥ १६१ ॥

---

१. चरता। २. क्लेदच। ३. स्यस्मनस्यपि। ४. ईदृशी स्त्रीणां नास्ताम् हिम। ५. अमू आदिष्विति। ६. आघातम्। ७. नाक्षमी। ८. अस्माच्छ्लोकात्परतः क्वचिदधिकम्—आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने। को हि नाम शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् ॥

प्रगृह्यादिनाऽनुमतं सन्धिविश्लेषं दर्शयति—**मानेर्ष्ये इति**। हे प्रिये, इह हिमऋतौ हेमन्तकाले आसु दीर्घशीतासु रजनीषु स्त्रीणाम् मानेर्ष्ये मानः प्रणयकोपः, ईर्ष्या प्रियापराधदर्शनजन्मा कोपश्च ते उभे अपि शीर्येते नाशं गच्छतः, मानमीर्ष्यां च विहाय स्त्रियः प्रियानाश्लिष्यन्तीति भावः। ईदृशं व्यस्तमसंहितम् प्राज्ञैराम्नातम् इष्टतयानुमतम् ईदृशविसन्धित्वस्य व्याकरणानुमोदिततयाऽदुष्टत्वम् इति भावः॥ १६१॥

हिन्दी—हे प्रिये, इस हेमन्तसमयकी इन दीर्घ शीतल रात्रियोंमें स्त्रियोंके मान तथा ईर्ष्याभाव स्वयं दूर हो जाते हैं। यहाँ 'मानेर्ष्ये इह' इसमें 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इस सूत्रसे प्रकृतिभाव हो गया है, और 'हिमऋतौ' यहाँ 'ऋत्यकः' इस पाणिनीयसूत्रसे प्रकृतिभाव हो गया है, अतः इस तरहके विसन्धित्व दोषको विद्वानोंने शास्त्रानुमोदित होनेसे ग्राह्य माना है॥ १६१॥

देशोऽद्रिवनराष्ट्रादिः कालो रात्रिंदिवर्त्तवः।
नृत्यगीतप्रभृतयः कलाः कामार्थसंश्रयाः॥ १६२॥
चराचराणां भूतानां प्रवृत्तिर्लोकसंज्ञिता।
हेतुविद्यात्मको न्यायः सस्मृतिः श्रुतिरागमः॥ १६३॥
तेषु तेष्वयथारूढं यदि किञ्चित् प्रवर्त्तते।
कवेः प्रमादाद्देशादिविरोधीत्येतदुच्यते॥ १६४॥

'देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च' इत्यनेन पूर्वं दोषोद्देशप्रस्तावे देशादिविरुद्धानां दोषत्वमुक्तं, सम्प्रति तन्निरूपयितुं देशादीन् परिभाषते—**देश इति**। अद्रिवनराष्ट्रादिः देशः, आदिना समुद्रग्रामादिपरिग्रहः। रात्रिंदिवर्त्तवः इत्यपि माससंवत्सरादीनामुपलक्षकम्। कामार्थसंश्रयाः कामस्य अर्थस्य चाश्रयभूताः नृत्यगीतप्रभृतयः चतुष्षष्टिः कलाः॥ १६२॥

चराचराणां स्थावरजङ्गमात्मकानां भूतानां पदार्थानां प्रवृत्तिः व्यवहारः लोकसंज्ञिता लोकपदप्रतिपाद्यः। हेतुविद्यात्मकः तर्कशास्त्ररूपः न्यायः, सस्मृतिः श्रुतिः धर्मशास्त्रोपपन्नो वेदः, आगमः शैवादिशास्त्रम्॥ १६३॥

तेषु तेषु देशादिषु आगमान्तेषु अयथारूढं प्रसिद्धिविरुद्धं किञ्चित् यदि कवेः प्रमादात् अनवधानतावशात् प्रवर्त्तते वर्ण्यते, तदा एवंप्रकारकं वचनं देशादिविरुद्धमुच्यते। उक्तश्चायमर्थो वामनेन—'देशकालस्वभावविरुद्धानि, लोकविरुद्धानि, कलाचतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धार्थानि विद्याविरुद्धानि' इति॥ १६४॥

हिन्दी—दोषोंको बताते समय—'देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च' ऐसा कहा था, उनमें देशादिकी परिभाषा बता रहे हैं। देश—अद्रि, वन, राष्ट्र आदि। काल—रात्रि, दिन, ऋतु। काम तथा अर्थका आश्रयभूत सम्पर्क—कला। कलायें ६४ हैं, उनमें नृत्यगीत प्रभृति प्रसिद्ध हैं॥ १६२॥

स्थावरजङ्गमात्मक संसारका व्यवहार लोकशब्दसे कहा जाता है, तर्कशास्त्ररूप न्याय, एवं धर्मशास्त्रयुक्त वेद, तथा शैवादि आगमशास्त्र विद्यायें हैं॥ १६३॥

इनमें—देश, काल, कला, लोक, न्याय, सस्मृतिवेद, एवं शैवाद्यागमशास्त्रमें अप्रसिद्धवस्तुका

---

१. देशो हि वन। २. नक्तंदिव। ३. नृत्त। ४. लोकानां। ५. यथा भूतम्।

वर्णन यदि कवि असावधानतावश कर बैठता है, तो उसे देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, कलाविरुद्ध, लोकविरुद्ध, न्यायविरुद्ध, वेदविरुद्ध, आगमविरुद्ध आदि नामोंसे व्यवहृत किया जाता है ॥ १६४ ॥

कर्पूरपादपामर्शसुरभिर्मलयानिलः ।
कलिङ्गवनसंभूता मृगप्राया मतङ्गजाः ॥ १६५ ॥

देशविरुद्धमुदाहरति—**कर्पूरेति** । कर्पूरपादपानाम् आमर्शः संसर्गस्तेन सुरभिः सुगन्धयुतः मलयानिलः मलयपर्वतोत्थितो वायुः, मलयो हि चन्दनजननप्रसिद्धो दक्षिणभारतस्थः, कर्पूरपादपाश्च न तत्र प्रथन्ते, इति देशविरोधः) एवम्—कलिङ्गवनसम्भूताः कलिङ्गस्थवनजाताः मतङ्गजाः करिणः मृगप्रायाः अतिलघवः । अत्र कलिङ्गवनेषु करिणामुत्पन्नेऽप्रसिद्धया देशविरुद्धत्वम् ॥ १६५ ॥

हिन्दी—कर्पूरवृक्षके संसर्गसे सुरभित दक्षिणानिल चल रहा है [इसमें दक्षिणानिलके साथ कर्पूरवृक्षका संपर्क कविकी असावधानतासे वर्णित हुआ है, अतः यह देशविरुद्ध है] इसी प्रकार—कलिङ्गके वनमें उत्पन्न हाथी हरिणोंके समान ही छोटे होते हैं, [इस उदाहरणमें कलिङ्गके वनमें हाथीकी उत्पत्तिका वर्णन देशविरुद्ध है, क्योंकि हाथीकी उत्पत्ति सिंहलके वनोंमें प्रसिद्ध है, कलिङ्ग के वनमें नहीं ॥ १६५ ॥

चोलाः[१] कालागुरु[२]श्यामकावेरीतीरभूमयः[३] ।
इति देशविरोधिन्या वाचः प्रस्थानमीदृशम् ॥ १६६ ॥

राष्ट्ररूपदेशविरोधमुदाहरति—**चोला इति** । चोलाः द्रविडदेशनिकटवर्त्तिनः प्रदेशाः कालागुरुणा श्यामाः कृष्णवर्णाः कावेरीतीरभूमयो येषु तादृशाः सन्तीति शेषः । अत्र कविना प्रमादवशात् चोलेषु कृष्णागुरवः कावेरीप्रवाहाश्च वर्णिताः तदिदं देशविरुद्धम् । इति देशविरोधिन्याः वाचः ईदृशं प्रस्थानम् एतादृशी स्थितिः स्वरूपम् ॥ १६६ ॥

हिन्दी—चोलकी भूमि कालागुरुके संसर्गसे श्यामवर्ण कावेरीतटवाली बन गई है, इस उदाहरणमें देशविरुद्धत्वदोष है क्योंकि चोलमें न तो कृष्णागुरुका होना ही प्रसिद्ध है, न कावेरी नदी ही चोलदेशमें प्रवाहित होती है । देशविरुद्ध प्रयोगोंके स्वरूप इसी प्रकारके हुआ करते हैं ॥ १६६ ॥

पद्मिनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यह्नि कुमुद्वती ।
मधुरुत्फुल्लनिचुलो निदाघो मेघ[४]दुर्दिनः ॥ १६७ ॥

कालविरोधमुदाहरति—**पद्मिनीति** । नक्तं रात्रौ पद्मिनी कमलिनी उन्निद्रा प्रफुल्ला, अह्नि दिवा कुमुद्वती स्फुटति विकसति । मधुः वसन्तः उत्फुल्लनिचुलः विकसितवेतसवृक्षः, निदाघः ग्रीष्मसमयः मेघदुर्दिनः मेघाच्छन्नः । अत्र कमलिनी दिवा विकसति न रात्रौ, कुमुद्वती अह्नि न विकसति किन्तु रात्रौ विकसति; निचुलस्तरुर्हि वर्षासु विकसति न वसन्तेषु, ग्रीष्मो न हि मेघच्छन्नव्योमदेशो भवतीति सर्वत्र रात्रिन्दिवर्त्तुरूपकालविरोधः स्पष्टः ॥ १६७ ॥

हिन्दी—रातमें कमलिनी खिलती है, दिनमें कुमुदिनी विकसित होती है, वसन्तमें निचुल तरु खिलते हैं, और ग्रीष्ममें आकाश मेघावृत रहता है । यह कालविरोध है ॥ १६७ ॥

१. कालाः । २. गुरु । ३. श्यामाः । ४. हिमजाड्यकृत् ।

श्रव्यहंसगिरो वर्षाः शरदो मत्तबर्हिणः ।
हेमन्तो निर्मलादित्यः शिशिरः श्लाघ्यचन्दनः ॥ १६८ ॥

कालविरुद्धत्वमेवोदाहरति—**श्रव्येति** । वर्षाः प्रावृट्समयः श्रव्यहंसगिरः श्रवणसुखदहंसरुतयः, शरदः शरत्समयः मत्तबर्हिणः प्रसन्नमयूरकुलः, हेमन्तः निर्मलादित्यः भास्वरभास्करकिरणः, तथा शिशिरः श्लाघ्यचन्दनः सुखदमलयजालेपः । अत्र सर्वत्र कालविरुद्धत्वं स्फुटम् ॥ १६८ ॥

हिन्दी—वर्षा ऋतुमें हंसध्वनिकी श्रव्यताका वर्णन, शरत्‌में मयूरकी प्रसन्नताका वर्णन, हेमन्तमें भास्करके प्रकाशका वर्णन और शिशिरमें मलयजके लेपकी सुखदताका वर्णन कालविरोध है; क्योंकि उनका अयथार्थत्व प्रसिद्ध है ॥ १६८ ॥

इति कालविरोधस्य दर्शिता गतिरीदृशी ।
मार्गः कलाविरोधस्य मनागुद्दिश्यते यथा ॥ १६९ ॥

कालविरोधमुपसंहरन् कलाविरोधं प्रस्तौति—**इतीति** । इति पूर्वदर्शितदिशा ईदृशी उक्तरूपा कालविरोधस्य अयथासमयवर्णनकृतस्य दोषस्य गतिः प्रकारो दर्शिता निरूपिता । अथ कलाविरोधस्य नाट्यगीतादिकलाविरुद्धस्य मार्गः प्रकारः मनाक् स्वल्पम् उद्दिश्यते, यथेति वक्ष्यमाणोदाहरणप्रस्तावाय ॥ १६९ ॥

हिन्दी—इस प्रकार कालविरुद्धत्व नामक दोषका प्रकार-प्रभेद बताया गया, अब संक्षेपमें कलाविरुद्धत्व दोषका स्वरूप दिखलाया जायगा, उदाहरण इस प्रकार है ॥ १६९ ॥

वीरशृङ्गारयोर्भावौ स्थायिनौ क्रोधविस्मयौ ।
पूर्णसप्तस्वरः सोऽयं भिन्नमार्गः प्रवर्त्तते ॥ १७० ॥

कलाविरोधे नाट्यकलाविरोधं सङ्गीतकलाविरोधं चोदाहरति—**वीरशृङ्गारयोरिति** । नाट्यशास्त्राचार्यो भरतो नाट्ये शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकबीभत्साद्भुताख्यानष्टरसान् नाट्ये संमतवान्, रतिहासशोकोत्साहभयजुगुप्साविस्मयाख्यांश्च क्रमशस्तत्तद्रसस्थायिभावानुक्तवान्, तदनुसारेण वीरशृङ्गारयोः स्थायिभावौ उत्साहरत्याख्यौ, तत्र क्रोधविस्मययो रौद्राद्भुतस्थायिनोर्वीरशृङ्गाररसयोः स्थायित्वेनोपादानं नाट्यकलाविरुद्धम् ।

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः पञ्चमश्चेति सप्तस्वराः सङ्गीतशास्त्रे प्रसिद्धाः, तेषां तत्तत्कालनियतत्वम्, द्वित्रस्वरसंयोगे सङ्कीर्णत्वम्, सति चासङ्कीर्णत्वे भिन्नमार्गत्वम्, तदयं नियमोऽत्र नादृतः पूर्णसप्तस्वरस्यापि भिन्नमार्गत्वोक्तेः, तदिदं सङ्गीतकलाविरुद्धम् ॥१७०॥

हिन्दी—वीररस एवं शृङ्काररसके स्थायीभाव क्रोध एवं विस्मय कहे जाँय, तो यह नाट्यकलाविरुद्धत्व नामक दोष है; क्योंकि नाट्यशास्त्रके अनुसार वीर-शृङ्गारके स्थायीभाव उत्साह-रति हैं, क्रोध-विस्मय नहीं ।

निषाद, ऋषभ आदि सात स्वर प्रसिद्ध हैं, एकाधिक स्वरका सङ्कीर्णत्व होने पर भिन्न मार्ग नहीं रह जाता है, इस उदाहरणमें सप्तस्वरसाङ्कर्य होनेपर भी भिन्नमार्गत्व स्वीकृत किया गया है, यह कलाविरोध नामक दोष है ॥ १७० ॥

इत्थं कलाचतुःषष्टिविरोधः साधु नीयताम् ।
तस्याः कलापरिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति ॥ १७१ ॥

---

१. श्राव्य । २. शरदामत्तबर्हिणी । ३. नन्दनः । ४. काल । ५. पूर्णः । ६. षष्टौ । ७. काले ।

कलाविरोधमुपसंहरति—**इत्थमिति** । इत्थं वर्णितप्रकारेण कलाचतुष्षष्टिविरोधः चतुष्षष्टिसंख्यककलाविरोधः साधु नीयताम् तर्क्यताम् । तस्याः कलायाः रूपम् कलापरिच्छेदे नाम ललितकलावर्णनात्मके स्वतन्त्रे ग्रन्थे आविर्भविष्यति । तस्य ग्रन्थस्य मुख्यतः कलापरिचयार्थमेव निर्मितनया तत्रैव कलास्वरूपवर्णनौचित्यमिति नात्र तदनुक्त्या न्यूनत्वमाशङ्कनीयम् ॥ १७१ ॥

हिन्दी—इसी तरह चौसठ कलाओंके विरुद्धत्वका अनुमान कर लिया जा सकता है, कलाके स्वरूपका परिचय कलापरिच्छेद नामक ग्रन्थमें दिया जायगा।

कलापरिच्छेदमें प्रधानतः कलाका निरूपण होगा ॥ १७१ ॥

आधूतकेसरो हस्ती तीक्ष्णशृङ्गस्तुरङ्गमः ।
गुरुसारोऽयमेरण्डो निःसारः खदिरद्रुमः ॥ १७२ ॥

लोकविरुद्धत्वमुदाहरति—**आधूतकेसर इति** । हस्ती आधूतकेसरो न भवति, केसरा हि सिंहस्य प्रथन्ते न हस्तिनः, तुरङ्गमशृङ्गोऽप्यलोक एव, एरण्डस्यासारत्वं ख्यातं तदत्र गुरुसारत्वेनोच्यते, एवं प्रसिद्धसारवतः खदिरतरोः निःसारत्वमुच्यते, तदिदं सर्वं लोकविरुद्धत्वोदाहरणम् ॥ १७२ ॥

हिन्दी—हाथी केसरको हिलाता है, घोड़ेकी सींग बहुत तीक्ष्ण है, इस एरण्डवृक्षमें बड़ा सार है और यह खदिरवृक्ष असार है।

इस उदाहरणमें लोकविरुद्ध बातें कही गई हैं, अतः इसे लोकविरुद्धत्व कहा जाता है। पूर्वार्द्धमें जङ्गमलोक और उत्तरार्धमें स्थावरलोक-विरुद्धत्वका उदाहरण दिया गया है ॥ १७२ ॥

इति लौकिक एवायं विरोधः सर्वगर्हितः ।
विरोधो हेतुविद्यासु न्यायाख्यासु निदर्श्यते ॥ १७३ ॥

लोकविरुद्धत्वमुपसंहरन् हेतुविद्याविरुद्धत्वमवतारयति—**इति लौकिक इति** । इति प्रोक्तरूपः अयं लौकिक एव विरोधः सर्वगर्हितः सर्वलोकनिन्दितः अस्ति, तस्मात् तत्परिहारे यतनीयम् ।

न्यायाख्यासु हेतुविद्यासु तर्कशास्त्रेषु विरोधः निदर्श्यते उपह्रियते ॥ १७३ ॥

हिन्दी—इस प्रकार लोकविरुद्धत्वका उदाहरण दिया गया, जो सर्वथा गर्हित है, इसके बाद न्यायविद्या नामसे प्रसिद्ध तत्तत् तर्कविद्याओंके विरुद्धत्वका उदाहरण दिया जाता है ॥ १७३ ॥

सत्यमेवाह सुगतः संस्कारानविनश्वरान् ।
तथाहि सा चकोराक्षी स्थितैवाद्यापि मे हृदि ॥ १७४ ॥

बौद्धदर्शनरूपन्यायविरोधमुदाहरति—**सत्यमिति** । सुगतः गौतमः सत्यम् एव संस्कारान् अनुभवजन्यभावनाविशेषान् अविनश्वरान् स्थायिनः आह, तथाहि सा चकोराक्षी अद्यापि मे हृदि स्थिता एव । संस्कारा अनश्वरा भवन्ति, अत एव च चिरदृष्टापि सा सुन्दरी मम हृदये स्थिता ।

अत्र सर्वक्षणिकतावादिनो बौद्धस्य साक्ष्येण सर्वास्तित्वप्रतिपादनं बौद्धन्यायविरुद्धम् ॥ १७४ ॥

---

१. उग। २. तथैव।

हिन्दी—भगवान् सुगतने संस्कारोंको ठीक ही अविनाशी स्वीकार किया है; क्योंकि चिरदृष्ट होनेपर भी वह सुन्दरी मेरे हृदयमें आज भी वर्त्तमान है।

इस उदाहरणमें सर्वक्षणिकतावादी भगवान् बुद्धको साक्षी देकर संस्कारका अविनश्वरत्व प्रतिपादन किया गया है, यह बौद्धन्यायविरुद्ध है ॥ १७४ ॥

कपिलैरसदुद्भूतिः स्थान एवोपवर्ण्यते।
असतामेव दृश्यन्ते यस्मादस्माभिरुद्भवाः ॥ १७५ ॥

साङ्ख्यशास्त्रविरुद्धत्वमुदाहरति—**कपिलैरिति**। कापिलैः सांख्यशास्त्रानुसारिभिः स्थान एव युक्तरूपमेव असदुद्भूतिः असतः जगदुत्पत्तिः (असतामुत्पत्तिश्च) उपवर्ण्यते, यस्माद् अस्माभिः (जगति) असतां दुर्जनानामेव उद्भवाः उत्पत्तयो दृश्यन्ते।

अत्र साङ्ख्यशास्त्रसिद्धान्तभूतसत्कार्यवादविरुद्धमसत्कार्यत्वमुक्तमिति सांख्यविरुद्धत्वोदाहरणमिदम् ॥ १७५ ॥

हिन्दी—कपिलमतानुगामियोंने ठीक ही असत्से उत्पत्तिका प्रतिपादन किया है (असतोंकी उत्पत्तिका प्रतिपादन किया है) क्योंकि हम संसारमें असतों—दुर्जनोंकी ही उत्पत्ति देख रहे हैं।

इस उदाहरणमें सांख्यमतके विपरीत असत्से उत्पत्तिका प्रतिपादन किया है, अतः यह सांख्यविरुद्ध है ॥ १७५ ॥

गतिर्न्यायविरोधस्य सैषा सर्वत्र दृश्यते।
अथागमविरोधस्य प्रस्थानमुपदिश्यते ॥ १७६ ॥

न्यायविरोधमुपसंहरति— **गतिरिति**। न्यायविरोधस्य न्यायविरुद्धत्वदोषस्य सैषा गतिः सोऽयं मार्गः सर्वत्र अन्यान्यन्यायविरुद्धत्वस्थलेऽपि दृश्यते यथा बौद्धसांख्यन्यायः उक्तः, एवमेवान्यान्यन्यायविरोधोऽपि लक्ष्येष्वन्वेष्य इति भावः। अथागमविरोधस्य प्रस्थानं प्रकारः उपदिश्यते प्रदर्श्यते ॥ १७६ ॥

हिन्दी—न्यायविरुद्धत्व दोषके उदाहरण दिये गये, अब आगे आगमविरुद्धत्व दोषके प्रकार दिखलाये जाते हैं ॥ १७६ ॥

अनाहिताग्नयोऽप्येतेऽजातपुत्रा वितन्वते।
विप्रा वैश्वानरीमिष्टिमक्लिष्टाचारभूषणाः ॥ १७७ ॥

श्रुतिविरोधमुदाहरति—**अनाहितेति**। एते अनाहिताग्नयः अकृताग्न्याधाना अपि अजातपुत्राः अनुत्पन्नपुमपत्या अपि अक्लिष्टाचारभूषणाः अदूषिताचारभूषिताः विप्राः वैश्वानरीम् विराट्पुरुषसंबन्धिनीम् इष्टिं वितन्वते यज्ञं कुर्वते। अत्र कृताग्न्याधाना जातपुत्रा एव च विप्रा वैश्वानरीमिष्टिं प्रत्यधिकारिणः, तद्विरुद्धं चात्रोक्तमिति भावः ॥ १७७ ॥

हिन्दी—अग्न्याधान नहीं करनेवाले और बिना पुत्र वाले भी सदाचारी ब्राह्मणगण विश्वानर याग कर रहे हैं।

यहाँ आगमविरुद्धत्व दोष है क्योंकि श्रुतिके अनुसार वही विश्वानरयागके अधिकारी हैं जो अग्न्याधान कर चुके हों और जिन्हें पुत्र प्राप्त हो, परन्तु यहाँ बिना, अग्न्याधानके और बिना पुत्रके ही विश्वानर यागका करना वर्णित किया गया है, अतः यह श्रुतिविरुद्धत्व दोष है ॥ १७७ ॥

---

१. वर्णिता। २. नीतिः। ३. सैवाप्यन्यत्र दृश्यताम्। ४. दर्शयिष्यते। ५. राजपुत्रा।

असावनुपनीतोऽपि वेदानधिजगे गुरोः ।
स्वभावशुद्धः स्फटिको न संस्कारमपेक्षते ॥ १७८ ॥

स्मृतिविरोधमुदाहरति—**असाविति** । असौ कुमारः अनुपनीतः अकृतव्रतबन्धोऽपि गुरोः वेदान् अधिजगे, तत्र दृष्टान्तमाह—**स्वभावेति** । स्वभावशुद्धः प्रकृतिनिर्मलः स्फटिकः संस्कारं न अपेक्षते । यथाऽसंस्कृतोपि स्फटिकमणिः प्रतिबिम्बग्राही भवत्येव, तद्वदनुपनीतोऽप्यसौ बटुर्वेदानधिजगे इत्यर्थः ।

अत्र स्मृत्या कृतोपनयनस्यैव वेदाध्ययनं विहितं, तद्विरुद्धं चोक्तमिति स्मृतिविरुद्धत्व-दोषोऽत्र स्फुटः ॥ १७८ ॥

हिन्दी—बिना यज्ञोपवीतसंस्कारके भी उस कुमारने गुरुसे सारे वेद पढ़ लिए, स्वभाव-निर्मल स्फटिकको संस्कारकी अपेक्षा नहीं होती है ।

इस उदाहरणमें स्मृतिविरुद्धत्व दोष है; क्योंकि उपनयनके बाद ही वेदाध्ययन का अधिकार स्मृतिसम्मत है, उसके विरुद्ध इसमें लिखा है ॥ १७८ ॥

विरोधः सकलोऽप्येष कदाचित् कविकौशलात् ।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ॥ १७९ ॥

पूर्वोक्तस्य देशकालादिविरुद्धत्वदोषस्य गुणत्वमुपपादयति—**विरोध इति** । सकलः सर्वप्रकारोप्येष देशकालादिविरुद्धत्वदोषः कविकौशलात् कविप्रतिभावशात् कदाचित् दोषगणनाम् उत्क्रम्य विहाय गुणवीथीं गुणगणनां विगाहते प्राप्नोति । कदाचिदयमपि दोषो विचित्रकविप्रतिभया चमत्कारस्वरूपेण निबध्यमानः सन्गुणायते इत्यर्थः ॥ १७९ ॥

हिन्दी—अब तक जो देशकालादिविरोधका स्वरूपादि दिखलाया गया है, वह यदि कवि-प्रतिभाद्वारा चमत्कारक रूपमें वर्णित हो तो वह देशकालादिविरोधदोषकी गिनती छोड़कर गुणकी गणना में आ जाता है ॥ १७९ ॥

तस्य राज्ञः प्रभावेण तदुद्यानानि जज्ञिरे ।
आर्द्रांशुकप्रवालानामास्पदं सुरशाखिनाम् ॥ १८० ॥

देशविरुद्धत्वदोषस्य गुणत्वमुदाहरति—**तस्येति** । तस्य कस्यापि वर्णनीयस्य राज्ञः प्रभावेण सामर्थ्यातिशयेन तदुद्यानानि तस्य राज्ञः पुष्पोपवनानि आर्द्रांशुकप्रवालानाम् जलक्लिन्नवस्त्ररूपप्रवालयुक्तानाम् सुरशाखिनाम् दिवपादपानां कल्पद्रुहाम् आस्पदं जज्ञिरे जातानि । तेन राज्ञः स्वप्रभाववशात्स्वर्गादानीय कल्पतरवः स्वोद्याने स्थापिताः, येषां शाखासु तत्तरुण्यः स्वीयान्यार्द्राणि वस्त्राणि प्रसारयामासुः । अत्र कल्पपादपानां नृपोद्याने वर्णनं देशविरुद्धमपि तदीयसामर्थ्यव्यञ्जकतया गुणतां गतानीति भावः ॥१८०॥

हिन्दी—उस राजाके प्रभावसे उसके उद्यान भींगे हुए वस्त्रोंसे प्रवालपूर्ण कल्पद्रुमोंके आश्रय बन गये । उस राजाने स्वर्गसे लाकर कल्पवृक्षों को अपने उद्यानोंमें रोपित किया ।

इस उदाहरणमें यद्यपि देशविरोध है, तथापि राजाके प्रभावातिशयकी व्यञ्जना होनेसे वह देशविरोध गुण बन गया है ॥ १८० ॥

राज्ञां विनाशपिशुनश्चचार खरमारुतः ।
धुन्वन् कदम्बरजसा सह सप्तच्छदोद्गमान् ॥ १८१ ॥

---

१. तस्य प्रभावेण तदा । २. आर्द्राङ्कुर । ३. धून्वन् । ४. द्रुमम् ।

कालविरोधमाह—राज्ञामिति । राज्ञां प्रतिपक्षनृपतीनाम् विनाशपिशुनः भाविमरणसूचकः खरमारुतः चण्डवातः कदम्बरजसा कदम्बकुसुमरेणुभिः सह सप्तच्छदोद्गमान् सप्तपर्णः पुष्पाणि धुन्वन् कम्पयन् चचार ववौ । तदयं कदम्बरजसा सह सप्तच्छदोद्गमोपनिबन्धः कालविरुद्धोऽपि 'अकाले फलपुष्पाणि देशविद्रवकारणम्' इति प्रतिपन्थिराजविनाशसूचनया गुणभावं भजते । राज्ञो विजययात्रावर्णनमिदम् ॥ १८१ ॥

हिन्दी—राजाके विजयप्रयाणसमयमें शत्रुनृपतियोंके विनाशकी सूचना देनेवाली और कदम्बपुष्परजके साथ सप्तपर्णपुष्पोंको कम्पित करनेवाली प्रचण्ड वायु बहने लगी ।

यहाँ कदम्बपुष्पके साथ सप्तपर्णपुष्पोद्गमका वर्णन कालविरुद्ध है, तथापि उसे दोष नहीं माना जायगा, क्योंकि—'अकाले फलपुष्पाणामुदये देशविद्रवः' के अनुसार उससे शत्रुनृपदेशके नाशकी व्यञ्जना होती है ॥ १८१ ॥

दोलाभिप्रेरणत्रस्तवधूजनमुखोद्गतम् ।
कामिनां लयवैषम्यं गेयं रागमवर्धयत् ॥ १८२ ॥

कलाविरोधस्य गुणत्वमुदाहरति—दोलेति । दोलायाः अभिप्रेरणम् इतस्ततः सञ्चलनं तेन त्रस्तस्य भीतस्य वधूजनस्य मुखादुद्गतं लये वैषम्यं भिन्नप्रकारत्वं यत्र तादृशं गेयं दोलागीतं कामिनां रागम् आनन्दम् अवर्धयत् । लयशुद्धगीतस्यैव रागवर्द्धकत्वौचित्येऽपि सविशेषानुरागसूचकतया गुणत्वमत्र लयवैषम्यस्येति ॥ १८२ ॥

हिन्दी—झूलेके चलायमान होनेसे डरी हुई अबलाओंके मुखसे निकला हुआ विषमलयवाला गान कामिजनके रागको बढ़ाता रहा ।

इस उदाहरणमें विषमलयगानका रागवर्धकत्व कलाविरुद्ध है, क्योंकि लयशुद्धगान ही रागवर्धक हो सकता है, तथापि कामिजनोंके उत्कट रागकी सूचना देनेसे वह गुण ही माना जाता है ॥१८२॥

ऐन्दवादर्चिषः कामी शिशिरं हव्यवाहनम् ।
अबलाविरहक्लेशविह्वलो गणयत्ययम् ॥ १८३ ॥

लोकविरुद्धत्वस्य गुणत्वमुदाहरति—ऐन्दवादिति । अयम् अबला विरहक्लेशविह्वलः कामी प्रियाविरहकष्टकातरः कामुकः ऐन्दवात् अर्चिषः चन्द्रसम्बन्धिनः प्रकाशात् हव्यवाहनं वह्निं शिशिरं शीतलं गणयति मन्यते, 'दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा विरहजैव पृथुः' इति नैषधे । अत्र वियोगकष्टाधिक्यव्यञ्जकतया लोकविरोधस्य गुणत्वं बोध्यम् ॥ १८३ ॥

हिन्दी—यह प्रियाविरहकातर कामीजन चन्द्रकरसे वह्निको ही शीतल समझता है ।

इस उदाहरणमें चन्द्रकरापेक्षया वह्निका शीतलत्व लोकविरुद्ध वर्णित हुआ है, परन्तु वियोगकष्टाधिक्य सूचनाद्वारा वह गुण मान लिया जाता है ॥ १८३ ॥

प्रमेयोप्यऽप्रमेयोऽसि सफलोऽप्यसि निष्फलः ।
एकस्त्वमप्यनेकोऽसि नमस्ते विश्वमूर्त्तये ॥ १८४ ॥

न्यायविरोधस्य गुणत्वमाह—प्रमेय इति । प्रमेयः वेदप्रमाणज्ञेयः अपि अप्रमेयः अनन्तगुणशालितयाऽपरिच्छेद्यरूपः, सफलः व्यष्टिरूपेण अंशवान् अपि समष्टिरूपेण निष्फलः निरंशः असि, एकः अद्वितीयः अपि अनेकः 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्युक्त्यनुसारम् अनेकः असि, तादृशाय विश्वमूर्त्तये सर्वव्यापकस्वरूपाय ते तुभ्यं नमः ।

---

१. दोलातिप्रेरणात्रस्त २. वैषम्याद् गेयम् । ३. स्थलम् । ४. सकलोप्यसि निष्कलः ।

अत्र परस्परविरुद्धानां तत्तद्धर्माणामेकत्र वर्णनं न्यायविरुद्धमपि परमेश्वरस्य लोकातीतमाहात्म्यप्रकाशतया गुणत्वं भजते ॥ १८४ ॥

हिन्दी—वेदप्रमाणवेद्य होकर भी अन्तहीनगुणशील होनेसे आप अज्ञेय हैं, व्यष्टिरूपमें सफल होकर भी समष्टिरूपमें आप निष्फल हैं, एवम् अद्वितीय होकर भी आप विश्वरूप हैं, इस तरहके आप परमेश्वरको नमस्कार है।

इस उदाहरणमें परस्परविरुद्ध धर्मोका एकत्र वर्णन न्यायविरुद्ध होने पर भी परमेश्वरके लोकातीत महात्म्य सूचन करनेके कारण गुण हो जाता है ॥ १८४ ॥

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां पत्नी पाञ्चालपुत्रिका[1]।
सतीनामग्रणीश्चासीद् दैवो हि विधिरीदृशः ॥ १८५ ॥

आगमविरोधस्य गुणत्वमुदाहरति—**पञ्चानामिति**। पञ्चानां युधिष्ठिरादीनां पाण्डुपुत्राणां पत्नी पाञ्चालपुत्रिका द्रौपदी सतीनाम् अग्रणीः मूर्धन्या आसीत्, दैवः देवतासम्बन्धी विधिः नियमः ईदृशः भवति। स्त्रिय एकस्याः पञ्चपुरुषपत्नीत्वे सतीत्वमागमविरुद्रम्, परन्तु आगमानां लोकबाधकत्वेऽपि देवबाधकत्वाभावेन द्रौपद्या देवतां व्यञ्जयत्तद्गुणभावं भजते ॥ १८५ ॥

हिन्दी—पाँच पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी सतियोंकी शिरोमुकुट रही, देवोंके नियम ही कुछ अद्भुत होते हैं।

इस उदाहरणमें एक स्त्रीका अनेक पति होना आगमविरुद्ध है, परन्तु उससे द्रौपदीका देवताभाव सूचित होता है, अतः वह दोष नहीं होकर गुण हो जाता है ॥ १८५ ॥

शब्दार्थालङ्क्रियाश्चित्रमार्गाः सुकरदुष्कराः[2]।
गुणा दोषाश्च काव्यानामिह[3] संक्षिप्य दर्शिताः ॥ १८६ ॥

ग्रन्थमुपसंहरति—**शब्दार्थेति**। काव्यानां शब्दार्थालङ्क्रियाः शब्दालङ्कारा अर्थालङ्काराश्च तथा सुकरदुष्कराः चित्रमार्गाः चित्रालङ्काराः गुणाः श्लेषप्रसादादयः दोषा अपार्थत्वादयश्च दश संक्षिप्य दर्शिताः ॥ १८६ ॥

हिन्दी—अबतक इस ग्रन्थमें शब्दालङ्कार-दीपक, आवृत्ति, क्रम, श्लेष (चार), अर्थालङ्कार—स्वभावाख्यानादि [चौंतीस], सुकर तथा दुष्कर चित्रमार्ग, सुकर—पादादियमकादि और दुष्कर-महायमकस्वरस्थानवर्णादि नियम, गुण—श्लेषादि एवं दोष अपार्थत्वादि संक्षिप्तरूपमें दिखाये गये हैं ॥ १८६ ॥

व्युत्पन्नबुद्धिरमुना विधिदर्शितेन
मार्गेण दोषगुणयोर्वशवर्त्तिनीभिः।
वाग्भिः कृताभिसरणो[4] मदिरेक्षणाभि-
र्धन्यो युवेव रमते लभते च कीर्त्तिम् ॥ १८७ ॥

इत्याचार्यदण्डिनः कृतौ काव्यादर्शे शब्दालङ्कारदोषविभागो नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥

---

१. कन्यका। २. शब्दार्थानां क्रियामार्गाः सुकराश्चैव दुष्कराः। ३. काव्यानामिति। ४. कृतानु।

ग्रन्थफलं निर्दिशति—**व्युत्पन्नेति**। अमुना पूर्वोक्तरूपेण विधिदर्शितेन भरताद्याचार्यादेशानुकूलं निरूपितेन दोषगुणयोः हेयतोपादेयताप्रयोजकधर्मयोः मार्गेण विवेचनप्रकारेण व्युत्पन्नबुद्धिः संस्कृतमतिः (विद्वान्) वशवर्त्तिनीभिः आयत्तीकृताभिः वाग्भिः कृताभिसरणः स्वयंकृताभिगमनः सन् धन्यो युवा मदिरेक्षणाभिरिव (ताभिः वाग्भिः) रमते कीर्त्तिं च लभते। भरतोक्तमार्गानुसारिणाऽत्र निरूपितेन दोषगुणयोः स्वरूपेण काव्यतत्त्वं विद्वज्जनो वाचं वशगां विधाय तया सह रमते, यथा धन्यो युवा मदिरेक्षणां वशगां विधाय तया सह रमते, कीर्त्तिलाभः परमस्य वाग्वशयितुरतिरिच्यत इति ॥१८७॥

हिन्दी—भरतादिआचार्यसम्मत तथा यहाँ बताये गये दोष-गुणके रूपको जानकर संस्कृत-बुद्धि साहित्यमर्मज्ञ विद्वान् वाणीको अपने वशमें करके उसके साथ विलास किया करेगा, जैसे रमणीय धनसौन्दर्यादिशाली युवा रमणीको वशवर्त्तिनी बनाकर उसके साथ विलास किया करता है। वाणीको वशमें करनेवाला केवल सुखसौभाग्य ही नहीं, कीर्त्ति भी प्राप्त करेगा ।१८७॥

यो जातो धरणीसुरान्वयसरोहंसात्प्रसर्पद्यशो-
ज्योत्स्नाद्योतितदिङ्मुखान्मधुरिपुध्यानैकबद्धाशयात्।
मिश्राख्यान्मधुसूदनाज्जयमणौ सीमन्तिनीनां मणौ
तस्य श्रीयुतरामचन्द्रसुधियो व्याख्या प्रसिद्धयादियम् ॥ १ ॥
वेदद्वन्द्वनभोक्षिसम्मितशरद्याशातिथौ मार्गगे
चन्द्रे पुष्यति वासरे दिनमणेः श्रीशारदानुग्रहात्।
'रांची' स्थापितराज्यसंस्कृतमहाविद्यालये पूर्णता-
मानीतेयमुमामहेश्वरपदाम्भोजेषु विश्राम्यतु ॥ २ ॥
'विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमाः'
उक्त्वैतद्विमुखीभवामि न मनागालोचनावर्त्मनः।
ते हि स्वर्णपरीक्षणैकनिकषानिष्पक्षपातां दृशं
निक्षिप्यात्मगुणोचितादरभुवं कुर्युर्ममेमां कृतिम् ॥ ३ ॥
छिद्रान्वेषणमात्रसज्जधिषणानप्यत्र दोषान् बहून्
ग्रन्थे दर्शयतो न मत्सरितया निन्दामि किन्त्वर्थये।
निर्दोषेण पथा प्रशस्तरचनां निर्माय काञ्चित् कृतिं
लोकेभ्यः समुपाहरन्तु भविता भूयो यशोऽनेन वः ॥ ४ ॥
मान्यान्मानहमाद्रिये नतशिरास्ते ते सखायश्च मे
येषामाग्रहतो विदन्नपि निजां शक्तिं प्रवृत्तोऽभवम्।
व्याख्यानेऽत्र न तैरियं मम कृतिः कार्यान्यथा हव्यपदं
सर्वानिन्दितकीर्त्तिलाभसुभगं भाग्यं कुतोऽस्मादृशाम् ॥ ५ ॥

इति 'मुजफ्फरपुर'मण्डलान्तःपाति'पकड़ी'ग्रामवासिना 'रांची'स्थराजकीय-
संस्कृतमहाविद्यालये साहित्याध्यापकेन व्याकरणसाहित्यवेदान्ताचार्या-
द्युपाधिप्रसाधिनां मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मणा विर-
चितायां काव्यादर्शस्य प्रकाशाभिधायां व्याख्यायां
तृतीयपरिच्छेदप्रकाशः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

श्लोकानुक्रमणिका